परमात्म प्रकाश प्रवचन

भाग-५

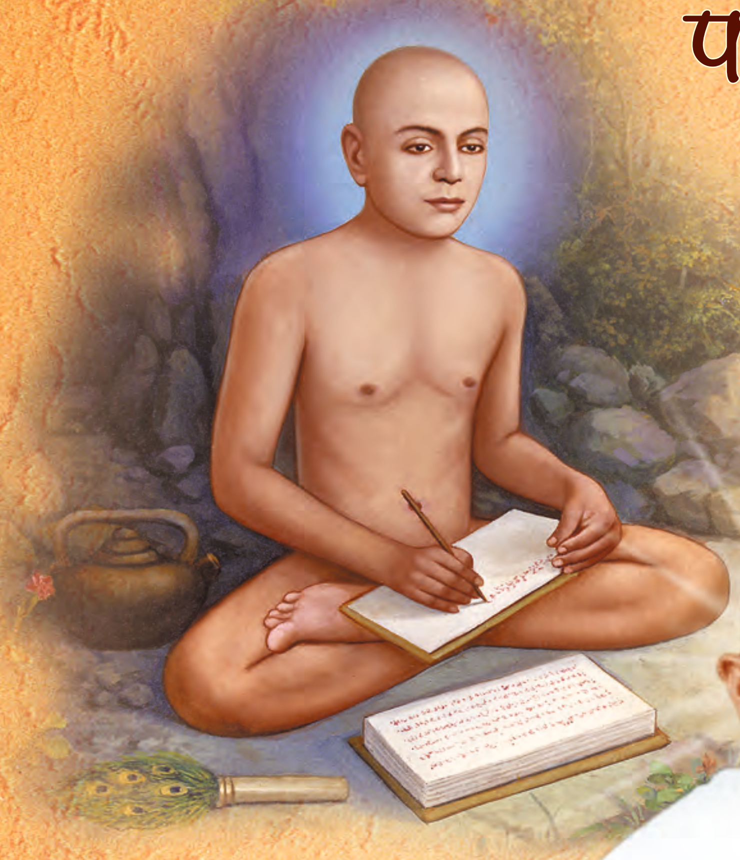

ॐ

श्री सिद्ध परमात्मने नमः
श्री सीमंधरदेवाय नमः
श्री सद्गुरुदेवाय नमः
श्री निजशुद्धात्मने नमः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग-5

परमपूज्य योगीन्द्रदेव कृत परमात्मप्रकाश ग्रन्थ पर
अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
के शब्दशः प्रवचन (द्वितीय अधिकार)
गाथा 41 से 79, प्रवचन क्रमांक 123 से 154

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत 2078 | **वीर संवत 2548** | **ई. सन 2022**

—: प्रकाशन :—

दशलक्षण महापर्व

अगस्त, सितम्बर 2022

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250 फोन : 02846–244334

2. श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई–400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैन धर्मोस्तु मंगलं।।

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीरस्वामी द्वारा प्रवर्तमान जिनशासन अखण्ड मोक्षमार्ग से आज भी सुशोभित है। वीर प्रभु की दिव्यध्वनि में प्रकाशित मोक्षमार्ग, तत्पश्चात् हुए अनेक आचार्यों तथा सन्तों द्वारा अखण्डरूप से प्रकाशित हो रहा है। आचार्यों की परम्परा का इतिहास दृष्टिगोचर किया जाये तो श्री योगीन्द्रदेव ई.स. छठवीं शताब्दी में हुए है। आपश्री ने स्वयं की सातिशय अनुभवलेखनी द्वारा अनेक महान परमागमों की रचना की है। आपने स्वानुभवदर्पण, परमात्मप्रकाश, योगसार, दोहापाहुड़ इत्यादि अनेक वीतरागी ग्रन्थों की रचना की है। परमात्मप्रकाश ग्रन्थ आपश्री की ही कृति है। इस ग्रन्थ में आप की स्वरूप-भावना तथा उसके आश्रय से उत्पन्न हुए स्वसंवेदनज्ञान, वीतरागी अतीन्द्रिय सुख का रस प्रत्येक गाथा में नितरता है। भव्य जीवों के हितार्थ हुई ग्रन्थरचना पाठकवर्ग को भी अत्यन्त रस उत्पन्न होने का निमित्त होती है। आपकी लेखनी में द्रव्यदृष्टि का जोर दर्शाती हुई अनेक गाथायें इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होती हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के टीकाकार श्री ब्रह्मदेवजी भी अध्यात्मरसिक महान आचार्य थे। उनका मूल नाम 'देव' और बालब्रह्मचारी होने से ब्रह्मचर्य का बहुत रंग होने के कारण 'ब्रह्म' उनकी उपाधि हो जाने से 'ब्रह्मदेव' नाम पड़ा था। वे ई.स. 1070 से 1110 के दौरान हुए हैं, ऐसा माना जाता है। पण्डित दौलतरामजी ने संस्कृत टीका का आधार लेकर अन्वयार्थ तथा उनके समय की प्रचलित देशभाषा ढूंढारी में सुबोध टीका रची है। ग्रन्थ दो महाअधिकारों में विभाजित है। आत्मा-परमात्मा किस प्रकार हो, इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन इस ग्रन्थ में दृष्टिगोचर होता है।

प्रथम अधिकार में भेद विविक्षा से आत्मा—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक संसारी जीव को भेदज्ञान निरन्तर भाना चाहिए, इसका विस्तार से वर्णन करके परमात्मा होने की भावना बतलायी है। द्वितीय अधिकार में प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल की रुचि होने के लिये सर्व प्रथम मोक्ष और मोक्ष के फल का स्वरूप बतलाया है।

प्रवर्तमान जिनशासन में हम सबके परम तारणहार भावितीर्थाधिनाथ शासन दिवाकर अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने लुप्तप्राय: अखण्ड मोक्षमार्ग को पुन: जागृत

करके भरतक्षेत्र के जीवों पर अविस्मरणीय अनन्त उपकार किया है। जन्म-मरण से मुक्त होना और सादि-अनन्त स्वरूपसुख में विराजमान होने का मार्ग पूज्य गुरुदेवश्री ने स्वयंबुद्धत्व योग प्रगट कर प्रकाशित किया है। उनका इस काल में उदय वह एक ऐसी अपूर्व घटना है, जैसे सूर्य प्रकाशित होने पर कमल खिल उठते हैं, उसी प्रकार भव्य जीवों का आत्मा रसविभोर होकर पुलकित होकर खिल उठता है। अनेक जीव मोक्षमार्ग प्राप्त करने के प्रति प्रयत्नशील बने हैं। और पंचम काल के अन्त तक गुरुदेवश्री द्वारा प्रस्थापित मोक्षमार्ग अखण्डरूप से प्रवर्तमान रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक अध्यात्म शास्त्रों पर अनुभवरस झरते प्रवचन प्रदान किये हैं। उनमें से यह एक ग्रन्थ है—परमात्मप्रकाश। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रवचन डी.वी.डी. में आज मौजूद है, उन्हें सुनते हुए गुरुदेवश्री की अमीरस झरती वाणी के दर्शन होते हैं। गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन में अनेक पहलुओं से आत्मस्वरूप को प्रकाशित करता हुआ तत्त्व प्रकाशमान होता है। आपश्री की उग्र अध्यात्मपरिणति के दर्शन वाणी द्वारा हो सकते हैं। पूर्वापर अविरोध वाणी, अनुभवशीलता, आत्मा को सतत् जागृत करनेवाली वाणी का लाभ जिन्होंने प्रत्यक्ष प्राप्त किया है, वे धन्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने किसी भी प्रकार के संस्कृत, व्याकरण के अभ्यास बिना आचार्यों के हृदय खोलकर जो अनुपम भाव उन्होंने जगत के समक्ष प्रकाशित किये हैं, वह अलौकिक है! स्वलक्ष्य से स्वयं के भावों के साथ मिलान करके उन्हें समझा जाये तो वह एक अपूर्व कल्याण का कारण है। पूज्य गुरुदेवश्री के लिये या उनकी वाणी के लिये कुछ भी कहना, लिखना अथवा बोलना वह सूर्य को दीपक बतलाने के समान है। तथापि गुरुदेवश्री का अमाप उपकार हृदयगत होने पर शब्द अपने आप ही भक्तिभाव से निकल पड़ते हैं। आपश्री के उपकार का बदला तो किसी भी प्रकार से चुकाया जा सके, ऐसा नहीं है मात्र उनके द्वारा प्रकाशित पन्थ पर शुद्ध भावना से प्रयाण करें, यही भावना है।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा स्थापित अनेक जिनमन्दिरों में आज उनके प्रवचन नियमितरूप से सुने जा रहे हैं। अनेक मुमुक्षु उनका लाभ लेकर मोक्षमार्ग में आरूढ़ होने के लिये प्रयत्नशील हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी ग्रन्थारूढ़ हो, ऐसी सबकी भावना होने से पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचनों को शब्दश: ग्रन्थारूढ़ करने के निर्णय के फलस्वरूप परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचनों का प्रस्तुत चौथा भाग प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। ऐसा सौभाग्य प्राप्त होने का श्रेय भी पूज्य गुरुदेवश्री को ही जाता है।

गुरुदेवश्री की सातिशय वाणी नित्य श्रवण करना, वह अपूर्व सौभाग्य है। आज अनेक जिनमन्दिरों में पूज्य गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचन सुनते समय मुमुक्षु उनके अक्षरश: प्रवचनों को

सुनने का लाभ ले रहे हैं। अनेक मुमुक्षु जीवों की भावना होने से परमात्मप्रकाश ग्रन्थ के प्रवचन प्रकाशित करने का निर्णय हमारे ट्रस्ट ने लिया। पूज्य गुरुदेवश्री के इस ग्रन्थ पर दो बार के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध हैं। उनमें से ई.स. 1976-1977 में हुए कुल 245 प्रवचनों को आठ भागों में प्रकाशित करने की भावना है। प्रवचनों को सर्व प्रथम सुनकर कम्प्यूटर में टाईप कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उन्हें सुनकर वाक्य पूर्ण करने की आवश्यकता हो, वहाँ कोष्ठक भरा जाता है। इन प्रवचनों के प्रथम प्रूफ को जाँचते समय फिर से उन्हें सुनकर चैक किया जाता है। पूज्य गुरुदेवश्री के भाव यथावत् बने रहें, इसकी विशेष सावधानी रखने का प्रयत्न किया है तथापि प्रमादवश कहीं चूक रह गयी हो तो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति शुद्ध अन्त:करण से क्षमायाचना करते हैं। पाठकवर्ग से भी अनुरोध है कि यदि कहीं कोई क्षति दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करें, जिससे अपेक्षित संशोधन किया जा सके।

परमात्मप्रकाश के इस पाँचवें भाग के प्रवचनों का गुजराती में कम्प्यूटराईज्ड करने का कार्य श्री निलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा तथा प्रत्येक प्रवचनों को सुनकर-पढ़कर चैक करने का कार्य आत्मार्थी स्व० श्री चेतनभाई मेहता राजकोट, तथा श्री मणीभाई गाला, देवलाली और श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत भावना प्रधान अध्यात्मरस भरपूर प्रवचनों का लाभ हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज भी प्राप्त करे, इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां द्वारा किया गया है। साथ ही सी.डी. से मिलानकर प्रत्येक प्रवचन की यथासम्भव शुद्धता का ध्यान रखा गया है। हम अपने सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अन्त में जिनेन्द्र परमात्मा, सर्व आचार्य भगवन्तों, ज्ञानी सद्गुरु परमपुरुष के उपकार को हृदयगत करके, उनके चरणों में बारम्बार वन्दना करके नतमस्तक होते हैं। सभी जीव पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी को पढ़कर, सुनकर आत्मकल्याण के मार्ग में अनुगमन कर शाश्वत् सादि-अनन्त समाधिसुख को प्राप्त करें, यही भावना है।

यह पुस्तक vitragvani.com में शास्त्रभण्डार के अन्तर्गत पूज्य गुरुदेवश्री के शब्दश: प्रवचन और vitragvani app पर भी उपलब्ध है।

ट्रस्टीगण,

श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विलेपार्ला, मुम्बई

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्वार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने

से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन–उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते–करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से

मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश–टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश–विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर–घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल–वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन–ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश–विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश–विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस

समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार–पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी–कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय–व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र–गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग–मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर–कमलों से हुई।

जन्म–मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म–जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त

नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖❖❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	गाथा	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
१२३	४१, ४२	०३-११-१९७६	००१
१२४	४२	०४-११-१९७६	०१६
१२५	४३	०५-११-१९७६	०३४
१२६	४३, ४४	०७-११-१९७६	०५२
१२७	४५, ४६-१	०८-११-१९७६	०७०
१२८	४६-१	०९-११-१९७६	०८९
१२९	४७, ४८	१०-११-१९७६	१०५
१३०	४८, ४९	११-११-१९७६	१२४
१३१	४९, ५०	१२-११-१९७६	१४३
१३२	५१	१३-११-१९७६	१६०
१३३	५२	१४-११-१९७६	१७९
१३४	५२, ५३	१६-११-१९७६	१९९
१३५	५३ से ५५	१७-११-१९७६	२२०
१३६	५५, ५६	१८-११-१९७६	२४०
१३७	५६	१९-११-१९७६	२६०
१३८	५७	२०-११-१९७६	२७८
१३९	५८	२१-११-१९७६	२९८
१४०	५९, ६०	२३-११-१९७६	३१६
१४१	६१	२४-११-१९७६	३३५
१४२	६१, ६२	२५-११-१९७६	३५३
१४३	६३, ६४	२६-११-१९७६	३६९
१४४	६४, ६५	२८-११-१९७६	३९०
१४५	६६, ६७	२८-११-१९७६	४१०
१४६	६७	३०-११-१९७६	४३१
१४७	६७, ६८	०१-१२-१९७६	४४७
१४८	६९, ७०	०२-१२-१९७६	४६६
१४९	७१, ७२	०३-१२-१९७६	४८४
१५०	७२ से ७४	०४-१२-१९७६	५०३
१५१	७४, ७५	०५-१२-१९७६	५२३
१५२	७५, ७६	०७-१२-१९७६	५३१
१५३	७६-७७	०८-१२-१९७६	५४८
१५४	७७ से ७९	०९-१२-१९७६	५६४

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

श्रीमद्योगीन्दुदेवविरचितः

परमात्मप्रकाश प्रवचन

(भाग – 5)

गाथा – ४१

अथ यदा ज्ञानी जीव उपशाम्यति तदा संयतो भवति कामक्रोधादिकषाय[१] वशं गतः पुनरसंयतो भवतीति निश्चिनोति –

१६४) जाँवइ णाणिउ उवसमइ तामइ संजदु होइ।
होइ कसायहँ वसि गयउ जीउ असंजदु सो।।४१।।

यावत् ज्ञानी उपशाम्यति तावत् संयतो भवति।
भवति कषायाणां वशे गतः जीवः असंयतः स एव।।४१।।

जांवइ इत्यादि। जांवइ यदा काले णाणिउ ज्ञानी जीवः उवसमइ उपशाम्यति तामइ तदा काले संजदु होइ संयतो भवति। होइ भवति कसायहं वसि गयउ कषायवशं गतः जीउ जीवः। कथंभूतो भवति। असंजदु असंयतः। कोऽसौ। सोइ स एव पूर्वोक्तजीव इति। अयमत्र भावार्थः। अनाकुलत्वलक्षणस्य स्वशुद्धात्मभावनोत्थपारमार्थिकसुखस्यानुकूलपरमोपशमे यदा ज्ञानी तिष्ठति तदा संयतो भवति तद्विपरीत परमाकुलत्वोत्पादककामक्रोधादौ परिणतः पुनरसंयतो भवतीति। तथा चोक्तम् – 'अकसायं तु चरित्तं कषायवसगदो असंजदो होदि। उवसमइ जम्हि काले तक्काले संजदो होदि'।।४१।।

---

१. पाठान्तर : वशं गत = संगतः

आगे ऐसा कहते हैं कि जिस समय ज्ञानी जीव शांतभाव को धारण करता है, उसी समय संयमी होता है, तथा जब क्रोधादि कषाय के वश होता है, तब असंयमी होता है –

ज्ञानी उपशम करे कषायों का तब संयत होता है।
यदि कषायवश हो तो जानो वही असंयत होता है।।४१।।

अन्वयार्थ :– [यदा] जिस समय [ज्ञानी जीवः] ज्ञानी जीव [उपशाम्यति] शांतभाव को प्राप्त होता है, [तदा] उस समय [संयतः भवति] संयमी होता है, और [कषायाणां] क्रोधादि कषायों के [वशे गतः] आधीन हुआ [स एव] वही जीव [असंयतः] असंयमी [भवति] होता है।

भावार्थ :– आकुलता रहित निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ निर्विकल्प (असली) सुख का कारण जो परम शांतभाव उसमें जिस समय ज्ञानी ठहरता है, उसी समय संयमी कहलाता है, और आत्मभावना में परम आकुलता के उपजानेवाले काम क्रोधादिक अशुद्ध भावों में परिणमता हुआ जीव असंयमी होता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है 'अकसायं' इत्यादि। अर्थात् कषाय का जो अभाव है, वही चारित्र है, इसलिये कषाय के आधीन हुआ जीव असंयमी होता है, और जब कषायों को शांत करता है, तब संयमी कहलाता है।।४१।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल १२, बुधवार
दिनांक-०३-११-१९७६, गाथा-४१-४२, प्रवचन-१२३

परमात्मप्रकाश] ४१ गाथा। **आगे ऐसा कहते हैं कि जिस समय ज्ञानी...** आहाहा! **जीव शान्तभाव को धारण करता है,...** जिस काल में आत्मा आत्मा के वश होकर शान्ति प्रगट करता है, तब वह साधु होता है। शान्तभाव कहो—अकषायभाव (कहो)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित जिसे अकषायभाव में वश होना... वह यहाँ तक संयति है। **उसी समय संयमी होता है,...** आहाहा! पंच महाव्रत पालता है, ऐसा करता है इसलिए संयमी है, ऐसा नहीं। आत्मा में ही जो वीतराग अविकारी स्वभाव है, उसके वश होकर

जिसने शान्तभाव प्रगट किया है। आहाहा! व्याख्या देखो! अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह साधुपना है, ऐसा यहाँ नहीं कहा। आहाहा!

आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसके वश होकर कषाय का वशपना छोड़कर... आहाहा! जिसने अन्दर शान्त समताभाव, वीतरागी आनन्द के स्वादवाली स्थिरता प्रगट की है, उसे संयत कहते हैं। कहो, यह तो भाषा... वे कहे, अट्ठाईस मूलगुण पाले तो साधु। अट्ठाईस मूलगुण पाले तो साधु, यह बात तो यहाँ ली नहीं।

भगवान आत्मा अन्दर कषाय के वश न होकर (अकषायभाव में रहे, वह साधु है)। यह शुभभाव है, वह कषाय है। आहाहा! उसके वश न होकर शान्तभाव, आत्मा शान्तरस का पिण्ड-कन्द है। शान्तरस है। अकषायस्वभाव की मूर्ति है। उसके आश्रय से जो अकषायभाव परिणमता है, उसे यहाँ संयति कहा जाता है। मूल यहाँ आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसके आधीन होकर जिसने अकषायभाव, शान्तभाव प्रगट किया है। शान्त अकषाय वीतराग परिणति (प्रगट हुई है), उसे यहाँ साधु कहते हैं। यह सब बाहर से अभी तो यह चलता है, यह पंच महाव्रत पालन करे, अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, समिति, गुप्ति पालन करे, गृहस्थाश्रम छोड़े, वह साधु। देवीलालजी! ऐसी व्याख्या तो अभी तक सुनी है। यह तो कहते हैं, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन भी आत्मा के आधीन हुए को प्रतीति होती है, तो संयम है, वह तो आत्मा के आधीन होकर अकषाय परिणति—शान्तभाव—समभाव—वीतरागभाव जो प्रगट करता है, उसे संयत-मुनिपना होता है। सब विवाद करते हैं न!

तथा जब क्रोधादि कषाय के वश होता है,... स्वभाव की रुचि छोड़कर, स्वभाव का आश्रय छोड़कर राग के कणरूप जो क्रोध, स्वभाव से विरुद्ध उस विकार के वश होता है, वह असंयति है। यह कहे, छह काय की दया पाले, वह संयति है और छह काय की दया न पाले, वह असंयति है। सम्प्रदाय में तो ऐसा चलता है। जयसुखभाई! आहाहा! यह बात सत्य नहीं। शान्त स्वभाव भगवान, जिसमें कषाय का कण नहीं और शान्तभाव की पूर्णता पड़ी है, ऐसा जो आत्मा का स्वभाव, उसके आधीन होकर जिसने अकषाय शान्तभाव प्रगट किया है और उसे राग होता है, तथापि राग के आधीन नहीं

होता, राग के वश नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसे पंच महाव्रत आदि के विकल्प आते हैं परन्तु वह उसके वश नहीं होता। आहाहा! कहो, मीठालालजी! व्याख्या तो अलग प्रकार की है। मूलचन्दभाई! नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पालन करे, वह चारित्र, यह व्याख्या तो ऐसी नहीं है। नग्नपना, वह अजीव की पर्याय; पंच महाव्रत, वह कषाय की पर्याय, उसके जो आधीन (हो), उसका स्वामी हो, वह तो असंयमी है। आहाहा!

यहाँ परमात्मप्रकाश है न! इसलिए परमात्मप्रकाश, वह भगवान आत्मा का स्वभाव परमात्मस्वरूप ही है। वीतराग अकषाय शान्तरस की मूर्ति प्रभु है। उसके वश होकर जिसने शान्तरस प्रगट किया... आहाहा! जिसे समभाव, वीतरागी परमानन्द के रस में स्वाद उत्पन्न किया जिसने, (वह संयत है)। आहाहा! यहाँ पहले यह लिया कि वीतरागी परमानन्द का एक स्वभाव रस का स्वाद, वह समभाव, वह मुनिपना। यहाँ उपशान्तभाव, वह मुनिपना, ऐसा सिद्ध करते हैं। वहाँ आनन्द की दशा जिसने प्रगट की है... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे वेदन वर्तता है; राग का नहीं, उसे यहाँ संयत साधु कहते हैं। यहाँ कहते हैं कि जिसे उपशमभाव—अकषायभाव प्रगट हुआ है, उसे संयत कहते हैं और राग का छोटे में छोटा कण हो, पंच महाव्रत का शुभराग (हो), उसके जो वश होता है, वह असंयमी है। आहाहा! समझ में आया इसमें?

क्रोधादि कषाय के वश होता है,... ऐसी भाषा सीधी है, परन्तु उसका भाव गूढ़ है। भगवान आत्मा वीतरागमूर्ति है, उसमें से जिसने वीतरागरस प्रगट किया है, उस उपशमरस में ही वह स्थित है। आहाहा! उसे संयत कहते हैं। ताराचन्दजी! यह व्याख्या तो कहीं (सुनी न हो)। श्वेताम्बर में तो पंच महाव्रत पाले, नग्न होकर वस्त्र छोड़े तो साधु। यह तो कहीं आया नहीं इसमें। आहाहा! जो आत्मा शान्त वीतरागस्वरूप, उसके आधीन हो, उसे उपशमभाव प्रगट होता है और वह आधीनपना तजकर राग के आधीन होता है, वह असंयमी-असंयत है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

पंच महाव्रत के परिणाम हैं, (वह) राग है। राग है, वह क्रोध है। स्वभाव से विरुद्ध भाव है। आहाहा! उसके आधीन होता है। कषाय के वश होता है। कषाय शब्द

से पंच महाव्रत के परिणाम, समिति, गुप्ति का भाव, वह सब कषाय है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! ऐसा यह सुना था मुनिपना ऐसा? तुम दीये रखते होंगे वहाँ। ऐसा होता है और ऐसा होता है और अमुक। सामने बैठावे न भाषण करने के लिये। परन्तु जो जाना (हो), वह कहे न, दूसरा कहाँ से कहे? आहाहा! दो बातें। अकषायस्वभाव शुद्धात्मा ऐसा भगवान, उसके आधीन होकर, वश होकर जिसे वीतरागी पर्याय—उपशम प्रगट हुआ है, वह साधु। और जिसे राग का कण है, उसे आधीन हुआ, उसका स्वामी हुआ, उसके वश हुआ, वह असंयमी है। आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम आवे सही, परन्तु उनके वश हो जाये, वह असंयमी है, ऐसा कहते हैं। इसलिए और (जिसका) आत्मा अकषायस्वभाव के वश हुआ है। आहाहा! उसे यहाँ उपशमभाव अर्थात् साधु कहते हैं। समझ में आया?

वीतरागी स्वभाव आत्मा का और वीतरागी मार्ग भगवान, वह वीतरागी परिणाम आत्मा के आधीन उत्पन्न हों, उसे यहाँ मोक्ष के मार्ग में साधुरूप से कहते हैं। परन्तु जो राग के वश हो; राग हो वह अलग बात है परन्तु उसके आधीन हो, वह चीज़ मेरी है और मेरा कर्तव्य है... आहाहा! उसे असंयमी कहा जाता है। बाह्य में नग्न हो, हजारों रानियाँ छोड़ी हों, पंच महाव्रत निरतिचार पालता हो, परन्तु उस राग के आधीन हो गया है, वह मिथ्यादृष्टि असंयमी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! आहाहा! यह कहेंगे।

१६४) जाँवइ णाणिउ उवसमइ तामइ संजदु होइ।
होइ कसायहँ वसि गयउ जीउ असंजदु सो।।४१।।

आहाहा! कितनी बात! यह पंच महाव्रत के भाव पालता हो, रखता हो, वह राग का भाव है, उसे आधीन हुआ है, वह मेरा कर्तव्य है और वह मेरा फर्ज है कि मुझे यह राग करना (चाहिए), उस राग के वश हुआ है, वह असंयमी है। वह पंच महाव्रत पालता हो, नग्न मुनि हो, जंगल में बसता हो, परन्तु उस राग के कण के आधीन हुआ है, उसे असंयमी कहते हैं। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है। जिनवरदेव—परमेश्वर, गणधर और इन्द्रों के बीच ऐसा फरमाते थे, वह यह वाणी है। आहाहा!

मुमुक्षु : महाव्रत पाले तो आचार्य हो जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर अकषाय भाव है, वह शान्ति है।

मुमुक्षु : महाव्रत पाले तो आचार्य हो जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत पालता हो, तथापि उसके वश हो, वह असंयमी है। आधीन हुआ, आधीन की बात है। आहाहा! यह राग का कण है, वह (कषाय है)। यह वीतरागमार्ग है। आहाहा! वीतरागमार्ग में राग के कण के वश हो जाये, वह असंयमी है।

मुमुक्षु : उपाय तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने का उपाय है। सूक्ष्म बात है, भाई! आहाहा!

परमात्मप्रकाश है। दूसरे प्रकार से कहें तो यह परमात्मस्वरूप अविकारीस्वरूप यह आत्मा। आत्मा शुद्धात्मा, वह परमात्मस्वरूप, वह आत्मा। उसके आधीन होकर जो शुद्धपरिणति उपशमभाव प्रगट किया है, वीतरागी परम आनन्द के रस के स्वादवाला भाव प्रगट किया है... आहाहा! उसे साधु कहते हैं, संयमी कहते हैं परन्तु जो उस राग के वश पड़ा है, वह छोटे में छोटा कण शुभराग है, वह अट्ठाईस मूलगुण, वह राग है, उसके आधीन हो गया है, वह असंयमी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो कभी सुना न हो, ऐसी बातें हैं।

जिस समय... शब्द ऐसा है न ? '**यदा**' '**यदा**'। आता है न गीता में ? यदा-यदा। यहाँ '**यदा**' अर्थात् जिस समय। **जिस समय ज्ञानी जीव...** आहाहा! **शान्तभाव को प्राप्त होता है,...** अकषायभाव को प्राप्त होता है। आहाहा! अकषायभाव का परिणमन करके, उसे प्राप्त हुआ है। आहाहा! **उस समय संयमी होता है,...** उस समय वह संयमी है, उस काल में वह संयमी है। समझ में आया ? ४१ गाथा है। **और क्रोधादि कषायों के आधीन हुआ...** गजब, भाई! आहाहा! कषाय का एक कण है, परन्तु उसके आधीन हो गया है, वह तो असंयमी है। आहाहा! जैन का साधुपना अलौकिक है। जैन का साधुपना—संयतपना अलौकिक है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दिया था, असंयमी हो गये। असंयमी थे।

यहाँ ... उस कषाय के वश हुए नहीं थे परन्तु कषाय उत्पन्न हुई थी। वश हो जाये तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु कषाय की अस्थिरता में जुड़ गये। दृष्टि तो स्वभाव के ऊपर ही थी। परन्तु कषाय की अस्थिरता में जुड़ गये, असंयति हो गये। यहाँ तो असंयति, ज्ञानी के सामने उसे लिया है न? **ज्ञानी जीव शान्तभाव को प्राप्त होता है,...** उसके सामने असंयमी लिया। परन्तु वह असंयमी... और इसलिए शुभभाव भी ... है।

मुमुक्षु : वह तो मिथ्यादृष्टि हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। आहाहा! नवलचन्दभाई! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : ऐसा तो कोई ही कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई करे, वही साधु। वीतरागी साधु, बापू! कुछ साधारण बात है? आहाहा! परमेश्वरपद है। पंच परमेष्ठी है न? पंच परमेष्ठी हैं। जिस साधु को... तीर्थंकर के बजीर गणधरदेव, जिन्होंने चार ज्ञान, चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में प्रगट करे, ऐसे गणधर भी जिनको नमस्कार करें। वे गणधर भी णमो लोए सव्वसाहूणं। हे सन्त! तेरे चरण में हमारा नमस्कार। वह सन्तपना कैसा होगा! समझ में आया?

जिसे अकषायभाव... आहाहा! कैसी शैली ली है! वस्तु भगवान आत्मा अकषाय का कन्द है। आनन्दकन्द कहो, अकषायकन्द वह चारित्र का। ऐसा। उस चारित्र के स्वरूप से विराजमान है। आत्मा वीतरागी कहो, चारित्रस्वरूप कहो, अकषायस्वरूप (कहो), उपशमरस का कन्द कहो, ऐसे आत्मा के आधीन / वश होकर जिसने उपशमभाव प्रगट किया है। अब वह आत्मा कौन है, इसकी खबर नहीं होती और उसे उपशमभाव कहाँ से आवे? आहाहा! आत्मा की बात ही नहीं होती। बात तो यह करो और यह करो और यह करो। व्रत करो, अपवास करो। वे कहें, यात्रा करो, भक्ति करो। शत्रुंजय की ९९ यात्रा करो। ९९ क्या लाख, करोड़ कर। वहाँ कहाँ धर्म था? वह तो शुभराग है, उसके आधीन हो जाता है, ऐसा यहाँ कहना है। समझ में आया? वह असंयति है और एकदम रुचि ही पलट गयी है, इसलिए मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर के भाव के ऊपर आधार है। किसी बाह्य क्रिया पर आधार नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का। दिगम्बर सन्त ऐसा कहते हैं। यह स्वयं दिगम्बर सन्त हैं। योगीन्द्रदेव हैं। नग्न दिगम्बर मुनि हैं। पाँच महाव्रत के विकल्प हैं, परन्तु अन्दर तीन कषाय के अभाव का आनन्दकन्द का मुनिपना है, उसे वह मुनि कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जंगल में बसनेवाले मुनि हैं। अन्दर आनन्द के कन्द में वे बसते थे। आहाहा! उस वीतरागीभाव की लहरें अन्दर उछालते थे। उन्हें संयति और मुनि कहते हैं। और जिसे गणधर का नमस्कार पहुँचता है। आहाहा! और जो कषाय का कण, भले ऐसी की ऐसी पंच महाव्रत की क्रिया हो, नग्नपना हो, हजारों रानियाँ छोड़ी हों, निर्दोष (आहार लेता हो), उसके लिये बनाया हुआ आहार-चौका आदि से भी न लेता हो। समझ में आया? चौका आदि का जो आहार लेता है, वह तो असंयमी है ही। वह तो उसे उद्देशिक आहार है, वह तो संयमी नहीं। आहाहा! परन्तु (जो) निर्दोष आहार लेता है, परन्तु आहार का जो भाव-विकल्प है, उसके आधीन होकर, वश होकर अकषायभाव को भूल जाता है... समझ में आया? आहाहा! वह असंयमी है।

भावार्थ : आकुलता रहित निज शुद्धात्मा की भावना से... देखो! आहाहा! भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा-आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। विकल्प जो राग है, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पंच महाव्रत का विकल्प है, वह अजीव है। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा नहीं तो पुद्गल है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुद्गल ही है। आस्रव को पुद्गल के ही परिणाम कहा है। आहाहा!

एक ओर भगवान आत्मा—एक ओर राम तथा एक ओर गाँव। एक ओर अविकारी स्वरूप भगवान आत्मा और एक ओर विकल्प से लेकर पूरा जगत। वह इस जीव की अपेक्षा से वे सब अजीव हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : यह जीव भी अजीव हुआ, दूसरे की अपेक्षा से?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी अजीव हुआ, ऐसा ही है। उसमें क्या है? यह आत्मा

शुद्धात्मा के अतिरिक्त सभी चीज़ों को अनात्मा कहा है। यह आत्मा नहीं, इसलिए अनात्मा। उसका भले आत्मा हो। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान अनात्मा हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है।

कलश में आया नहीं? आत्मा... कलश में आया है पहला। उसकी व्याख्या हो गयी है। एक ओर भगवान आत्मा, आहाहा! छह द्रव्य से भिन्न। कल आया न? विकल्प से भिन्न और एक समय की पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान हो, उस पर्याय से भी भिन्न। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा, जिसे समयसार की ४९वीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि **छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है और व्यक्त है, उससे...** भिन्न भगवान आत्मा, वह अव्यक्त है। पहला बोल है। अव्यक्त के छह बोल हैं। ४९वीं गाथा, समयसार।

छह द्रव्यस्वरूप लोक... उसमें भगवान भी आये, सिद्ध आये, केवली आये, सब आये। **छह द्रव्यस्वरूप लोक जो ज्ञेय है और व्यक्त...** अर्थातत बाह्य है। भगवान आत्मा वह छह द्रव्य ज्ञेय और व्यक्त से भिन्न है। अव्यक्त है अर्थात् पर से भिन्न है, ऐसा। आहाहा! अरे! इसीलिए धर्मदास क्षुल्लक ने ऐसा लिखा है कि आत्मा सप्तम (द्रव्य) हो जाता है। आहाहा! इस गाथा का अर्थ किया है। आत्मा सप्तम हो जाता है। शान्तिभाई! कभी सुना नहीं होगा। सातवाँ (द्रव्य) हो जाता है, ऐसा कहा है। एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर पूरा जगत। वह जगत और यह जगतेश दोनों अत्यन्त (भिन्न) चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो ऐसी (बात है) कि **आकुलता रहित निज शुद्धात्मा की भावना से...** अन्तर में आनन्द में एकाग्रता। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान में एकाग्रता। उससे **उत्पन्न हुआ निर्विकल्प (असली) सुख का...** देखो! आहाहा! आकुलता अर्थात् दुःख के भाव से रहित निज शुद्धात्मा की भावना। इसका अर्थ कि परद्रव्य की ओर का जितना विकल्प है, वह सभी आकुलता को उत्पन्न करनेवाले हैं। आहाहा! यह भगवान की भक्ति और भगवान की यात्रा का भाव आकुलता है—राग है। आहाहा! आवे सही।

समकिती को भी वह भाव आवे, परन्तु है आकुलता और राग। आहाहा! यह मार्ग सुना जाये नहीं, झेला जाये नहीं, ऐसी बात है।

यह यहाँ कहते हैं, देखो! परसन्मुख के झुकाववाली आकुलता से रहित, ऐसा। इस ओर झुकाव है न? निज शुद्धात्मा कहना है न? परद्रव्य की भावना के विकल्प से रहित, परद्रव्य के झुकाव से रहित, परद्रव्य में फिर तीन लोक के नाथ, सिद्ध और पंच परमेष्ठी, उन परद्रव्य के झुकाव से रहित अर्थात्... आहाहा! वह आकुलतारहित अर्थात् पंच महाव्रतादि के विकल्प से रहित। समझ में आया?

निज शुद्धात्मा की भावना... निज शुद्धात्मा पूर्णानन्द प्रभु की एकाग्रता। उसकी (पर की) एकाग्रता से भिन्न और इसमें एकाग्रता। परद्रव्य के झुकाव के विकल्प की एकाग्रता से रहित अर्थात् आकुलता से रहित। आहाहा! आत्मा से सहित। आहाहा! भाई! वीतराग जिनेश्वर का मार्ग, उसमें दिगम्बर मार्ग, वही जैनधर्म है। बाकी जैनधर्म है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? बलुभाई! ... क्योंकि वे सब राग के पोषक हैं। राग से धर्म मनवाना, पंच महाव्रत से और उससे धर्म होता है, चारित्र होता है। यह जैनधर्म ही नहीं है। अजैनधर्म है।

यहाँ आचार्यदेव पुकारते हैं। आहाहा! परद्रव्य के झुकाववाली वृत्ति है, वह आकुलता है। उस आकुलता से रहित होकर निज शुद्धात्मा की एकाग्रता। आहाहा! समझ में आया? मार्ग सूक्ष्म, बापू! लोगों को मिला नहीं। आहाहा! **निज शुद्धात्मा की भावना से...** अर्थात् एकाग्रता से। परद्रव्य की ओर का झुकाववाला भाव विकल्प था और आकुलता थी। आहाहा! उससे रहित **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ निर्विकल्प (असली) सुख का कारण...** आहाहा! अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के सुख का कारण **जो परम शान्तभाव...** आहाहा! समझ में आया? यह परमशान्तभाव अतीन्द्रिय आनन्द को उत्पन्न करने का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **सुख का कारण जो परम शान्तभाव...** आहाहा! विकल्प जो राग है, वह दुःख का कारण है। और यह आत्मा अतीन्द्रिय सुख का कारण, यह शान्तभाव है, यह अकषायभाव है। समझ में आया? आहाहा!

(असली) सुख का... भाषा देखी! वह तो कृत्रिम है, कल्पना है। इन्द्रियों में सुख है और शुभभाव में सुख है, वह तो कल्पित और अज्ञानभाव है। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव शुभ है, वह दुःख है। वह आकुलता है, इस अपेक्षा से। वह कषायभाव है। कषाय और अकषाय दो की बात लेनी है न? आहाहा! कहो, रसिकभाई! ऐसा कभी सुना था वहाँ? मूलचन्दभाई ऐसा कहते हैं, सुनानेवाले नहीं थे। ... भाई कहते थे। योग्यता नहीं थी इसलिए सुनानेवाले मिले नहीं थे। योग्यता नहीं थी। आहाहा! गाथा, वह गाथायें की हैं न! ... गुलाँट खिलाकर।

परद्रव्य के झुकाववाला विकल्प है, वह आकुलता है। आहाहा! इसलिए उस आकुलतारहित और शुद्धात्मा की भावनासहित। आहाहा! निज शुद्धात्मा भगवान आनन्द का नाथ है। अतीन्द्रिय आनन्द का (धाम है), आत्मा अतीन्द्रिय सुख का सागर है। उसमें दुःख की गन्ध नहीं। दुःख शब्द से विकल्प, राग की गन्ध ही उसमें नहीं। अकषायभाव वर्णन करना है न?

मुमुक्षु : त्रिकाल स्वभाव में कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु है। आहाहा! वह अकषायभाव का पिण्ड है। अकषायभाव से, शुद्धात्मा में अकषायभाव है, उससे उत्पन्न हुआ। है? भावना। उसकी भावना से उत्पन्न हुआ सुख। असली सुख। आहाहा! आत्मा निर्विकल्प वीतरागमूर्ति प्रभु की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ असली सुख, अतीन्द्रिय आनन्द, उस आनन्द का कारण शान्तभाव है। आहाहा! भाषा देखो! कहीं मिले ऐसा नहीं। समझ में आया? जयसुखभाई! ऐसा मार्ग है। उसमें तो कहे, व्रत पालो, अपवास करो। यह सब विकल्प है, बापू! राग है, कषाय है। आहाहा! ऐसे कषाय की आकुलता से रहित, अकषायस्वरूप ऐसे शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ असली सुख, असली आनन्द। देखो! यह मुनिपना। यह अतीन्द्रिय आनन्द... है न? इसका कारण परमशान्तभाव। आहाहा! अकषाय शान्त... शान्त... शान्त... शान्त... कषाय अशान्त है, तब यह शान्त है। आहाहा!

जिस समय ज्ञानी ठहरता है,... देखो! ऐसा परम शान्तमय, शान्तभाव, **उसमें**

जिस समय ज्ञानी ठहरता है,... जिस समय ठहरता है। आहाहा! **उसी समय संयमी कहलाता है,...** उस समय उसे संयमी कहा जाता है। आहाहा! लोग तो अलग गाँव के हैं बहुत। आहाहा! है? योगीन्द्रदेव ने तो गजब काम किया है! आकुलता जो परद्रव्य के झुकाववाली वृत्ति है। चाहे तो तीर्थंकर भगवान की ओर हो, वह भी विकल्प है, वह आकुलता है, वह दु:ख है। आहाहा! ऐसे परद्रव्य के झुकाववाला भाव दु:ख है, उससे रहित निज शुद्धात्मा की एकाग्रता से उत्पन्न हुआ असली सुख। आहाहा! सुख-आनन्द उत्पन्न हुआ, वह चारित्र है। अतीन्द्रिय आनन्द उत्पन्न हुआ, ऐसे शान्तभाव में... जो परमशान्तभाव, **उसमें जिस समय ज्ञानी ठहरता है,...** आहाहा! निर्विकल्प आनन्द में जब स्थिर होता है। शान्तभाव। **उसी समय संयमी कहलाता है,...** उस समय उसे संयति कहते हैं। समझ में आया?

यह शैली ऐसी वर्णन की है न! (समयसार गाथा) १४४ में आया था न? कि समकिती कब कहलाता है? कि जिसे भगवान आत्मा समकितदशा में जानने में, मानने में आया, समकित की—प्रतीति की पर्याय में पूर्णानन्द का आत्मा देखने में आया, श्रद्धा में आया, तब उसे समकित कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई हो जाये। उसे अपना मान ले तो। परन्तु कषाय के वश हो तो असंयमी तो हो जाता है। आहाहा! और उसे अपना मान ले, वह उसके आधीन (हुआ), उसके—राग के ही वश हो गया, तब तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भगवान आत्मा शान्तरस का कन्द प्रभु, उसके आधीन होना छोड़कर राग के वश हो (तो वह मिथ्यादृष्टि है)। ज्ञान को राग आवे, परन्तु आधीन नहीं होता। समझ में आया? उसे पंच महाव्रत के विकल्प आवे सच्चे, परन्तु आधीन नहीं होता। उनका स्वामीपना उसे नहीं है, उनका धनीपना उसे नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना, इतना। वह पौन सेकेण्ड छठवें गुणस्थान में। इसके पश्चात् सातवाँ तुरन्त ही आता है। सातवाँ तुरन्त ही आता है। शान्तभाव में है। आहाहा!

वीतराग का एक-एक बोल ऐसा अलौकिक है कि उसे समझने के लिये तो बहुत प्रयत्न चाहिए, भाई! यह कहीं वाडा में मिले, ऐसा नहीं है अभी। आहाहा! 'वाडा बाँधकर बैठे रे अपना पंथ करने को।' आहाहा!

भगवान... भाषा कितनी की है! उसका आशय यह है। आकुलतारहित का अर्थ यह कि शुभ-अशुभभाव है, वह आकुलता है। उससे रहित शुद्धात्मा परमात्मस्वरूप स्वयं विराजमान है। उसकी भावना, वह वर्तमान एकाग्रता की पर्याय है। उसकी एकाग्रता से उत्पन्न हुआ असली आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का कारण शान्तभाव है। आहाहा! वह वीतरागभाव है। समझ में आया?

उसमें कुछ सन्देह नहीं है। है? **आत्मभावना में परम आकुलता के उपजानेवाले काम... आत्मभावना में परम आकुलता के उपजानेवाले काम-क्रोधादिक...** देखो! आहाहा! **आत्मभावना में परम आकुलता के उपजानेवाले काम...** आहाहा! काम अर्थात् इच्छा, क्रोध अर्थात् द्वेष, मान। **अशुद्ध भावों में परिणमता हुआ...** आहाहा! वह **जीव असंयमी होता है,...** ... यह सोनगढ़ का नहीं है। आहाहा! **परम आकुलता के उपजानेवाले... आत्मभावना में...** देखो! आहाहा! **परम आकुलता के उपजानेवाले...** राग और द्वेष। इन **अशुद्ध भावों में परिणमता हुआ...** आहाहा! ज्ञानी को अशुभभाव आता है, परन्तु उसका जाननेवाला रहता है। उसका स्वामी नहीं होता। और अज्ञानी शुभभाव आवे, उसका स्वामी होता है। क्योंकि चैतन्य का स्वामी स्वभाव क्या है, उसकी खबर नहीं। भगवान आनन्द का नाथ स्वस्वामीसम्बन्ध अपने द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध, उसका वह आत्मा स्वामी है, इसकी तो उसे खबर नहीं। आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय से शुद्ध है, इसकी तो उसे खबर नहीं। आहाहा! साधारण लोगों को ऐसा लगे (कि) यह सब पागलपन जैसी बातें हैं। ऐसा कहाँ से निकाला नया? यह नया कहाँ है? यह नया है? यह तो हजारों वर्ष पहले के शास्त्र हैं। समझ में आया?

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। इसमें सन्देह नहीं करना कि राग के आधीन हुआ, वह साधु होगा? ऐसा सन्देह नहीं करना। आहाहा! तो अभी उसे गुरु कैसे संयमी होते हैं, इसकी खबर नहीं होती, उसे धर्म की खबर कहाँ आयी? आहाहा! ऐसे तो पच्चीस

मिथ्यात्व में कहते हैं, नहीं ? साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व; कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व। पहाड़े तो बोलता है। प्रतिक्रमण में नहीं ? परन्तु किसे कहना साधु और किसे कुसाधु कहना, इसकी खबर नहीं होती। यह तो समझते... बात सच्ची है।

हमारे मूलचन्दजी ऐसा कहते थे। क्रियायें सब करते हैं न आहार की ? निर्दोष आहार-पानी लेते। हमारे गुरु और गुरुभाई दोनों निर्दोष आहार, हों! उनके लिये बनाया हुआ नहीं लेते। बहुत सख्त क्रिया थी। फिर वे ऐसा कहते कि अपने यदि यह साधु न होंवे तो साधु होंगे कौन ? (संवत्) १९७९-८० के वर्ष की बात है। अभी समकित का ठिकाना नहीं और साधुपना आया कहाँ से ? गृहीत मिथ्यात्व... पंचम काल में भगवान ने साधु कहे हैं। अपने ऐसी निर्दोष क्रिया करते हैं, हम साधु न हों तो कौन होगा ? उनके लिए बनाया हुआ (प्रासुक किया हुआ) पानी की बूँद न ले, हों! गाँव में जाये तो उनके लिये बनाया हुआ पानी न ले। काठी में से छाछ ले। बहुत वर्ष किये हैं। हमने भी सब किया है न! परन्तु वह सब बाह्य (क्रिया है)। दृष्टान्त दिया है न ?

ऐसा दूसरी जगह भी कहा है,... गाथा है अन्दर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ का है ?

मुमुक्षु : अकषायं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो है परन्तु कहाँ की बात है ? किस सूत्र की, किस शास्त्र की, वह नहीं।

अकसायं तु चरितं कसायवसगदो असंजदो होदि।
उवसमइ जम्हि काले तक्काले संजदा होदि॥

अपनी गाथा के अनुकूल है न, इसलिए दूसरी गाथा भी ली। **अर्थात् अकषाय का जो अभाव है, वही चारित्र है,...** ... भगवान की-तीर्थंकर की भक्ति करना, वह कषाय ? राग है, कषाय है। भले शुभ हो। उसे खबर कहाँ है ? परद्रव्य की ओर लक्ष्य जाये, वह राग है। शास्त्र में तो यहाँ तक कहा कि, '**परदव्वादो दुग्गइ**'। परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, वहाँ दुर्गति अर्थात् राग उत्पन्न होता है। वह चैतन्य की गति नहीं, ऐसा

कहा है। राग होता अवश्य है अशुभ से बचने को। समकिती को भी भक्ति, पूजा होते हैं, परन्तु वह राग अशुभ से बचने जितना है। उसका स्वामी है और वह मेरी चीज़ है, ऐसा नहीं। तथा उससे धर्म होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! शर्तें बहुत!

अनन्त काल भटकते हुए गया, बापू! चौरासी के अवतार कर-करके, चींटी, कौआ, कुत्ता, नरक के भव, वे अनन्त भव वीतराग वर्णन करते हैं। इसने दुःख भोगा है मिथ्यात्व से। साधु होकर भी मिथ्यात्व में था न! अनन्त बार साधु हुआ है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आत्मज्ञान, वह पंच महाव्रत के विकल्प से भिन्न चीज़ है, उसका ज्ञान नहीं किया, उसका भान नहीं किया, चौरासी के अवतार में ... आहाहा! ऐसा द्रव्यलिंग धारण करके भी चौरासी में कोई स्थान बाकी नहीं रहा, इतने अनन्त भव किये हैं। समझ में आया? छहढाला में आता है। पहली ढाल में। ओहोहो!

कषाय का जो अभाव है, वही चारित्र है... आहाहा! **इसलिए कषाय के आधीन हुआ जीव असंयमी होता है,...** आहाहा! शैली, वह शैली दिगम्बर सन्तों की! **और जब कषायों को शान्त करता है, तब संयमी कहलाता है।** शान्त उपशमभाव, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वादवाला ... शान्तभाव... आहाहा! तब संयमी कहलाता है। यह ४१ हुई। ४२।

आगे जिस मोह से मन में कषायें होती हैं, उस मोह को तू छोड़... जो कोई पदार्थ या जो कोई राग, जिससे कषाय हो, उसे छोड़। यह विशेष लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४२

अथ येन कषाया भवन्ति मनसि तं मोहं त्यजेति प्रतिपादयति -

१६५) जेण कसाय हवंति मणि सो जिय मिल्लहि मोहु।
मोह-कसाय-विवज्जयउ पर पावहि सम-बोहु।।४२।।

येन कषाया भवन्ति मनसि तं जीव मुञ्च मोहम्।
मोहकषायविवर्जितः परं प्राप्नोषि समबोधम्।।४२।।

जेण इत्यादि। जेण येन वस्तुना वस्तुनिमित्तेन मोहेन वा। किं भवति। कसाय हवंति क्रोधादिकषाया भवन्ति। क्व भवन्ति। मणि मनसि सो तं जिय हे जीव मिल्लहि मुञ्च। कम्। तं पूर्वोक्ते मोहु मोहं मोहनिमित्तपदार्थं चेति। पश्चात् किं लभसे त्वम्। मोह-कषाय-विवज्जियउ मोहकषायविवर्जितः सन् पर परं नियमेन पावहि प्राप्नोषि। कं कर्मतापन्नम्। सम-बोहु समबोधं रागद्वेषरहितं ज्ञानमिति। तथाहि। निर्मोहनिजशुद्धात्मध्यानेन निर्मोहस्वशुद्धात्मतत्त्वविपरीतं हे जीव मोहं मुञ्च, येन मोहेन मोहनिमित्तवस्तुना वा निष्कषायपरमात्मतत्त्वविनाशकाः क्रोधादि-कषाया भवन्ति पश्चान्मोहकषायाभावे सति रागादिरहितं विशुद्धज्ञानं लभसे त्वमित्यभिप्रायः। तथा चोक्तम् - 'तं वत्थुं मुत्तव्वं जं पडि उपज्जए कसायग्गी। तं वत्थुमल्लिएज्जो (तद् वस्तु अंगीकरोति, इति टिप्पणी) जत्थुवसम्मो कसायाणं।।'।।४२।।

आगे जिस मोह से मन में कषायें होतीं हैं, उस मोह को तू छोड़, ऐसा वर्णन करते हैं -

जिससे होता चित्त कषायी, ऐसा मोह शीघ्र ही छोड़।
मोह कषाय विहीनरूप सम-बोध भाव को प्राप्त करो।।४२।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव; [येन] जिस मोह से अथवा मोह के उत्पन्न करनेवाली वस्तु से [मनसि] मन में [कषायाः] कषाय [भवंति] होवें, [तं मोहम्] उस मोह को अथवा मोह निमित्तक पदार्थ को [मुंच] छोड़, [मोहकषायविवर्जितः] फिर मोह को छोड़ने से मोह कषाय रहित हुआ तू। [परं] नियम से [समबोधम्] राग द्वेष रहित ज्ञान को [प्राप्नोषि] पावेगा।

भावार्थ :- निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से निर्मोह निज शुद्धात्मतत्त्व से

विपरीत मोह को हे जीव छोड़। जिस मोह से अथवा मोह करनेवाले पदार्थ से कषाय रहित परमात्मतत्त्वरूप ज्ञानानंद स्वभाव के विनाशक क्रोधादि कषाय होते हैं, इन्हीं से संसार है, इसलिये मोह कषाय के अभाव होने पर ही रागादि रहित निर्मल ज्ञान को तू पा सकेगा। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है। 'तं वत्थुं' इत्यादि। अर्थात् वह वस्तु मन वचन काय से छोड़नी चाहिये, कि जिससे कषायरूप अग्नि उत्पन्न हो, तथा उस वस्तु का अंगीकार करना चाहिये, जिससे कषायें शांत हों। तात्पर्य यह है, कि विषयादिक सब सामग्री और मिथ्यादृष्टि पापियों का संग सब तरह से मोहकषाय को उपजाते हैं, इससे ही मन में कषायरूपी अग्नि दहकती रहती है। वह सब प्रकार से छोड़ना चाहिये, और सत्संगति तथा शुभ सामग्री (कारण) कषायों को उपशमाती है, – कषायरूपी अग्नि को बुझाती है, इसलिये उस संगति वगैरह को अंगीकार करनी चाहिये।।४२।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल १३, गुरुवार
दिनांक-०४-११-१९७६, गाथा-४२, प्रवचन-१२४

यह परमात्मप्रकाश है। परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि १३०० वर्ष पहले जंगल में बसते थे। उन्होंने जगत के हित के लिये करुणा से यह परमात्मप्रकाश रचा है। इसकी ४१वीं गाथा। ४० चल गयी है। ४२।

४१ (गाथा में) यह चला कि जो कोई मुनि अथवा आत्मार्थी अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्य के वश—आधीन होता है, तब उसे संयम और धर्म होता है। परन्तु कोई प्राणी राग और पुण्यादि भाव कषाय है, उनके आधीन हो जाये तो वह असंयमी, अचारित्री हो जाता है। सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ ४२ में कहते हैं, **आगे जिस मोह से मन में कषायें होती हैं,...** भगवान आत्मा तो निर्मोहस्वरूप है। निर्दोष चैतन्यमूर्ति यह आत्मा है। उससे विरुद्ध जो मोह, परपदार्थ में सावधानी होकर रागादि होना, उसे कषाय होती है। **उस मोह को तू छोड़...** परपदार्थ की ओर के झुकाव में रागादि होते हैं, वह मोह होता है, उसे छोड़। और जिस पदार्थ से मोह उत्पन्न होता है, उस पदार्थ का लक्ष्य छोड़। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति अन्दर निर्दोष वीतरागस्वभाव से भरपूर चीज़ आत्मा है। पुण्य और पाप के

भाव सदोष हैं, वे उसमें नहीं हैं। ऐसे आत्मा को प्राप्त करने के लिये, मन में कषाय उत्पन्न होती है, उसे छोड़। उससे तुझे अकषायस्वभाव आत्मा की प्राप्ति होगी। यह कहते हैं। ४२।

१६५) जेण कसाय हवंति मणि सो जिय मिल्लहि मोहु।
मोह-कसाय-विवज्जयउ पर पावहि सम-बोहु।।४२।।

अन्वयार्थ :— हे जीव!... इसमें शब्दार्थ है न? **जिस मोह से अथवा मोह के उत्पन्न करनेवाली वस्तु से...** आहाहा! परपदार्थ तो मोह में निमित्त है। परपदार्थ में लक्ष्य होता है, तब मोह, राग ही उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपने स्वभाव की दृष्टि करने के लिये, हे जीव! **जिस मोह से अथवा मोह के उत्पन्न करनेवाली वस्तु से मन में कषाय होवें, उस मोह को...** सर्वथा छोड़ दे। **मोह निमित्तक पदार्थ को छोड़...** आहाहा! परपदार्थ के लक्ष्य से तो कषाय अग्नि उत्पन्न होती है। कषाय अग्नि को छोड़ और जिससे मोह उत्पन्न होता है, ऐसे पदार्थ को भी लक्ष्य में से छोड़ दे। मूलचन्दभाई! सूक्ष्म बात, बापू!

मुमुक्षु : मोह तो करे तब होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता है, कहते हैं न! करता है (परन्तु) पर के निमित्त से करता है न? लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, इसलिए मोह करता है न! आश्रय करे, अपने स्वभाव का आश्रय करे तो वीतरागता-सम्यग्दर्शन होता है।

यह परमात्मप्रकाश है। अपना स्वरूप अन्दर में तो परमात्मप्रकाशस्वरूप ही है। उसमें जो पुण्य और पाप की कषाय अग्नि दिखती है, वह उसका स्वरूप नहीं। वह तो परपदार्थ के लक्ष्य से अपने में, अपने से मोह उत्पन्न होता है। आहाहा! परपदार्थ के लक्ष्य से अपने में अपने कारण से कषाय अग्नि उत्पन्न होती है। वह कषाय अग्नि परपदार्थ के लक्ष्य से होती है, उसे छोड़ दे। और जिसके निमित्त से मोह उत्पन्न होता है, वह पदार्थ भी लक्ष्य में से छोड़ दे। निज भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को प्राप्त करने से स्वभाव का आश्रय होता है। निज आत्मा का आश्रय होता है। पर के आश्रय में तो मोह ही उत्पन्न होता है। समझ में

आया? सूक्ष्म बात है, भगवान! अनन्त काल में इसने अपनी चीज़ अन्दर क्या है, उसका ज्ञान, प्रतीति और अनुभव कभी किया नहीं। लिया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार...' 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' आहाहा! परपदार्थ के लक्ष्य से महाव्रतादि, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये। परन्तु उसका आश्रय छोड़कर कभी स्व का आश्रय नहीं किया। आत्मज्ञान— अन्दर चैतन्यमूर्ति भगवान के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह कभी नहीं किया। पर के आश्रय से पंच महाव्रत की क्रियायें कीं, वह तो राग का कारण है। समझ में आया?

कहते हैं, कषाय होती है, उस मोह को छोड़। **फिर मोह को छोड़ने से मोह कषाय रहित हुआ तू नियम से राग-द्वेष रहित ज्ञान को पावेगा।** आहाहा! परसन्मुख का लक्ष्य छोड़ने से और पर के लक्ष्य से उत्पन्न होते कषाय-पुण्य-पाप के भाव को छोड़ने से तुझे आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी। समझ में आया? स्वपदार्थ के आश्रय से आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शन होता है और परपदार्थ के आश्रय से कषाय अग्नि उत्पन्न होती है। बहुत सूक्ष्म बात करते हैं। चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब, परिवार हो या चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है, तो परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से तो राग ही उत्पन्न होगा। किसी को शुभराग हो और किसी को अशुभराग हो, परन्तु उत्पन्न होता है राग। आहाहा!

यहाँ परमात्मप्रकाश है न! आत्मा का परमात्मस्वरूप ही अन्दर है। उसका आश्रय करने से... परद्रव्य का लक्ष्य और परद्रव्य से अपने में उत्पन्न होती कषाय अग्नि, उसे छोड़ तो आत्मज्ञान प्राप्त होगा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त बार चौरासी के अवतार कर-करके (भटक मरा)। शुभभाव हुए तो स्वर्ग आदि मिले। शुभभाव से—पुण्य से। अशुभभाव से नरक, पशुयोनि हुई। परन्तु निजात्मा का आश्रय किया नहीं, इसलिए कहते हैं, परसन्मुख के लक्ष्य से तो मोह ही उत्पन्न होगा। आहाहा!

अपनी नित्य वस्तु आनन्दकन्द प्रभु सच्चिदानन्द, आत्मा सत् चिदानन्द है। सत् अर्थात् शाश्वत्, ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर भरा है। आहाहा! उस निजात्मा का आश्रय करने के लिये परपदार्थ का आश्रय और परपदार्थ का लक्ष्य छोड़। कहो, देवीलालजी! दो बातें हैं। एक ओर आत्मा तथा एक ओर परपदार्थ। तो परपदार्थ के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, उनके ऊपर

लक्ष्य जायेगा तो शुभराग होगा। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, व्यापार-धन्धा के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो पापराग होगा। आहाहा! इसलिए परपदार्थ के लक्ष्य से तो राग ही उत्पन्न होता है। राग शब्द से परसन्मुख का मोह। समझ में आया? आहाहा!

मोह को छोड़ने से मोह कषाय रहित हुआ... परसन्मुख के कषाय से और लक्ष्य से रहित हुआ। **नियम से राग-द्वेष रहित ज्ञान को पावेगा।** भगवान आत्मा राग-द्वेष, पुण्य-पाप से रहित है। आहाहा! ऐसे आत्मा को परसन्मुख के आश्रय का लक्ष्य छोड़ दे और पर का लक्ष्य छोड़ दे और पर के लक्ष्य से कषाय अग्नि होती है, उसे छोड़ दे। आहाहा! तो अपने आश्रय से ज्ञान अर्थात् अकषायभाव प्राप्त होगा। समझ में आया?

भावार्थ :- निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से... निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से। निज शुद्धात्मा अन्दर है, वह तो मोहरहित निर्दोष भगवान आत्मस्वरूप है। आहाहा! भावार्थ है? भावार्थ। **निर्मोह निज शुद्धात्मा...** यह मोह के सामने डाला। परसन्मुख के लक्ष्य से मोह उत्पन्न होता है और आत्मा निर्मोहस्वरूप है। आहाहा! निर्मोह अर्थात् पर की सावधानी के भाव से भगवान रहित है। भगवान अर्थात् आत्मा। आनन्द का मन्दिर है, अतीन्द्रिय आनन्द की खान—निधान है, आहाहा! गोदाम है। भगवान आत्मा गुण का गोदाम है। खबर नहीं, क्या चीज़ है। बाहर के गोदाम हों पाँच-पच्चीस लाख के धूल में, उसमें, ओहो! (हो जाता है)। धूल भी नहीं, सुन न! वहाँ तो अकेला दुःख है। परसन्मुख के लक्ष्य से तो दुःख ही उत्पन्न होगा। जरा सूक्ष्म बात करते हैं। कषाय की उत्पत्ति परपदार्थ के लक्ष्य से ही उत्पन्न होती है। पर के लक्ष्य से और पर के आश्रय से कषाय उत्पन्न होती है, उसे छोड़ दे तो तुझे ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा प्राप्त होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सम्यग्दर्शन में तेरे आत्मा की प्राप्ति कब होगी? सम्यग्दर्शन। परसन्मुख का मोह और परसन्मुख का लक्ष्य छोड़ दे तो तुझे निर्मोह ऐसे शुद्ध आत्मा की प्राप्ति होगी। आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! यह जिनवाणी ऐसा कहती है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिनवाणी में ऐसा कहा कि **निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से...** आहाहा! जिसमें रागादि मोह आत्मद्रव्य में है ही नहीं। ऐसा निर्मोह निज शुद्धात्मा, भगवान आत्मा वह तो (उससे राग से, मोह से) पर है।

तीर्थंकर, पंच परमेष्ठी आदि पर हैं। क्योंकि परसन्मुख लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। भले शुभराग हो, परन्तु राग उत्पन्न होगा। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र परद्रव्य है और परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही उत्पन्न होगा। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, इस पाप के धन्धे पर लक्ष्य जायेगा तो अकेला पाप ही है। पाप और पुण्य दोनों परद्रव्य के आश्रय से, लक्ष्य से उत्पन्न होते हैं। तो अपना आत्मा निर्मोह निज शुद्धात्मा, निज शुद्धात्मा, अपना पवित्र भगवान आत्मा... आहाहा! उसके ध्यान से। उसके ध्यान से, उस पर के त्याग से और इस अपने ध्यान से। पर सन्मुख के लक्ष्य से तो आर्त और रौद्रध्यान ही उत्पन्न होगा। आहाहा! यहाँ तो (कहते हैं कि) देव-गुरु-शास्त्र की ओर लक्ष्य जायेगा तो शुभराग ही उत्पन्न होगा। परन्तु है राग, है पुण्यबन्ध का कारण। आहाहा!

निर्मोह निज शुद्धात्मा के ध्यान से निर्मोह निज शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत... देखो! भगवान आत्मा शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत यह मोह है। परसन्मुख के झुकाव से जो पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते हैं, वह मोह है। आहाहा! है? **निर्मोह निज शुद्धात्मतत्त्व से विपरीत मोह को...** आहाहा! **हे जीव! छोड़।** बहुत थोड़े शब्दों में (गूढ़ बात की है)। योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त जंगल में बसते थे। दिगम्बर सन्त तो जंगल में ही बसते हैं। सदा ऐसा एक ही मार्ग है। मुनि हैं, उन्हें तो वस्त्र का धागा भी नहीं होता और अन्दर में राग का कण भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। अपने स्वभाव के आश्रय से उन्हें तो वीतरागता उत्पन्न होती है। आहाहा! पर के आश्रय से मोह उत्पन्न होता है। अपना आत्मा निर्मोह आत्मतत्त्व है, उसके आश्रय से निर्मोह आत्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। ऐसी बात है। दोनों के लक्ष्य भेद है। आहाहा!

हे जीव! छोड़। जिस मोह से अथवा मोह करनेवाले पदार्थ से कषाय रहित... आहाहा! देखो! आया। **परमात्मतत्त्वरूप ज्ञानानन्दस्वभाव के विनाशक क्रोधादि कषाय होते हैं,...** क्या कहा? आहाहा! जिस मोह से अथवा मोह करनेवाले निमित्त पदार्थ से लक्ष्य छोड़। क्योंकि उस कषाय से रहित परमात्मस्वरूप आत्मा, ज्ञानानन्द जिसका— भगवान आत्मा का स्वभाव है, उसका विनाशक क्रोधादि कषाय है। वे शुभ और अशुभभाव हैं, वे आत्मा की शान्ति का नाश करनेवाले हैं। आहाहा! सूक्ष्म मार्ग है, भगवान! अनन्त काल... अनन्त काल हुआ। चौरासी के अवतार... स्वर्ग में भी (गया)।

शुभभाव किये। व्रत, तप अनन्त बार किये। उस शुभभाव से स्वर्ग में गया। वापस गिरा। चार गति में भटकने गया। आहाहा! भगवान आत्मा अपना स्वभाव प्राप्त होने पर... है?

मोह करनेवाले पदार्थ से कषाय रहित परमात्मतत्त्वरूप ज्ञानानन्दस्वभाव के विनाशक... यह पुण्य-पाप के भाव, **क्रोधादि कषाय होते हैं, इन्हीं से संसार है,...** आहाहा! यहाँ तो मुनि को जितने पंच महाव्रत के विकल्प उठते हैं, वह संसार है। जगत की बात कठिन पड़े, प्रभु! जगपंथ है। समयसार नाटक में बनारसीदासजी ने कहा है। यही बात यहाँ कहते हैं। परपदार्थ की ओर लक्ष्य उत्पन्न होता है, पंच महाव्रत, वह राग है (क्योंकि) वह परसन्मुख के लक्ष्य से उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐसे राग को छोड़ और राग से रहित **परमात्मतत्त्वरूप ज्ञानानन्दस्वभाव के विनाशक क्रोधादि कषाय होते हैं, इन्हीं से संसार है,...** आहाहा! परसन्मुख के मोह को छोड़कर निज स्वरूप की प्राप्ति हो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से तो मुक्ति होती है।

अधिकार क्या चलता है? अधिकार मोक्षमार्ग का चलता है। यह अधिकार मोक्षमार्ग का है। तो मोक्षमार्ग अपना भगवान शुद्धात्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, उसका आश्रय करने से, उसके सन्मुख देखने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होते हैं, वह मोक्ष का कारण है। और उसे छोड़कर जितना परसन्मुख के लक्ष्य से राग-कषाय उत्पन्न होती है, वह संसार है। आहाहा! संसार कोई स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, वह संसार नहीं। वह तो परद्रव्य है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पाँच-पच्चीस करोड़ पैसा-धूल, वह संसार नहीं, वह तो अजीवतत्त्व है। संसार तो उसे कहते हैं कि अपना निर्मोह आत्मतत्त्व से विपरीत पर के लक्ष्यवाले मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव, वह संसार है। समझ में आया? देखो! यह कहते हैं।

इन्हीं से संसार है,... आहाहा! यहाँ तो परमात्मा इतना कहते हैं, सर्वज्ञ कहते हैं, वही सन्त—दिगम्बर सन्त कहते हैं, यह कहीं अपने घर की बात नहीं करते। केवली परमात्मा वीतराग ने जो मार्ग कहा, वही दिगम्बर सन्त जगत के समक्ष आढ़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। माल यह है—जिनवरदेव के घर का माल यह है। जिसने मोहरहित निर्मोह शुद्धात्मा से विपरीत जो कषाय, उसका त्याग करने से निर्मोह शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति होती है। समझ में आया? आहाहा! राग का त्याग और निर्मोह आत्मा का ग्रहण।

सिद्धान्त ऐसा है। चाहे तो परद्रव्य वीतराग हो, परन्तु वीतराग की भक्ति के प्रति लक्ष्य जायेगा तो शुभराग ही होगा। उनकी ओर के लक्ष्य से आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! यह कहते हैं।

निर्मोह स्वभाव भगवान आत्मा से विपरीत जो मोह है, रागादि, पुण्यादि भाव, वह सब संसार है। कठिन बातें! लोगों को यह तत्त्व भगवान अन्दर देह-देवालय में (विराजता है, इसकी खबर नहीं)। यह देह तो मिट्टी धूल जड़ है। यह तो मिट्टी है, पुद्गल मिट्टी है। और कर्म अन्दर है, वह मिट्टी अजीवतत्त्व है। और पाप के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे आस्रवतत्त्व हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उत्पन्न होते हैं, वे पुण्यास्रव तत्त्व है। आहाहा! इस पुण्य-पाप के आस्रवतत्त्व से मोहसहितपना है। भगवान इनसे (भिन्न) निर्मोह आत्मतत्त्व है। तो मोह के त्याग से निर्मोह आत्मा की प्राप्ति होती है। समझ में आया? जयसुखभाई! ऐसा मार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! वीतराग परमेश्वर जिनवरदेव...

मुमुक्षु : दोनों को छोड़ना....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को छोड़ने से अपना स्वभाव मोहरहित दृष्टि प्राप्त होगी।

मुमुक्षु : पदार्थ का मोह छोड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : पदार्थ का लक्ष्य छोड़ना। पदार्थ तो छूटे ही पड़े हैं। लक्ष्य छोड़ना और उनके लक्ष्य से जो राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, उन्हें छोड़ना। क्योंकि निर्मोह शुद्धात्मतत्त्व भगवान अन्दर है, उसमें—वस्तु में मोह, राग-द्वेष है ही नहीं। समझ में आया? कल कहा था न? परसों। वीत-राग है। परमात्मा वीतराग है। तो इसका अर्थ क्या हुआ? कि वीतराग अर्थात् रागरहित है। तो पहले रागसहित थे। वीतराग की वीतराग प्रतिमा है या वीतराग भगवान साक्षात् हो। वीतराग है, इसका अर्थ क्या? पहले राग था, उस रागरहित हुए। चाहे तो पुण्य का राग हो, परन्तु वह राग है। तो रागरहित हुआ तो वीतराग वस्तु सत्स्वरूप जो है, उस वीतरागस्वरूप वस्तु है, वह रह गयी। आहाहा! राग छूटकर वीतराग (हुए)। राग को छोड़कर, रागरहित होकर अकेली वीतरागमूर्ति रह गयी। आत्मा वीतरागमूर्ति स्वरूप है, वह रहा। वह वस्तु का स्वभाव

है। राग, वह कहीं वस्तु का स्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निर्मल ज्ञान को तू पा सकेगा। आहाहा! **मोह कषाय के अभाव होने पर...** अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त जितनी परवस्तु है, उस ओर का मोह छूटेगा तो तुझे भगवान निर्मोह आत्मा प्राप्त होगा। सम्यग्दर्शन में निर्मोह आत्मा प्राप्त होगा। आहाहा! **ऐसा दूसरी जगह भी कहा है।** टीकाकार कहते हैं कि यहाँ योगीन्द्रदेव ने तो कहा (परन्तु अन्यत्र भी कहा है)। भगवती आराधना। भगवती आराधना है न? उसमें यह श्लोक लिया है, इस श्लोक का आधार दिया है।

'तं वत्थुं' इत्यादि। अर्थात् वह वस्तु मन, वचन, काय से छोड़नी चाहिए... देखो! यह वस्तु मन, वचन और काया से छोड़ना चाहिए। कौन सी वस्तु? **कि जिससे कषायरूप अग्नि न उत्पन्न हो,...** आहाहा! **वह वस्तु मन, वचन, काय से छोड़नी चाहिए, कि जिससे कषायरूप अग्नि न उत्पन्न हो, तथा उस वस्तु का अंगीकार करना चाहिए, जिससे कषायें शान्त हों।** सत्समागम से, सत्समागम श्रवण से अन्दर कषाय शान्त होती है। असत्संग को छोड़ना, अपने पदार्थ के अतिरिक्त दूसरे पदार्थ का मोह छोड़ना और सत्संग—अपना सत्संग करने में पर सत्संग जो विकाररहित मुनि, धर्मात्मा आदि हैं, वे विकाररहित बात करेंगे। यह मुनि तो वीतरागता कहेंगे। तो उनके संग से कषाय मन्द होगी। समझ में आया?

कहा था न? आत्मावलोकन में। आत्मावलोकन एक शास्त्र है, दीपचन्दजी कृत। अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, आत्मावलोकन। एक दीपचन्दजी साधर्मी हुए हैं, उन्होंने उसमें लिखा है कि मुनि तो वीतरागभाव में प्रवर्तते हैं। राग में नहीं प्रवर्तते। आहाहा! वीतरागभाव में प्रवर्तते हैं। भगवती आराधना में ऐसा कहते हैं, (टीकाकार) आधार देते हैं कि **वस्तु मन, वचन, काय से छोड़नी चाहिए, कि जिससे कषायरूप अग्नि न उत्पन्न हो,...** आहाहा! अपना स्वभाव आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ का लक्ष्य छोड़ना चाहिए कि जिससे कषाय अग्नि उत्पन्न न हो। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! शैली तो दिगम्बर सन्तों की अलौकिक है। **'परदव्वादो दुग्गइ'**। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव का मोक्षप्राभृत में पाठ है कि अपनी वस्तु भगवान वीतरागमूर्ति के आश्रय के अतिरिक्त परद्रव्य का आश्रय करें तो राग ही उत्पन्न होगा। वह चैतन्य की गति नहीं। राग से स्वर्गादि मिले, वह दुर्गति

है। एक मोक्षगति ही सुगति है। आहाहा! स्वर्ग में भी राग का दुःख है। वह सुखी नहीं। विषय में राग आता है, और इन्द्राणी का भोग राग और जहर है। वहाँ सुख नहीं है। समझ में आया? तथा यह करोड़ोंपति, अरबोंपति सुखी है, ऐसा नहीं। दुःखी है। इस धूल पर लक्ष्य जाता है तो उसे राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह न हो तो काम कौन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करता था काम? लक्ष्मी तो धूल है, अजीव है, मिट्टी है। परद्रव्य है, मूर्त है। उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो राग, मोह ही उत्पन्न होता है। दुःख ही उत्पन्न होता है। यह कहते हैं। परद्रव्य का लक्ष्य करने से तो दुःख ही उत्पन्न होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र तो परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र के प्रति लक्ष्य जाये तो भी राग उत्पन्न होता है। सूक्ष्म बात है, भगवान! पद्मनन्दि पंचविंशति में तो यहाँ तक कहा है। पद्मनन्दि आचार्य (कृत) पच्चीस अध्याय है। वहाँ तो यहाँ तक कहा है कि जो बुद्धि शास्त्र में जाती है, वह व्यभिचारिणी बुद्धि है। ऐसा पाठ है। निजघर छोड़कर पर में जाती है, वह बुद्धि व्यभिचारिणी है। ऐ... शान्तिभाई! ऐसी बात है, ऐसा मार्ग है, भाई! अरेरे!

यहाँ तो भगवान त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं, ऐसा सन्त कहते हैं। स्वद्रव्य और परद्रव्य दो चीज़ है। एक ओर भगवान आत्मा शुद्ध आत्मा तथा एक ओर राग से लेकर पूरा जगत, वह परद्रव्य है। तो परद्रव्य का लक्ष्य करने से तो राग ही उत्पन्न होगा। कषाय अग्नि। आहाहा! और अपने द्रव्य के आश्रय से, यह पर का आश्रय छोड़कर कषाय को छोड़कर अपना आश्रय करने से वीतराग आत्मा की प्राप्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? यह बात तो सीधी है।

मुमुक्षु : समकित हो, पश्चात् व्यभिचारिणी बुद्धि है या समकित से पहले?

पूज्य गुरुदेवश्री : पश्चात् भी व्यभिचारिणी बुद्धि है। राग होता है न? मिथ्यात्व नहीं। परन्तु राग होता है न? राग, वह स्वरूप से विपरीत भाव है। भगवान आत्मा का स्वरूप तो ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। उसमें राग है, वह तो विपरीत भाव है,

व्यभिचार है। ऐसी बात है। बापू! इसलिए लोगों को सत्यमार्ग का स्पष्टीकरण, वीतरागमार्ग का स्पष्टीकरण होने से लोग काँप उठते हैं। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ से आकर कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र बनाये, उन शास्त्रों की सभी शास्त्रों में छाप है। समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए। संवत् ४९। यहाँ से भगवान के पास गये थे। महाविदेहक्षेत्र में तीर्थंकर परमात्मा विराजते हैं। सीमन्धर प्रभु अभी विराजते हैं। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। सदेह गये थे। दिगम्बर मुनि। नाम नहीं आता? 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो।' तीसरे नम्बर में कुन्दकुन्द आये हैं। पहले भगवान, पश्चात् वजीर—गणधर, पश्चात् कुन्दकुन्दाचार्य। भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहकर (यहाँ आकर) समयसार आदि बनाये, उन समयसार आदि की सभी में छाप है। समझ में आया? आहाहा!

संक्षिप्त में तो ऐसा कहते हैं कि अपना आत्मा जो स्व-आश्रय करता है, वह तो निर्मोह वस्तु है। उसकी दृष्टि निर्मोह हो तो उसकी दृष्टि करेगा। और परसन्मुख का लक्ष्य है तो मोह है। उस मोहभाव से अपने लक्ष्य से च्युत होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। समयसार नाटक में कहा नहीं? कि मुनि हैं, सच्चे वीतरागी मुनि, भावलिंग, जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है, प्रचुर अतीन्द्रिय आनन्द का अन्तर वेदन है, वे मुनि हैं। उन्हें भी महाव्रत का विकल्प उठता है, वह जगपंथ है। देवीलाल ने प्रश्न किया कि समकिती को क्या? आहाहा!

मुमुक्षु : समकित होने से पहले व्यभिचारिणी बुद्धि मानेगा तो शास्त्र वाँचेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले भी है और बाद में भी (व्यभिचारिणी) है। सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो पहले कह गये न? परमात्मप्रकाश में पहले कहा—दिव्यध्वनि से भी आत्मा प्राप्त नहीं होगा। क्योंकि दिव्यध्वनि वह परपदार्थ है। उसके लक्ष्य से अपने में जो ज्ञान होता है, वह परलक्ष्यी ज्ञान है, उससे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। आहाहा! पहले आ गया है। समझ में आया? आहाहा! और जिसने राग का कण भी आदरणीय और उपादेय माना है, उसे आत्मा हेय हो गया है। जिसने शुभराग, पुण्यराग को भी उपादेय माना, वह आदरणीय है—ऐसा माना, उसे आत्मा हेय हो गया। और जिसे आत्मा

उपादेय हुआ, उसे राग हेय हो गया। दोनों पारस्परिक बात है। आहाहा! कुछ दरकार की नहीं और जिन्दगी चली जाती है। वीतराग क्या कहते हैं और मार्ग क्या है, इसकी खबर भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

दो बातें हैं। एक ओर भगवान निर्मोही आत्म-शुद्धात्मतत्त्व है। नव तत्त्व है न? तो आत्मा जो है, वह शुद्धात्मतत्त्व, वह जीवतत्त्व है। और पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं, वे तो आस्रवतत्त्व हैं। वह भिन्न तत्त्व है। तथा कर्म और शरीर यह मिट्टी और पैसा, वह तो अजीवतत्त्व—धूलतत्त्व है। आहाहा! तो अजीव से और पुण्य-पाप आस्रव से भगवान तत्त्व भिन्न है। नहीं तो दो तत्त्व एक हो जायेंगे। आहाहा!

यहाँ परमात्मा योगीन्द्रदेव सन्त हैं। महामुनि वीतरागी दिगम्बर हैं। जंगल में बसते थे। समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश जंगल में बनाया है। तो कहते हैं, ४२ गाथा में अल्प (शब्दों में) बहुत (भरा है)। भगवान! भगवानरूप से तो बुलाते हैं। (समयसार) ७२ गाथा में आया है, भगवान आत्मा। आहाहा! भग अर्थात् आनन्द की लक्ष्मी, ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी का भण्डार भगवान आत्मा है। यह धूल की लक्ष्मी नहीं। यह पाँच-पच्चीस करोड़ रुपये मिले तो हम बादशाह हो गये। दुःखी का सरदार है। ऐई! आहाहा! यह पैसेवाले दुःखी, देव दुःखी, अनुकूल सामग्रीवाले भी दुःखी। क्योंकि अनुकूल सामग्री में लक्ष्य जाता है तो राग होता है, यह राग है, वह दुःख है। आहाहा! ऐसी बातें!

यहाँ तो दो बातें हैं। एक चोट और दो टुकड़े। एक चोट मारे और टुकड़े हों दो। ऐसा भेदज्ञान करने से दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। परसन्मुख के आश्रय से राग होता है और भगवान की प्राप्ति राग से रहित अरागी परिणाम से उत्पन्न होती है। आहाहा! समझ में आया? दरकार की नहीं। इसने अनन्त काल ऐसे का ऐसा बिताया। या स्त्री, पुत्र और कुछ पाँच-पचास लाख धूल मिले, वहाँ मानो हम बड़े हो गये। समझ में आया? यह तो इसमें कहा न? परमात्मप्रकाश में आ गया न? अब आयेगा, नहीं? ६०वीं गाथा। नहीं? अब ६० में आयेगा। लो, यह ६० ही आयी। देखो! पृष्ठ फिराते हुए ६०... ६०। छह और शून्य—६० गाथा, अपने ४२वीं चलती है। ६० वीं आयी देखो। '**पुण्णेण होइ विहवो**' पुण्य से वैभव यह धूल मिलती है। यह राग और पैसा और कीर्ति, स्त्री,

पुत्र, परिवार अनुकूल (मिले), वह **'पुण्णेण होइ विहवो'**। पाठ है? **'विहवेण मओ'** वैभव से मद चढ़ेगा, इसे मद चढ़ेगा। हमने पैसे कमाये, हम पैसेवाले। है? अन्दर अर्थ में है। देखो! अर्थ... अर्थ। **पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान,...** होता है। है अर्थ में? बाबूभाई! गये तुम्हारे? बलुभाई गये। वे कहे, जाना सुहाता नहीं। जाना सुहाता नहीं तो किसलिए जाते हो? आहाहा!

भगवान का घर प्राप्त होना, बापू! बहुत अलौकिक बातें हैं। जैनदर्शन, वह अलौकिक है। ऐसी चीज़ अन्यत्र कहीं तीन काल में अन्यत्र कहीं नहीं है। यहाँ तो स्वद्रव्य और परद्रव्य की अस्ति सिद्ध की है। अकेला आत्मा ही है, ऐसा नहीं। आत्मा के अतिरिक्त अनन्त पदार्थ भिन्न हैं। ऐसे दो पदार्थ सिद्ध किये बिना भिन्न अनन्त। तथापि एक स्व पदार्थ का आश्रय छोड़कर पर का जितना आश्रय करता है, उतना व्यभिचार, राग और दुःख है। आहाहा! इसलिए वह कषाय... यहाँ कहा न? देखो न! यहाँ क्या कहते हैं? इस पुण्य से वैभव मिलता है। पुण्य से घर में वैभव मिले, ऐसा कहा न? घर में धन (आवे)। धन, यह धूल। आहाहा! और **धन से अभिमान, मान से बुद्धिभ्रम होता है,...** बुद्धिभ्रम हो जाता है। कुछ पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़ मिले वहाँ... ओहोहो! क्या है? धूल भी नहीं, सुन न! आहाहा! और **बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है,...** आहाहा! **इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** धर्मात्मा ऐसा कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमको न हो। पुण्य न हो, बापू! हमारे पुण्य चाहिए नहीं। आहाहा! हमारे तो भगवान आत्मा (कि जो) पुण्य के, पाप के भाव और फल रहित है, (वह चाहिए है)। पुण्य-पाप के भाव और पुण्य-पाप के फल संयोगी। उनसे प्रभु अन्दर रहित है। अरेरे! उसे कहाँ बैठे यह बात? समझ में आया? हमको ऐसा पुण्य न हो। जयसुखभाई!

मुनिराज ऐसा कहते हैं। आहाहा! हमको ऐसा पुण्य न हो। जिस पुण्य से पैसा मिले और अभिमान चढ़ जाये, मतिभ्रम हो जाये, हमको कुछ आता है, बहुत आता है इसलिए पैसे इकट्ठे किये और इसको आता नहीं इसलिए पैसे नहीं हुए, (ऐसा माननेवाले) मूढ़ है। पैसा तो पूर्व के पुण्य से मिलता है, तेरे पुरुषार्थ से मिलता है? सब व्यवस्थित प्रयत्न करे, इसलिए पैसा मिलता है? बुद्धि के बारदान खाली हो। बारदान समझे? बुद्धि से खाली कोथला। दो-दो लाख महीने में पैदा करते हैं। पाँच-पाँच लाख अभी

पैदा करते हैं। बुद्धि के बारदान—खाली। और बुद्धि के खां हों, उन्हें दो हजार पैदा करने में पसीना उतरता है। महीने में दो हजार पैदा करने (में पसीना उतरता है), यह क्या बुद्धि का फल है? क्यों गोपाणी? क्या होगा?

मुमुक्षु : पुण्य के कारण यह मिलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो किसके कारण मिलता है? पुण्य के कारण बुद्धिहीन को मिलता है और बुद्धिवाले के पुण्य न हो तो नहीं मिलता।

मुमुक्षु : हम मेहनत करते हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किया, राग करे? यह करे क्या? राग। देह की क्रिया कर सकता है? वह तो जड़-मिट्टी है। वह तो अजीवतत्त्व है। अजीवतत्त्व की क्रिया आत्मा कर सकता है? अज्ञानी। कर सके राग, मोह और मिथ्या भ्रम / भ्रान्ति। आहाहा! अभी तुम्हारे पैसे गये नहीं? माणेकलाल में गये न अभी? वह पैसे जानेवाले थे। पाप का उदय हो तब जाते हैं। १५० तौला सोना था।

मुमुक्षु : ध्यान नहीं रखा इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखने से रहे? वह जाने की जड़ की क्रिया है। आहा! उसमें क्रियावतीशक्ति है, इसलिए उसके कारण से वह परमाणु ऐसे जाते हैं। दूसरा कहे, मैं ले जाता हूँ, यह बात झूठ है।

मुमुक्षु : कोई ले गये नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन ले जाये? आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भगवान! बापू! जिनवरदेव, उसमें भी यह दिगम्बर धर्म, वह जैनधर्म। इसके अतिरिक्त धर्म है नहीं। यह परमसत्य है। आहाहा! इसे सुनने को मिलता नहीं, वह बेचारा कहाँ जाये? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं... आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं, हमारे ऐसा पुण्य न हो। योगीन्द्रदेव (कहते हैं)। दूसरे की अपेक्षा हम उत्कृष्ट हो गये, बढ़ गये। पिताजी के पास कुछ नहीं था। हमने बाहुबल से पैसा कमाया है। धूल भी नहीं, सुन न! तेरा बाहुबल कैसा? आहाहा! अभिमान है, अभिमान। तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। यहाँ तो परमात्मा

ऐसा कहते हैं, यह तो पुण्य की बात की, परन्तु जिस भाव से पुण्य बँधता है, वह भाव भी मोह है। समझ में आया ? उस मोह की ओर का लक्ष्य छोड़ दे। वह राग अग्नि है। आहाहा! छहढाला में आता है। छहढाला में नहीं आता ? 'राग आग दाह दहे सदा'। किसे खबर है ? भगवान! इस धूल के कारण पूरे दिन निवृत्त नहीं। छहढाला में आता है। 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' (ढाल-६, पद-१५) छहढाला में आता है। रागरूपी आग। भले शुभराग हो तो वह आग है। 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' वीतरागभाव समताभाव का सेवन। उस आत्मा के अवलम्बन से समताभाव उत्पन्न होता है। पर के कारण समताभाव उत्पन्न नहीं होता। आहाहा! और इस समताभाव की व्याख्या तो अपने आ गयी। जिसमें वीतरागी आनन्द का स्वाद आवे। आहाहा! उसे समभाव कहते है। जिसे अन्तर आत्मा का वीतरागी आनन्द है, उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद अनुभव में आता है, उसे समता-समभाव कहा जाता है। हम समभाव रखते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा!

यहाँ आया, **जिससे कषायें शान्त हो। तात्पर्य यह है कि विषयादिक सब सामग्री...** आहाहा! पाँच इन्द्रियों के विषयों की सब सामग्री। **और मिथ्यादृष्टि पापियों का संग सब तरह से मोहकषाय को उपजाते हैं,...** आहाहा! जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, वह कषाय का पोषण करेगा। वह कषाय में धर्म स्थापित करेगा। उसका संग छोड़ दे। आहाहा! **विषयादिक सब सामग्री...** अर्थात् पाँच इन्द्रिय के विषय की सामग्री। आहाहा! **और मिथ्यादृष्टि पापियों का संग सब तरह से मोहकषाय को उपजाते हैं,...** आहाहा!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि पुण्यशाली हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि पापी है। वह पापी है। मिथ्यादृष्टि पापी है, पुण्यशाली नहीं।

मुमुक्षु : पूर्व का पुण्य हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी उसे पापी कहा है। गोम्मटसार में मिथ्यादृष्टि को अशुभभाव ही कहा है। जिसकी दृष्टि में राग से धर्म होता है, पुण्य से धर्म होता है, इस व्यवहार के व्रत, तप की क्रिया करे तो धर्म होता है, यह (माननेवाला) मिथ्यादृष्टि पापी

है। आहाहा! गोम्मटसार में उसे अशुभभाव कहा है। उसे शुभभाव होता अवश्य है, परन्तु उसकी गिनती नहीं है। मिथ्यात्व का जोर है। विपरीत श्रद्धा के जोर में उसे पापी कहा है। गोम्मटसार। आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी को द्रव्यलिंगी का संग करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह तुम्हारे समझना इसमें। जो कोई दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव शुभ है, उससे धर्म मानता है, मनाता है—उसका संग तो मिथ्यात्व का पोषक है। यह तो आ गया है, बहुत, दोपहर में अभी आयेगा। यह पुण्य-पाप अधिकार में आया नहीं? समयसार। व्रत, तप, शील, नियम, यह सब शुभभाव, शुभकर्म है। वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! उसे ही धर्म मनावे, वह तो मिथ्यादृष्टि पापी है। ऐसी बात है, भाई! उसका संग **सब तरह से मोहकषाय को उपजाते हैं,...** आहाहा!

इससे ही मन में कषायरूपी अग्नि दहकती रहती है। आहाहा! मिथ्याश्रद्धावाले का संग करने से मिथ्याश्रद्धा उत्पन्न होती है। मिथ्याश्रद्धा, वह अग्नि है, यह कषाय अग्नि है। आहाहा! जिनवरदेव का मार्ग, बापू! एक क्षण भी जिसे सम्यग्दर्शन हो, उसे कषाय अग्नि अन्दर से छूट जाती है। आहाहा! शुभभाव छूटकर भेदज्ञान हो जाता है। आहाहा! **इससे ही मन में कषायरूपी अग्नि दहकती रहती है।** देखो! आहाहा! **वह सब प्रकार से छोड़ना चाहिए,...** आहा!

सत्संगति तथा शुभ सामग्री (कारण) कषायों को उपशमाती है... निमित्त से कथन है। सत्संगति। सत्संगति में वीतरागभाव स्थापित करेंगे। समकिती या मुनि धर्मात्मा सच्चे होंगे, वे तो वीतरागभाव का ही धर्म बतायेंगे, राग का धर्म वे नहीं बताते। राग आता है, बतलायेंगे। राग होता है। समकिती को भी भक्ति, पूजा का राग होता है। परन्तु वह राग पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं, ऐसा वे बतायेंगे। समझ में आया? यह तो परमात्मप्रकाश है। **सत्संगति तथा शुभ सामग्री (कारण) कषायों को उपशमाती है...** शुभ सामग्री अर्थात् देव, गुरु की पूजा, भक्ति में राग मन्द होता है, इतना। **कषायरूपी अग्नि को बुझाती है, इसलिए उस संगति वगैरह को अंगीकार करनी चाहिए।** जिसमें अविकारी स्वभाव की प्ररूपणा होती हो तो उसके संग में अकषायभाव उत्पन्न होगा।

समझ में आया? कठिन बात, भगवान! क्या हो? अरेरे! पंचम काल, परमात्मा के का विरह पड़ा। तीर्थंकरों की उपस्थिति नहीं। केवली भगवान रहे महाविदेह में। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा का पुकार यह है, तेरा स्वद्रव्य स्वभाव शुद्धात्मा के सन्मुख होने से तुझे धर्म होगा और परद्रव्य की विमुखता से (धर्म) होगा। स्वद्रव्य से विमुख होकर परद्रव्य के सन्मुख जायेगा तो राग होगा। ऐसा कहते हैं, बात तो ऐसी लेते हैं। आहाहा! अरेरे! लोगों को अन्दर आत्मा वीतरागस्वरूपी है, उसकी वीतरागी दृष्टि से वह प्राप्त होता है। समझ में आया?

इसलिए उस संगति वगैरह को अंगीकार करनी चाहिए। लो! ४२ (गाथा) हुई। बहुत सरस बात! ओहोहो! परमात्मप्रकाश की एक-एक गाथा, गजब बात! सम्यग्दर्शन है, वह वीतरागी पर्याय है। पर्याय है, समभाव है। क्योंकि वह पर का आश्रय छोड़कर, स्व त्रिकाली भगवान शुद्धात्मा का आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का पहला सोपान। यह सम्यग्दर्शन किस प्रकार उत्पन्न हो, यह (बात समयसार की) ११वीं गाथा में आयी है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' त्रिकाली भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु ध्रुव के आश्रय से—अवलम्बन से सम्यग्दर्शन होता है। देव-गुरु-शास्त्र के आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! यह समयसार ११वीं गाथा में है। आहाहा! उसका यह विस्तार किया है। पहले अपने आ गया कि समभाव अर्थात् शुभाशुभभाव से रहित और वीतरागी आनन्दस्वरूप ऐसे वीतरागी आनन्द के स्वादसहित है, उसे समभाव कहते हैं। उसे वीतरागता कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! बाहर से मान ले, हमने धर्म किया। यह यात्रा की, वहाँ धर्म हो गया, ऐसा माने। वह तो शुभभाव है। शुभभाव पुण्य है। अपनी यात्रा करने से, अन्दर आत्मा का आनन्द है, उसमें आरूढ़ होने से वीतरागभाव होता है, वह परमार्थ यात्रा है। ऐसी बात है, कठिन बात है।

अब कहते हैं, ४३ आयी न? **हेयोपादेय तत्त्व को जानकर...** हेय अर्थात् परसन्मुख का राग और परसन्मुख की सब चीज़ें हेय है। उसका सार यहाँ वापस लिया। और भगवान शुद्धात्मा, वही उपादेय है। भेदज्ञान। 'भेदज्ञान साबु भयो' आता है न? 'निर्मल नीर, समरस निर्मल नीर, धोबी अन्तर आत्मा धोवे निज गुण चीर' समयसार

नाटक में (संवर द्वार, पद-९) आता है। बनारसीदास, टोडरमल आदि महापुरुष बहुत काम कर गये हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक, बनारसीदास, समयसार नाटक, जोरदार!

यहाँ कहते हैं, **हेयोपादेय तत्त्व को जानकर...** यह ऊपर कहा न? दो। परद्रव्य की ओर (लक्ष्य जाने से) राग उत्पन्न होता है, वह हेय है। राग हेय है और परद्रव्य भी हेय है। आहाहा! **परमशान्तभाव से स्थित होकर...** हेय तत्त्व को हेय करके और भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु को अंगीकार-उपादेय करके। आहाहा! **परमशान्तभाव से स्थित होकर...** रागरहित, कषायरहित शान्तभाव सम्यग्दर्शन, ज्ञान शान्तभाव में स्थित होकर **जिनके निःकषायभाव हुआ...** जिसे कषायरहित भाव हुआ। उस **निज शुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई...** आहाहा! निज शुद्धात्मा, भगवान परमात्मा, वे तो पर हैं। **निज शुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई, वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं,...** बाकी सब दुःखी हैं। समझ में आया? अरबोंपति है अभी, अपने हिन्दुस्तान में भी। अमेरिका में तो अरबोंपति का पार नहीं होता। परन्तु सब दुःखी।

यहाँ कहते हैं, **निज शुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई...** परसन्मुख का जो विकल्प उठता है, वह राग है, वह हेय है। और राग हेय है तो जिसके लक्ष्य से उत्पन्न होता है, वह चीज़ भी हेय है। और अपना आत्मा है, वह शुद्ध, रागरहित है। तो उस स्वभाव का आश्रय करने से रागरहित परिणति में आत्मा प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन रागरहित पर्याय है। उसमें आत्मा प्राप्त होता है। उसमें लीन होकर शान्तभाव... है न? सुखी है। आहाहा! शान्तभाव में स्थित होकर ज्ञानी परम सुखी है। धर्मी वीतरागी परिणति में रहते हैं, वे सुखी हैं। सम्यग्दृष्टि भी सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। अकषायभाव है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को सम्यग्दर्शन का विषय जो पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय करने से आनन्द उत्पन्न होता है, वह सुखी है। मिथ्यादृष्टि अरबोंपति, देव हो, राजा हो, सेठिया हो, वे सब दुःखी हैं, दुःखी। दुनिया से अलग चीज़ है भाई यह तो। यह तो वीतराग जिनेश्वरदेव परमेश्वर परमात्मा का यह फरमान है। दुनिया से निराला है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४३

अथ हेयोपादेयतत्त्वं ज्ञात्वा परमोपशमे स्थित्वा येषां ज्ञानिनां स्वशुद्धात्मनि रतिस्त एव सुखिन इति कथयति –

१६६) तत्तातत्तु मुणेवि मणि जे थक्का सम-भावि।
ते पर सुहिया इत्थु जगि जहँ रइ अप्प-सहावि।।४३।।

तत्त्वातत्त्वं मत्वा मनसि ये स्थिताः समभावे।
ते परं सुखिनः अत्र जगति येषां रतिः आत्मस्वभावे।।४३।।

तत्तातत्तु इत्यादि। तत्तातत्तु मुणेवि अन्तस्तत्त्वं बहिस्तत्त्वं मत्वा। क्व। मणि मनसि जे ये केचन वीतरागस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानिनः थक्का स्थिता। क्व। सम-भावि परमोशमपरिणामे ते पर त एव सुहिया सुखिनः इत्थु जगि अत्र जगति। के ते। जहं रइ येषां रतिः। क्व। अप्प-सहावि स्वकीयशुद्धात्मस्वभावे इति। तथाहि। यद्यपि व्यवहारेणानादिबन्धनबद्धं तिष्ठति तथापि शुद्धनिश्चयेन प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबन्धरहितं, यद्यप्यशुद्धनिश्चयेन स्वकृतशुभाशुभकर्मफल-भोक्ता तथापि शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन निजशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्थवीतराग-परमानन्दैकसुखामृत-भोक्ता, यद्यपि व्यवहारेण कर्मक्षयानन्तरं मोक्षभाजनं भवति तथापि शुद्धपारिणामिकपरमभाव-ग्राहकेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन सदा मुक्तमेव, यद्यपि व्यवहारेणेन्द्रियजनितज्ञानदर्शनसहितं तथापि निश्चयेन सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावं, यद्यपि व्यवहारेण स्वोपात्तदेहमात्रं तथापि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशं, यद्यपि व्यवहारेणोपसंहारविस्तारसहितं तथापि मुक्तावस्थाया-मुपसंहारविस्ताररहितं चरमशरीर-प्रमाणप्रदेशं, यद्यपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं तथापि द्रव्यार्थिकनयेन नित्यटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावं निजशुद्धात्मद्रव्यं पूर्वं ज्ञात्वा तद्विलक्षणं परद्रव्यं च निश्चित्य पश्चात् समस्तमिथ्यात्वरागादिविकल्पत्यागेन वीतरागचिदानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वे ये रतास्त एव धन्या इति भावार्थः। तथा चोक्तं परमात्मतत्त्वलक्षणे श्रीपूज्यपाद-स्वामिभिः-नाभावो सिद्धिरिष्टा न निजगुणहतिस्तत्तपोभिर्न युक्तैः। अस्त्यात्मानादिबद्धः स्वकृतजफलभुक् तत्क्षयान्मोक्षभाजी। ज्ञाताद्रष्टा स्वदेहप्रमितिरुप-समाहारविस्तारधर्मा। ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा स्वगुणयुत इतो नान्यथा साध्यसिद्धिः'।।४३।।

आगे हेयोपादेय तत्त्व को जानकर परम शांतभाव में स्थित होकर जिनके निःकषायभाव हुआ और निजशुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई, वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं, ऐसा कथन करते हैं–

तत्त्व अतत्त्व मानकर जो मन में थिर रखते हैं समभाव।
जिनकी रति है निज स्वभाव में वे भोगें परमानन्द भाव।।४३।।

अन्वयार्थ :- [ये] जो कोई वीतराग स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञानी जीव [तत्त्वातत्त्वं] आराधने योग्य निज पदार्थ और त्यागने योग्य रागादि सकल विभावों को [मनसि] मन में [मत्वा] जानकर [समभावे स्थिताः] शांतभाव में तिष्ठते हैं, और [येषां रतिः] जिनकी लगन [आत्मस्वभावे] निज शुद्धात्म स्वभाव में हुई है, [ते परं] वे ही जीव [अत्र जगति] इस संसार में [सुखिनः] सुखी हैं।

भावार्थ :- यद्यपि यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादिकाल से कर्मबंधनकर बँधा है, तो भी शुद्धनिश्चयनयकर प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश-इन चार तरह के बंधनों से रहित है, यद्यपि अशुद्धनिश्चयनय से अपने उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्मों के फल का भोक्ता है, तो भी शुद्धद्रव्यार्थिकनय से निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न हुए वीतराग परमानंद सुखरूप अमृत का ही भोगनेवाला है, यद्यपि व्यवहारनय से कर्मों के क्षय होने के बाद मोक्ष का पात्र है, तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सदा मुक्त ही है, यद्यपि व्यवहारनयकर इन्द्रियजनित मति आदि क्षयोपशमिकज्ञान तथा चक्षु आदि दर्शन सहित है तो भी निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है, यद्यपि व्यवहारनयकर यह जीव नामकर्म से प्राप्त देहप्रमाण है, तो भी निश्चयनय से लोकाकाशप्रमाण असंख्यातप्रदेशी है, यद्यपि व्यवहारनय से प्रदेशों के संकोच विस्तार सहित है, तो भी सिद्ध-अवस्था में संकोच विस्तार से चरमशरीरप्रमाण प्रदेशवाला है, और यद्यपि पर्यायार्थिकनय से उत्पाद व्यय ध्रौव्यकर सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर टंकोत्कीर्ण ज्ञान के अखंड स्वभाव से ध्रुव ही है। इस तरह पहिले निज शुद्धात्मद्रव्य को अच्छी तरह जानकर और आत्मस्वरूप से विपरीत पुद्गलादि परद्रव्यों को भी अच्छी तरह निश्चय करके अर्थात् आप पर का निश्चय करके बाद में समस्त मिथ्यात्व रागादि विकल्पों को छोड़कर वीतराग चिदानंद स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व में जो लीन हुए हैं, वे ही धन्य हैं। ऐसा ही कथन परमात्मतत्त्व के लक्षण में श्रीपूज्यपादस्वामी ने कहा है, 'नाभाव' इत्यादि। अर्थात् यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादि का बँधा हुआ है, और अपने किये हुए कर्मों के फल का भोक्ता है, उन कर्मों के क्षय से मोक्षपद का भोक्ता है, ज्ञाता है, देखनेवाला है, अपनी देह के

प्रमाण हैं, संसार-अवस्था में प्रदेशों के संकोच विस्तार को धारण करता हैं, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है, और अपने गुण पर्याय सहित है। इस प्रकार आत्मा के जानने से ही साध्य की सिद्धि है, दूसरी तरह नहीं है।।४३।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक शुक्ल १४, शुक्रवार
दिनांक-०५-११-१९७६, गाथा-४३, प्रवचन-१२५

---

४३ गाथा। पहले से शुरु। **आगे हेयोपादेय तत्त्व को जानकर...** ४३, पहली पंक्ति। हेय अर्थात् आत्मा के अतिरिक्त रागादि सब पदार्थ हेय है और अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, वह उपादेय है। ऐसा **हेयोपादेय तत्त्व को जानकर परम शान्तभाव में स्थित होकर...** वीतरागी परिणाम में शान्त (भाव में) स्थिर होकर। सूक्ष्म बात है, भाई! शुभ और अशुभ परिणाम जो है, वह विषमभाव, राग, विकार है। उससे हटकर निज शुद्धात्मा में समभाव से स्थित रहे। 'समामृत सेईये'। राग, पुण्य-पाप के भाव से रहित अपने समभाव में जो स्थित रहता है... आहाहा! और **निःकषायभाव हुआ...** शुभ-अशुभभाव है, वह तो कषाय है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पापकषाय है और दया, दान, भक्ति, पूजा, व्रतादि के भाव पुण्यकषाय है। दोनों कषाय से रहित, हटकर अपना शुद्ध निःकषाय स्वभाव में जो लीन होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

निज शुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई,... निज—अपना शुद्ध आत्मा पवित्र भगवान, उसमें जिसकी लगन लगी, रति लगी, **वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं,...** वह धर्मी जगत में परमसुखी है। बाकी सब दुःखी है। राजा, सेठिया, यह करोड़पति, अरबोंपति, ये बेचारे दुःखी हैं।

मुमुक्षु : ज्ञानी की दृष्टि से दुःखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को भान कब था, दुःख का और सुख का? अज्ञानी ऐसा मानता है कि वह सुखी है। यहाँ तो आचार्य भगवान ऐसा कहते हैं, जो कोई आत्मा निज शुद्धात्मा पवित्र भगवान, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प से रहित होकर, समभाव में

स्थित होता है, वह आत्मा में लीन होता है, आत्मा की जिसे लगन लगी हो, वह सुखी है। ताराचन्दजी! आहाहा! धूल में भी सुखी नहीं अरबोंपति, करोड़ोंपति बहुत हैं। समझ में आया? जड़ के पति, वे तो जड़ हैं। भैंस का पति तो पाडा होता है; उसी प्रकार लक्ष्मी जड़ है, उसका स्वामी हो—पति हो, वह जड़ है, उसे चैतन्य की खबर नहीं। समझ में आया? वीतरागमार्ग जगत से अलग प्रकार का है।

सर्वज्ञ जिनवरदेव त्रिलोकनाथ जिनवर तीर्थंकर परमेश्वर ऐसा फरमाते हैं। आहाहा! एक बार भगवान! सुन तो सही। आहाहा! तेरे आत्मा में आनन्द है, अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द है। आहाहा! वह आनन्द बाहर नहीं। लक्ष्मी में नहीं, स्त्री में नहीं, इज्जत में नहीं, उसका बड़ा बँगला पाँच-पचास लाख का मकान-बँगला हो, (उसमें) धूल में भी सुख नहीं। मूढ़ अज्ञानी अनादि का पर में सुख मानता है, वह मिथ्यादृष्टि दुःखी है। आहाहा!

भगवान सर्वज्ञदेव परमात्मा जिनेश्वरदेव का यह फरमान है कि **निज शुद्धात्मा में जिनकी लीनता हुई,...** आहाहा! पुण्य-पाप के भाव में से भी जिसकी लीनता छूट गयी है। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी की बात चलती है न! आहाहा! जिसे आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, शान्तस्वरूप, वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसमें जिसकी लगन लगी है, लीनता है, **वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं,...** कहो, समझ में आया? वे सुखी हैं। बाकी राजा, देव, ये सेठिया, दुनिया इन्हें ऐसा कहे, यह सेठ है, ये सब दुःखी हैं। उस कषाय अग्नि से जल रहे हैं। समझ में आया? यह जो जीव धर्मी है—सम्यग्दृष्टि है, जिसने आत्मा परमानन्द की मूर्ति है, उसे जिसने अनुभव में लिया है, समझ में आया? वह आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु! सम्यग्दृष्टि जीव, सम्यग्ज्ञानी जीव, आत्मा शुद्ध चैतन्य है, उसमें जिसकी लीनता है। पुण्य और पाप के भाव में धर्मी की लीनता नहीं। तो पुण्य-पाप के फलरूप से यह बाहर की धूल आदि मिले, उसमें धर्मी की लीनता नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! है?

वे ही ज्ञानी परम सुखी हैं, ऐसा कथन करते हैं—

अन्वयार्थ : जो कोई वीतराग स्वसंवेदन प्रत्यक्षज्ञानी जीव... आहाहा! इतने शब्दों में तो बहुत भरा है। जिसने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है, वह पुण्य-पाप

के भाव से भिन्न पड़कर, भेदज्ञान करके, निज शुद्ध चैतन्यस्वरूप में लीन हुआ है, वह वीतराग... आहाहा! सम्यग्दृष्टि वीतरागी पर्याय में है। आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदन...** अपना—स्व आत्मा का, सं—प्रत्यक्ष। आहाहा! प्रत्यक्ष वेदन करनेवाला ज्ञानी, आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। जिसे भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द के वेदन में वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान ही है, उस प्रत्यक्ष आत्मा के आनन्द का अनुभव करता है। आहाहा! समकिती हो, गृहस्थाश्रम में हो, छह खण्ड के राज्य में चक्रवर्ती पड़े हों, परन्तु अन्दर जिसे आत्मज्ञान हुआ है, वह अन्तर में रागरहित अपने निज वीतरागस्वरूप के स्वसंवेदन में सुखी हैं। कहो, ऐसी व्याख्या। इसमें क्या समझना? यह किस प्रकार का उपदेश?

भगवान! अन्तर वीतराग सर्वज्ञदेव जिनवरदेव का यह उपदेश है। जिसमें दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव उत्पन्न होता है, वह भी राग है, वह दु:ख है। दुनिया को कहाँ खबर है? आहाहा! यह राग है, वह दु:खी है। राग से भिन्न होकर अपने वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान और आनन्द का वेदन करता है, वह ज्ञानी जीव एक ही जगत में सुखी है। 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया।' जिसे आत्मज्ञान हुआ, आत्मदर्शन हुआ, आत्मा का वीतरागी स्वसंवेदन हुआ, वही एक जीव सुखी है। कहो, जादवजीभाई! तुम सब दु:खी हो, ऐसा कहते हैं। पैसेवाले सब। दस लाख और बीस लाख, करोड़ और दो करोड़... अरबों रुपये है अभी बनिया के पास। समझ में आया? वह पर के लक्ष्य में जो ममता करता है, वह दु:खी है। भगवान आत्मा में... आहाहा! परमानन्द का स्वरूप प्रभु आत्मा का है। अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप। उस अतीन्द्रिय आनन्द स्वरूप में राग से रहित होकर समभाव से शान्ति में स्थिर होता है, वह ही एक सुखी है। वह धर्मी सुखी है। समझ में आया? लो।

आराधने योग्य निज पदार्थ... देखो! धर्मी को सेवनयोग्य—आराधनेयोग्य तो आत्मा है। निज पदार्थ प्रभु चैतन्य सच्चिदानन्द मूर्ति। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! कैसे जँचे? यहाँ तो बीड़ी बिना चले नहीं, तम्बाकू बिना चले नहीं। दो बीड़ी पीवे तो पाखाने में दिशा—दस्त उतरे। इतनी तो जिसकी पराधीनता। दु:खी है। अब उसे ऐसा कहे कि प्रभु! तू आनन्द का नाथ है। तुझमें तो सच्चिदानन्द सत् आनन्द भरा है। यह कहते हैं। **आराधने योग्य निज पदार्थ...** है। आहाहा! सेवनयोग्य, दृष्टि करनेयोग्य,

ज्ञान में ज्ञेय बनानेयोग्य निज पदार्थ है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! वीतरागमार्ग कोई अलग प्रकार है। ऐसा मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्य में कहीं नहीं है।

यह यहाँ कहते हैं, निज पदार्थ सेवनयोग्य है। भगवान परमात्मा की सेवा, पूजा, वह भी राग है। आहाहा! क्योंकि परपदार्थ है। सेवा है न? **आराधने योग्य निज पदार्थ...** आहाहा! धर्मी को-सम्यग्दृष्टि को सुख के पंथ में स्थित है, ऐसे आत्मा को तो एक आत्मा ही आराधनेयोग्य है। यह देव-देवी नहीं आराधते लोग? अमुक देवी और ढींकणी देवी। वह तो सब जड़ जैसे देव हैं, उन्हें आराधे, उसमें क्या है? मिथ्यात्व है। यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की भी सेवा करना, वह रागभाव है। निज पदार्थ की सेवा करना, वह वीतरागभाव है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें कहाँ? ताराचन्दजी! प्रभु का मार्ग ऐसा है, भाई! लोगों को मिला नहीं। बेचारे, आहाहा! बाहर में रचपच गये। इज्जत में और पुण्य में और पुण्य के फल में, आहाहा! दुःखी... दुःखी... दुःखी... दुःखी है। उस दुःख की ज्वाला, कषाय अग्नि में जलते हैं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **आराधने योग्य निज पदार्थ और त्यागने योग्य रागादि सकल विभावों...** है? रागादि, पुण्यादि, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम भी त्यागनेयोग्य है। आहाहा! एक ओर भगवान राम—आत्मा तथा एक ओर पूरा गाँव। विकल्प-राग से लेकर सभी परचीजें। उस ओर का विभाव छोड़नेयोग्य है। आहाहा! कहो, जयसुखभाई! अब ऐसी बातें। आहाहा! वकालत हो और महीने में दो-पाँच हजार पैदा हो तो बस मानो... बहुत कमाया और बहुत मानो बहुत हुआ। धूल भी नहीं, सुन न! दुःखी है।

भगवान त्रिलोकनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं, अपनी चीज़ जो आनन्दमूर्ति, वही सेवा करनेयोग्य है, दृष्टि करनेयोग्य है, आदर करनेयोग्य है। आहाहा! और रागादि भाव... भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति का जो राग है, वह भी तुझे त्यागनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा! कहाँ आया?

आराधने योग्य निज पदार्थ और त्यागने योग्य रागादि सकल विभाव... आहाहा! चाहे तो शुभराग—शुभभाव हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का शुभराग हो या उनकी पूजा, भक्ति का शुभराग हो, धर्मी जीव को तो राग हेय है। आहाहा! अरे! इसे (अज्ञानी

को) खबर नहीं कि यह धर्म क्या चीज़ है। जिनवदेव त्रिलोकनाथ गणधर और इन्द्रों के बीच यह कहते थे। गणधर और इन्द्र एकावतारी, एक भवतारी, उसमें परमात्मा यह कहते थे। वह यह बात है। यह परमात्मप्रकाश है। इस ग्रन्थ का नाम परमात्मप्रकाश है। भगवान परमात्मस्वरूप है। आहाहा! वीतरागी आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी सेवा करना और रागादि का त्याग करना। आहाहा! मूलचन्दभाई!

मन में जानकर... क्या मन में जानकर? कि आत्मा पवित्र शुद्ध वीतरागमूर्ति है, वही सेवनयोग्य, आराधनेयोग्य है और रागादि सब पदार्थ त्यागनेयोग्य है। ऐसा **मन में जानकर...** है? **'समभावे स्थिताः' शान्तभाव में तिष्ठते हैं,...** समभाव अर्थात् वीतरागी आनन्द की दशा में समभाव के गर्भ में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहाहा! उसे समभाव कहते हैं। जिसमें—समभाव में आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का गर्भ पड़ा है। उस आनन्द के वेदन को यहाँ समभाव कहते हैं। आहाहा! यह बात! बात-बात में अन्तर। जयसुखभाई! दुनिया में नहीं कहते? 'आणंदा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे ने एक त्रांबियाना तेर।' एक लाख रुपये में न मिले, ऐसा व्यक्ति... इसी प्रकार यहाँ प्रभु कहते हैं, तेरे और मेरे तत्त्व की दृष्टि में बड़ा अन्तर है। जगत की दृष्टिवन्त और परमात्मा की दृष्टि का बड़ा अन्तर है। आहाहा! समझ में आया?

शान्तभाव में तिष्ठते हैं, और जिनकी लगन निज शुद्धात्मस्वभाव में हुई है,... आहाहा! आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द... आहाहा! उसमें जिसकी लगन लगी। सम्यग्दृष्टि की लगन वहाँ है। समझ में आया? **निज शुद्धात्मस्वभाव में हुई है, वे ही जीव संसार में सुखी हैं।** इस जगत में जो प्राणी आत्मा के आनन्द में लीन है, रत है और दृष्टि में रागादि का त्याग वर्तता है, वे प्राणी जगत में सुखी हैं। कहो, जयसुखभाई! यह तुम सब वकील पाँच-पाँच हजार पैदा करे और आठ-आठ हजार महीने का वेतन हो, दस-दस हजार वेतन हो, वे सब दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। यह तो अभी ऐसा कुछ होगा। वेतन कम किया है? आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि अरबों रुपये एक दिन की पाँच-पाँच लाख की आमदनी हो, दस लाख की आमदनी हो, वह प्राणी दुःखी है। क्योंकि उसकी परवस्तु में ममता है। वह चीज़ मेरी है और मुझे सुख का कारण है। है दुःख का निमित्त। उसमें मानता है कि मुझे सुख का निमित्त है। मिथ्यादृष्टि

मूढ़ दुःखी है। आहाहा! ताराचन्दजी! दो हजार का वेतनवाला और पाँच हजार का वेतनवाला। आहाहा!

यहाँ परमात्मा कहते हैं, जगत में एक सुखी है कि जो आत्मा के आनन्दस्वरूप में जो समभाव से लीन होता है, पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न पड़ता है, वही प्राणी जगत में सुखी है। वीतरागमार्ग में उसे सुखी कहते हैं। अज्ञानी के मार्ग में दुनिया चाहे जो मानो। आहाहा! है? वह **'जगति'** अर्थात् **इस संसार में सुखी है।** अब जरा नय का अधिकार लेते हैं। सूक्ष्म है, थोड़ा ध्यान रखना। भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है।

परमेश्वर सर्वज्ञदेव, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एक समय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए, जिनकी सौ-सौ इन्द्र सेवा करते हैं, तलिया चाटते हैं, वे परमात्मा कौन हैं? भाई! जिनेश्वरदेव, जिनकी सभा में गणधर, इन्द्र, सिंह, बाघ और नाग जंगल में से चले आते हों। सभा में बैठे हों। आहाहा! भगवान विराजते हैं। सीमन्धरप्रभु महाविदेह में अभी विराजते हैं। महावीर भगवान तो मोक्ष पधारे, वे तो सिद्ध हो गये। सीमन्धर भगवान मनुष्यरूप से विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। उनकी वाणी सवेरे, दोपहर, शाम को वाणी निकलती है। ॐ ध्वनि। उसमें से गणधर आदि शास्त्र रचते हैं, उन शास्त्रों में से यह एक शास्त्र है। आहाहा! इसमें भगवान की वाणी में ऐसा आया, प्रभु! आत्मा को तो प्रभु कहते हैं। समझ में आया?

लड़के की माँ झूले में सुलाती है न? तब उसकी महिमा करे। मेरा लड़का चतुर है और होशियार है और अमुक है, ऐसा कहे न? उसके गीत गाये, तब वह सो जाता है। मेरा बेटा चतुर है और पाट पर बैठकर नहाया है। ऐसा आता है। तुम्हारी मारवाड़ी भाषा भी कुछ होगी। महिमा करे तो वह सो जाता है। यहाँ परमात्मा कहते हैं कि तेरी माँ तुझे गीत गाकर सुलाती है, हम तेरे स्वरूप की महिमा करके तुझे जगाते हैं। जाग रे जाग, नाथ! यह उल्टा पड़कर पड़ा है अनादि से। आहाहा! राग के प्रेम में तू दुःखी है। तुझे खबर नहीं। सम्यग्दर्शन क्या कहलाता है, उसकी तुझे खबर नहीं। आहाहा!

सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं कि जो पुण्य-पाप के भाव से हटकर अपने निजात्मा की रुचि-दृष्टि अन्दर करके, जिसे समभाव से शान्ति का वेदन आया है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। समझ में आया? श्रावक तो कहीं रह गये। वह तो बाद में। सम्यग्दर्शन होने

के पश्चात् श्रावक हुआ जाता है। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, श्रावक कहाँ से हो गये? आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, यह सुखी है। अब भावार्थ। जरा सूक्ष्म बात है, ध्यान रखना। यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! जिनवरदेव तीन लोक के नाथ, जिन्हें सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल—तीन लोक पर्याय में ज्ञात हो जाते हैं। ऐसा प्रभु, उसका मार्ग, वह कोई अलौकिक मार्ग है। अब नय घटित करते हैं, भाई! अर्थ तो किया, अब नय घटित करते हैं।

भावार्थ : यद्यपि यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादि काल से कर्मबन्धनकर बँधा है,... निमित्त जड़कर्म है, यह व्यवहार से निमित्त से बँधा हुआ है, ऐसा कहा जाता है। व्यवहारनय अर्थात् निमित्त को व्यवहारनय कहते हैं, अपने स्वभाव को निश्चय कहते हैं। निमित्त जो कर्म है, वह व्यवहारनयकर निमित्त के सम्बन्ध से अनादिकाल से कर्मबन्धन से बँधा हुआ है। हो, **तो भी शुद्धनिश्चयनयकर...** आहाहा! भगवान आत्मा **प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश—इन चार तरह के बन्धनों से रहित है,...** आहाहा! अभी रहित है, हों! कर्म जड़ हैं। आठ कर्म जड़ हैं। और निमित्त है तो व्यवहार कहते हैं। उससे—व्यवहार से बँधा हुआ है, ऐसा कहने में आता है। निश्चय से भगवान आत्मा, प्रकृति—कर्म की प्रकृति, स्थिति, अनुभाग—रस और प्रदेश से भगवान आत्मा तो भिन्न है। आहाहा! अभी, हों! शान्तिभाई! ऐसी बातें है, बापू! आहाहा! दुनिया कहाँ पड़ी है, मार्ग कहाँ रहा है, इसकी दुनिया को कुछ खबर नहीं। आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर... अर्थात् पवित्र सत्य दृष्टि से देखें तो। पवित्र सत्य दृष्टि से देखा जाये तो... समझ में आया? प्रकृति कर्म की, हों! ज्ञानावरणी आदि प्रकृति है न? स्थिति (अर्थात्) अवधि होती है न? ३३ सागर आदि। अनुभाग (अर्थात्) कर्म में रस देने की शक्ति और प्रदेश (अर्थात्) परमाणुओं की संख्या। **इन चार तरह के बन्धनों से रहित है,...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि बन्धनरहित आत्मा को मानता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि, बन्ध निमित्त से है, ऐसा ज्ञान करता है। आदरणीय में तो कर्मरहित (आत्मा को ही मानता है)। आहाहा! **इन चार तरह के बन्धनों से रहित है,...** उसे वह स्वीकार करता है। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट भगवान आत्मा कर्म से और राग से वह बँधा नहीं। वस्तुस्थिति अन्दर चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' 'चेतनरूप

अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' चेतनरूप—जागृतरूप, चेतनारूप। अनूप—जिसे उपमा नहीं। अमूरत—जिसमें रूप, रंग, स्पर्श नहीं। 'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मेरा पद तो सिद्ध समान त्रिकाल है। सम्यग्दृष्टि अपने सिद्ध स्वभाव को आत्मा मानता है। आहाहा! अब ऐसी बातें! वह दया पालने का कहे, व्रत करने का कहे, अपवास (करने का कहे) तो समझ में भी आये। उसमें क्या समझना था? अज्ञान है अनादि से। आहाहा! समझ में आया? वह तो राग की क्रिया है। उसमें क्या समझना था? वह तो अनादि से करता आया है। आहाहा! समझ में आया?

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

मुनिव्रत धारण किया, नग्न दिगम्बर (होकर) अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, पंच महाव्रत लिये, हजारों रानियों का त्याग किया, ऐसे पंच महाव्रत... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' स्वर्ग में ग्रैवेयक है। नौ पासडा है गला-ग्रीवा के स्थान पर। यह लोक—ब्रह्माण्ड भगवान ने खड़े पुरुष के आकार लोक को देखा है। उसमें ग्रीवा के स्थान में ग्रैवेयक देव है। वहाँ मुनिव्रत धारण करके, पंच महाव्रत पालकर अनन्त बार उत्पन्न हुआ, परन्तु रागरहित मेरी चीज़ क्या है, उसका सम्यग्दर्शन नहीं किया। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' यह महाव्रतधारी भी दुःखी है। आहाहा! यह बातें वह... यह रागरहित प्रभु आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसका आत्मज्ञान किया नहीं तो वह सुखी हुआ नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! नये लोगों को तो ऐसा लगे, यह क्या कहते हैं? यह जिनवर का वीतरागमार्ग होगा? ऐसा लगे। क्योंकि प्रथा पूरी सब बदल गयी। वीतराग त्रिलोकनाथ का मूल मार्ग है, वह सब बदल डाला। आहाहा!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, कर्म का जड़ का निमित्तरूप से व्यवहाररूप से सम्बन्ध हो, (वह) जाननेयोग्य है। परन्तु अन्दर आत्मा कर्म से रहित है। कर्म की प्रकृति, स्थिति से रहित है। वह आत्मा आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? **यद्यपि अशुद्धनिश्चयनय से अपने उपार्जन किये शुभ-अशुभकर्म के फल का भोक्ता है,...** क्या कहते हैं? अशुद्धनिश्चय से पर्याय में अपनी दशा में **अशुद्धनिश्चयनय से अपने उपार्जन किये शुभ-अशुभकर्म के फल का भोक्ता है,...** अर्थात् राग का भोक्ता है, वह

अशुद्धनिश्चयनय से है। समझ में आया? लक्ष्मी या स्त्री, परिवार और देव-गुरु-शास्त्र के प्रति का जो राग, वह अशुद्धनिश्चय से इसकी पर्याय में है और उसका यह भोक्ता अशुद्धनिश्चय से है। आहाहा! राग का भोक्ता, हों! पैसे का और स्त्री का भोक्ता तो आत्मा है ही नहीं। क्योंकि वह तो परवस्तु जड़ है, मिट्टी है—धूल है। स्त्री का शरीर भी माँस, हड्डियाँ और चमड़े का पुद्गल है, वह तो जड़-मिट्टी है। उसका भोक्ता अज्ञानी भी नहीं। अज्ञानी उसके प्रति प्रेम करके राग को भोगता है तो 'मैं पर को भोगता हूँ'—ऐसा अज्ञानी मानता है। समझ में आया? आहाहा! बात-बात में अन्तर। अज्ञानी भी स्त्री के शरीर को भोगता नहीं, लक्ष्मी को भोगता नहीं, लड्डू को भोगता नहीं। वे तो परवस्तुएँ हैं। भोक्ता तो अशुद्धनिश्चयनय से उनके प्रति प्रेम करके राग उत्पन्न होता है, उस राग का भोक्ता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : .... भोक्ता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ का भोक्ता क्या (हो)? जड़ रूपी है, आत्मा तो अरूपी है। जड़ को कभी स्पर्श भी नहीं करता। जड़ को आत्मा कभी छूता नहीं। अशुद्धनिश्चयनय से राग को स्पर्श करता है। आहाहा! बात में बहुत अन्तर है। मानो मार्ग कोई नया होगा, ऐसा लगे। प्रभु का अनादि का मार्ग यह है। समझ में आया? यह कहते हैं।

अशुद्धनिश्चयनय से अपने उपार्जन किये शुभ-अशुभ कर्म के फल का... यहाँ राग-द्वेष लेना। उसका अज्ञानी भोक्ता है। आहाहा! **तो भी शुद्धद्रव्यार्थिकनय से...** देखो! अब धर्मीजीव किसे भोगता है? शुद्धद्रव्यार्थिकनय (अर्थात्) शुद्ध द्रव्य का (जिसे) प्रयोजन है। त्रिकाली शुद्ध चैतन्य भगवान से जिस नय का प्रयोजन है, वह शुद्ध को देखने का है, ऐसे **निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न हुए...** देखा! शुद्धात्मतत्त्व का भोग नहीं। अज्ञानी राग को भोगता है, अशुद्धनिश्चय से। ज्ञानी द्रव्य को भोगता नहीं। परन्तु वस्तु जो है, उसकी एकाग्रता होकर—भगवान आत्मा में भावना—एकाग्रता होकर—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, आनन्द हुआ, उसका वह भोक्ता है।

जैसे अज्ञानी परद्रव्य को भोगता नहीं, वह राग और द्वेष का भोक्ता है। उसी प्रकार ज्ञानी स्वद्रव्य का भोक्ता नहीं। भोक्ता तो स्वद्रव्य की एकाग्रता से उत्पन्न हुए अतीन्द्रिय आनन्द, सम्यग्दर्शन आदि का भोक्ता है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो

सादी है, भाई! वस्तु तो जैसी है, वैसी है। आहाहा! क्या हो? मार्ग ही दूसरा है। अरे! दुनिया की अटपटी में उलझकर मनुष्य ऐसा का ऐसा मर जाता है। आहाहा! धर्म के बहाने भी शुभ की क्रियायें, भक्ति, यात्रा, पूजा, व्रत, तप के शुभभाव को लोग धर्म मानते हैं।

कहते हैं कि धर्म का भोग किसे है? सम्यग्दृष्टि को क्या (भोग है)? जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा पवित्र है, उसकी भावना—उसमें एकाग्र होकर जो आनन्द उत्पन्न हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उत्पन्न हुए, उसका वह भोक्ता है। अज्ञानी परद्रव्य का भोक्ता नहीं, राग-द्वेष का भोक्ता है। ज्ञानी स्वद्रव्य त्रिकाल का भोक्ता नहीं, परन्तु उसमें एकाग्र होकर आनन्द (प्रगट हुआ), उस आनन्ददशा का भोक्ता है। आहाहा! शैली तो देखो! शैली। परमात्मा वीतरागदेव (कहते हैं) वह बात कहीं नहीं है। वीतराग के अतिरिक्त कहीं नहीं है। सत्य का एक अंश भी नहीं। आहाहा! और यह मार्ग समझना महाकठिन पड़े। आहाहा! क्या कहा? देखो!

शुद्धद्रव्यार्थिकनय से निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न हुए... क्या? **वीतराग परमानन्द एक सुखरूप अमृत...** यहाँ ऐसा चाहिए, भाई! वहाँ 'एक' (शब्द) डालना चाहिए। एक चाहिए। अन्दर 'एक' शब्द है। आहाहा! भगवान आत्मा शरीर से तो भिन्न, कर्म से भिन्न—पृथक् और पुण्य-पाप के भाव से भी भिन्न है। आहाहा! यहाँ तो एक समय की (पर्याय से भी भिन्न है)। शुद्धद्रव्यार्थिकनय से... आहाहा! पवित्र आत्मा जो पूर्णानन्द का नाथ है, उसकी दृष्टि करनेवाले नय से देखें तो **निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना से उत्पन्न...** भगवान निज शुद्धात्म वस्तु त्रिकाली की एकाग्रता से उत्पन्न हुए **वीतराग परमानन्द एक सुखरूप अमृत...** आहाहा! वीतराग परमानन्द अतीन्द्रिय परमानन्द का ज्ञानी भोक्ता है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें।

वीतराग परमानन्द एक सुखरूप अमृत का ही भोगनेवाला है,... आहाहा! राग है, उतना दुःख है, परन्तु वह गौणरूप से है। समझ में आया? आहाहा! भोक्ता भी अलग प्रकार। अज्ञानी राग-द्वेष, पुण्य-पाप के विकल्प की जो वृत्ति उठती है, उसे भोगता है। धर्मी शुद्धात्मतत्त्व की एकाग्रता से उत्पन्न हुए परमानन्द एक स्वभाव सुख को भोगता है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान आत्मा है। जो भगवान केवली को

आनन्द उत्पन्न होता है, सर्वज्ञ परमेश्वर को अनन्त (है, वह) आनन्द आया कहाँ से? अध्धर से—बाहर से आया है? आत्मा में अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। वह शक्तिरूप से था, वह व्यक्तरूप हुआ। परमात्मा को प्रगट हुआ। आहाहा! उस परमानन्द का अंश धर्मी जीव को शुद्ध आत्मा की एकाग्रता से (प्रगट हुआ है)। भावना कहो, एकाग्रता कहो। भावना अर्थात् यों ही भाव (विकल्प) नहीं, अन्दर एकाग्रता। आहाहा! उससे उत्पन्न हुए **वीतराग परमानन्द एक सुखरूप अमृत का ही भोगनेवाला है,...** आहाहा! वह धर्मी सुख का भोक्ता है। अज्ञानी राग-द्वेष और दुःख का भोक्ता है। आहाहा! जयसुखभाई! ऐसा तो कभी सुना न हो। इसे तो प्रेम है। इसे तो प्रेम हो गया है। लड़के को थोड़ा था, उसमें यह बढ़ गये। आहाहा!

यह तो बापू! आत्मा की चीज़ है, भाई! अनादि जन्म-मरण में गोते खाकर मर गया है। दुःखी हो-होकर कीड़े, कौवे के, हाथी के, चींटी के भव कर-करके (मरा गया)। नरक के, निगोद के... क्या कहलाता है? लहसुन, प्याज के एक टुकड़े में असंख्य शरीर, एक शरीर में अनन्त जीव। यह लहसुन, प्याज। वहाँ अनन्त बार रहा है, प्रभु! तू वहाँ। तुझे खबर नहीं। यहाँ बाहर जरा शरीर ठीक मिला और कुछ पाँच-पचास लाख पैसे मिले और धूल मिली हो, वहाँ हम सुखी हैं। धूल भी नहीं, सुन न! पागल है। पागल है, पागल। आहाहा!

तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ वीतराग की सभा में तो करोड़ों मनुष्य, करोड़ों देव (आते हैं)। भगवान विराजते हैं, अभी सभा में महाविदेह में साक्षात् बीस तीर्थंकर विराजते हैं। विद्यमान बीस तीर्थंकर, सुना है न? विराजते हैं। मनुष्यरूप से, हों! यह महावीर आदि तो णमो सिद्धाणं में—सिद्ध में चले गये। यह तो णमो अरिहंताणं में है—अभी शरीरसहित है, वाणी निकलती है। आहाहा! यह भगवान ऐसा कहते हैं कि मार्ग यह है, बापू! भरत में हो या ऐरावत में हो या महाविदेह में हो, धर्म तो सर्वत्र एक प्रकार का है। दूसरे प्रकार का धर्म होता नहीं। आहाहा!

यहाँ (कहा), **भोगनेवाला है,...** दो बातें हुईं। दो हुईं न? **यद्यपि व्यवहारनय से कर्मों के क्षय होने के बाद मोक्ष का पात्र है,...** मोक्ष का पात्र अर्थात् पर्याय में तब मोक्ष होता है। **व्यवहारनय से कर्मों के क्षय होने के बाद...** मोक्षपर्याय होती है। **तो भी...**

आहाहा! अब यह (कहते हैं), **शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सदा मुक्त ही है,...** आहाहा! भगवान स्वभाव शुद्ध परमपारिणामिक सहज भाव। भाषा भी कभी सुनी न हो। **शुद्ध पारिणामिक परमभावग्राहक...** शुद्ध स्वभाव जो ध्रुव त्रिकाल, वह परमपारिणामिकभाव **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सदा मुक्त ही है,...** प्रभु! आत्मा है, वह बन्ध में आया ही नहीं। बन्ध और मुक्ति तो पर्याय में होती है। आहाहा! भगवान वस्तु है, वह तो सदा त्रिकाल मुक्त ही है। अबद्धस्पृष्ट कहा न?

जैनशासन किसने देखा? कि जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, सामान्य, विशेषरहित— ऐसे अभेद को अन्दर देखे, माने, अनुभव करे, उसने जैनशासन देखा। १४-१५ गाथा, समयसार। आहाहा! तो अबद्ध कहो या मुक्त कहो। आहाहा! अभी आत्मा मुक्तस्वरूप है, ऐसा कहते हैं। कर्म के सम्बन्ध का बन्ध और अभाव की मुक्ति, वह दोनों जिसमें नहीं। वह तो त्रिकाल मुक्तस्वरूप है। आहाहा! शुद्ध पारिणामिक, पारिणामिक अर्थात् सहज। जिसे किसी पर की अपेक्षा नहीं। परमभाव, ऐसे परमभाव को जाननेवाले **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से सदा मुक्त ही है,...** प्रभु! आहाहा! 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' बनारसीदास कहते हैं, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मेरा त्रिकाल पद तो सिद्ध समान है। आहाहा! पर्याय में राग का सम्बन्ध है और पर्याय में मुक्ति है। वस्तु तो मुक्तस्वरूप है। आहाहा! कितनी बात इसमें याद रखना? सब बात नयी लगे। एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चौइन्द्रिया, पंचेन्द्रिया अभिहया वतीया जीवियाओ मिच्छामि दुक्कडम्, लो। यह बात तो इसमें कहीं आयी नहीं। तस्सउत्तरीकरणेणं करे, लो न! उसमें आता है न, तावकाय ठाणेणं माणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसीरामि, वह तो सब राग की क्रिया की बातें हैं, बापू! तुझे खबर नहीं। आहाहा!

भगवान तो राग से मुक्त त्रिकाल है, ऐसा कहते हैं। मोक्ष की पर्याय है... यह तो पहले कहा, वह व्यवहारनय से है। कर्म के क्षय होने से मोक्षपर्याय होती है, वह तो व्यवहार, पर्याय है। आहाहा! मोक्ष जो सिद्ध है, वह तो एक पर्याय है। जीव का एक पर्याय का वेश है। वस्तु तो त्रिकाल मुक्त है। आहाहा! समझ में आया? मुक्तस्वरूप है तो उसमें से मुक्ति की पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! सूक्ष्म पड़े। साधारण ने जिसने सुना न हो न! परन्तु मार्ग तो यह है, प्रभु! अनन्त तीर्थंकर जिनवरदेवों ने मार्ग तो यह

कहा है। शान्तिभाई! यह सब सुना न हो। शान्तिभाई को कहता हूँ। वहाँ सामने होकर फिरते जहाँ-तहाँ। यह भी सच्चा है और यह भी सच्चा है। यह तो कहते हैं, यह एक ही सच्चा है, दूसरा सच्चा नहीं। दूसरा सत्य है नहीं। थोड़ी-थोड़ी गुजराती आ जाती है। भाई ने फिर हिन्दी का कहा है। कल भी हिन्दी आये थे, हों! आगरा के पचास लोग आये थे। कल हिन्दी में हुआ था। लोग आते हैं न? यात्रा के लिए निकलते हैं। पालीताणा, गिरनार आवे तो यहाँ देखने के लिये उतरते हैं।

यह तो देखने की वस्तु हो गयी न! यह एक मकान (परमागम मन्दिर) २६ लाख का है। संगमरमर। और यह भगवान की वाणी उत्कीर्ण है। पौने चार लाख अक्षर हैं। पूरे हिन्दुस्तान में पहला-पहला (हुआ है)। क्योंकि मशीन से उत्कीर्ण है। हिन्दुस्तान में मशीन भी कभी आयी नहीं थी। इटली से यहाँ मशीन आयी है। यहाँ मशीन है। उससे पौने चार लाख अक्षर पाँच महीने में उत्कीर्ण हो गये। हाथ से लिखे तो दो वर्ष हों। ऐसे अक्षर हाथ से नहीं होते। यह तो एकधारा अक्षर है। जिनवाणी... जिनवाणी। यह वीतराग वाणी है। आहाहा! 'सुधासम धर्म साधनी धर्मशाला...' यह धर्मशाला है। भगवान की वाणी के गोदाम में बैठे हैं। आहाहा! माता की गोद में बैठते हैं न! उसी प्रकार इस जिनवाणी की गोद में हैं। आहाहा! चारों ओर है। नीचे, ऊपर। आहाहा! सहज बन गया, कौन करे? यह मकान-बकान आत्मा कर नहीं सकता, हों! परद्रव्य की पर्याय तीन काल में आत्मा कर नहीं सकता। उसके कारण से जन्मक्षण से पर्याय की उत्पत्ति का काल है तो हो गया है। आत्मा क्या किसी पर को कर सकता है? आहाहा! कठिन लगे। शुभराग हो। परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : शुभराग से कहाँ होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग से कहाँ होता है? अपने आप होता है। राग से हो तो रामजीभाई को बहुत भाव था। यह तो होनेवाला हो, वह हुआ है न! आहाहा!

सदा मुक्त है। ऐ... देवीलालजी! कौन? यह अन्दर भगवान आत्मा। रत्न, चैतन्यरत्न। जैसे डिब्बी में (रत्न) भिन्न है। डब्बा कहते हैं न? डिब्बी भिन्न है। इसी प्रकार शरीररूपी डिब्बी और रागरूपी विकार से अन्दर भगवान भिन्न है। आहाहा! शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से देखे तो भगवान तो मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव को

मुक्तस्वरूप देखता है। आहाहा! अबद्धस्वरूप देखता है, (ऐसा कहो) या मुक्तस्वरूप देखता है, (ऐसा कहो), वह जैनशासन है। आहाहा! यह जैनशासन दूसरी चीज़ है, अलौकिक चीज़ है, बापू! आहाहा! जैनधर्म के अतिरिक्त, जैनशासन के अतिरिक्त यह बात कहीं नहीं है। सत्य बात है, इसकी इसके सम्प्रदाय को खबर नहीं तो दूसरे में तो है ही कहाँ? आहाहा! वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में आत्मा मुक्तस्वरूप सदा देखा है। आहाहा!

यद्यपि व्यवहारनयकर इन्द्रियजनित मति आदि क्षयोपशमिकज्ञान... है। मति आदि क्षयोपशम है न? ज्ञान की पर्याय में विकास है न? मति आदि, श्रुत आदि। **चक्षु आदि दर्शन सहित है...** यह चक्षु से देखना। अन्दर पर्याय में, हों! पर्याय। **तो भी निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,...** आहाहा! भगवान तो अन्दर केवल-अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, स्वरूप की गाँठ है। आहाहा! उसे खोले तो केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट होता है। व्यवहारनय से यह मति, श्रुत जो ज्ञान के विकास का अंश दिखता है, वह तो व्यवहारनय से है। आहाहा! पर्याय है न? निश्चय से तो भगवान केवलज्ञान और केवलदर्शन की मूर्ति है। केवलज्ञान पर्याय नहीं। भगवान अरिहन्त को जो केवलज्ञान है, वह तो पर्याय है। यह तो केवलज्ञान, दर्शन त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

सकल विमल... आहाहा! पूर्ण निर्मल केवलज्ञान, केवलदर्शन स्वभाववाला, ऐसा कहा। केवलज्ञान, दर्शन स्वभाववाला भगवान है। आहाहा! जैसे शक्कर का स्वभाव मिठास है, वैसे ही आत्मा का स्वभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन है। आहाहा! समझ में आया? यह वस्तु क्या है, वह कभी सुना नहीं, नजर नहीं की। जगत की मजदूरी कर-करके मर गया और धर्म के नाम से भी व्रत, भक्ति और पूजा यह राग की मजदूरी है। ताराचन्दजी! आहाहा! परन्तु भगवान तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं कि तेरी चीज़ है, वह अन्दर मुक्तस्वरूप ही है। पर्याय में बन्धन है, पर्याय से मुक्ति होती है, परन्तु द्रव्य को मुक्ति कहना, यह नहीं, वह तो मुक्तस्वरूप ही त्रिकाल है। बँधा ही नहीं तो फिर मुक्त कहाँ से होगा? आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि का विषय—ध्येय मुक्तस्वरूप परमात्मा के प्रति—आत्मा के प्रति है। परमात्मा कहो या आत्मा कहो।

आहाहा! थोड़े पाँच-पचास हजार एक दिन में मिल जाये, कमाये तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। लापसी का रांधण करो। लापसी कहते हैं ? क्या कहते हैं ? कहो, इतने में तेरी फिसलन।

मुमुक्षु : हलुवा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शीरा को हलुवा कहते हैं। कंसार कहे, कंसार। नहीं ? तुम्हारे कंसार कहते हैं ? लापसी कहते हैं। लापसी रखो, आज पचास हजार पैदा हुए हैं। तुझे क्या हुआ ? तुझे तो दुःख हुआ। यह पैसे मुझे मिले, यह ममता हुई तो उस ममता में तो तुझे दुःख हुआ।

मुमुक्षु : दुःख के कारण से सुखी होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है मूढ़। वहाँ कहाँ सुख था। आहाहा! बात तो ऐसी है, प्रभु! यह तो वीतरागमार्ग, बापू! जिनेश्वरदेव, जिन्होंने चक्रवर्तीपद छोड़कर शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीनों चक्रवर्ती थे। तीनों तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, कामदेव थे। कामदेव अर्थात् उनके जैसा रूप ढाई द्वीप में नहीं था, ऐसा जिनका रूप। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीन। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव तीन पदवियाँ थीं। आहाहा! यह ९६-९६ हजार स्त्री, एक (मुख्य) स्त्री की हजार देव सेवा करे। एक स्त्री ऐसी बड़ी रत्न (जैसी हो)। (जैसे) कफ छोड़ते हैं, वैसे छोड़ दिया। यह चीज़ मेरी नहीं। मेरी (चीज़) मेरे पास है। आहाहा! मैं तो मेरे पास जाता हूँ। आहाहा!

यह प्रवचनसार में आता है, मुनि दीक्षा लेते हैं। सच्चे मुनि, हों! मुनि तो अभी सम्यग्दर्शन हो, पश्चात् मुनिपना आता है। अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना न हो। सम्यग्दृष्टि है, आत्मा का अनुभव है। पश्चात् दीक्षा लेने निकलते हैं, तब स्त्री को कहते हैं—हे शरीर को रमानेवाली स्त्री! शरीर को रमानेवाली, मुझे रमानेवाली नहीं। आज्ञा दे। मैं मेरी अनुभूति अनादि की है, अन्दर है, उसके पास जाता हूँ। मेरी आनन्द की अनुभूति अन्दर में है, उसके पास मैं जाता हूँ। आहाहा! यह मोक्ष अन्दर पड़ा है, मेरी अनुभूति के पास मैं जाता हूँ।

माता-पिता को ऐसा कहे, माता-पिता शरीर के जनक! शरीर के जनक, जनक—

पिता। मेरे जनक नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। आहाहा! एक बार आज्ञा दे, माँ! मैं मेरा आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा के पास मैं जाता हूँ। आहा! आहाहा! ऐसा जो मुक्तस्वभाव, उसके पास जाने के लिये आज्ञा माँगते हैं। माता! अब फिर से मैं माता नहीं करूँगा, माता! एक बार रोना हो तो रो ले, परन्तु हम तो हमारे आत्मा के आनन्द में चले जायेंगे। फिर से जननी-माता मैं नहीं करूँगा। हम तो मुक्ति में जायेंगे। आहाहा! यह चक्रवर्ती का राज छोड़कर अकेले वन में चले जाते हैं।

यह यहाँ कहते हैं, उस मुक्तस्वरूप को प्राप्त करने के लिये। आहाहा! **केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,...** आहाहा! भगवान तो पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन स्वभाव का पिण्ड है। आहाहा! यह शकरकन्द का दृष्टान्त नहीं दिया था? शक्करिया-शकरकन्द। शकरकन्द है न? उसकी थोड़ी लाल छाल है। इसके अतिरिक्त पूरा शकरकन्द है। शकरकन्द अर्थात् शक्कर की मिठास का पिण्ड। यह शकरकन्द नहीं आता? लोग खाते हैं न? वैष्णव लोग शिवरात्रि में बाफकर खाते हैं। उस शकरकन्द की ऊपर की लाल छाल है, उसे न देखो तो पूरी चीज़ शकरकन्द है। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड है। उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप के विकल्प की छाल न देखो तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड आत्मा तो है। आहाहा! परन्तु कैसे बैठे? यह शकरकन्द का बैठे, परन्तु यह इसे नहीं बैठता। समझ में आया?

तीन लोक का नाथ आनन्द और ज्ञान से पूर्ण भरपूर प्रभु स्वयं है। आहाहा! स्वयं आप है। निश्चय से तो यह है। आहाहा! फिर प्रदेश की व्याख्या थोड़ी करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १, रविवार
दिनांक-०७-११-१९७६, गाथा-४३, ४४, प्रवचन-१२६

यह परमात्माप्रकाश चलता है। ४३ गाथा है। क्या कहते हैं? पाठ तो ऐसा है, '**तत्तातत्तु मुणेवि**' भगवान आत्मतत्त्व क्या है और रागादि परतत्त्व क्या है? दोनों को जानकर आत्मा में लीन होना, वह धर्म है। पाठ है न? '**तत्तातत्तु मुणेवि मणि जे थक्का सम-भावि। ते पर सुहिया इत्थु**' जो आतमा आनन्दस्वरूप चैतन्यस्वभाव केवलज्ञान, केवलदर्शन उसका स्वभाव है। केवलज्ञान जो केवली परमात्मा को होता है, वह तो पर्याय-अवस्था है। यहाँ तक आया है, देखो!

निश्चयनय से सकल विमल केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है,... अन्दर बीच में आया है। है? यह आत्मा पर्याय और वर्तमान अवस्था से देखो तो इन्द्रियजनित क्षयोपशमज्ञान है, परन्तु उसका त्रिकाली स्वभाव देखो तो एक ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु है। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वरूप है। वह दृष्टि में लेने योग्य है। समझ में आया? वर्तमान पर्याय में... यहाँ आया है। **इन्द्रियजनित मति आदि क्षयोपशमिक ज्ञान तथा चक्षु आदि...** है। चक्षुदर्शन आदि। पर्याय में-वर्तमान हालत में। परन्तु **तो भी निश्चयनय से...** देखो, अन्तर भगवान आत्मा का स्वरूप नित्यानन्द प्रभु, वह केवलज्ञान और केवलदर्शन स्वभाववाला है। आहा! यह आत्मा ऐसा है। पर्याय में मतिज्ञानादि है। स्वभाव में अकेला ज्ञान, दर्शन से परिपूर्ण प्रभु है। इस पर्याय की दृष्टि छोड़कर... सूक्ष्म बात है, भाई! यह ज्ञान, दर्शन, आनन्दस्वरूप आत्मा है, उसमें दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी—धर्म की शुरुआत यहाँ से होती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

देहादि, वाणी आदि, वह तो पर है। अरे! उसमें जो दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, वह पुण्य है, वह भी पर है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के भाव होते हैं, वह पाप है। उस पुण्य-पाप से रहित, वर्तमान पर्याय से भी रहित,... आहाहा! केवलज्ञान, केवलदर्शन (स्वरूप है)। केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, एकरूप ज्ञान, एकरूप दर्शन, वह परमात्मप्रकाश का स्वभाव है। आहाहा! उस पर दृष्टि करना और पर्याय तथा

परद्रव्य को जानना, जानकर उनका लक्ष्य छोड़कर निज स्वरूप में रहना, दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। पश्चात् स्वरूप में लीन होना, वह चारित्र है। चारित्र कोई नग्नपना या पंच महाव्रत का भाव, वह चारित्र नहीं है। आहाहा! वह तो राग है, आस्रव है। समझ में आया?

भगवान आत्मा देह से भिन्न, कर्म से भिन्न—पृथक्, पुण्य-पाप के भाव से भिन्न और वर्तमान पर्याय में मतिज्ञानादि अल्प ज्ञान है, उससे भी भिन्न... आहाहा! ऐसे तत्त्व को जानकर और रागादि सब अजीवतत्त्व है, पर है—ऐसा जानकर, अपने में दृष्टि लगाना और अपने में स्थिर होना, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तक आया है।

यद्यपि व्यवहारनयकर यह जीव नामकर्म से प्राप्त देहप्रमाण है,... व्यवहार से देखो तो इस शरीरप्रमाण भगवान आत्मा है। **तो भी निश्चयनय से लोकाकाशप्रमाण असंख्यप्रदेशी है,...** आहाहा! इसकी खबर नहीं होती। आत्मा के असंख्य प्रदेश हैं। जैसे सोने की साँकल होती है न? साँकल कहते हैं? चैन। उसमें हजार मकोड़ा हो न? हजार। उसी प्रकार आत्मा में असंख्य प्रदेश हैं। चैन पूरी है, उसी प्रकार आत्मा। साँकल-चैन, उसके मकोड़ा होते हैं, वैसे आत्मा के प्रदेश हैं। असंख्य प्रदेशी आत्मा है। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं हैं। आहाहा! असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा निश्चय से तो वह असंख्य प्रदेशी है। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, इतने उसके प्रदेश हैं। व्यवहार से देहप्रमाण रहता है। परन्तु उस देहप्रमाण की दृष्टि छोड़कर, असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द पड़ा है... आहाहा! उसके ऊपर दृष्टि लगाना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

व्यवहारनय से प्रदेशों के संकोच-विस्तार सहित है,... यह असंख्य प्रदेश हैं न, इनका संकोच-विस्तार (होता है)। एक हजार योजन का मच्छ, उसमें आत्मप्रदेश विस्तार पाते हैं और एक अंगुल के असंख्य भाग में जब रहता है, (तब संकोच पाते हैं)। लहसुन, प्याज... डुंगळी समझे? प्याज। उसका एक राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर में अनन्तगुणे जीव हैं। तो उस प्रदेश का संकोच हुआ और विस्तार हुआ तो हजार योजन का मच्छ हो, इतना विस्तार हो जाता है

और समुद्घात करे तो लोक प्रमाण-लोक प्रमाण हो जाता है। इतने असंख्य प्रदेश हैं। अभी आत्मा किसे कहना, इसकी खबर न हो, उसका क्या क्षेत्र क्या? उसका भाव क्या? उसका द्रव्य क्या? आहाहा! समझ में आया? आज तो तुम्हारी हिन्दी चली। हिन्दी लोग आये हैं न!

यह आत्मा... यह देह तो मिट्टी-धूल अजीवतत्त्व है और अन्दर पुण्य-पाप के भाव भी आस्रवतत्त्व है और अन्दर जो मतिज्ञानादि की जो ज्ञान की अल्प पर्याय है, वह तो वर्तमान जितनी व्यवहार है। आहाहा! परन्तु उसका त्रिकाली स्वभाव अतीन्द्रिय आनन्द है। उस समभाव में जब समताभाव प्रगट होता है, पुण्य-पाप से रहित समकित का भाव (प्रगट होता है), वह समताभाव है, उस समताभाव में अतीन्द्रिय आनन्द का गर्भ में अनुभव है। आहाहा! समझ में आया? उसे समता कहते हैं। जिसमें आत्मा का वीतरागी स्वभाव और अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव, उसकी पर्याय में समभाव में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आना चाहिए। समझ में आया? ऐसे समभाव... समभाव करे, वह समभाव नहीं है।

समभाव तो पुण्य-पाप के भाव से भिन्न पड़कर अन्दर केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्णानन्द स्वरूप में जहाँ एकाग्र होता है तो उस समभाव में (आनन्द का अनुभव होता है)। पुण्य-पाप के भाव वे विषमभाव हैं। उनसे रहित जब समभाव हुआ तो अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद उसमें आता है। उसे वीतरागी पर्याय और सम्यग्दर्शन पर्याय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वैसे तो अनन्त बार, 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। यह कहाँ पड़ी है। दरकार (कहाँ है)? मुनिव्रत धार—अनन्त बार मुनिव्रत धारण किया। वह तो पुण्यभाव है, शुभभाव है, आस्रव है। मुनिव्रत—पंच महाव्रत आदि व्यवहार मुनिधर्म, वह आस्रव है। आहाहा!

मुमुक्षु : क्या भूल रह गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भूल—आत्मा क्या है, उसका ज्ञान नहीं किया। एक आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायो। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन...' आत्मा अन्दर चीज़ क्या है, भगवानस्वरूप (उसे जाना नहीं।)। परमात्मप्रकाश है न! परमात्मस्वरूप ही उसका है। उसकी दृष्टि और उसका अनुभव

नहीं किया। उसका ज्ञान नहीं किया तो उसे चौरासी लाख के अवतार मिटे नहीं। अनन्त बार द्रव्यलिंगी साधु हुआ परन्तु आत्माान बिना। यह आत्मज्ञान अर्थात् अनुभव। आहाहा! पुण्य-पाप का अनुभव है, वह तो दुःख का अनुभव है। समझ में आया? उससे रहित भगवान आत्मा का अनुभव, वस्तु की दृष्टि करके जिस पर्याय में अनुभव होता है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म की पहली सीढ़ी कहते हैं। आहा! बात ऐसी है, बापू! समझ में आया? यह यात्रा, भक्ति और पूजा, यह सब शुभभाव है, यह तो पुण्य है। अशुभ से बचने के लिये यह भाव आते हैं। धर्म नहीं। धर्म तो यह। (वीतरागभाव है)। आहाहा!

असंख्य प्रदेश में दृष्टि करना। असंख्य प्रदेशी वस्तु है, उसमें अनन्त-अनन्त गुण का वास है। आहाहा! अपना देश वह है। असंख्य प्रदेश आत्मा का स्व-देश है। यह काठियावाड़ और गुजरात और मारवाड़, वह कहीं आत्मा का देश नहीं। आहाहा! समझ में आया? असंख्य प्रदेश हैं। असंख्य... असंख्य। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने एक जीव के प्रदेश हैं। प्रत्येक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। कल्याणजीभाई! आहाहा! वह यहाँ कहते हैं।

व्यवहारनय से संकोच-विस्तार होता है। **तो भी सिद्ध-अवस्था में संकोच विस्तार से...** रहित है। भगवान सिद्ध तो वहाँ असंख्य प्रदेश में स्थिर हुए हैं। फिर संकोच-विस्तार नहीं होता। मूल चीज़ तो यह है। **चरमशरीरप्रमाण प्रदेशवाला है, और यद्यपि पर्यायार्थिकनय से...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा पर्याय अर्थात् भेददृष्टि से देखो तो उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित है। आहाहा! तत्त्वार्थसूत्र में आता है न? 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्'। उमास्वामी (रचित) तत्त्वार्थसूत्र दसलक्षणी पर्व में चलता है न? उसमें 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' (और) 'सत् द्रव्य लक्षणं' (आता है)। उन तीन को जानना, वह तो पर्यायनय का विषय है। नयी अवस्था उत्पन्न होती है, पुरानी अवस्था का व्यय होता है, ध्रुव, ध्रुव रहता है। आहाहा! इन तीन को देखना, वह पर्यायनय का विषय है। आहाहा! व्यवहारनय से तीन भेद हैं। इस आत्मा के, हों! यह शरीर, वाणी, मन, वह तो जड़-पर है। वह अतत्त्व है। अर्थात् यह तत्त्व नहीं, वह परतत्त्व में जाता है। पुण्य परिणाम, वह परतत्त्व में जाता है। पुण्य तत्त्व में जाता है।

भगवान आत्मा... आहाहा! उत्पाद-व्यय-ध्रुवसहित... आहाहा! उसमें भी कल रात्रि में कहा था कि जो उत्पाद-पर्याय आत्मा में होती है, उसे पूर्व के व्यय की अपेक्षा नहीं है और राग का व्यय होता है, उसे उत्पाद की अपेक्षा नहीं है और ध्रुव है, उसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग। जयसुखभाई! यह सब लॉजिक से तो आता है। आहाहा! इसे खबर नहीं। इसने बाहर के क्रियाकाण्ड अनन्त बार किये। पूजा, भक्ति, व्रत, तप, अपवास, वह सब क्रिया राग की क्रिया है, वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि उत्पाद, व्यय और ध्रुव। आहाहा! जिस समय में नयी पर्याय उत्पन्न होती है, उसे उत्पाद कहते हैं और उसी समय में उत्पाद होता है, आगे-पीछे नहीं। जिस समय में जो उत्पाद होनेवाला है, वह उसी समय में उत्पाद होता है। जैसे कि उत्पाद में राग का उत्पन्न होना। तो राग का उत्पन्न होने का काल ही वह है। और पूर्व के राग का व्यय होता है और ध्रुव चीज़ कायम रहती है। इन तीनों को देखना वह तो पर्यायनय-व्यवहारनय का विषय है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमाण का विषय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भेद है न! तीन अंश गिनना है। यहाँ तो पर्यायनय का विषय लेना है। तीन भिन्न हैं न।

पर्यायार्थिकनय से उत्पाद व्यय ध्रौव्यकर सहित है,... यह पर्याय है। प्रमाण का ज्ञान तो ध्रुव का ज्ञान और उत्पाद-व्यय का ज्ञान, वह प्रमाण है। यहाँ तो एक-एक भिन्न-भिन्न है, उसका नाम पर्यायनय का विषय है। सूक्ष्म बात है, भाई! दिगम्बर धर्म बहुत सूक्ष्म! इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं यह चीज़ नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य की इन सब शास्त्रों में छाप है। समझ में आया? क्योंकि वे भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९, दो हजार वर्ष पहले (हुए)। भगवान सीमन्धर परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह समयसार आदि शास्त्र बनाये। यह पौने चार लाख अक्षर हैं न? यह उनके बनाये हुए हैं। (परमागममन्दिर में) कुन्दकुन्दाचार्य यह बीच में हैं न? कुन्दकुन्दाचार्य। यह परमात्मप्रकाश है। योगीन्द्रदेव मुनि हुए, १३०० वर्ष पहले। योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि जंगल में रहनेवाले, उन्होंने यह

परमात्मप्रकाश बनाया है। उसमें टीकाकार कहते हैं कि आत्मा को जानने में पहले तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीन भेद से जानना, वह पर्याय है।

द्रव्यार्थिकनयकर टंकोत्कीर्ण ज्ञान के (ज्ञायक) अखण्ड स्वभाव से... आहाहा! अरे! द्रव्य अर्थात् पदार्थ की दृष्टि से देखें तो वह वस्तु भगवान आत्मा टंकोत्कीर्ण ज्ञान की मूर्ति अखण्ड है। आहाहा! जो समकित का विषय है। समझ में आया? ऐसा मार्ग पहले तो अभी समझना कठिन पड़े। मार्ग ऐसा है, बापू! वीतरागमार्ग जिनवरदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने जो एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे, उन्हें इच्छा बिना दिव्यध्वनि खिरी। उस दिव्यध्वनि में से शास्त्र बनाये। समझ में आया? यह परमात्मप्रकाश भी दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा!

कहते हैं, आत्मा में दो प्रकार हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो होता है, यह तीन भेद पर्यायनय से है। और द्रव्यार्थिकनय से देखो, द्रव्य वस्तु जो त्रिकाल है, वह तो एकरूप ज्ञायकभाव **टंकोत्कीर्ण ज्ञान के अखण्ड स्वभाव से ध्रुव ही है।** आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह यह है। टंकोत्कीर्ण अर्थात् जैसे टांकी से खोदकर अन्दर से निकालते हैं न? इसी प्रकार भगवान अन्दर चैतन्य विराजमान है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म; यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' 'जिन सो ही है आत्मा' वीतरागस्वरूप से आत्मा है, उसे जिन कहते हैं। 'अन्य सो ही है कर्म'। पुण्य और पाप, शरीर, वाणी आदि परचीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्यार्थिकनयकर टंकोत्कीर्ण ज्ञान के अखण्ड स्वभाव से ध्रुव ही है। ध्रुव ही है। **इस तरह पहले निज शुद्धात्मद्रव्य को...** लो, कहते हैं कि इस प्रकार पहले **निज शुद्धात्मद्रव्य को अच्छी तरह जानकर...** आहाहा! प्रथम में प्रथम आत्मा को इस प्रकार से व्यवहारनय से, निश्चयनय से, जिस प्रकार है, उस प्रकार से जानकर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नय अर्थात् ज्ञान का विषय है, ज्ञान की पर्याय है। व्यवहारनय का विषय वर्तमान है और निश्चयनय का विषय त्रिकाल है। नय, वह ज्ञान का अंश है। श्रुतज्ञान का एक अन्तरभेद भाग है। उस नय के दो प्रकार हैं—व्यवहार और निश्चय।

वर्तमान पर्याय आदि को देखना, वह व्यवहार है। त्रिकाली को देखना, वह निश्चय है। भाई! मार्ग तो यह वीतराग का है। दुनिया तो बाहर से मान बैठी है कि यह धर्म है और यह अमुक है। ऐसी चीज़ दुर्लभ चीज़ है। अनन्त काल में अनन्त बार दिगम्बर साधु होकर नौवें ग्रैवेयक गया तो भी मिथ्यादृष्टि रहा।

मुमुक्षु : तब तो द्रव्य, गुण, पर्याय का ज्ञान था।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य, गुण, पर्याय का शास्त्र का ज्ञान था, परन्तु अन्तर द्रव्य की दृष्टि नहीं थी। आहाहा! अन्तर वस्तु चैतन्यमूर्ति भगवान सहजात्मस्वरूप। सहजात्म— सहजस्वरूप पारिणामिकभावरूप वस्तु, उसकी दृष्टि नहीं। उस दृष्टि के बिना सब किया। महाव्रत पालन किये, आस्रव किया, सब किया। सब बिना एक के शून्य निकले। क्या कहते हैं? बिना एक के शून्य। ओहोहो!

यहाँ यह कहते हैं, प्रथम में प्रथम शुद्धात्मद्रव्य को। देखो! **निज शुद्धात्मद्रव्य को...** भगवान सर्वज्ञ हैं, वे तो पर हैं। शब्द है न? प्रथम में प्रथम वस्तु यह है कि आत्मा को जानना। द्रव्य से क्या है, पर्याय से क्या है, असंख्य प्रदेश से क्या है, संकोच-विकास कैसे है, संकोच-विकास कैसे नहीं, यह इसे प्रथम जानना चाहिए। आहाहा! **अच्छी तरह जानकर...** वापस ऐसा का ऐसा नहीं। अच्छी तरह अर्थात् जैसे है, उसी प्रकार से जानकर, आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, नित्यानन्द प्रभु की दृष्टि करके और उसे जानकर **और आत्मस्वरूप से विपरीत पुद्‌गलादि परद्रव्यों को भी अच्छी तरह जानकर...** आहाहा! भगवान आत्मस्वभाव से यह सब भिन्न है। पुण्य और पाप आदि विपरीत। **पुद्‌गलादि परद्रव्यों को...** शरीर, वाणी, जड़, वह तो मिट्टी-धूल है। इसी प्रकार पैसे, इज्जत, कीर्ति, वह सब धूल है, अजीव है। भगवान आत्मा को जानकर, परद्रव्य क्या है, उसे बराबर जानना चाहिए। आहाहा! लक्ष्मी भी अपनी नहीं। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार भी अपने नहीं। अपनी पर्याय में अल्पज्ञता है, उतना भी आत्मा नहीं। आहाहा! यह तो यह मेरी स्त्री और यह मेरे पुत्र और यह मेरे पिता, (ऐसा मानता है)। आत्मा को पुत्र-पिता कैसा? यहाँ तो पर्याय की अल्पज्ञता, वह भी त्रिकाल में नहीं है। राग और स्त्री, परिवार, पैसा और मकान मेरे, (यह) अज्ञानी की भ्रमणा है। तेरी चीज़ तुझसे भिन्न कैसे रहे? और भिन्न रहे, वह तेरी चीज़ कहाँ से हुई?

यहाँ यह कहते हैं, **शुद्धात्मद्रव्य को अच्छी तरह जानकर आत्मस्वरूप से विपरीत...** यह पुद्गल, पाँच द्रव्य है न? पुद्गल, आकाश, काल आदि। उन परद्रव्यों का भी अच्छी तरह निर्णय करके। आहाहा! **आप पर का निश्चय करके बाद में समस्त मिथ्यात्व रागादि विकल्पों को छोड़कर...** आहाहा! पुण्य, वह धर्म है; पाप में मजा है—ऐसा जो मिथ्यादृष्टिपना है, उसे छोड़ दे। आहाहा! **निश्चय करके बाद में समस्त मिथ्यात्व रागादि विकल्पों को छोड़कर...** विकल्प, यह राग की वृत्ति विकार है। मिथ्यात्व भी विकार है और रागादि पुण्य-पाप, दया, दान, व्रतादि भी विकार है। उसे छोड़कर। आहाहा! **वीतराग चिदानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व में जो लीन हुए हैं,...** आहाहा! आत्मा वीतराग चिदानन्द एक स्वभाव। यहाँ 'एक' (शब्द) चाहिए। 'एक' सब जगह पड़ा रहा है। अर्थ करनेवाले को यह 'एक' (शब्द) ख्याल में बहुत नहीं रहा। **वीतराग चिदानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व में जो लीन हुए हैं,...** आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा, उसके तत्त्व में—चिदानन्द तत्त्व में जो लीन हुए हैं, **वे ही धन्य हैं।** यह मार्ग है। आहाहा!

पुण्य-पाप के विकल्प से भी हटकर, शुद्धात्म वीतराग चिदानन्दस्वरूप में दृष्टि करके लीन होना, वह धन्य है। उसने मोक्षमार्ग प्रगट किया, और अल्प काल में उसका मोक्ष होगा। यह क्रियाकाण्ड से धर्म होता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। क्रियाकाण्ड—यह दया, दान, व्रत, तप आदि मोक्ष का मार्ग नहीं है; यह तो बन्ध का मार्ग है। आहाहा! आता है। बीच में अशुभ से बचने के लिये ऐसा शुभभाव आता है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव आता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धात्मतत्त्व में जो लीन हुए हैं, वे ही धन्य हैं। आहा! '**वीतरागचिदानन्दैक-स्वभावे स्वशुद्धात्मतत्त्वे ये रतास्त एव धन्या**' लो! 'रता' है न? लीन... लीन। रता का (अर्थ) लीन किया। आहाहा! भगवानस्वरूप परमात्मा अपने निज स्वरूप को जानकर और अपने से भिन्न पुद्गलादि जड़ को जानकर, स्वरूप में दृष्टि करके लीन होना। यहाँ तो उत्कृष्ट बात लेते हैं न! उसमें दृष्टि करके, उसमें लीन होना, वह धन्य है। उसने मोक्षमार्ग प्राप्त कर लिया। आहाहा! बाकी क्रियाकाण्ड में धर्म मानता है, वह धर्म का

कारण है—ऐसा मानता है, वह सब मिथ्याशल्य है। समझ में आया? होता है, परन्तु वह निश्चय का कारण नहीं। समझ में आया? अभी बड़ी गड़बड़ी यह चलती है न? कि व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। राग करते-करते वीतरागदशा होगी। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। ऐसी बात है।

यहाँ आचार्य महाराज यह कहते हैं, आहा! अपने शुद्धात्मद्रव्य में लीन हुए, आहाहा! वह मोक्षमार्ग है, वह धन्य है। **ऐसा ही कथन परमात्मतत्त्व के लक्षण में श्रीपूज्यपादस्वामी ने कहा है,...** यह जो कहा, तत्प्रमाण वहां है। **यह आत्मा व्यवहारनयकर अनादि का बँधा हुआ है,...** राग से, कर्म से, निमित्त से व्यवहारनय से बँधा हुआ है। **और अपने किये हुए कर्मों के फल का भोक्ता है, उन कर्मों के क्षय से मोक्षपद का भोक्ता है,...** आहाहा! वास्तव में तो उस राग का नाश होकर आनन्द का भोक्ता (हो), वह आत्मा है। आहाहा! है? **मोक्षपद का भोक्ता है, ज्ञाता है,...** आहाहा! जाननेवाला-देखनेवाला भगवान आत्मा है। इसके अतिरिक्त सब चीज़ें तो ज्ञान का ज्ञेय हैं। दूसरी चीज़ जाननेयोग्य ज्ञेय है। आत्मा ज्ञाता है, वही उपादेय-आदरणीय है। कठिन बात इसमें। है?

देखनेवाला है,... यह तो चौदह ब्रह्माण्ड लोकालोक को जाननेवाला-देखनेवाला भगवान आत्मा है, किसी चीज़ का करनेवाला नहीं। अपने अतिरिक्त किसी चीज़ को बनावे, रचे, (यह उसका स्वरूप नहीं है)। आहाहा!

मुमुक्षु : धन्धा-व्यापार नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा-व्यापार कौन करे? वह तो जड़ से होता है। सूक्ष्म बात, भाई! यहाँ तो कहा न, निज तत्त्व से वह तो अन्य तत्त्व पुद्‌गल आदि तत्त्व है। यह धन्धे में पैसे लेना-देना, वह सब जड़ की क्रिया है, आत्मा की कहाँ है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....उगाही के लिये जाना या नहीं जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग आता है। उगाही में जाने की क्रिया तो देह से होती है। अपने से नहीं होती। आहाहा! यह तो त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव जिनवरदेव की वाणी का यह सार है। आहाहा! भगवान पूर्णानन्दस्वरूप जब तक दृष्टि में आवे नहीं, तब तक सब व्यर्थ है, संसार है। आहाहा! समझ में आया?

अपनी देह के प्रमाण है,... अभी तो शरीरप्रमाण है न? **संसार-अवस्था में प्रदेशों के संकोच विस्तार को धारण करता है, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है...** जो कहा उसका (भावार्थ) है। **और अपने गुण-पर्यायसहित है।** उत्पाद-व्यय-ध्रुव। **इस प्रकार आत्मा के जानने से ही...** ऐसे भगवान आत्मा को जानने से ही **साध्य की सिद्धि है,...** तब मोक्ष की सिद्धि है। साध्य मोक्ष है। आहाहा! निवृत्ति कब ले? समझे कब? संसार के काम के कारण निवृत्ति नहीं। यहाँ तो कहते हैं, राग के विकल्प से भी आत्मा में निवृत्ति है। आहाहा! **इस प्रकार आत्मा के जानने से ही साध्य की सिद्धि है, दूसरी तरह नहीं है।** दूसरे रास्ते से मोक्ष का मार्ग उत्पन्न नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : मोक्ष का मार्ग अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र है। यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं। वह तो व्यवहार है, विकल्प है। आहाहा! अपना पूर्ण स्वरूप ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण भगवान आत्मा का शरण लेकर, आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होता है, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? जितना पर का आश्रय करे, उतना बन्ध का मार्ग है। भले त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की पूजा और आश्रय करे, वह भी राग और बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : व्याख्यान सुनना यह....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याख्यान सुनने का विकल्प, वह राग है, बन्ध का कारण है। ऐसा मार्ग है, भाई! यह तो वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव, जिन्होंने व्यवहाररत्नत्रय को छोड़कर निश्चयरत्नत्रय अंगीकार किया। समझ में आया? तब वे केवलज्ञान, मुक्ति को प्राप्त हुए। आहाहा!

आगे जो संयमी परम शान्तभाव का ही कर्ता है,... अब देखो! मुनि—सच्चे मुनि हैं, वे तो राग के भी कर्ता नहीं। पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, उसके कर्ता नहीं। आहाहा! है? **आगे जो संयमी...** सम्यग्दर्शनसहित जिन्हें चारित्रदशा प्रगट हुई है, आहाहा! अन्तर में आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन हुआ है। सम्यग्दर्शनसहित पूर्णानन्द के

नाथ के स्वीकारसहित, जिन्हें आनन्द का वेदन प्रचुर आया है, उन्हें संयमी कहते हैं। वे संयमी **परम शान्तभाव का ही कर्ता है,...** आहाहा! इस देह की क्रिया के कर्ता नहीं, वाणी का कर्ता नहीं, पुण्य-पाप के भाव का कर्ता नहीं। आहाहा! बात बहुत (कठिन)।

वह **शान्तभाव का ही कर्ता है,...** आहाहा! वह तो वीतरागी परिणति का ही कर्ता है। आहाहा! यह भी व्यवहार है। जीव को कर्ता कहना, वह व्यवहार है। शान्तभाव का कर्ता शान्तभाव पर्याय है। वीतराग परिणति जो धर्म, उस परिणति का कर्ता परिणति—पर्याय है। द्रव्य को (कर्ता) कहना, वह व्यवहारनय से कहना है। आहाहा! समझ में आया? **उसकी निन्दा द्वारा स्तुति तीन गाथाओं में करते हैं**—ज्ञानी को शान्त वीतरागी पर्याय में संयमदशा प्रगट है। उस मुनि की निन्दा द्वारा स्तुति करेंगे। निन्दा द्वारा स्तुति। अर्थात? कर्म है, वह उसका और बन्धन है। और बन्धन है, वह बन्धु है। अनादि के साथ में हैं। उसे जिसने मार डाला—कर्म को जिसने मार डाला। बन्धु को मारा। बन्ध है न? बन्ध। बन्ध और बन्धु का नाश किया, यह संयमी मुनि की निन्दारूप से स्तुति है। प्रभु! तुमने तो बन्ध को-बन्धु को मार डाला। अनादि से कर्म के साथ रहते थे। कभी छूटे नहीं थे, उनका तुमने नाश कर दिया। तेरे बन्धु थे, तेरे साथ रहते थे। **निन्दा द्वारा स्तुति तीन गाथाओं में करते हैं—** ४४।

गाथा - ४४

अथ योऽसावेवोपशमभावं करोति तस्य निन्दाद्वारेण स्तुतिं त्रिकलेन कथयति -

१६७) बिण्णि वि दोस हवंति तसु जो सम-भाउ करेइ।
बंधु जि णिहणइ अप्पणउ अणु जगु गहिलु करेइ।।४४।।

द्वौ अपि दोषौ भवतः तस्य यः समभावं करोति।
बन्धं एव निहन्ति आत्मीयं अन्यत् जगद् ग्रहिलं करोति।।४४।।

बिण्णि वि इत्यादि। बिण्णि वि द्वावपि। द्वौ कौ। दोस दोषौ हवंति भवतः तसु यस्य तपोधनस्य जो सम-भाउ करेइ यः समभावं करोति रागद्वेषत्यागं करोति। कौ तौ द्वौ। दोषौ बंधु जि णिहणइ बन्धमेव निहन्ति। कथंभूतं बन्धम्। अप्पणउ आत्मीयं अणु पुनः जगु जगत् प्राणिगणं गहिलु करेइ ग्रहिलं पिशाचसमानं विकलं करोति। अयमत्र भावार्थः। समशब्देनात्रा-भेदनयेन रागादिरहित आत्मा भण्यते, तेन कारणेन योऽसौ समं करोति वीतरागचिदानन्दैकस्वभावं निजात्मानं परिणमति तस्य दोषद्वयं भवति। कथमिति चेत्। प्राकृतभाषया बन्धुशब्देन ज्ञानावरणादिबन्धा भण्यन्ते गोत्रं च येन कारणेनोपशमस्वभावेन परमात्मस्वरूपेण परिणतः सन् ज्ञानावरणादिकर्मबन्धं निहन्ति तेन कारणेन स्तवनं भवति, अथवा येन कारणेन बन्धुशब्देन गोत्रमपि भण्यते तेन कारणेन बन्धुधाती लोकव्यवहारभाषया निन्दापि भवतीति। तथा चोक्तम्। लोकव्यवहारे ज्ञानिनां लोकः पिशाचो भवति लोकस्याज्ञानिजनस्य ज्ञानि पिशाच इति।।४४।।

आगे जो संयमी परम शांतभाव का ही कर्ता है, उसकी निंदा द्वारा स्तुति तीन गाथाओं में करते हैं -

जो समभाव करे धारण उसको दो दोष प्रगट होते।
अपना बन्ध नष्ट कर देता पागल कर देता जग को।।४४।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो साधु [समभावं] राग-द्वेष के त्यागरूप समभाव को [करोति] करता है, [तस्य] उस तपोधन के [द्वौ अपि दोषौ] दो दोष [भवतः] होते हैं। [आत्मीयं बंधं एव निहंति] एक तो अपने बंध को नष्ट करता है, [पुनः] दूसरे [जगद् ग्रहिलं करोति] जगत् के प्राणियों को बावला-पागल बना देता है।

भावार्थ :- यह निंदा द्वारा स्तुति है। प्राकृत भाषा में बंधु शब्द से ज्ञानावरणादि

कर्मबंध भी लिया जाता है, तथा भाई को भी कहते हैं। यहाँ पर बंधु-हत्या निंद्य है, इससे एक तो बंधु-हत्या का दोष आया तथा दूसरा दोष यह है, कि जो कोई इनका उपदेश सुनता है, वह वस्त्र आभूषण का त्यागकर नग्न दिगंबर हो जाता है। कपड़े उतारकर नंगा हो जाना उसे लोग गहला-पागल कहते हैं। ये दोनों लोकव्यवहार में दोष हैं, इन शब्दों के ऐसे अर्थ ऊपर से निकाले हैं। परंतु दूसरे अर्थ में कोई दोष नहीं है, स्तुति ही है। क्योंकि कर्मबंध नाश करने ही योग्य है, तथा जो समभाव का धारक है, वह आप नग्न दिगम्बर हो जाता है, और अन्य को दिगम्बर कर देता है, सो मूढ़ लोग निंदा करते हैं। यह दोष नहीं है गुण ही है। मूढ़ लोगों के जानने में ज्ञानीजन बावले हैं, और ज्ञानियों के जानने में जगत के जन बावले हैं। क्योंकि ज्ञानी जगत से विमुख हैं, तथा जगत् ज्ञानियों से विमुख है।।४४।।

गाथा-४४ पर प्रवचन

---

१६७) बिण्णि वि दोस हवंति तसु जो सम-भाउ करेइ।
बंधु जि णिहणइ अप्पणउ अणु जगु गहिलु करेइ।।४४।।

आहाहा! योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त मुनि आत्मज्ञानी अनुभवी, आत्मा की शान्ति का वेदन करनेवाले। जंगल में यह शास्त्र बनाया। यह वनशास्त्र है। मुनि वन में रहते थे और आनन्द में रहते थे। आहाहा! वन में रहते थे, यह व्यवहार है। अतीन्द्रिय आनन्द में रहते थे। उन योगीन्द्रदेव ने यह परमात्मप्रकाश बनाया है। दिगम्बर सन्त थे। जिन्हें वस्त्र का एक धागा भी नहीं था। वस्त्र का एक धागा रखे तो वह मुनि नहीं हो सकता। और नग्न हो, परन्तु भावलिंग न हो तो वह साधु नहीं है। ऐसा नग्नपना तो अनन्त बार धारण किया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार' यह शरीर और राग दोनों से भिन्न भगवान आत्मा का अनुभव नहीं किया तो वह मुनि नहीं, संयमी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि देखो! **जो साधु राग-द्वेष के त्यागरूप समभाव को करता है,...** आहाहा! यह छहढाला में आता है। नहीं? 'राग आग दाह दहे सदा, तातै समामृत सेईये।' छहढाला... छहढाला में आता है न? पाठशाला में पढ़ाते हैं। छहढाला। उसमें

यह कहा है, 'राग आग दाह दहे सदा।' चाहे तो शुभराग हो, वह आग है। कषायअग्नि है। आहाहा! यह वीतरागमार्ग। आता है न? छहढाला में आता है। बाबूभाई! राग— चाहे तो शुभ हो, भक्ति का, दया-दान का, व्रत का, परन्तु राग आग है। 'राग आग दाह दहे सदा।' वह राग आत्मा की शान्ति को जलाता है, आहाहा! सुलगाता है। समझ में आया? मार्ग, बापू! बहुत अलौकिक है। सत्य की बात लोगों को सुनने को भी मिली नहीं। बाहर की बातें। ऐसा करना और वैसा करना। व्रत करना और अपवास करना। वह तो सब राग की क्रिया है। वह राग तो दाह अग्नि जैसा कषाय अग्नि है। यह कहते हैं।

राग-द्वेष के त्यागरूप समभाव को करता है,... आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, दुकान छोड़े तो तपस्वी है, ऐसा नहीं कहा। पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। स्त्री, कुटुम्ब को ग्रहण भी नहीं किया और छोड़ा भी नहीं। वे तो छूटे हुए पर ही हैं। राग को ग्रहण किया है तो राग को छोड़ना। समझ में आया? चाहे तो शुभराग हो या अशुभराग हो, सबको छोड़कर **समभाव को करता है, उस तपोधन के...** आहाहा! आनन्दरूपी तपस्या का धन जिसके पास है। आहाहा! यह धूल के धनी सेठिया कहलाते हैं, वे तो सब धनरहित हैं। वह लक्ष्मी (आदि) धनसहित है, वह जीव धनरहित है। वह निज आत्मा के धनरहित है। यह तो तपोधन! आहाहा! जिसमें आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद आया, उसका नाम तपोधन। तपरूपी लक्ष्मी। अपवास आदि नहीं, हों! इच्छा का निरोध होकर अतीन्द्रिय अमृत का स्वाद आना, वह तपोधन है, उसे तपरूपी लक्ष्मी कहते हैं। आहाहा! यह तुम्हारे पैसा-फैसा, धूल की लक्ष्मी, यहाँ नहीं गिनते कि यह करोड़ रुपये हैं और पाँच करोड़ हैं और दस करोड़ हैं। धूल है, मिट्टी-पुद्गल है। वह धन तेरा कहाँ से आया? आहा!

अन्तर तपोधन। पुण्य और पाप के भाव अन्दर में हैं, उन्हें छोड़कर अन्तर के आश्रय से जिसने समभाव प्रगट किया (वह तपोधन है)। यह समभाव की व्याख्या पहले वहाँ आ गयी है। समभाव उसे कहते हैं कि वीतरागी आनन्द जिसमें आवे, उसे समभाव कहते हैं। समझ में आया? समभाव, समभाव करे, वह समता नहीं। समता-समभाव उसे कहते हैं, जिसमें अन्तर का वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द का प्रगट अनुभव हो। आहाहा! उसका नाम समभाव है। यह समभाव की व्याख्या पहले आ गयी है।

समझ में आया? पहले आ गयी है। आहा! मार्ग दूसरा है, बापू! आहाहा!

यह तो त्रिलोकनाथ जिनवरदेव परमेश्वर समवसरण में प्रभु विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान वर्तमान में विराजते हैं। उनकी यहाँ प्रतिष्ठा हुई है न! मानस्तम्भ, मन्दिर और समवसरण। तीनों में वे हैं। कल आये थे वे बोले थे। डॉक्टर रात्रि में आये थे न? भाई! डॉक्टर थे, वे बोले थे। सीमन्धर भगवान की जय। कहा, इन्हें परिचय है। आहाहा! रात्रि में वे डॉक्टर आये थे न! वे गये। दोपहर में व्याख्यान में आवे तो आवे। वहाँ साधु है न? ऋषभसागर एक दिगम्बर साधु है। महाराष्ट्र में दिगम्बर साधु ऋषभसागर। उन्हें यहाँ की सब प्रतीति अच्छी लगी। यही बात वहाँ करते हैं। यहाँ की सम्यग्दर्शन पुस्तक है, वे वहाँ वांचते हैं। सम्यग्दर्शन पुस्तक है। और वे यहाँ आये थे। चातुर्मास इन्दौर में था, यहाँ आये तो कहते थे, महाराज! इस हिन्दुस्तान में भावलिंगी साधु तो कोई है नहीं। स्वयं साधु, ८५ वर्ष की उम्र। कल तो कहते थे, अब तो १०४ वर्ष की है। यहाँ आये तब ९५ कहते थे। ९५ तो नहीं होगा, गाँव के व्यक्ति को खबर नहीं हो। कल डॉक्टर कहते थे, उनकी १०४ वर्ष की उम्र है। १०४ तो नहीं होगा, ९४ होगा। यहाँ ९५ कहते थे। शत्रुंजय से १४ मील चलकर आये थे। गाँव के व्यक्ति, इसलिए शरीर जरा... ८५ वर्ष तो होंगे। नौ वर्ष हुए इसलिए अभी ९४ हुए। उसके १०४ कहते थे। उन्हें यह बात बहुत रुच गयी। ओहोहो! यह मार्ग ही कहीं नहीं है। हम साधु नहीं। दिगम्बर मुनि हैं। यह वस्तु, द्रव्यदृष्टि वस्तु क्या, आत्मा क्या, उसकी अनुभवदृष्टि बिना सब निरर्थक है। ऐसी बात तो हमको सुनने को मिली नहीं। वे कहते थे।

कर्नाटक में एक भव्यसागर दिगम्बर साधु है। कर्नाटक में। यहाँ के शास्त्र का स्वाध्याय किया। एक सेठ है, वहाँ कर्नाटक में माणेकचन्दजी सेठ है। उन्हें ऐसी लगी, १७ वर्ष की दीक्षा है, दस और सात। सत्रह कहते हैं न? १७ वर्ष की दीक्षा है और शीघ्र कवि है—आशुकवि। एकदम कविता बनावे। यहाँ हमारे पास बहुत कविता आयी है। उनके आठ पत्र आये हैं। ओहो! यह मार्ग! हम साधु नहीं। ऐसा लिखा है बेचारे ने। हम मुनि नहीं, यति नहीं। यह तो तुम सम्यग्दर्शन की बात करते हो, उसकी तो हमको खबर ही नहीं। आत्मधर्म देखकर ऐसा उल्लास आया कि मैं वहाँ आना चाहता हूँ। परन्तु आत्मधर्म के ५०० ग्राहक बनाकर आना चाहता हूँ। आत्मधर्म क्या चीज़ है! आहाहा!

ऐसा लिखा है। अब एक ओर वे विरोध करे। ललितपुर में। इन रमेशभाई के गाँव में। इन्हें वहाँ मारा था। अरे! प्रभु! किसी के ऊपर ऐसा हो? सब भगवान हैं अन्दर। किसी के प्रति वैर-विरोध होता ही नहीं। समझ में आया?

वास्तव में तो उसका द्रव्य है, वह साधर्मी द्रव्य है। यह आत्मा जो शुद्ध है, वह उपादेय है। सभी जीवों का आत्मा शुद्ध उपादेय है। प्रवीणभाई! उसका आत्मा, हों! आहाहा! साधर्मी है। पर्याय को न देखो। भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ विराजता है, वह साधर्मी है। वैर-विरोध किसी के प्रति करना नहीं। पर्याय में भूल हो तो जानना। सत्त्वेषु मैत्री। सभी प्राणियों के प्रति मैत्री। आहाहा! विरोधी कौन है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, उन मुनि के दो दोष हैं। **उस तपोधन के दो दोष होते हैं। एक तो अपने बन्ध को नष्ट करता है,...** है? बन्ध अर्थात् बन्धु, ऐसा कहकर लेंगे। अनादि के जो कर्म साथ में थे, उनका मुनि ने नाश कर दिया। तो अपने बन्धु का नाश कर दिया। यह निन्दा द्वारा स्तुति है। समझ में आया? आहाहा! आठ कर्म अनादि से साथ में रहते हैं। निगोद से लेकर अनादि से। नौवें ग्रैवेयक दिगम्बर साधु मिथ्यादृष्टि होकर गया, उसके पास आठ कर्म थे। आहा! मुनि को कहते हैं कि हे मुनि! तुमने तो शान्तभाव प्रगट किया, आनन्द के नाथ को जागृत किया है। आहाहा! तो आपने तो कर्म का नाश किया है। तो कर्म तो बन्ध है। बन्ध को बन्धु कहते हैं। आपने बन्धु का नाश कर डाला। ऐसे निन्दा द्वारा स्तुति है। कहो, हीरालालजी! अभी कहाँ बाहर गये थे? यहाँ पूछा था किसी को। तो कहा, अभी नहीं। आहाहा!

दूसरे जगत के प्राणियों को बावला-पागला बना देता है। क्योंकि मुनि हैं, आत्मज्ञानी वीतरागी सन्त हैं। वे वीतरागपने का उपदेश दें। नग्न मुनि हो जाये तो लोग पागल कहें। लोगों को पागल बनाते हैं और बन्धु का नाश करते हैं। समझ में आया? दिगम्बर सन्त आत्मज्ञानी-ध्यानी। वस्त्र का एक टुकड़ा नहीं। माता के गर्भ से जैसा जन्मा, वैसा शरीर और अन्दर में वीतरागी मूर्ति आत्मा का अनुभव है। आहाहा! कहते हैं कि एक तो बन्धु का—कर्म का नाश किया और उनका उपदेश सुनकर जो नग्न दिगम्बर हो जाते हैं, वे पागल-बावले हो जाते हैं, दुनिया की दृष्टि से। समझ में आया? गहल बन जाते हैं, गहल। बावला कहा न? बावला-पागल बना देते हैं। आहाहा!

भावार्थ : यह निन्दा द्वारा स्तुति है। प्राकृत भाषा में बन्धु शब्द से ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध भी लिया जाता है,... लो! प्राकृत भाषा में। कर्म का बन्ध है न? तो बन्धु शब्द से ज्ञानावरणादि कर्मबन्ध लिया जाता है। **तथा भाई को भी कहते हैं।** बन्धु। भाई को बन्धु कहते हैं न? **यहाँ पर बन्धु-हत्या निन्द्य है,...** भाई का नाश निंद्य है। **इससे एक तो बन्ध-हत्या का दोष आया...** कर्मबन्ध का नाश किया, यह दोष आया। स्तुति है। **दूसरा दोष यह है कि जो कोई इनका उपदेश सुनता है,...** आहाहा! है। **वह वस्त्र आभूषण का त्यागकर नग्न दिगम्बर हो जाता है।** दुनिया कहती है कि यह पागल है। आहाहा! प्रभु! मुनि! आपने तो बन्धु का नाश किया और दुनिया को पागल बना देते हो। स्तुति है। आहाहा!

ऐसे राजकुमार २५-२५ वर्ष की उम्र के हों, घर में हजारों रानियाँ हों। परन्तु जहाँ यह बात सुने और अन्दर से... आहाहा! मेरा भगवान अन्दर श्रृंगारसहित है। अन्दर में अनन्त गुण का पिण्ड है। ऐसी दृष्टि करके लीन होते हैं, तब नग्न हो जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! अन्दर में भी राग से रहित और बाहर में वस्त्र से रहित। आहाहा! यह मुनिपना है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ उत्कृष्ट मार्ग कहते हैं न! सम्यग्दर्शन है, वह निचली श्रेणी का मार्ग है और चारित्रसहित है, वह मूलमार्ग है। चारित्तं खलु धम्मो। चारित्र, वह धर्म। और चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान हो तो। आहाहा!

बन्धु—हत्या का दोष आता है और दूसरा (दोष) **कपड़े उतारकर नंगा हो जाना उसे लोग गहला-पागल कहते हैं। ये दोनों लोकव्यवहार में दोष हैं, इन शब्दों के ऐसे अर्थ ऊपर से निकाले हैं। परन्तु दूसरे अर्थ में कोई दोष नहीं है, स्तुति ही है।** आहाहा! है न? **क्योंकि कर्मबन्ध नाश करने ही योग्य है,...** आहाहा! **तथा जो समभाव का धारक है, वह आप नग्न दिगम्बर हो जाता है,...** आहाहा! जिसे अन्दर सम्यग्दर्शनसहित वीतरागी पर्याय प्रगट हुई है, वह तो बाह्य में नग्न हो जाता है। समझ में आया? चारित्र प्रगट हो और वस्त्रसहित हो, ऐसा तीन काल में नहीं होता। वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! तीर्थंकर भी जहाँ तक वस्त्रसहित हैं, वहाँ तक मुनि नहीं। संसार में है न! पाठ है, अष्टपाहुड़ में है। तीर्थंकर भी जब तक वस्त्रसहित है तो उन्हें मुक्ति नहीं होती। क्योंकि वस्त्र रखना, वह ममताभाव है। मुनि की दशा में वह वस्त्र का ममताभाव नहीं

होता। श्वेताम्बर लोग जो वस्त्रसहित साधु कहते हैं, वह बात भगवान के घर की नहीं है। बाबूभाई! यह सब श्वेताम्बर हैं न? यह कल्याणभाई प्रमुख है। यह बाबूभाई। यह तो पूर्व का था। वस्त्रसहित साधुपना जिसने स्थापित किया, वह मिथ्यादृष्टि है। वस्त्रसहित साधुपना कभी होता नहीं। और वस्त्ररहित मात्र नग्नपना, परन्तु अन्तर अनुभव बिना साधु नहीं होता। आहाहा! दोनों बातें हैं। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं।

कपड़े उतारकर नंगा हो जाना, उसे लोग पागल कहते हैं। ये दोनों लोकव्यवहार में दोष हैं, इन शब्दों के ऐसे अर्थ ऊपर से निकाले हैं। परन्तु दूसरे अर्थ में कोई दोष नहीं है, स्तुति ही है। क्योंकि कर्मबन्ध नाश करने ही योग्य है, तथा जो समभाव का धारक है, वह आप नग्न दिगम्बर जो जाता है,... आहाहा! जिसे अन्दर में वीतरागता प्रगट हुई, सम्यग्दर्शनसहित चारित्र प्रगट हुआ, समभाव प्रगट हुआ, वह नग्न हो जाता है। समझ में आया? यह स्तुति है। आहाहा! **और अन्य को दिगम्बर कर देता है,...** दूसरे को भी दिगम्बर कर देता है। मुनि जंगल में बसते हैं। आनन्द... आनन्द... आनन्द। समभाव वीतरागी आनन्द का अनुभव, वह अन्तर का दिगम्बर है और बाहर में वस्त्ररहित, वह बाहर का दिगम्बर है। दोनों होते हैं। यह दोष नहीं है।

सो मूढ़ लोग निन्दा करते हैं। यह दोष नहीं है, गुण ही है। मूढ़ लोगों के जानने में ज्ञानीजन बावले हैं,... मूढ़ लोगों के जानने में ज्ञानीजन बावला है। आहाहा! **और ज्ञानियों के जानने में जगत के जन बावले हैं।** आहाहा! नग्न दिगम्बर आत्मध्यानी आनन्द में रमनेवाले, अतीन्द्रिय आनन्द में रमनेवाले। उन्हें अन्तर से समभाव प्रगट हुआ है, तो बाहर में वस्त्र नहीं है। तो दुनिया उन्हें पागल कहती है। समझ में आया? आहाहा! और ज्ञानी जगत को कहते हैं। राग से धर्म मानते हैं और पुण्य से धर्म मानते हैं और वीतरागभाव बिना साधुपना मानते हैं, वे सब पागल हैं। ज्ञानी जगत को पागल मानता है और जगत ज्ञानी को पागल कहता है। पारस्परिक है।

ज्ञानी जगत से विमुख हैं,... आहाहा! **तथा जगत ज्ञानियों से विमुख है।** आहाहा! यह बात सुनी जाये नहीं। समभाव। जो दया, दान के विकल्प को भी आस्रव माने। आहाहा! और उसे छोड़कर स्वरूप में समभाव में रहे, वह मुनि है और बाहर में नग्न मुनि होते हैं। इस अपेक्षा से स्तुति की है। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४५

अथ -

१६८) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो सम-भाउ करेइ।
सत्तु वि मिल्लिवि अप्पणउ परहँ णिलीणु हवेइ।।४५।।

अन्यः अपि दोषो भवति तस्य यः समभावं करोति।
शत्रुमपि मुक्त्वा आत्मीयं परस्य निलीनः भवति।।४५।।

अण्णु वि इत्यादि। अण्णु वि न केवलं पूर्वोक्त अन्योऽपि दोसु दोषः हवेइ भवति तसु तस्य तपोधनस्य। यः किं करोति। जो सम-भाउ करेइ यः कर्ता समभावं करोति। पुनरपि किं करोति। सत्तु वि मिल्लिवि शत्रुमपि १मुञ्चति। कथंभूतं शत्रुम्। अप्पणउ आत्मीयम्। पुनश्च किं करोति। परहं णिलीणु हवेइ परस्यापि लीनः अधीनो भवति इति। अयमत्र भावार्थः यो रागादिरहितस्य समभावलक्षणस्य निजपरमात्मनो भावनां करोति स पुरुषः शत्रुशब्दवाच्यं ज्ञानावरणादिकर्मरूपं निश्चयशत्रु मुञ्चति परशब्दवाच्यं परमात्मानमाश्रयति च तेन कारणेन तस्य स्तुतिर्भवति। अथवा यथा लोकव्यवहारेण बन्धनबद्धं निजशत्रुं मुक्त्वा कोऽपि केनापि कारणेन तस्यैव परशब्दवाच्यस्य शत्रोरधीनो भवति तेन कारणेन स निन्दां लभते तथा शब्दच्छलेन तपोधनोऽपीति।।४५।।

आगे समभाव के धारक मुनि की फिर भी निंदा-स्तुति करते हैं -

जो समभावरूप परिणमता उसे और भी होते दोष।
पर के हों आधीन और वे आत्म शत्रु को देते छोड़।।४५।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [समभावं] समभाव को [करोति] करता है, [तस्य] उस तपोधन के [अन्यः अपि दोषः] दूसरा भी दोष [भवति] है। क्योंकि [परस्य निलीनः] पर के आधीन [भवति] होता है, और [आत्मीयं अपि] अपने आधीन भी [शत्रुम्] शत्रु को [मुंचति] छोड़ देता है।

भावार्थ :- जो तपोधन धन धान्यादि का राग त्यागकर परम शांतभाव को आदरता है, राजा-रंक को समान जानता है, उसके दोष कभी नहीं हो सकता। सदा स्तुति के योग्य है, तो भी शब्द की योजना से निंदा द्वारा स्तुति की गई है, वह इस तरह

---

१. पाठान्तर : मुञ्चति = मुक्त्वा

से है कि शत्रु शब्द से कहे गये जो ज्ञानावरणादि कर्म-शत्रु उनको छोड़कर पर शब्द से कहे गये परमात्मा का आश्रय करता है। इसमें निंदा क्या हुआ, बल्कि स्तुति ही हुई। परंतु लोकव्यवहार में अपने आधीन शत्रु को छोड़कर किसी कारण से पर शब्द से कहे गये शत्रु के आधीन आप होता है, इसलिये लौकिक-निंदा हुई; यह शब्द के निंदा-स्तुति की गई। वह शब्द से श्लेष होने से रूपअलंकार कहा गया है।।४५।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण २, सोमवार
दिनांक-०८-११-१९७६, गाथा-४५, ४६-१, प्रवचन-१२७

परमात्मप्रकाश, ४५ गाथा। **आगे समभाव के धारक मुनि की फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं:**—निन्दा द्वारा स्तुति। एक गाथा हुई। तीन गाथायें हैं।

१६८) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो सम-भाउ करेइ।
सत्तु वि मिल्लिवि अप्पणउ परहँ णिलीणु हवेइ।।४५।।

अन्वयार्थ :- जो समभाव को करता है,... अर्थात् पुण्य और पाप के दोनों विकारी भाव को छोड़कर अपने आत्मा में वीतरागताभाव—समभाव करता है। यह पहले आ गया है। ३९ गाथा। वीतराग परमानन्द अनुभवसहित जो समभाव, उसे समभाव कहते हैं। जिसमें आत्मा का आनन्द, वीतरागी परमानन्द के अनुभवसहित जो समभाव, उसे वीतरागता अथवा समभाव कहते हैं। समझ में आया? इसलिए जिसके समभाव में पुण्य-पाप की आकुलतारहित निराकुलता, आनन्द की वीतरागदशा, उसे समभाव कहते हैं। आहाहा! यह समभाव धारक मुनि की... ऐसा जो समभाव... आहाहा! उसके धारक मुनि की **फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं—**

समभाव को करता है, उस तपोधन के दूसरा भी दोष है। मुनि की बात है न तपोधन? जिसे अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागतारूपी धन प्रगट हुआ है। यह धूल-धन नहीं। जिसे अन्तर आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी भण्डार में पड़ी है, वह जिसने प्रगट की है। समझ में आया? जिसने अपना भगवान आत्मा, उसके सन्मुख होकर, पर से-रागादि से विमुख होकर समभाव अर्थात् वीतरागी पर्याय अतीन्द्रिय आनन्द गर्भित

वीतरागभाव (प्रगट किया है), उसे समभाव कहते हैं। वह मोक्ष का मार्ग है। उसकी यह निन्दा करते हैं। निन्दा द्वारा स्तुति।

जो (मुनि) समभाव को करता है, उस तपोधन के दूसरा भी दोष है। क्योंकि पर के आधीन होता है,... पर अर्थात् अपना स्वभाव जो परमात्मा है, उसके आधीन होता है, उसे यहाँ 'पर' कहा है। वीतरागभाव—समभाव मोक्ष का मार्ग जो उसे प्रगट हुआ है, वह पर के आधीन होता है। पर अर्थात् परमात्मा, उसके आधीन। इस प्रकार बाहर में ऐसा कहते हैं कि पर के आधीन होता है, वह दुःखरूप है। यहाँ तो पराधीन अर्थात्... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान ऐसा जो निज स्वरूप-परमात्मा... परमात्मप्रकाश है न! निज स्वरूप ही परमात्मा है। परम उत्कृष्ट पारिणामिक-स्वभावभाव ऐसा जो निज परमात्मा, वह पर। पर के आधीन होता है, वह उसका दोष है। दोष द्वारा स्तुति करते हैं। आहाहा!

और अपने आधीन भी शत्रु को छोड़ देता है। आठ कर्म हैं, वे अपने आधीन हैं, उस शत्रु को छोड़ देता है। आहाहा! आठ कर्म है अथवा अशुद्धता है मूल तो। मूल तो अशुद्धता है, जो शत्रु है। अपने वश है, उसे छोड़ देता है और पर ऐसा भगवान आत्मा, उसके वश होता है। इस प्रकार दोष में से स्तुति की है। समझ में आया? **छोड़ देता है।** आठ कर्म अथवा आठ कर्म के निमित्त से उपादान अशुद्धता जो आत्मा की, वह निज स्वाधीन है, वह दुश्मन अपने आधीन है, उस दुश्मन को छोड़ देता है। वश हुए हैं, उन्हें छोड़ देता है। और पर के आधीन होता है। पर (अर्थात्) भगवान आत्मा... आहाहा! सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान प्रभु के आधीन होता है। उसके आश्रय लेकर उसमें स्थिर होता है। आहाहा!

इस परमात्मप्रकाश में तीन गाथायें स्तुति की हैं। परन्तु निन्दा द्वारा स्तुति, ऐसा। पहले में ऐसा आया था न, आठ कर्म इसके बन्धु हैं। अनादि से साथ में रहनेवाले हैं। उनका इसने घात किया। बन्धु का घात किया। और इनका उपदेश सुने। आत्मा वीतरागी दशा प्रगट करने का (उपदेश सुने)। आहाहा! मुनियों का उपदेश तो वीतरागी ही होता है। वीतरागभाव प्रगट करने का उपदेश देते हैं, तो सुननेवाले वीतरागी भाव प्रगट करके बाहर से नग्न हो जाये। वे बावले हो जाते हैं। जगत के हिसाब से नग्न। आहाहा! स्वयं

तो वीतरागभाव में रमते हैं, परन्तु उपदेश भी वीतरागभाव का देते थे, श्रवण करनेवाले वीतरागभाव प्रगट करने के लिये बाह्य और अभ्यन्तर नग्नदशा—दिगम्बरदशा धारण करते हैं। तो जगत के हिसाब से वे तो बावले कहलाते हैं... नग्न। कुछ... आहाहा! आहाहा!

भावार्थ : जो तपोधन... जिन्हें आनन्दरूपी धन प्रगट हुआ है। आहाहा! वे तपोधन। जिन्हें अन्दर आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय स्वच्छता और अतीन्द्रिय शान्ति-चारित्र, ऐसी जो लक्ष्मी, उसने—तपोधन ने इच्छा निरोध करके और अनिच्छा अमृत का सागर पर्याय में उछाला है, उसे तपोधन कहते हैं। वे लक्ष्मीवाले हैं। तपरूपी लक्ष्मीवाले। आहाहा! यह भिखारी है—यह पैसेरूपी लक्ष्मीवाले। वे तपोधन बादशाह हैं।

मुमुक्षु : तप अर्थात् उपवास? उपवास न हो तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी कहाँ बात है? यहाँ क्या कहा? समभाव गर्भित वीतरागता। आनन्द गर्भित, वह तप है। तपयन्ति इति तपः। भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। जैसे सोना गेरुं से ओपता है। सोना-सोना गेरुं से ओपता-शोभता है, उसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है, उसे उग्र वीतरागभाव से शोभा करे, उसे यहाँ तप कहा जाता है। आहाहा! तपयन्ति इति तपः। आत्मा आनन्द से ऐसे तपता है। अन्दर से ज्वाजल्यमान ज्योति। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में वह तपता है। समझ में आया?

यह तपरूपी जिसे यह तपरूपी धन है। अपवास-बपवास, वह तो सब लंघन है। उप-वास। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसके उप अर्थात् समीप में बसना और आत्मा के भान बिना है, वह तो अपवास है। अप-वास—बुरावास है। आहाहा! वह तो राग में बसा है और उसे मानता है कि उपवास। वह है तो अप-वास। बात सच्ची। अप अर्थात् बुरा वास। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना, आत्मज्ञान के भान बिना जो सब तपस्यायें हैं, वे सब लंघन मिथ्यात्व के पोषक हैं। आहाहा! यह पर्यूषण हो और आठ उपवास करावे न? वे सब मिथ्यात्व के पोषक हैं। आहाहा! स्वयं अधर्म करते हैं और दूसरों से अधर्म कराते हैं। आहाहा! समझ में आया? स्थानकवासी में तो तप और

त्याग बहुत। इतने अपवास किये और इतने लंघन किये। अट्ठम के पारणे एक पहर चढ़ाया। पच्चीस अपवास का फल आवे उसे। आहाहा! वह तो सब आत्मज्ञान बिना (लंघन है)। और आत्मज्ञान, वह दिगम्बर धर्म सिवाय आत्मज्ञान कहीं होता नहीं। क्योंकि वहाँ सत्य वस्तु है। उस सत्य का आश्रय करता है, उसे आत्मज्ञान होता है। दूसरे सम्प्रदाय में यह वस्तु है ही नहीं। सत्य है ही नहीं। आहाहा! इसलिए यह दूसरे के सब अपवास कहलाते हैं।

यह भगवान के मार्ग में दिगम्बर दर्शन, वस्तु रागरहित और वस्त्ररहित मुनि, वस्तु रागरहित और वस्त्ररहित मुनि, ऐसा जो मार्ग ऐसा जिसे अन्तर में अनुभव में आया है... आहाहा! वह तपरूपी धन जिसे अतीन्द्रिय आनन्द की लहरें उठी हैं। समभाव वीतरागभाव में... आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द को चाटता है। उसे तप कहते हैं।

मुमुक्षु : त्याग किसे कहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का त्याग, वह त्याग है। यह अपवास मैं करता हूँ और मैंने पर का त्याग किया, वह मिथ्यात्वभाव है। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं। उसके बदले, मैंने आहार छोड़ा और मैंने यह अपवास ग्रहण किये—वह मिथ्यात्वभाव है, बापू! जरा बात बहुत सूक्ष्म है, बापू! जैनदर्शन ऐसा सूक्ष्म है।

यहाँ यह कहते हैं, **जो तपोधन धन धान्यादि का राग त्यागकर...** भाषा देखो! इस ओर धन और राग का त्याग तथा इस ओर तपोधन। समझ में आया? आहाहा! लक्ष्मी के प्रति लक्ष्य छोड़कर, राग का त्याग करके और जो तपोधन है। आहाहा! मार्ग बहुत अलग प्रकार का, भाई! आहाहा! जो स्व में अनन्त आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उसके सन्मुख हुआ है। सन्मुख हुआ अर्थात् दशा वीतरागी आनन्दसहित जिसकी दशा प्रगट हुई है। उसका नाम तप कहते हैं और उस काल में ऐसे अन्दर में राग का त्याग, बाह्य में धन आदि का त्याग (हो), उसे व्यवहार से त्याग कहते हैं। आहाहा!

तपोधन... एक ओर तपोधन कहा। वैसे तो तपोधन एक जाति होती है। सुनी है? हमारे गढडा में है। ब्राह्मण हो। तपोधन होता है। तपोधन है वहाँ। एक वकील है वहाँ गढडा में। तपोधन। वह तपोधन नहीं। वह नाम तपोधन है। वे यह अपवास आदि हैं, वह राग का भाग है। वह कहीं तप नहीं है, धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

आहाहा! **तपोधन...** अस्ति से कहा। अतीन्द्रिय आनन्द और समभाव जहाँ प्रगट हुआ है, वहाँ आगे विषमभाव का त्याग है। पुण्य-पाप, वह विषमभाव है और उनके निमित्तों का त्याग व्यवहार से कहने में आता है।

धन धान्यादि का राग त्यागकर.... यह आया न? भाई! नवलचन्दभाई! राग का त्याग आया। आहाहा! **राग त्यागकर परम शान्तभाव को आदरता है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन में शान्तभाव है, वह जघन्य है। सम्यग्दर्शन में शान्तभाव है परन्तु जघन्य है। अनन्तानुबन्धी का अभाव है, इतना है, और इन मुनि को उत्कृष्ट शान्तभाव है। जिन्हें तीन कषाय (चौकड़ी) का नाश होकर वीतरागरूपी समता का रस जिन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! **परम शान्तभाव को आदरता है,...** ऐसी शान्त की व्याख्या सूक्ष्म है।

अन्तर वीतरागस्वरूप भगवान, उसमें से वीतरागता प्रगट करना, उसे यहाँ शान्तभाव कहते हैं। कोई क्रोध करे और क्षमा करे, वह कहीं वस्तु नहीं है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा वस्तु का स्वरूप है। चैतन्य हीरा अन्दर अनमोल कीमत है उसकी। ऐसा चैतन्य हीरा भगवान, देहदेवल के हड्डियों में भिन्न विराजता है, जिसे जिसमें राग का भी त्याग है। आहाहा! वस्तु तो ऐसी है। परन्तु जिसने राग के त्याग की दशा प्रगट की और अतीन्द्रिय आनन्द की समता जिसने प्रगट की... आहाहा! वह तपोधन...

राजा-रंक को समान जानता है,... राजा हो या रंक हो, वे सब समान हैं। आहाहा! पुण्य के फलवाले हों या पाप के फल (वाले हों) दोनों समान, उनके प्रति समभाव है। राजा कुछ करोड़ों-अरबों की आमदनीवाला हो तो वह अधिक है, ऐसा शान्तभाव-समभाववाले को नहीं होता। समझ में आया? और गरीब मनुष्य हीन है, दीन है—ऐसा शान्तभाव / समभाववाले को नहीं होता। आहाहा! **राजा-रंक को समान जानता है, उसके दोष कभी नहीं हो सकता।** उसे दोष हो नहीं सकते। आहाहा! **सदा स्तुति के योग्य है,...** आहाहा! धन्य अवतार! जिसने सम्यग्दर्शनसहित अतीन्द्रिय आनन्द की उग्रता समभाव की प्रगट हुई है... आहाहा! वह तो स्तुति के योग्य है, प्रशंसा के योग्य है।

तो भी शब्द की योजना से... शब्द की योजना से **निन्दा द्वारा स्तुति की गयी है,...** यह श्लेषरूप अलंकार है। नीचे कहा है। **वह इस तरह से है कि शत्रु शब्द से कहे गये जो ज्ञानावरणादि कर्म-शत्रु उनको छोड़कर...** शत्रु अपने आधीन थे, उन्हें छोड़

दिया। आहाहा! दुश्मन वश हो गया था, उसे छोड़ दिया। यह सब बड़े होते हैं न? क्या? डाकू-डाकू। वे डाकू कितने ही वश हो गये हैं न? वहाँ कैसा बेगमगच्छ?

मुमुक्षु : चम्बल-चम्बल।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बेगमगच्छ। बेगमगच्छ में हम गये थे तीन-चार बार। वहाँ उतारे थे, वहाँ उन लोगों का जेलखाना था। वहाँ बड़े-बड़े डाकू थे। तीन तो बड़े डाकू थे और इसके अतिरिक्त २०-२५ दूसरे। बेगमगच्छ था न? उन्हें खबर पड़ी कि महाराज यहाँ हैं। नजदीक में हम यहाँ थे और उनका जेलखाना सामने बहुत नजदीक था। उन्हें बाहर जाने की छूट। आठ-दस दिन घर जा आवे। परन्तु वापस आना चाहिए यहाँ। तीन तो बड़े डाकू थे बड़े, लाखों को मार डाले न! बेचारे उन लोगों ने कहा कि हमें महाराज के दर्शन करने हैं। महाराज यहाँ नजदीक आये हैं। फिर हुक्म मँगाया था उन लोगों ने। सेठ साथ में थे। भगवानदास सागरवाले सब अन्दर हम जेल में गये वापस दरवाजा बन्द कर दे न! फिर जेल में आये। सब थे बेचारे। बड़े डाकू जोरदार तीन तो। महा लूट करके कुछ... परन्तु यहाँ तो कहा, बापू! अज्ञान से यह सब होता है। आत्मा से (नहीं)। आत्मा तो आनन्दकन्द है, प्रभु! अज्ञान के कारण यह सब (होता है)। वे तो बेचारे सुनते थे। लगभग दस मिनिट व्याख्यान दिया। फिर उन्होंने सबने माला चढ़ायी, रखी। यह माला नहीं आती वह? सूत की रंगीन रेशम जैसी। रेशम जैसी। है तो रुई की। परन्तु डाकू ने खड़े होकर पैरों में (रखी)। कहा, बापू! यह तो आत्मा का मार्ग है। अज्ञानरूप से जीव क्या न करे? सुने परन्तु उन्हें कहाँ बेचारों को... वे तो नजदीक थे, एकदम नजदीक उतरे हुए। हम बाहर उतरे थे, गाँव के बाहर उतरे थे। और वहाँ जेलखाना साथ में था। आहाहा! वे डाकू वश हो गये थे। वश हो गये, उन्हें छोड़ दिया। अब जाओ।

यहाँ कहते हैं कि आठ कर्म वश थे, उन्हें छोड़ दिया। शत्रु वश पड़े थे, उन्हें छोड़ दिया। यह निन्दा द्वारा स्तुति है। आहाहा! वास्तव में ज्ञानावरणीय आदि कर्म शत्रु नहीं है। शत्रु तो उसका पूर्ण विकारीभाव, वह शत्रु है। निश्चय से शत्रु अपना विकारीभाव, वह शत्रु है। ऐसा कहा। कर्म तो जड़ है, वह तो पर है, उसके साथ क्या? वह तो निमित्त है, वह तो ज्ञेय है। परन्तु यहाँ निमित्त से बात की है।

जो ज्ञानावरणादि कर्म-शत्रु उनको छोड़कर पर शब्द से कहे गये परमात्मा का आश्रय करता है। आहाहा! पर का अर्थ यह किया। परमात्मा स्वयं... आहाहा! जिसकी ज्ञान की नजरों में परमात्मा वर्ते। आहाहा! जिसकी ज्ञान की नजरों में परमात्मा ऐसे वर्ते। आहाहा! वह पर के आश्रय हुआ। आहाहा! **परमात्मा का आश्रय करता है। इसमें निन्दा क्या हुई, बल्कि स्तुति ही हुई। परन्तु लोकव्यवहार में अपने आधीन शत्रु को छोड़कर किसी कारण से पर शब्द से कहे गये शत्रु के आधीन आप होता है,...** आहाहा! **इसलिए लौकिक-निन्दा हुई; यह शब्द के निन्दा-स्तुति की गयी।** इस द्वारा स्तुति की है, कि ओहो! प्रभु! रागादि दुश्मन तेरे आधीन थे, उन्हें तुमने छोड़ दिया और भगवान परमात्मा के आधीन तुम हुए। आहाहा!

महाप्रभु का जिसने सहारा लिया, पूर्णानन्द का नाथ भगवान अन्दर चैतन्य हीरा, उस चैतन्य भगवान का जिसने सहारा लिया। ओथ समझते हो? ओथ-ओथ, आसरा, शरण। शरण-शरण। शरण कहते हैं। उसकी शरण ली, कहे। बड़े की शरण लेते हैं न गरीब मनुष्य? शरण ले। आहाहा! इसी प्रकार हे नाथ! आपने समभाव से आत्मा की शरण ली, परमात्मा का आश्रय लिया। रागादि जो दुश्मन थे, वे तुम्हारे वश थे, उन्हें छोड़ दिया। आहाहा! देखो! यह परमात्मप्रकाश। आहाहा! मार्ग ऐसा है, बापू!

मुमुक्षु : अगली गाथा में लिया, हत्या करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हत्य करते हैं वे। यहाँ कहते हैं, शत्रु है। दूसरे प्रकार से बताया न! बन्धु हैं न वह बन्धु? बन्ध अर्थात् बन्धु, ऐसा। बन्धु की हत्या करनेवाले। ऐसा कहकर इन्होंने महिमा की है ऐसे तो। आपने शत्रु का तो नाश कर दिया। आहाहा! बन्धुरूप से थे। बन्धरूप से अनादि से साथ में (थे)। अनादि से साथ के साथ कर्म थे। यह भाई तो अभी अलग भी पड़ जाये। थोड़े वर्ष रहे। फिर बड़े वृद्ध हो गये ५०, ६०, ४० वर्ष में सब भिन्न हो जाये। और यह तो अनादि से आत्मा-कर्म अनादि से साथ के साथ हैं ऐसे के ऐसे। किसी समय छोड़ा नहीं इसने। आहाहा! ऐसे शत्रु को, बन्धु को मार डाला तूने। आहाहा! इस द्वारा स्तुति है। यह तो अध्यात्म की बातें हैं, बापू! **इसलिए लौकिक-निन्दा हुई; यह शब्द के निन्दा-स्तुति की गयी। वह शब्द से श्लेष होने से रूप अलंकार कहा गया है।** लो!

गाथा - ४६

अथ –

१६९) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो समभाउ करेइ।
वियलु हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।।४६।।

अन्यः अपि दोषः भवति तस्य यः समभावं करोति।
विकलः भूत्वा एकाकी उपरि जगतः आरोहति।।४६।।

अण्णु वि इत्यादि। अण्णु वि न कैवलं पूर्वोक्तऽन्योऽपि दोसु हवेइ भवति। तसु तस्य तपस्विनः। यः किं करोति। जो सम-भाउ करेइ यः कर्ता समभावं करोति। पुनरपि किं करोति। वियलु हवेविणु विकलः कलरहितः शरीररहितो भूत्वा इक्कलउ एकाकी पश्चात् उप्परि जगहं चडेइ उपरितनभागे जगतो लोकस्यारोहणं करोतीति। अयमत्राभिप्रायः। यः तपस्वी रागादि-विकल्परहितस्य परमोपशमरूपस्य निजशुद्धात्मनो भावनां करोति स सकलशब्दवाच्यं शरीरं मुक्त्वा लोकस्योपरि तिष्ठति तेन कारणेन स्तुतिं लभते अथवा यथा कोऽपि लोकमध्ये चित्तविकलो भूतः सन् निन्दां लभते तथा शब्दच्छलेन तपोधनोऽपीति।।४६।।

आगे समदृष्टि की फिर भी निंदा-स्तुति करते हैं –

जो समभावरूप परिणमता उसे और भी होते दोष।
अशरीरी होकर भी आरोहण करता है तीनों लोक।।४६।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो तपस्वी महामुनि [समभावं] समभाव को [करोति] करता है, [तस्य] उसके [अन्यः अपि] दूसरा भी [दोषः] दोष [भवति] होता है, जोकि [विकलः भूत्वा] शरीर रहित होके अथवा बुद्धि धन वगैरः से भ्रष्ट होकर [एकाकी] अकेला [जगतः उपरि] लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर [आरोहति] चढ़ता है।

भावार्थ :- जो तपस्वी रागादि रहित परम उपशमभावरूप निज शुद्धात्मा की भावना करता है, उसकी शब्द के छल से तो निंदा है, कि विकल अर्थात् बुद्धि वगैरह से भ्रष्ट होकर लोक अर्थात् लोकों के ऊपर चढ़ता है। यह लोक-निंदा हुई। लेकिन असल में ऐसा अर्थ है, कि विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर तीन लोक के शिखर (मोक्ष) पर विराजमान हो जाता है। यह स्तुति ही है। क्योंकि जो अनंत सिद्ध हुए, तथा होंगे, वे शरीर रहित निराकार होके जगत् के शिखर पर विराजे हैं।।४६।।

गाथा-४६ पर प्रवचन

आगे सम्यग्दृष्टि की फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं:-सम्यग्दृष्टि की। आहाहा! ४६।

१६९) अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो समभाउ करेइ।
वियलु हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।।४६।।

अन्वयार्थ :— आहाहा! **जो तपस्वी महामुनि समभाव...** अतीन्द्रिय आनन्दसहित जिसे समभाव प्रगट हुआ है। वे मुनि—सच्चे सन्त। जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द और वीतरागता प्रगट हुई है, वे सच्चे सन्त। महाव्रत पाले और नग्न हैं, इसलिए वे साधु हैं—ऐसा नहीं है। आहाहा! **जो तपस्वी महामुनि समभाव को करता है,...** आहाहा! परन्तु समभाव की यह व्याख्या की। सर्वथा राग-द्वेष छोड़कर वीतरागता की दशा प्रगट करे, अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र स्वाद में आवे, उसे समता और समभाव कहते हैं। यह मुनि की स्थिति होती है। आहाहा!

भावलिंगी सन्त सच्चे... आहाहा! जिन्हें नींद भी पौन सेकेण्ड की होती है। पिछली रात्रि में... आता है न छहढाला में? 'पिछली रयनी...' एक करवट, इस ओर हो तो इस ओर, बस। इस ओर हो तो इस ओर। करवट बदलते नहीं। आहाहा! यह मुनि की दशा, बापू! सच्चे मुनि भावलिंगी की क्या स्थिति! लोगों को खबर नहीं। नग्न हुए, इसलिए हो गये मुनि। पंच महाव्रत के विकल्प धारण किये, इसे माने। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने... आहाहा! **समभाव को करता है, उसके दूसरा भी दोष होता है, जो कि शरीर रहित होके अथवा बुद्धि धन वगैरह से भ्रष्ट होकर...** यह अज्ञान की बुद्धि और मतिज्ञान की बुद्धि, वह भी आपने तो छोड़ दिया। आहाहा! केवलज्ञान पाते हैं तो यह बुद्धि छोड़ दी, भ्रष्ट हो गये। आहाहा! **बुद्धि धन वगैरह से भ्रष्ट होकर...** ठीक! अल्प ज्ञान की बुद्धि थी, उसे छोड़ दी, प्रभु! आपने महा समभाव प्रगट करके केवलज्ञान लिया। आहाहा! समझ में आया? **बुद्धि धन वगैर:...** यहाँ भी जो बुद्धि और धन रहित होते हैं, उसे पागल कहते हैं न? बुद्धि न हो, धन न हो तो हो गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **बुद्धि धन वगैरह से भ्रष्ट होकर अकेला...** कुछ नहीं होता साथ में। आहाहा! **लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर चढ़ता है।** जैसे यहाँ पागल

मनुष्य दूसरे के ऊपर चढ़ना चाहे न? आहाहा! जिसे अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित वीतरागता प्रगट हुई है, वह तो शरीररहित होकर, बुद्धि-धनरहित होकर लोक के ऊपर चढ़ेगा। जहाँ सिद्ध स्थान है वहाँ। आहाहा! **लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर... 'जगतः उपरि'** आहाहा!

भावार्थ :— जो तपस्वी रागादि रहित परम उपशमभावरूप... देखो! अब आया। महाव्रत के परिणाम भी राग है। वह आस्रव है। आहाहा! भावसन्त को उससे रहित **परम उपशमभावरूप...** परम उपशमरस। समता... समता... समता... किसकी? यह **निज शुद्धात्मा की भावना...** निज शुद्धात्मा की भावना, वह परम शान्तभाव। आहाहा! समझ में आया? भगवान की भावना करे, वह तो राग है। परमात्मा पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि, वह तो राग है। यह तो निज शुद्धात्मा की। आहाहा! रागादि रहित होकर... आहाहा! अन्दर चैतन्य हीरा भगवान परमस्वभाव, उसमें जो लपेट हो जाता है, एकाकार हो जाता है। (वह) भावना। परमस्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता... आहाहा! करता है।

उसकी शब्द के छल से तो निन्दा है, कि विकल अर्थात् बुद्धि वगैरह से भ्रष्ट होकर लोक अर्थात् लोकों के ऊपर चढ़ता है। बुद्धि नहीं होती, लक्ष्मी नहीं होती और लोक के ऊपर बड़े होकर बैठे। आहाहा! **यह लोक-निन्दा हुई। लेकिन असल में ऐसा अर्थ है कि विकल अर्थात् शरीर से रहित... विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर तीन लोक के शिखर (मोक्ष) पर विराजमान हो जाता है।** आहाहा! वह विकल कहलाता है। विकल अर्थात् ऐसे गहल कहलाता है। और यहाँ विकल अर्थात् वि-कळ। कळ अर्थात् शरीररहित। वि-रहित, कळ-शरीर। विकळ—शरीररहित। आहाहा! और ऐसे विकळ अर्थात् बुद्धि बिना के मनुष्य। धन और बुद्धि बिना के, वे पागल विकल कहलाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसका अर्थ यह हुआ कि अक्ल नहीं हो और पैसा हो तो विकल...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहने का था। हो पैसावाला और हो ऐसा पागल जैसा, परन्तु कहलाये चतुर। करोड़पति। और गरीब मनुष्य हो चतुर तो (ऐसा कहे कि) इसे बुद्धि कहाँ है? आहाहा! दुनिया की विपरीतता है सब। पैसेवाले का लड़का हो समझने जैसा, मूर्ख जैसा हो तो भी चतुर कहलाये। भाईसाहेब... भाईसाहेब.. भाईसाहेब (करे)।

और गरीब व्यक्ति का लड़का हो चतुर, होशियार। मुश्किल से पचास-सौ रुपये वेतन लाता हो। यह तो अभी पचास-सौ (वेतन हो गया)। पहले तो पाँच रुपया मासिक वेतन था। बस। ढाई रुपया। और डेढ़ रुपया बढ़े। वह तो खर्च कहाँ था। गरीब का लड़का होशियार हो। परन्तु यह पैसा बहुत नहीं आता हो, वेतन साधारण हो तो वह साधारण कहलाता है और वह (धनिक) बुद्धि बिना का खाली बारदान हो, परन्तु लाख-दो लाख पैदा करता हो।

मुमुक्षु : सेठ के लड़के तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हो बाहर में तो ? बाहर में तो पैसे का मान है दुनिया को। अन्तर में तो तपोधन का मान है।

जिसने इच्छा तोड़ डाली और अतीन्द्रिय आनन्द का उफान पर्याय में आया है। आहाहा! जैसे समुद्र में किनारे ज्वार आता है न, ज्वार ? समुद्र के किनारे पानी का ज्वार (आवे), उसी प्रकार आत्मा की पर्यायरूपी किनारे अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार (आता है)। आहाहा! यह शरीररहित हो जाता है। विकळ हो जाता है। विकळ अर्थात् शरीररहित। आहाहा! ओहोहो! क्या यह...!

परम उपशमभावरूप निज शुद्धात्मा की... आहाहा! परम उपशमरसभाव अकषायभाव, वीतरागभाव **निज शुद्धात्मा की भावना (एकाग्रता) करता है,...** भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा में जो एकाग्रता करता है, बाहर का भूल जाता है। आहाहा! **उसकी शब्द के छल से तो निन्दा है,...** लोक में तो यह कहा जाता है कि यह लोक के ऊपर चढ़ता है। बुद्धि बिना का ऊपर तीन मंजिल में चढ़ गया, अमुक चढ़ गया। किसी का मकान हो, वहाँ चढ़ जाये न ऊपर ? **असल में ऐसा अर्थ है कि विकल अर्थात् शरीर से रहित होकर तीन लोक के शिखर (मोक्ष) पर विराजमान हो जाता है। यह स्तुति है। क्योंकि जो अनन्त सिद्ध हुए...** आहाहा! **अनन्त सिद्ध हुए, तथा होंगे, वे शरीररहित निराकार होके...** विकळ-विकळ। **शरीर रहित निराकार होके जगत के शिखर पर विराजे हैं।** आहाहा! समझ में आया ?

बाहर के मनुष्य धन और बुद्धिरहितवाले को विकळ कहा जाता है। यह धन और बुद्धिरहित को विकळ कहा जाता है। स्वरूप की लक्ष्मीवाले को शरीररहित को विकळ कहते हैं। आहाहा! यह ४६ गाथा हुई।

गाथा - ४६-१

अथ स्थलसंख्याबाह्यं प्रक्षेपकं कथयति –

१७०) जा णिसि सयलहँ देहियहँ जोग्गिउ तहिं जग्गेइ।
जहिं पुणु जग्गइ सयलु जगु सा णिसि मणिवि सुवेइ।।४६–१।।

या निशा सकलानां देहिनां योगी तस्यां जागर्ति।
यत्र पुनः जागर्ति सकलं जगत् तां निशां मत्वा स्वपिति।।४६–१।।

जा णिसि इत्यादि। जा णिसि या वीतरागपरमानन्दैकसहजशुद्धात्मावस्था मिथ्यात्वरागाद्यन्धकारावगुण्ठिता सती रात्रिः प्रतिभाति। केषाम्। सयलहं देहियहं सकलानां स्वशुद्धात्मसंवित्तिरहितानां देहिनाम्। जोग्गिउ तहिं जग्गेइ परमयोगी वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानरत्नप्रदीपप्रकाशेन मिथ्यात्वरागादिविकल्पजालान्धकारमपसार्य स तस्यां तु शुद्धात्मना जागर्ति। जहिं पुणु जग्गइ सयलु जगु यत्र पुनः शुभाशुभमनोवाक्कायपरिणामव्यापारे परमात्मतत्त्वभावनापराङ्मुखः सन् जगज्जागर्ति स्वशुद्धात्मपरिज्ञानरहितः सकलोऽज्ञानी जनः सा णिसि मणिवि सुवेइ तां रात्रिं मत्वा त्रिगुप्तिगुप्तः सन् वीतरागनिर्विकल्पसमाधियोगनिद्रायां स्वपिति निद्रां करोतीति। अत्र बहिर्विषये शयनमेवोपशमो भण्यत इति तात्पर्यार्थः।।४६–१।।

आगे स्थलसंख्या के सिवाय क्षेपक दोहा कहते हैं –

अज्ञानी के लिए रात्रि जो, उसमें योगी जागृत हैं।
जहाँ जागते संसारीजन वहाँ योगिजन सोते हैं।।४६–१।।

अन्वयार्थ :– [या] जो [सकलानां देहिनां] सब संसारी जीवों की [निशा] रात है, [तस्यां] उस रात में [योगी] परम तपस्वी [जागर्ति] जागता है, [पुनः] और [यत्र] जिसमें [सकलं जगत्] सब संसारी जीव [जागर्ति] जाग रहे हैं, [तां] उस दशा को [निशां मत्वा] योगी रात मानकर [स्वपिति] योग निद्रा में सोता है।

भावार्थ :– जो जीव वीतराग परमानंदरूप सहज शुद्धात्मा की अवस्था से रहित हैं, मिथ्यात्व रागादि अंधकार से मंडित हैं, इसलिये इन सबों को वह परमानंद अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है। कैसे ये जगत के जीव हैं, कि आत्म–ज्ञान से रहित हैं, अज्ञानी हैं, और अपने स्वरूप से विमुख हैं, जिनके जाग्रत–दशा नहीं हैं, अचेत सो रहे

हैं, ऐसी रात्रि में वह परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अंधकार को दूरकर अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है। तथा शुद्धात्मा के ज्ञान से रहित शुभ, अशुभ, मन, वचन, काय के परिणमनरूप व्यापारवाले स्थावर जंगम सकल अज्ञानी जीव परमात्मतत्त्व की भावना से परान्मुख हुए विषय-कषायरूप अविद्या में सदा सावधान हैं, जाग रहे हैं, उस अवस्था में विभावपर्याय के स्मरण करनेवाले महामुनि सावधान (जागते) नहीं रहते। इसलिये संसार की दशा से सोते हुए मालूम पड़ते हैं। जिनको आत्मस्वभाव के सिवाय विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है। उस प्रपंच को रात्रि के समान जानकर उसमें याद नहीं रखते, मन, वचन, काय की तीन गुप्ति में अचल हुए वीतराग निर्विकल्प परम समाधिरूप योग-निद्रा में मगन हो रहे हैं। सारांश यह है, कि ध्यानी मुनियों को आत्मस्वरूप ही गम्य है, प्रपंच गम्य नहीं है, और जगत के प्रपंची मिथ्यादृष्टि जीव, उनको आत्मस्वरूप की गम्य (खबर) नहीं है, अनेक प्रपंचों में (झगड़ों में) लगे हुए हैं। प्रपंच की सावधानी रखने को भूल जाना वही परमार्थ है, तथा बाह्य विषयों में जाग्रत होना ही भूल है।।४६-१।।

गाथा-४६-१ पर प्रवचन

अब **क्षेपक दोहा कहते हैं—** लो, ४७। ४६ का पहला भाग है।

१७०) **जा णिसि सयलहँ देहियहँ जोग्गिउ तहिँ जग्गेइ।**
जहिँ पुणु जग्गइ सयलु जगु सा णिसि मणिवि सुवेइ।।४६-१।।

यह गीता में एक श्लोक है न? इस प्रकार का। अपने में है न? श्रुता: मोक्षमार्गप्रकाशक में रखा है। यह कहते हैं।

अन्वयार्थ :— जो सब संसारी जीवों की रात है,... क्या कहते हैं? संसारी जीवों की जो रात है अर्थात् आत्मा का प्रकाश जिन्हें नहीं। आहाहा! जिन्हें आत्मज्ञान और आत्मा का प्रकाश नहीं, वह सब संसारी जीव की रात है। आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आत्मा का भान नहीं, उसे आत्मा का भान, वह रात समान है। आहाहा! समझ

में आया ? **उस रात में परम तपस्वी जागता है,...** आहाहा ! उस रात में परम तपस्वी जागते हैं। संसारिओं की जो रात है, उसमें मुनि जागते हैं। आहाहा ! संसारी प्राणी की रात परमात्मा—आत्मस्वरूप, वह उनकी रात है। उसमें वह आया नहीं उसे। आहाहा !

उस रात में परम तपस्वी जागता है,... आहाहा ! शुद्ध चैतन्यघन प्रकाश की मूर्ति प्रभु, अज्ञानी उसे रात मानते हैं। अर्थात् उसे अन्धेरा मानते हैं। उन्हें बात ख्याल में आयी नहीं। जो बाहर की चीज़ अन्धेरा है, वे उसे दिन मानते हैं। आहाहा ! यह पैसे से बढ़े, इज्जत से बढ़े, शरीर से बढ़े, वह सब अन्धेरे में बढ़ा है। उसमें वह बढ़ा है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा ! समझ में आया ? **उस रात में परम तपस्वी जागता है,...** आहाहा ! धर्मी तो अपने आनन्दस्वरूप में जागता है। उस आनन्दस्वरूप में संसारी रात्रिरूप से वहाँ जागता नहीं। वहाँ सो गया है। आहाहा !

और जिसमें सब संसारी जीव जाग रहे हैं,... आहाहा ! राग, पुण्य, पाप, विकल्प, विषयभोग, वासना, लक्ष्मी, कीर्ति में संसारी प्राणी सब जाग रहे हैं। आहाहा ! उसमें वे अंधेरे में जाग रहे हैं। आहाहा ! उसका ध्यान-सावधानी बराबर सवेरे से शाम तक... ओहोहो ! **संसारी जीव (सकल जगत) जाग रहे हैं,...** विकारी भाव और विकारी के निमित्त की ओर की सावधानी में वे हैं। आहाहा ! **इस दशा को योगी रात मानकर...** आहाहा ! वह विकार और विकार के निमित्त को रात मानकर वहाँ सो गये हैं, धर्मी वहाँ जागते नहीं। आहाहा ! संसार के उसे चतुर कहे। दुकान का धन्धा, उसमें प्रवीण हो माल लाने में, बेचने में, लेने-देने में शीघ्रता चलाता हो और दिन में पाँच-पाँच हजार पैदा करता हो। ओहोहो ! भाई ! यह तो कर्मी है, भाई ! बात सच्ची। कर्मी अर्थात् कर्म को बाँधनेवाला है। परन्तु दुनिया उसे (कर्मी माने)। उसमें वह जागता है। जो अन्धेरा है, राग और द्वेष परवस्तु स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सब अन्धेरा है, जो इसमें नहीं, उसमें यह जागता है। धर्मी उसमें सो गया है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा ! **सब संसारी जीव जाग रहे हैं, उस दशा को योगी रात मानकर योग निद्रा में सोता है।** आहाहा !

भावार्थ :— जो जीव वीतराग परमानन्दरूप एक सहज शुद्धात्मा की... वहाँ 'एक' शब्द पड़ा रहा है। वहाँ भी 'एक' शब्द पड़ा रहा है। सब जगह 'एक' का अर्थ

नहीं करते ये। **जो जीव वीतराग परमानन्दरूप एक सहज शुद्धात्मा की अवस्था से रहित हैं,...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप की अवस्था से जो रहित है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भले स्वयं राजा हो, बड़ा देव हो, करोड़पति सेठिया हो। आहाहा! परन्तु जो वीतराग परमानन्द एक शुद्ध स्वभाव आत्मा से रहित है। भगवान आत्मा के स्वभाव से रहित है, उन्हें—सबको मुर्दा कहा है। आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यात्व रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,... आहाहा! भगवान आत्मा पवित्र चैतन्य चमत्कारी वस्तु प्रभु... आहाहा! उस दशा से रहित है। उसके भान श्रद्धा-ज्ञान से रहित है। आहाहा! और दुनिया के चतुर के चतुराई का पुत्र होकर घूमे। नामा लिखे बड़ा ऐसा और ऐसा। हो... हो... मोती के अक्षर जैसा नामा लिखे। बहुत होशियार कहलाये। आहाहा! यह नामा लिखनेवाला ऐसा होशियार हो न कि तीन-चार व्यक्ति नामा के लिए रखे। बड़ी-बड़ी दुकानें हों न। वहाँ से दो सौ-तीन सौ वह देता हो, दो सौ-तीन सौ वह देता हो, उसमें हजार-पन्द्रह सौ आवे। यह नामा लिखनेवाले होशियार होते हैं न? तीन-चार जगह रखे नामा। दो घण्टे वहाँ जा आवे... दो घण्टे वहाँ जा आवे... दो घण्टे वहाँ जा आवे। हजार-पन्द्रह सौ रुपये आवे। आहाहा! वह **शुद्धात्मा की अवस्था से रहित है,...** अन्धकार सहित है। आहाहा!

मिथ्यात्व रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,... आहाहा! विपरीत मान्यता—शरीर मेरा, राग मेरा, स्त्री मेरी, पुत्र मेरा, मकान मेरा, पैसा, इज्जत... आहाहा! ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव **रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,...** आहाहा! मिथ्या अभिप्राय और राग से अन्धकार में सहित हैं वे तो। आहाहा! **इसलिए इन सबों को यह परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है।** आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा परमानन्द की तो उसे कुछ खबर भी नहीं होती और यह सब बाहर की चतुराई की बातें। आहाहा! देखा! **सबों को यह परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है।** उसकी कोई कीमत ही नहीं है, ऐसा। परमानन्द ऐसा आत्मा भगवान, उसकी कुछ कीमत इसके पास नहीं। कीमत इस पैसे की, इज्जत की और स्त्री-पुत्र कुछ हुए हों। आहाहा! उसमें सात-आठ-दस-बारह लड़के हों और एक-एक लड़का लाख-लाख कमाता हो और स्वयं उनका बाप होकर सिर पर घूमता हो। आहाहा! कहो, जादवजीभाई! ऐसी बातें हैं यहाँ तो। आहाहा!

परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है। आहाहा! अवस्था ली है, हों! टीका में अवस्था ली है। **वीतराग परमानन्दरूप एक सहज शुद्धात्मा की अवस्था...** ऐसा। यहाँ बाहर की अवस्था में जागृत है, अन्दर की अवस्था में सो रहा है। आहाहा! भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, उसकी जो अवस्था आनन्द की, धर्म की। धर्म की अवस्था, वह अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की अवस्था। आहाहा! उसे धर्म कहते हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आवे, उसे धर्म कहते हैं। वह परमानन्द की अवस्था **रात्रि के समान मालूम होती है।** अज्ञानी की। उसकी उसे कुछ कीमत ही नहीं। आहाहा! और उसके पुण्य की तथा पुण्य के फल की उसे कीमत है। संसार में गहरे उतरनेवाले हों, उनकी उसे कीमत। आहाहा!

भगवान संसाररहित प्रभु, अन्दर चैतन्य आनन्दस्वरूप की अवस्था ली है, हों! क्योंकि वस्तु है, उसमें जागता नहीं तो वह अवस्था ही नहीं, ऐसा कहना है। उसे परमानन्द की अवस्था ही नहीं। परमानन्द की दृष्टि नहीं, इसका अर्थ कि परमानन्द की अवस्था नहीं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? परमानन्द की दृष्टि नहीं, इसका अर्थ कि परमानन्द की अवस्था नहीं। समझ में आया? आहाहा! आनन्द का नाथ भगवान प्रभु, परमात्मस्वरूप विराजमान, उसकी आनन्द की अवस्था नहीं, वे सब **अन्धकार से मण्डित हैं,...** आहाहा! कथनी भी कैसी?

धर्मदशा उसे कहते हैं कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द हो। ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह सब अपवास कर-करके मर जाये, वहाँ तो अकेला राग है। वहाँ कहाँ धर्म है? आहाहा! समझ में आया? जिसे परमानन्दस्वभाव दृष्टि में नहीं अर्थात् जिसकी अवस्था में नहीं। आहाहा! जिसकी अवस्था में परमानन्ददशा आयी नहीं। आहाहा! वह **मिथ्यात्व रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,...** आहाहा! **इसलिए इन सबों को वह परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है।** है ही नहीं उसे तो, ऐसा कहते हैं। जैसे रात्रि में प्रकाश नहीं, उसी प्रकार उसे यह प्रकाशस्वरूप है ही नहीं कुछ। यह सब राग और पुण्य और पुण्य के परिणाम और बस यह। आहाहा! गजब बात करते हैं न! अज्ञानी अपवास करे, दया, दान करे, व्रत करे परन्तु वह सब विकल्प अन्धकार है, अज्ञान है। आहाहा! उसमें वह जागता है। उसे परमानन्द की अवस्था रात्रि समान है। यह सब बाहर में इज्जत,

कीर्ति, दुनिया महिमा करे, दुनिया बड़ा (माने) और बड़ा अभिनन्दन दे, वह उसे जागती दशा लगती है। (वह तो) अन्धेरा है। आहाहा! शैली यह परमात्मप्रकाश की...

भगवान आत्मा, सम्यग्दर्शन में इस पूर्णानन्द की प्रतीति में अतीन्द्रिय आनन्द का अन्दर स्वाद होता है। ऐसी परमात्मा की शुद्ध अवस्था, वह अज्ञानी को रात्रि समान है। उसे कुछ खबर ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! **परमानन्द अवस्था रात्रि के समान मालूम होती है। कैसे ये जगत के जीव हैं ? - कि आत्म-ज्ञान से रहित हैं,...** आहाहा! जिन्हें भगवान आत्मा का ज्ञान ही नहीं और राग, पुण्य और पाप के भाव तथा उनके फल में रुके हुए हैं, उन्हें वह जागृत अवस्था, वह उन्हें अधिक है। अन्दर परमात्मदशा की अवस्था उन्हें रात्रि समान लगती है। उसमें क्या है ? (ऐसा उन्हें लगता है)। आहाहा!

कैसे ये जगत के जीव हैं, आत्म-ज्ञान से रहित हैं,... जिन्हें भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु की मौजूदगी का जिन्हें अन्तर में ज्ञान नहीं, उसकी अस्ति का जिन्हें अन्तर पर्याय में स्वीकार नहीं... आहाहा! वे **आत्म-ज्ञान से रहित हैं, अज्ञानी हैं,...** भले बाहर में बड़े राजा करोड़ोंपति कहलाते हों, परन्तु सब अन्धकार में पड़े हुए अज्ञानी हैं। आहाहा! और नरक में—सातवें नरक का नारकी समकिती ज्ञानी है। आहाहा! जिसे एक पानी की बूँद मिलती नहीं ३३ सागर (तक)। आहार का कण मिलता नहीं ३३ सागर (तक)। समकित न हो उसे। सातवें में उत्पन्न हो, उसे मिथ्यात्व होता है, फिर निकले तब वापस मिथ्यात्व (होता है), बीच में समकित होता है। ३३ सागर जाये न सातवें नरक में ? आहाहा!

कहते हैं कि जो आत्मज्ञानी है, वह जागृत है। आहाहा! और इस आत्मज्ञान बिना के वे सब अन्धकार में रात्रि है उन्हें वह। आहाहा! इसे फैलाव कुछ मिले नहीं सातवें नरक में, तथापि सम्यग्दर्शन है, वह जागती ज्योति है। और यहाँ आत्मज्ञानरहित प्राणी को पाँच-पाँच लाख की दिन की आमदनी हो और यह बड़ा फैलाव परिवार, राग आदि (हो), वह सब अन्धकार में पड़े हैं, कहते हैं। आहाहा! वह जागृत है, उसमें अज्ञानी को अन्धकार है। और जिसमें ज्ञानी सो गये हैं, उसमें से निकलकर (उसमें) उसे—अज्ञानी को समृद्धि लगती है। आहाहा! समझ में आया ? धर्मी और अधर्मी के माप अलग हैं।

अपने स्वरूप से विमुख हैं,... अज्ञानी तो अपना स्वरूप जो ज्ञानानन्द... आहाहा! उसके सन्मुख न होकर विमुख है, कहते हैं। आहाहा! **जिनके जागृत दशा नहीं है,...** आत्मा की आनन्ददशा जिसे नहीं है। आहाहा! परमात्मप्रकाश इस प्रकार से वर्णन करते हैं। अलग-अलग प्रकार से। आचार्य अलग हैं न! आहाहा! **अचेत सो रहे हैं,...** आहाहा! यह लक्ष्मी, इज्जत और कीर्ति तथा पुण्य-पाप में हैं, वे **अचेत सो रहे हैं,...** जड़ होकर सो रहे हैं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **अचेत सो रहे हैं,...** अचेत हैं, जड़ हैं। आहाहा! वह राग और पुण्य-पाप और उसके फल में जागती ज्योति है, वह अचेत है, कहते हैं। वह अजीव है।

ऐसी रात्रि में वह परमयोगी वीतराग... है? **परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से...** आहाहा! भाषा तो देखो! सम्यग्दृष्टि परमयोगी। यहाँ विशेष मुनि की बात है। शब्द यह था (कि) सम्यग्दृष्टि की, फिर भी निन्दा-स्तुति करते हैं, ऐसा शब्द है। **रात्रि में वह परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी...** आहाहा! जिसे आत्मा का वीतरागी वेदन है... आहाहा! स्वसंवेदनज्ञान है। अपने आत्मा का—स्व, प्रत्यक्ष वेदन है ज्ञान का। आहाहा! **रत्नदीप के प्रकाश से...** उस रत्नदीप के प्रकाश से। आहाहा! जिसने **मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर...** आहाहा! चैतन्य रत्नाकर का भान करके, भले आठ वर्ष की बालिका गरीब की लड़की हो और मजदूरी करके (रहती हो)। आहाहा! परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन रत्न प्रगट हुआ है, कहते हैं। आहाहा! उससे **मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर...** मिथ्यात्वसहित राग-द्वेष का नाश यहाँ तो बतलाना है न उत्कृष्ट। **अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है।** आहाहा! नौकरानी हो, काम करनेवाली बर्तन माँजती हो, परन्तु यदि समकिती है तो अपने स्वरूप में सावधान है। आहाहा! वह जागृत है। और उसकी रानी तथा राजा बड़े हैं, वे अन्धकार में—मिथ्यात्व और राग में पड़े हैं, वे अन्धकार में पड़े हैं और भगवान आत्मा का प्रकाश है, (वह) उन्हें रात्रि समान लगता है। उसकी कोई कीमत नहीं है। आहाहा! इसकी कीमत। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ३, मंगलवार
दिनांक-०९-११-१९७६, गाथा-४६-१, प्रवचन-१२८

परमात्मप्रकाश, ४६ का पहला भाग। एक ४६ आ गयी है। यह तो क्षेपक है। पहले यहाँ से फिर से।

कैसे ये जगत के जीव हैं ? - कि आत्म-ज्ञान से रहित हैं,... आत्मा चैतन्यस्वरूप आनन्द, उसके ज्ञान से रहित जगत है। **मिथ्यात्व रागादि अन्धकार से मण्डित हैं,... अज्ञानी हैं, और अपने स्वरूप से विमुख हैं,...** रागादि परपदार्थ के सन्मुख है। सन्मुख। अपना स्वभाव जो आनन्द और ज्ञान, उससे जगत के प्राणी विमुख हैं। **जिनके जागृत-दशा नहीं हैं,...** उसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, ऐसी उसे ज्ञान-जागृतदशा, समकितदशा, ज्ञानदशा नहीं है। आहाहा! वह **अचेत सो रहे हैं,...** वह जड़ अजीव होकर सो रहे हैं। आहाहा!

आत्मा अपना ज्ञान और आनन्दस्वभाव, उसमें जो जागृत नहीं, वह **अचेत सो रहे हैं,...** अचेतन होकर (सो रहे हैं)। राग, पुण्य, पाप, वह अचेतन है, उसमें सो रहे हैं। आहाहा! **ऐसी रात्रि में (ऐसे अन्धकार में) वह परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है।** बड़ी लाईन पूरी। **ऐसी रात्रि में...** अर्थात् विषय-कषाय, पुण्य-पाप के भाव, उसमें जो जागृत हैं, वह रात्रि है। उस रात्रि को छोड़कर... आहाहा! शुभाशुभभाव में भी जो अपनापना मानकर सो रहे हैं, वे अचेत हैं, वह अज्ञान है, वह अन्धकार है। वे रात्रि में, ऐसे पुण्य-पाप के भाव और उसके फलरूप जो अन्धकार, ऐसे धर्मात्मा उनसे भिन्न पड़कर... आहाहा! **परमयोगी...** उत्कृष्ट बात लेनी है न? आत्मा के स्वभाव में जिसकी बहुत ही सावधानी है। पर से सावधानी हट गयी है। अपना आनन्दस्वभाव, उसके सन्मुख की सावधानी जिसे विशेष है और रागादि भाव से—सावधानी से हट गये हैं। आहाहा! ऐसे जो परम धर्मात्मा **वीतराग निर्विकल्प...** उत्कृष्ट बात लेनी है न यहाँ?

रागरहित वीतराग निर्विकल्प अर्थात् अभेद **स्वसंवेदन ज्ञानरूपी...** स्व अर्थात् अपना, सं—प्रत्यक्ष ज्ञानवेदन, ऐसा जो रत्नदीप। आहाहा! रत्न का दीपक। **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के...** दीपक। आहाहा! उसके **प्रकाश से...** भगवान अपना स्वरूप **परमयोगी वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूपी रत्नदीप के प्रकाश से मिथ्यात्व रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर...** आहाहा! सूक्ष्म बात है। उत्कृष्ट बात ली है न!

जो अन्तर में पुण्य-पाप के भाव से भी हट गया है। क्योंकि वह अन्धकार है। उसे चैतन्य के अन्तर प्रकाश के नूर में जिसके तेज—सम्यग्दर्शन-ज्ञान के तेज, जिसे प्रगट हुए हैं। आहाहा! उस द्वारा जिसने सम्यग्दर्शन के वेदन द्वारा जिसने मिथ्यात्व का नाश किया है, वीतरागभाव के वेदन द्वारा जिसने राग का नाश किया है। मुनि की उत्कृष्ट बात है न! वह **रागादि विकल्प-जालरूप अन्धकार को दूरकर अपने स्वरूप में सावधान होने से सदा जागता है।** आहाहा! पुण्य-पाप आदि भाव जो अन्धकार है, उसमें अज्ञानी जागता है। ज्ञानी उसमें से—उस अन्धकार की रात्रि में से हट गये हैं और स्वभाव की जागृति में जो जागते हैं। आहाहा! ऐसी बात है।

सदा जागता है। आहाहा! चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा ऐसे स्वभाव का जो भान और अनुभव है, इससे वह ज्ञाता-दृष्टा में वीतराग की परिणति द्वारा स्थिर हुए हैं। वे सदा जागते हैं। आहाहा! तथा पुण्य और पाप, शुभ-अशुभभाव और उनके फलरूप से (प्राप्त हुए ऐसे) संयोग, उसमें जिसका जागृतपना है, सावधान है, वह अज्ञानी अन्ध है। आहाहा! चैतन्य भगवान ज्ञानरूपी दीपक अन्दर प्रकाश आनन्दप्रभु, उसे रात्रि समान गिनता है। अज्ञानी आनन्द के नाथ को, जागृत स्वभाव को रात्रि समान गिनता है और राग-द्वेष, पुण्य-पाप और उसके फल को प्रकाश गिनता है। वह उसमें सावधान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश है न! यह शास्त्र परमात्मप्रकाश है। उसका स्वरूप ही भगवान आतमा का परमात्मप्रकाश है।

सहजानन्दस्वरूप प्रभु, वह अपने स्वभाव में जो जागृत है, वीतराग निर्विकल्प शान्ति, स्वभाव से, उस विकार के भाव में से उसे अन्धकार उड़ गया है। उसने अन्धकार

का नाश किया है। आहाहा! शुभाशुभभाव, वह अन्धकार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव, वे अचेतन हैं। ज्ञान के प्रकाश का शुभाशुभभाव में अभाव है। उसमें जो सो रहे हैं, वे अज्ञानी अन्ध हैं। आहाहा! ज्ञानी अपने परम रत्नदीप से, उसके प्रकाश से शुभाशुभभाव अन्धकार का जिसने नाश किया है। आहाहा! **सावधान होने से सदा जागता है।** वह तो अपना स्वरूप है, उसमें सावधान और जागते हैं।

तथा शुद्धात्मा के ज्ञान से रहित... जीव, पूरा जगत। शुद्ध आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञान और आनन्द के प्रकाशस्वरूप प्रभु के ज्ञान से रहित है। आहाहा! **शुभ, अशुभ मन, वचन, काय के परिणमनरूप व्यापार...** में सावधान हैं। आहाहा! एकेन्द्रिय स्थावर जीव से लेकर, हों! एकेन्द्रिय जीव में भी शुभाशुभभाव होते हैं। आहाहा! निगोद के जीव को, एकेन्द्रिय जीव को भी शुभ-अशुभभाव हैं। तो पूरा जगत शुभाशुभभाव में सो रहा है, कहते हैं। आहाहा! चैतन्य जागती ज्योति का उसने अनादर किया है। आहाहा! ज्ञानी ने जागती ज्योति का आदर करके पुण्य-पाप आदि का अनादर किया है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का सूक्ष्म पड़े न लोगों को, (इसलिए) नियतवाद... नियतवाद... ऐसा कहकर उड़ाते हैं। आहाहा!

बात तो ऐसी है कि प्रत्येक द्रव्य की जिस समय में जो निजक्षण—पर्याय का उत्पाद काल होता है। छहों द्रव्य का उस-उस समय की वही पर्याय, वह उत्पन्न होने का काल होता है। वह निमित्त से होता नहीं, उसे वह पर्याय द्रव्य-गुण से होती नहीं। आहाहा! ऐसा जिसे निर्णय होता है उसे तो स्वभावसन्मुख दृष्टि हो गयी है, वह पुरुषार्थ है। (अज्ञानी) ऐसा (कहते हैं) कि उस समय में वह हो, यह तो काललब्धि हुई, यह तो नियतवाद हो गया। भाई! परन्तु जिस समय में छहों द्रव्यों की, छहों द्रव्यों की जिस समय में उनका जन्मक्षण उस पर्याय की उत्पत्ति का काल है, उस उत्पत्ति के काल को व्यय की अपेक्षा नहीं, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा उसका स्वभाव है। तब (कहता है) कि यह तो नियत हो गया। करने का क्या रहा? परन्तु ऐसा जिसने निर्णय किया, कि जिस समय में जो पर्याय उसके कारण से होती है, उसका लक्ष्य ज्ञायक पर जाता है। समझ में आया?

यह आयी है न बड़ी चर्चा, रात्रि में आयी थी। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा, यह तो

नियत हो गया। परन्तु सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा होगा परन्तु सर्वज्ञ जगत में है, एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में जिन्हें तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं, ऐसी समय की पर्याय सत्ता जगत में है, उसका स्वीकार करनेवाले की दृष्टि कहाँ होती है उसकी ? आहाहा! जो (संवत्) १९७२ के वर्ष में मैंने विरोध किया था, यही बात सामने आयी है अभी कि तुम नियतवाद स्थापित करते हो। १९७२ के वर्ष में वे लोग ऐसा कहते थे कि केवलज्ञानी ने देखा, वह होगा, उसमें अपने पुरुषार्थ क्या करें ? यह (संवत्) १९७२ की बात है। ६१ वर्ष होंगे इस फाल्गुन में। बहुत चर्चा चली। भगवान ने देखा, तत्प्रमाण पुरुषार्थ होगा, हम पुरुषार्थ कैसे करें ?

कहा, भगवान ने देखा, वह होगा—(ऐसा कहते हैं तो) उन भगवान की अस्ति का स्वीकार है इसे ? फिर उन्होंने देखा वह होगा, (यह बात) बाद में। भगवान सर्वज्ञ जगत में एक समय की... बापू! यह वह कुछ बात है ? एक समय 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसका एक समय... आहाहा! उन सर्वज्ञ को एक समय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात होते हैं, अनन्त केवली ज्ञात होते हैं उसमें। ऐसी एक सर्वज्ञ की पर्याय की, एक गुण की एक पर्याय की इतनी सामर्थ्य है। ऐसी-ऐसी अनन्त गुण की उस समय पर्याय की सामर्थ्य सर्वज्ञपर्याय के साथ पड़ी है। आहाहा! तो उसे माने कि है यह जगत में, तब तो यह हो गया कि **'जो जाणदि अरहंत दवत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं'** जिसने अरिहन्त के केवलज्ञान आदि पर्याय को जाना, वह अपने आत्मा को जाने। वह तो उसका पुरुषार्थ वहाँ जाता है। आहाहा! वह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ स्वसन्मुख हो, (उसने) यह सर्वज्ञ है, (उनका स्वीकार किया)। तब इतना सब नहीं था। तब इतना था कि सर्वज्ञ जगत में है, यह जिसके ज्ञान में बैठे, उसके भव भगवान ने देखे नहीं। यह तो (संवत्) १९७२ की बात है। ६१ वर्ष पहले।

परन्तु अब तो उन्हें जब एक समय में ऐसी दशा है, उसका जिसे स्वीकार है, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर (जाती है)। सर्वज्ञ की पर्याय जगत में है, उसकी प्रतीति करनेवाला, सर्वज्ञस्वभावी मैं हूँ, ऐसी उसकी प्रतीति हो जाती है। क्योंकि वे सर्वज्ञ हुए, वह सर्वज्ञशक्ति थी, उसमें से हुए हैं। सर्वज्ञस्वभाव ही उसका—भगवान आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव ही है। त्रिकाल स्वभाव है। आहाहा! ऐसा जिसने सर्वज्ञस्वभाव

(स्वीकार किया)... आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! और उसकी आस्था, प्रतीति वह सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा पर दृष्टि जाये, तब सर्वज्ञ की यथार्थ प्रतीति होती है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। यह तो अब अभी यह आया। तब नहीं था। ज्ञान में सर्वज्ञ ज्ञात हों, उसके भव भगवान ने देखे नहीं। बस इतना।

यह तो ६१ वर्ष पहले की बात है। फाल्गुन महीना था (संवत्) १९७२ में मूलचन्दजी थे, उनकी यह श्रद्धा। गुरु थे, वे तो बेचारे भद्रिक थे। उन्होंने कहा, यह बात तुम ऐसी कहते हो तो इस बात की प्रतीति जिसे सर्वज्ञ की (प्रतीति) है, इसके बाद बात को? सर्वज्ञ ने देखा होता है, यह बाद में। परन्तु सर्वज्ञ है जगत में, ऐसी पर्याय जिसे ज्ञान में बैठी, उसे पुरुषार्थ आ गया। उसे स्वसन्मुख पुरुषार्थ आया। इतना सब तब नहीं था। परन्तु यह सर्वज्ञ है, ऐसा जिसे ज्ञान में बैठा, उसके भव भगवान ने देखे नहीं होते हैं, उसे अधिक भव होते ही नहीं, कहा। समझ में आया? आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है। अब यह तब उठाया, उसका सामने आया अभी। तुम नियतवाद मानते हो, पुरुषार्थ को मानते नहीं, इसलिए मिथ्या जहर है। आहाहा! यह बात ७२ के सामने बात आयी, इसके ऊपर। समझ में आया? भगवान! तुझे खबर नहीं, प्रभु! आहाहा!

सर्वज्ञ, वह एक गुण की एक पर्याय है। आहाहा! ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय की प्रगट निर्मलता के साथ सर्वज्ञपना होता है। आहाहा! श्रद्धा की पर्याय परम अवगाढ़, आनन्द की पर्याय पूर्ण, वीर्य की पर्याय पूर्ण। आहाहा! भाई! ऐसी एक समय की अनन्त पर्यायें, उसमें एक गुण की एक ही पर्याय जिसे त्रिकाल केवली जाने, केवली अनन्त की पर्याय जाने। ऐसी एक पर्याय की सत्ता, उसका अस्तिपना इतना बड़ा है, वह जहाँ स्वीकार करने जाता है, तब सर्वज्ञ प्रभु (है, ऐसी) बात उसे ज्ञान में बैठ जाती है। फिर यहाँ तो अधिक यह आया। सर्वज्ञस्वभावी स्वयं है, वहाँ इसकी दृष्टि चली जाती है। समझ में आया? आहाहा! यह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ दूसरा कौन सा करना था? आहाहा!

स्वभाव में सर्वज्ञपने की पर्याय बैठी, (तब) यह पर सर्वज्ञ है, उसकी बात बैठी

है न? तो उसे कब बैठे? कि पर्याय के ऊपर लक्ष्य हो, तब तक वह बात बैठती नहीं। क्योंकि पर्याय में सर्वज्ञपना उसे स्वयं को है नहीं। इसलिए सर्वज्ञ जगत में है, उसकी प्रतीति कब बैठे? कि अपना स्वभाव जो त्रिकाली सर्वज्ञ है, वहाँ दृष्टि जाये तो बैठे। शान्तिभाई! सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! यह तो अन्तर के मार्ग ऐसे अलग हैं। आहाहा! लोग बाहर के क्रियाकाण्ड में मान बैठे हैं। दया पालना, व्रत पालना, अपवास करना। अब यह तो अभव्य (भी करता है)। यही कहते हैं यहाँ, देखो!

शुद्धात्मा के ज्ञान से रहित... यह शुद्धात्मा सर्वज्ञस्वभावी। आहाहा! उसका जिसे ज्ञान हो, उसे सर्वज्ञ आदि पंच परमेष्ठीपना स्वरूप में ही है। आहाहा! यह आत्मा पंच परमेष्ठीस्वरूप है। समझ में आया? यह वह कहीं बात है, बापू! इसमें अनन्त पुरुषार्थ है। उसमें इसने मजाक की है कि महाराज नियत मानते हैं और उसमें अनन्त पुरुषार्थ है (ऐसा) कहते हैं। भगवान! इसकी अशुद्धता की बलिहारी है न, प्रभु! आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञान की भी महिमा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह महिमा अज्ञान भी जोरवाला है। अनन्त केवली समझावे तो न माने। अनुभव प्रकाश में कहा है, तेरी शुद्धता तो बड़ी, परन्तु तेरी अशुद्धता भी बड़ी। इतनी अशुद्धता अज्ञान की, मिथ्यात्व की कि अनन्त तीर्थंकरों के समवसरण में अनन्त बार गया, परन्तु इस मिथ्यात्व को इसने टाला नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यहाँ यह कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं?

शुद्धात्मा के ज्ञान से रहित... तब अब सहित क्या? **शुभ, अशुभ मन, वचन, काय के परिणमनरूप व्यापारवाले...** देखो! शुभ-अशुभ परिणाम विकार, शुभ-अशुभ दोनों। उसके **परिणमनरूप व्यापारवाले स्थावर जंगम सकल अज्ञानी...** आहाहा! तो स्थावर को शुभाशुभभाव है, ऐसा सिद्ध किया। एकेन्द्रिय को, निगोद के जीव को, नित्य निगोद जीव है। कभी त्रस होगा नहीं, हुए नहीं। उन्हें भी शुभ-अशुभभाव है। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा शुभाशुभभाव से रहित सच्चिदानन्द प्रभु, उसे भूलकर शुभाशुभभाव के व्यापार में मग्न है। आहाहा! समझ में आया? **स्थावर जंगम सकल अज्ञानी...** आहाहा! जो शुभाशुभाव है, वह अज्ञानभाव है, स्वभावभाव नहीं। अचेतनभाव

है। उसमें मग्न है, वह शुद्धात्मज्ञान से रहित है। आहाहा! और जो शुद्धात्मज्ञान से सहित है, वह शुभाशुभभाव के मग्न से रहित है। शुभाशुभ में मग्न से रहित है। हो भले। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य पवित्र, अकेला पवित्र का पिण्ड प्रभु, अनन्त गुण पवित्र जिसके... आहाहा! उसका जिसे अन्तर ज्ञान और उसका भान हुआ, वह अन्तर में जगा। वह शुभाशुभभाव अज्ञान से हट गया है। वह (शुभाशुभभाव) अज्ञान है। अज्ञान अर्थात्? मिथ्यात्व नहीं। अज्ञान अर्थात् ज्ञान का स्वभाव उनमें नहीं। शुभ-अशुभभाव में चैतन्य की किरण नहीं। अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व शुभ-अशुभभाव, ऐसा नहीं। परन्तु शुभ-अशुभभाव, वह चैतन्यस्वरूप भगवान की किरण के प्रकाश का शुभभाव में अभाव है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा भाव आदि हो, उसमें चैतन्य के प्रकाश के नूर का अभाव है। आहाहा! इसलिए उसे अचेतभाव कहा है, जड़भाव कहा है। आहाहा! उसमें जो मग्न है... आहाहा! एकेन्द्रिय लिये। **सकल अज्ञानी...** है न?

परमात्म तत्त्व की भावना से परान्मुख हुए... आहाहा! स्थावर के जीव एकेन्द्रिय निगोद के, लहसुन, प्याज—डुंगली, उसमें अनन्त जीव हैं। वे भी शुभाशुीभाव में मग्न हैं, कहते हैं। आहाहा! शुभ-अशुभभाव। इस **परमात्म तत्त्व की भावना से परान्मुख...** है। आहाहा! जिसे शुभाशुभभाव की भावना है, वह शुद्धात्मतत्त्व की भावनारहित है। आहाहा! शैली तो देखो! और जिसे शुद्धात्मस्वरूप भगवान का सम्यग्दर्शन होकर उसकी भावना-एकाग्रता है, उसे पुण्य-पाप के भाव की एकाग्रता है नहीं। हो, उसे जानता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात! कहो, शान्तिभाई! कभी सुनी न हो। ऐई! शान्तिभाई कहते हैं असत्, अभूत ऐसा। आहाहा! बापू! नाथ! तेरा मार्ग ऐसा है, भाई! सर्वज्ञ वीतराग... आहाहा!

उसमें वापस ऐसी शंका की है कि 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा' यह तो नियत हो गया। परन्तु भूधरदास कवि स्वयं कहते हैं कि 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसी वीरा।' और स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी ऐसा लिया है कि सर्वज्ञ ने जिस समय में जिस काल में जिस प्रकार से पर्याय उत्पन्न हो, उसे जानता है। उसमें जो

शंका करे, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे उड़ा दिया। आहाहा! भगवान! बहुत करते हैं, बापू! मुश्किल से बाहर आया... आहाहा! ऐसा कहते हैं, देखो! कार्तिकस्वामी का दृष्टान्त देकर (ऐसा कहते हैं कि) भगवान ने देखा तत्प्रमाण होगा। देखा है, इसलिए होगा नहीं। होगा, उस प्रमाण हुआ है, उस प्रमाण देखा है। और जिस निमित्त से, जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस संयोग में जो पर्याय वहाँ होनेवाली है वह होगी, होगी और होगी। यह सर्वज्ञ ने देखा, तत्प्रमाण माने तो उसकी दृष्टि सर्वज्ञ स्वभाव पर जाती है। समझ में आया? आहाहा! उसमें यह पुरुषार्थ है। ऐसा कि उसमें अनन्त पुरुषार्थ कहते हैं, ऐसा आया। वह पुरुषार्थ है। वर्तमान पर्याय को रागवाली, विकारवाली होने पर भी, उस काल में उस समय की ज्ञान की पर्याय है, उसे सर्वज्ञ (स्वभाव) सन्मुख करना, यही पुरुषार्थ है। राग और पुण्य-पाप के भाव होने पर भी उस समय की जो ज्ञान की पर्याय है, उस ज्ञान की पर्याय को राग सन्मुख न झुकाकर... आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! धर्म कोई ऐसी बात नहीं कि साधारण समझ जाये और पकड़ ले। जिसका फल सादि-अनन्त मुक्ति! धर्म का फल सादि-अनन्त समाधि, शान्ति सुख और आनन्द और मोक्ष। उसका उपाय कैसा होगा? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि जिसे शुभाशुभभाव में मग्नता है, वह अन्धकार है, रात्रि है। उसमें अज्ञानी सो रहा है। अर्थात् कि जागता है और ज्ञानी उसमें से निकल गये हैं। आहाहा! शुभाशुभभाव हो, परन्तु मेरा स्वरूप नहीं। वर्तमान शुभाशुभ को जाननेवाली पर्याय जो है, इतनी पर्यायवाला मैं नहीं। आहाहा! क्योंकि उसकी दृष्टि जाती है द्रव्य के ऊपर। पर्याय का विषय जो त्रिकाली द्रव्य, वहाँ जाती है। इसलिए वहाँ जाने से उसे सम्यग्दर्शन होता है। यह अनन्त पुरुषार्थ है। आहाहा! भाई! वर्तमान पर्याय तो परसन्मुख से हटाकर स्वसन्मुख झुकाना, यह क्या चीज़ है? इसकी लोगों को कुछ गिनती नहीं। आहाहा! ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ा, नौ पूर्व की लब्धि अनन्त बार प्रगट हुई, परन्तु वह पर्याय परसन्मुख की थी। आहाहा! उसी पर्याय को नहीं, परन्तु बाद की पर्याय को अन्तर में झुकाना, प्रगट हो और झुकाना, वह समय एक ही है। आहाहा! जो वर्तमान पर्याय है, वह रागवाली और राग सन्मुख झुकी हुई है। इसलिए उस पर्याय को तो अन्तर में झुकाया नहीं जा सकता। अब बाद की पर्याय प्रगटी नहीं, वह अन्तर्दृष्टि करने से प्रगट होती है

और वह अन्दर में झुकी है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! दुनिया से भिन्न प्रकार है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं, अज्ञानी—एकेन्द्रिय से लेकर दिगम्बर जैन साधु होकर नौवें ग्रैवेयक तक (जानेवाला) मिथ्यादृष्टि, वे सब शुभाशुभभाव में सो रहे हैं। अर्थात् उसमें जागते हैं, ऐसा। इस परमात्मतत्त्व को रात्रि समान गिनकर, उसे दूर किया है। आहाहा! आहाहा! चैतन्यप्रकाश की मूर्ति प्रभु अस्तित्व जिसका, जिसका त्रिकाल स्वभाव त्रिकाल को जानना, ऐसी उसकी शक्ति का सामर्थ्य है। ऐसे सामर्थ्य की प्रतीति न करके, ऐसी जागती ज्योति भगवान परमात्मा स्वयं, उसकी प्रतीति, उसका अस्तित्व न स्वीकार कर, पुण्य-पाप के फल और पुण्य-पाप का अस्तित्व स्वीकार करना, वह अन्धकार अज्ञान, मिथ्यात्व है। बात सूक्ष्म पड़े परन्तु प्रभु! मार्ग ऐसा है। यह तो बहुत विरोध आता है न, इसलिए इसका अधिक स्पष्टीकरण (आता है)। आहाहा!

भाई! तेरा मार्ग अलग है, बापू! तू जहाँ है, वहाँ तुझे जाना पड़ेगा। बाहर में भटकाभटक करता है पुण्य-पाप के भाव में, वह सब दुःख दशा है। आहाहा! यह परसन्मुख की है। आहाहा! यह वह कुछ बात है! उसे स्वसन्मुख करना... आहाहा! उसने सर्वज्ञ को माना, उसने केवली को माना, केवली ने देखा, वह होगा—ऐसा उसने माना। समझ में आया? आहाहा!

इन शुभाशुभभाव के अचेतन अज्ञानभाव का अन्धकार जिसने परमात्मतत्त्व की भावना से टाला है, (वह ज्ञानी है) और जो अज्ञान में पड़े हैं, वे परमात्मतत्त्व की भावना से रहित हैं। उन्हें शुभ की भावना है। यह शुभ करूँ... शुभ करूँ... शुभ करूँ... शुभ करूँ। शुभ होओ, भविष्य में शुभ होओ। आहाहा! ऐसी जिसे भावना है, उसे आस्रव की भावना है। वह आस्रव की भावनावाला परमात्मतत्त्व की भावना से परान्मुख है। आहाहा! कनुभाई! ऐसा मार्ग दुनिया को मुश्किल से हाथ आया, वहाँ विरोध खड़ा किया।

अरे! भगवान! यह प्रश्न जो उसने रखे, यही प्रश्न मैंने उनके सामने किये। बड़ा (विवाद) चला था अन्दर। एक दिन छोड़ दिया था—सम्प्रदाय छोड़ दिया। (संवत्) १९७२ के फाल्गुन की बात है। आहाहा! जिसे, सर्वज्ञ ने देखा ऐसा होगा और (उन)

सर्वज्ञ को जिसने माना,... अरे! भाई! यह वह बात है? अल्पज्ञ में सर्वज्ञ को मानना, इस अल्पज्ञ की पर्याय के आश्रय से सर्वज्ञ की मान्यता नहीं हो सकती। क्या कहा, समझ में आया? अल्पज्ञ दशा वर्तमान में सर्वज्ञ को अल्पज्ञ की पर्याय के आश्रय से मानने (जाओगे तो) नहीं मान सके। क्योंकि उसमें सर्वज्ञपना पर्याय में नहीं। उस अल्पज्ञ पर्याय को सर्वज्ञस्वभाव सन्मुख झुकायेगा, तब उन्हें—सर्वज्ञ को वह मानेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

देखो! जो जीव **शुभ, अशुभ मन, वचन, काय के परिणमनरूप व्यापारवाले...** आहाहा! एकेन्द्रिय जीव को शुभ-अशुभ के व्यापारवाले कहा। निगोद के जीव को। आहाहा! और कदाचित् न हो तो शुभाशुभभाव तो सदा निगोदवाले को है ही। वह तो कोई होते भी नहीं। परन्तु उसे शुभभाव से अमुक पर्याप्तपना आता है न निगोद में भी? आहाहा! एकेन्द्रियपने में पर्याप्तपना, त्रसपना। वहाँ तो एकेन्द्रिय है स्थावर में, परन्तु पर्याप्तपना लो न! एकेन्द्रिय होता है, वह पुण्य का फल है। यह शुभभाव का बन्ध का... आहाहा! बादरपना। समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि जो कोई प्राणी मन, वचन और काया के शुभाशुभभाव के व्यापार में सावधान है, वह परमात्मतत्त्व की भावना से विमुख है। आहाहा! समझ में आया? जिसे परमात्मतत्त्व भगवान ज्ञायकस्वभाव की जिसे प्रतीति और भावना अर्थात् एकाग्रता है, वह शुभाशुभभाव की भावना से रहित है। भावना से रहित है। यह हो और ठीक है, इस भावना से रहित है। आहाहा! ऐसा अब साधारण लोग समझे नहीं। वह सामायिक करना, प्रोषध करना, प्रतिक्रमण करना सीधा सट्ट था, लो। भटकने का। दो घड़ी सामायिक करके आ गये। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... तस्सउतरी करणेणं... हो गयी सामायिक। दो घड़ी बैठे। णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... गिने। हो गयी सामायिक। धूल भी सामायिक नहीं, सुन न! यही कहेंगे अभी। यह यहाँ कहेंगे। पहले आ गया है। समभाव। ३९ गाथा में। परन्तु फिर से उसमें आयेगा। अपने गाथा चलती है न, इसके बाद की गाथा में आयेगा।

समभाव उसे कहते हैं,... ४७-४७ गाथा। अन्तिम लाईन। **समभाव उसे कहते**

हैं, जो पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा से रहित वीतराग परमानन्दसहित निर्विकल्प निजभाव हो,... यही समभाव है। यह ३९ में आ गया है अपने। विशेष स्पष्टीकरण यहाँ किया है। समभाव अर्थात् पुण्य-पाप के भाव, वे विषमभाव हैं। आहाहा! वे दु:खदायक भाव हैं। उनसे इस ओर पुण्य-पाप के भाव से रहित ज्ञाता-दृष्टा का समभाव, कैसा होता है वह समभाव? कि पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा... आहाहा! भगवान की वाणी को सुनने की इच्छा से भी रहित है। समझ में आया? और वीतराग परमानन्दसहित है। आहाहा! रागरहित परमानन्दसहित समभाव है। उसे समभाव कहते हैं। आहाहा! जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव हो, उसे समभाव कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प करे, वह विकार है। विचार करे, वह विकल्प है, विकल्प है, वह शुभभाव है। यह तो अपने कलशटीका में बहुत आ गया है। दोपहर में पुण्य-पाप (अधिकार) चलता है न? नहीं? उसमें भी आ गया है। दोपहर का नहीं? दोपहर में आया था न वह? कर्मधारा और ज्ञानधारा। दोपहर में श्लोक (११० आया) उसमें है। जितने शुभ-अशुभ क्रिया बहिर्जल्परूप विकल्प, अन्तर्जल्परूप अथवा द्रव्यों के विचाररूप अथवा शुद्धस्वरूप का विचार इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है। विकल्प है न? ज्ञानी को रागधारा भी होती है और आत्मस्वभाव की समन्मुख की ज्ञानधारा भी होती है। एक समय में दोनों (होती है)। यह दोपहर में चलता है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ लिया, देखो! शुद्ध स्वरूप का विचार। विकल्प ऐसा। इत्यादि समस्त कर्मबन्ध का कारण है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह बन्ध का कारण है। इसके अतिरिक्त अन्तर्जल्प अन्दर विकल्प उठाना, यह गुणी है और यह गुण है, वह भी बन्ध का कारण है। शुद्धात्मस्वरूप हूँ, ऐसा भी विकल्प उठाना, वह भी बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : वे सब समान हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब समान हैं। बन्ध की अपेक्षा से सब समान हैं। आहाहा! कठिन बात!

एक ओर भगवान राम तथा एक ओर गाँव। एक अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु राम, उसकी जिसे सावधानी है तथा एक ओर गाँव अर्थात् पुण्य-पाप और पुण्य-पाप के फल, पूरा। उनके प्रति सावधानी छूट गयी है। आहाहा! समझ में आया? अस्थिरता होती है, परन्तु सावधानी छूट गयी है। यह ठीक है, ऐसी वृत्ति छूट गयी है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसा मार्ग। एक व्यक्ति कहता था, हम यह सब करते, यात्रा करते, यह करते। तुमने अन्दर डाला, कि यह सब पुण्य है, धर्म नहीं। एक विरमगाम का आया था। कस्टम का, श्वेताम्बर था। कस्टम का ऊपरी (अधिकारी)। बापू! मार्ग बापू, यहाँ तो... आहाहा!

यहाँ तो शुद्धात्म स्वरूप हूँ, ऐसा विकल्प है, वह भी बन्ध का कारण है। यह तो १४२ में नहीं आ गया? मैं अबन्ध हूँ, शुद्ध चैतन्य हूँ, एक हूँ, अभेद हूँ—ऐसी वृत्ति उठती है, वह बन्ध का कारण है। वह नयपक्ष है। आहाहा! वह विषमभाव है, वह समभाव नहीं। आहाहा! उसमें से निकलकर वीतरागमूर्ति प्रभु के अन्दर में समभाव से रहना, उस वीतराग आनन्दसहित की दशा को समभाव कहते हैं। अकेला समभाव... समभाव नहीं। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द गर्भित है। उसके—समभाव के अन्तर्भेद में अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहाहा! ऐसी बात लोगों को ऐसी लगे। समभाव की व्याख्या भी आयी वापस। क्योंकि विषमभाव पुण्य-पाप है, वह दुःखरूप है, अचेतन है। तब उससे रहित आत्मस्वभाव जो प्रगट हुआ, वह तो सुखरूप और आनन्द है। अर्थात् वह समभाव अर्थात् वीतरागता प्रगटी। वह रागभाव था। आहाहा! उससे रहित होकर समभाव प्रगट हुआ। तब वह राग था दुःखरूप; यह समभाव है, वह आनन्दरूप है। आहाहा! समझ में आया?

विषय-कषायरूप अविद्या में सदा सावधान हैं,... देखो! आहाहा! ... पंचेन्द्रिय यह विषयकषाय, यह सब विषयकषाय। विषयकषाय अर्थात् स्त्री का विषय, ऐसा कुछ नहीं। पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव का विषय और उसकी ओर होती कषाय... आहाहा! वह विषयकषायरूप अविद्या है वह तो। आहाहा! पुण्य-पाप का भाव, वह अविद्या है। ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विद्या तो चैतन्यमूर्ति भगवान का ज्ञान और आनन्द होना, वह विद्या है। 'सा विद्या या विमुक्तये।' ऐसा विद्यालय में होता है

न? हम एक बार गये थे न गोंडल में। भाई थे। सिहोरवाले नहीं? चन्दुभाई-चन्दुभाई। पूरे स्टेशन के... चन्दुभाई थे, पूरे शिक्षा के अधिकारी। एक बार ले गये थे वहाँ। कहा, भाई! विद्या तो उसे कहते हैं, 'सा विद्या या विमुक्तये।' जो विद्या राग से मुक्त करे, वह विद्या। समझ में आया? यह तुम्हारी विद्या—पढ़ाई तो बन्ध का कारण है। आहाहा! अज्ञान। अज्ञान आया नहीं था?

राजकोट में जेल में गये वहाँ। राजकोट में जेल में। वहाँ ऊपर लिखा था। अज्ञान और ऐसा कुछ था। अज्ञान जैसा दोष नहीं। कहा, देखो! भाई, अज्ञान, आत्मा का भान नहीं, वह अज्ञान है, उसके जैसा कोई दोष नहीं है। सब (कैदी) लोग इकट्ठे हुए थे। महाराज के दर्शन करना है, ऐसा वहाँ से हुक्म लाये थे, अधिकारी से। बहुत इकट्ठे हुए थे। बहुत २००-३००-४०० लोग। कहा, भाई! देखो! अज्ञानरूप से क्या नहीं होता? अज्ञान, वह दु:ख का कारण, ऐसा लिखा था उसमें। आहाहा! इसी प्रकार यह पुण्य और पाप, वह अविद्या है। भाषा तो देखो! आहाहा!

विषय-कषायरूप अविद्या में... आहाहा! विषय के परिणाम और कषाय के परिणाम, वे सब विकारी, वह अविद्या है। आहाहा! उस **अविद्या में सदा सावधान हैं, जाग रहे हैं,...** आहाहा! वे अज्ञानी परमात्मा की भावना से रहित है। उसमें जो जागते हैं, वे इस भावना से रहित है। आहाहा! **उस अवस्था में विभावपर्याय के स्मरण करनेवाले महामुनि सावधान (जागते) नहीं रहते।** ऐसे में महामुनि सावधान नहीं। किसमें? परमात्मभावना में जो तत्पर हैं, वे विभावपर्याय को स्मरण करने में सावधान नहीं। आहाहा! उस विभाव का स्मरण ही नहीं करते, वे अन्दर वीतराग का स्मरण करते हैं। आहाहा! लोगों को कठिन पड़े। लोगों को यह बाहर की (क्रिया में रोक लिया)। बेचारे उसमें गाँव के लोग हों, साधारण हों। यह भगवान की यात्रा करें तो धर्म होगा, व्रत करे तो संवर होगा, अपवास करें तो निर्जरा होगी। आहाहा! तीनों अविद्या है। आहाहा! भगवान चैतन्यज्योति के प्रकाश की मूर्ति, उसमें तो जिसका अभाव है। उस अविद्या में रहनेवाले, ज्ञानी उसे स्मरण भी नहीं करते, कहते हैं। अविद्या में रहते हैं, उसका ज्ञानी स्मरण भी नहीं करते। वे विद्या में रहते हैं। आहाहा!

इसलिए संसार की दशा से सोते हुए मालूम पड़ते हैं। कौन? ज्ञानी। संसार की दशा में वे सो गये हैं। जागते नहीं। आहाहा! शुभाशुभभाव, वह संसारदशा है। व्यवहाररत्नत्रय वह सब (संसारदशा है)। यह आता है न? मोक्षमार्गप्रकाशक में। व्यवहार में सोते हैं, वे निश्चय में जागते हैं। मुनि। व्यवहार में जागता है अर्थात् निश्चय में सोता है। यह श्लोक सातवें अध्याय में आता है। यह गाथा है मोक्षमार्गप्रकाशक में। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात गजब परन्तु, भाई!

इसलिए संसार की दशा से सोते हुए मालूम पड़ते हैं। मुनि, हों! वीतरागभाव में रहनेवाले संसारभाव से सो गये और आत्मभाव में जागृत हैं। आहाहा! गीता में ऐसा श्लोक आता है। **जिनको आत्मस्वभाव के सिवाय विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है।** आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित जहाँ स्वरूप में रमणता में है, यह बात है। सम्यग्दर्शन अर्थात् सारे पूर्ण परमात्मदशा की ज्ञानदशा होकर उसकी प्रतीति अनुभव होकर (हुई है), उस सहित जो समभाव में अन्दर स्थिर हैं। आहाहा! वीतरागभाव में जो रमते हैं, ऐसे मुनियों को **विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है।** जगत में विकल्प है या नहीं, इसकी उन्हें खबर नहीं। वे तो आनन्द में हैं। सम्यग्दर्शनसहित समभाव की बात है न यह? आहाहा! उत्कृष्टपना चारित्र, वह मोक्ष का कारण है न! और चारित्र, वह वीतरागभाव है। वह सम्यग्दर्शनसहित वीतरागभाव, वह मुक्ति का कारण है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! यह अपने आप घर में वाँचे तो कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं है। शान्तिभाई! इसीलिए तो आये हैं न! क्या यह कहते हैं और क्या यह बात! आहाहा! ऐसी बात। एक बार प्रभु! हाँ तो कर। तेरी प्रभुता वीतरागभाव से है। तेरी प्रभुता पुण्य-पाप के भाव से नहीं। आहाहा!

जिनको आत्मस्वभाव के सिवाय विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है। वीतरागभाव है न यहाँ तो? सम्यग्दर्शनसहित वीतरागभाव का वर्णन है। सम्यग्दृष्टि हो, उसे अभी विषयकषाय होते हैं। समभाव नहीं पूरा। सम्यग्दर्शन जितना और अनन्तानुबन्धी का अभाव जितना समभाव है और यहाँ तो उत्कृष्ट मुनि का समभाव वर्णन करना है। आहाहा!

जिनको आत्मस्वभाव के सिवाय विषय-कषायरूप प्रपंच मालूम भी नहीं है।

उस प्रपंच को रात्रि के समान जानकर... आहाहा! शुभ-अशुभ असंख्य प्रकार के विकल्प, उन्हें ज्ञानी रात्रि समान जानकर उन्हें याद ही नहीं करते। आहाहा! वह तो अन्धकार है। आहाहा! क्या वर्णन! सम्यग्दर्शनसहित की चारित्रदशा कैसी होती है, यह वर्णन है। आहाहा! **रात्रि के समान जानकर उसमें याद नहीं रखते,...** आहाहा! **मन, वचन, काय की तीन गुप्ति में अचल हुए...** आहाहा! मन, वचन, काया की ओर के झुकाव को छोड़कर अन्दर गुप्त हुए हैं। आहाहा! **अचल हुए वीतराग निर्विकल्प परम समाधिरूप योग-निद्रा में मग्न हो रहे हैं।** आहाहा! योगनिद्रा कही। जैसे वह निद्रा में सो गया और खबर नहीं, वैसे आत्मध्यान में योगरूपी निद्रा। आहाहा! वीतराग समाधि हुई, चारित्रदशा। आहाहा!

आत्मा के सम्यग्दर्शन की प्रतीति के अनुभवसहित जिसे ऐसी वीतरागता प्रगट हुई है, उसे कहते हैं कि वह तो योगनिद्रा समाधि में सो रहे हैं। आहाहा! शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... सम्यग्दर्शन में भी प्रतीति और शान्ति थोड़ी होती है और आनन्द का अंश भी उसमें वेदन में होता है। इसे तो मुनिपने की बात है। आहाहा! उन्हें तो अकेले अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन में विषय-कषाय का स्मरण भी नहीं। याद भी नहीं रहता कोई विकल्प आया हो तो। आहाहा! समझ में आया?

समाधिरूप योग-निद्रा में मगन हो रहे हैं। आहाहा! **सारांश यह है कि ध्यानी मुनियों को आत्मस्वरूप ही गम्य है,...** आहाहा! अज्ञानी को आत्मस्वरूप जरा भी गम्य नहीं। उसे गम्य यह सब पुण्य-पाप के विकल्प और यह व्यापार और धन्धा... आहाहा! यह उसमें होशियार और यह गम्य है अविद्या में। आहाहा! ऐसी बाते, इसलिए कठिन लगे न लोगों को। निश्चय... निश्चय... निश्चय। निश्चय अर्थात् नियत हो गया उसे। आहाहा! भाई! नियत में पाँचों समवाय साथ में होते हैं। जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है... बात यह कहते हैं कि प्रत्येक द्रव्य में उपादान होने की शक्ति पचास प्रकार की होती है, परन्तु जैसा निमित्त आवे, वैसा होता है। कुम्हार की इच्छा प्रमाण घड़ा हो या इच्छा प्रमाण सकोरा हो या घड़ा होनेवाला था ही, ऐसी उपादान शक्ति नहीं। ऐसा अज्ञानी कहता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि वह उपादान शक्ति ही घड़ा होने की थी। कुम्हार ने कुछ

किया नहीं उसमें। कुम्हार उसका कर्ता है नहीं। निमित्त हो। निमित्त हो, परन्तु निमित्त कर्ता नहीं है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह डाला है उसने। यहाँ तो वाँचन हुआ था पहला। ऐसा कि प्रत्येक द्रव्य में उपादान से ही वह पर्याय होती है, ऐसा नहीं है। उपादान की पर्याय में योग्यता बहुत होने की है। जैसे पानी है, उसमें नमक डालो तो खारा होगा, शक्कर डालो तो मीठा होगा, मिर्ची डालो तो चरपरा होगा। पानी में चरपरा होने की योग्यता है, ऐसा नहीं, उसमें मीठा होने की योग्यता थी, जैसा डाला तत्प्रमाण हुई। झूठ बात है। मिर्ची डाली, तब चरपरा होने की योग्यता से चरपरी पर्याय हुई है। उसकी योग्यता ही वह थी। गुड़ डाला, तब मीठेरूप होने की पर्याय की योग्यता थी। गुड़ के कारण हुई है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह बात! निमित्त हो, परन्तु निमित्त से कार्य होता है पर में कर्ता, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त आवे वैसी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो कहते हैं, जो निमित्त आवे, वैसी दशा होती है। उपादान में बहुत योग्यता होती है, परन्तु जैसा निमित्त आवे, वैसा कार्य होता है, कहो, अब यह तो गजब बात करते हैं न! उसे वे भगवान की वाणी का मार्ग कहते हैं, मानते हैं। और यह कहे कि नहीं, निमित्त से नहीं होता, वे नियतवाद मानते हैं। प्रभु! तू स्वतन्त्र है, बापू! आहाहा! तू भी भगवान है, भाई! द्रव्यरूप से साधर्मी है। वीतरागस्वरूप से द्रव्य है, वह आदरणीय है। उसका द्रव्य भी आदरणीय है। जरा सा तो भूलता है। आहाहा! समझ में आया? यह आता है, आ गया है। शुद्धात्मा सब हैं, वे आदरणीय हैं। उनमें से पंच परमेष्ठी और उनमें से अरिहन्त, सिद्ध और उनमें से अरिहन्त और उसमें से भी शुद्ध आत्मा, वह आदरणीय है। विशेष आयेगा, लो....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ४७

अथ ज्ञानी पुरुषः परमवीतरागरूपं समभावं मुक्त्वा बहिर्विषये रागं न गच्छतीति दर्शयति-

१७१) णाणि मुएप्पिणु भाउ समु कित्थु वि जाइ ण राउ।
जेण लहेसइ णाणमउ तेण जि अप्प-सहाउ।।४७।।

ज्ञानी मुक्त्वा भावं शमं कवापि याति न रागम्।
येन लभिष्यति ज्ञानमयं तेन एव आत्मस्वभावम्।।४७।।

णाणि इत्यादि। णाणि परमात्मरागाद्यास्रवयोर्भेदज्ञानी मुएप्पिणु मुक्त्वा। कम्। भाउ भावम्। कथंभूतं भावम्। समु उपशमं पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषरहितं वीतरागपरमाह्लादसहितम्। कित्थु वि जाइ ण राउ तं पूर्वोक्तं समभावं मुक्त्वा कवापि बहिर्विषये रागं न याति न गच्छति। कस्मादिति चेत्। जेण लहेसइ येन कारणेन [1]लभिष्यति भाविकाले प्राप्स्यति। कम्। णाणमउ ज्ञानमयं केवलज्ञाननिर्वृत्तं केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणं। तेण जि तेनैव सम्भावेन अप्प-सहाउ निर्दोषिपरमात्मस्वभावमिति। इदमत्र तात्पर्यम्। ज्ञानी पुरुषः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं समभावं विहाय बहिर्भावे रागं न गच्छति येन कारणेन समभावेन विना शुद्धात्मलाभो न भवतीति।।४७।।

आगे जो ज्ञानी पुरुष हैं, वे परमवीतरागरूप समभाव को छोड़कर शरीरादि परद्रव्य में राग नहीं करते, ऐसा दिखलाते हैं -

ज्ञानी समताभाव छोड़कर राग कहीं भी नहीं करे।
इसीलिए वे ज्ञानस्वभावी निज स्वभाव को प्राप्त करें।।४७।।

अन्वयार्थ :- [ज्ञानी] निजपर के भेद का जाननेवाला ज्ञानी मुनि [शमं भावं] समभाव को [मुक्त्वा] छोड़कर [कवापि] किसी पदार्थ में [रागम् न याति] राग नहीं करता, [येन] इसी कारण [ज्ञानमयं] ज्ञानमयी निर्वाणपद [प्राप्स्यति] पावेगा, [तेनैव] और उसी समभाव से [आत्मस्वभावम्] केवलज्ञान पूर्ण आत्मस्वभाव को आगे पावेगा।

भावार्थ :- जो अनंत सिद्ध हुए वे समभाव के प्रसाद से हुए हैं, और जो होवेंगे, इसी भाव से होंगे। इसलिये ज्ञानी समभाव के सिवाय अन्य भावों में राग नहीं करते। इस

---

१. पाठान्तर : लभिष्यति = लप्स्यते

समभाव के बिना अन्य उपाय से शुद्धात्मा का लाभ नहीं है। एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है। समभाव उसे कहते हैं, जो पंचेन्द्रि के विषयों की अभिलाषा से रहित वीतराग परमानंदसहित निर्विकल्प निजभाव हो।।४७।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ३, बुधवार
दिनांक-१०-११-१९७६, गाथा-४७-४८, प्रवचन-१२९

..... इन दो का जिसे आस्रव से भगवान आत्मा का भेदज्ञान हुआ है, उसे यहाँ ज्ञानी स्व-पर का जाननेवाला कहते हैं। समझ में आया? जिससे भिन्न जाना, उससे निश्चय की दशा कैसे हो? जो आस्रवभाव है पुण्य और पाप, उसे पर जाना और आत्मा ज्ञायकस्वरूप शुद्ध है, उसे निज जाना, उसे यह आस्रव, संवर-निर्जरा का कारण—मोक्षमार्ग का कारण किस प्रकार हो? यह एक बड़ा विवाद है न? शुभ करते-करते होगा। इसका यहाँ पहले निषेध किया।

शुभभाव, वह आस्रवभाव है। चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव हो, वह भाव आस्रव, पुण्य, शुभभाव है। उससे जिसने भगवान आत्मा को आस्रव से भिन्न जाना और शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, ऐसा जिसे ज्ञान में आया, वह तो आस्रव से भिन्न जाना आत्मा को। उसे आस्रव से लाभ हो, ऐसा कभी नहीं होता। पंचास्तिकाय में ऐसा कहा है न, भेद और निश्चय। व्यवहार है, वह साधन है और निश्चय है, वह साध्य है। पंचास्तिकाय में कहा है, लो! उससे तो विरुद्ध हुआ यह।

मुमुक्षु : जैनशासन में कहीं विरोध नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विरोध नहीं। वहाँ आगे जो राग की मन्दता, उसे व्यवहार साधन कहकर निश्चय का साध्य कहा, वह आरोपित कथन है। साधन तो राग से भिन्न पड़कर प्रज्ञाछैनी द्वारा आत्मा को जाने, वह साधन है। वह साधन है, वह साधक है। उस साधक के साथ राग की मन्दता को व्यवहार से आरोप करके साधन कहा है। उसे ऐसा ही जाने कि यथार्थ साधन है, तब तो उससे विरुद्ध हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? यह मार्ग बहुत अलौकिक है, भाई! आहाहा!

भेदज्ञानी। निज और पर आस्रव। निज स्वरूप तो वीतरागमूर्ति प्रभु है और आस्रव, वह रागस्वरूप है। नौ तत्त्व में वह आस्रव तो रागस्वरूप है। भगवान आत्मा आस्रवस्वरूप नहीं। वह तो ज्ञायकस्वरूप है। ऐसा जिसे निज और पर का ज्ञान हुआ, वह मुनि समभाव को छोड़कर। आहाहा! समभाव की व्याख्या करेंगे। नीचे।

समभाव उसे कहते हैं,... ४७। **जो पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा से रहित...** ४७ (गाथा की) अन्तिम लाईन। **समभाव उसे कहते हैं,...** यहाँ यह कहा न, **समभाव को छोड़कर...** समभाव को छोड़कर राग में नहीं आता। समभाव कहना किसे? आहाहा! पुण्य और पाप के भाव हैं, वे विषमभाव हैं। उनसे रहित वह समभाव वीतरागी परिणाम है। यह समभाव की व्याख्या की। **पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा से...** पाँचों इन्द्रियों की ओर का झुकाव, उसे छोड़कर। आहाहा! **वीतराग परमानन्दसहित...** रागरहित अतीन्द्रिय आनन्द की दशा के वेदनसहित समभाव को समभाव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि शुभ और अशुभभाव दोनों जब सम से (विरुद्ध) विषमभाव है, दुःखभाव है, आकुलताभाव है... आहाहा! समझ में आया? तब यह शुभ-अशुभभाव से भिन्न भगवान को जाना, भगवान अर्थात् स्वयं आत्मा, उसमें जो समभाव हुआ, उसमें पुण्य-पाप का भाव नहीं आया, अर्थात् दुःख नहीं आया; तब समभाव हुआ, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द आया। आहाहा! समझ में आया? यह सामायिक कहते हैं न? सामायिक। तो सामायिक में समता की आय अर्थात् लाभ, उसे सामायिक (कहते हैं)। तो समता अर्थात् यह। आहाहा!

वीतराग परमानन्दसहित निर्विकल्प निजभाव हो। यह समभाव। उस समभाव का जिसे लाभ हो, उसे सामायिक कहते हैं। ऐसे सामायिक करके बैठे—णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं... वह सामायिक नहीं है। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने जो समभाव कहा, उसकी व्याख्या यह है कि जिसमें पुण्य-पाप के भाव से भिन्न पड़ा है, इसलिए पुण्य-पाप का भाव तो दुःखरूप और आकुलता था। आहाहा! जब आत्मा की ओर के झुकाव में समभाव आया तो उस समभाव में वीतरागी आनन्द का वेदन आया, जब पुण्य-पाप का वेदन वह दुःखरूप था। आहाहा! णमो अरिहंताणं आदि स्मरण करना, वह भी दुःखरूप है।

अरर! ऐसी बातें कठिन पड़े। क्योंकि विकल्प है, वह राग है। होता है, ज्ञानी को भी होता है, पूर्ण वीतराग न हो, तब तक (होता है) परन्तु है वह दु:खरूप और हेय। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

समभाव। भाषा तो देखो! पाँच इन्द्रिय की ओर के झुकाव का भाव, वह विषमभाव है। चाहे तो भगवान की वाणी सुने तो वह विषमभाव है, पुण्य है। आहाहा! समझ में आया? यह बाद में कहेंगे। समभाव में रहा हुआ ध्यानी नहीं पढ़ाता, नहीं पढ़ता। आहाहा! क्योंकि पढ़ना और पढ़ाना, वह तो विकल्प-राग है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान वीतरागमार्ग... यह बाद में ४८ में कहेंगे। पढ़ना-पढ़ाना, वह तो विकल्प-राग है। पर से पढ़ना या पढ़ाना... आहाहा! वह तो समभाव से विरुद्ध भाव विकल्प है। आहाहा! समझ में आया?

यह **वीतराग परमानन्दसहित निर्विकल्प निजभाव...** वह पुण्य-पाप, वह परभाव था। तब यह निर्विकल्प वीतरागी आनन्दसहित निजभाव है। आहाहा! कहो, मीठालालजी! ऐसा मार्ग लोगों को कठिन लगता है बेचारों को। आहाहा! और यह एक नियत है, यह इसे कठिन लगता है। नियतवाद है। भाई! जिसे जिस समय में....

मुमुक्षु : आड़ा-टेढ़ा कुछ आप कहते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आड़ा-टेढ़ा भी किस प्रकार हो? जिस समय का निजक्षण है जिस द्रव्य की, उस क्षण में वह पर्याय होती है। प्रवचनसार की १०१-१०२ गाथा।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ करे तो मोक्ष सीधा हो, पुरुषार्थ न करे तो मोक्ष नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पुरुषार्थ करे, वह है न अन्दर में। समभाव होना, वही पुरुषार्थ है। आहाहा! अथवा जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है वह होगी, ऐसा निजक्षण है, ऐसा कहा। परन्तु उसका तात्पर्य क्या? शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। यह जिस क्षण में जो पर्याय होनेवाली है, वह होगी, उसे नहीं निमित्त की आवश्यकता, नहीं उसे द्रव्य-गुण की आवश्यकता। आहाहा! ऐसी जो पर्याय, वह जिसे बैठे, उसे वीतरागता तात्पर्य आना चाहिए अर्थात् कि उसे द्रव्य पर दृष्टि जाना चाहिए। समझ में आया? आहाहा!

सब शास्त्र—चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो वीतरागता कब होगी? आहाहा! कि निमित्त, राग और पर्याय की उपेक्षा करके स्वभाव की अपेक्षा करे। समझ में आया? तब वीतरागता होगी। सम्यग्दर्शन, वह वीतरागी पर्याय है। नियत में जिस समय में होगी, वह नियत हो गया। निमित्त से बदले नहीं तो उसे नियत हो गया, ऐसा वे कहते हैं। उपादान में पर्याय होने में पचास प्रकार की योग्यता है। जैसा निमित्त आवे, वैसी पर्याय होती है, ऐसा (वे) कहते हैं। ऐसा है ही नहीं। उपादान में एक समय का जो क्षण है, उस क्षण में जो होने की वह एक ही योग्यता है। निमित्त आवे तो होता है। कुम्हार को घड़ा बनाना हो तो घड़ा बनावे, सकोरा बनाना हो तो सकोरा बनावे, ऐसा नहीं है। सूक्ष्म बात। आहाहा! घड़ा बनने की पर्याय का काल है, इसलिए वह घड़ा होता है। निश्चय से तो मिट्टी भी उसका कारण नहीं। आहाहा! क्योंकि वह पर्याय सत् है। सत् को कोई हेतु की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! अर्थात् कि जिस समय में वह हो तो फिर निमित्त आकर बदले, ऐसा नहीं है, इसलिए नियत हो जाता है। ऐसा वे कहते हैं। बापू! नियत है, परन्तु उसका सार क्या? ऐसी जो समय-समय की जो पर्याय हो, उसे जाननेवाला, वह पर से, आस्रव से भिन्न पड़कर द्रव्य का ज्ञान करे, तब उस समय में वह हुई, उसे ज्ञान होता है। अर्थात् कि वहाँ आगे सम्यग्दर्शन की वीतराग पर्याय होती है। जिस समय में जो होनेवाली है, वह होती है, इसका तात्पर्य वीतरागता है। तो वीतरागता का अर्थ कि इस पर्याय से लक्ष्य छोड़कर, पर्याय में तो रागादि है, उनका लक्ष्य छोड़कर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य करेगा तो सम्यग्दर्शन होगा, वह वीतरागपर्याय तात्पर्य हुआ। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसी बात है। बापू! क्या हो? आहाहा! इसे श्रद्धा में तो पहले निर्णय करे कि वस्तुस्थिति ऐसी है। निमित्त आवे, चाहे जिस प्रकार का निमित्त आवे तो उसी प्रकार की पर्याय होती है, ऐसा है ही नहीं। यह वस्तु की व्यवस्था झूठी है। आहाहा! समझ में आया?

वास्तव में तो घड़ा होने में मिट्टी के पिण्ड के व्यय की भी जिसे अपेक्षा नहीं। मिट्टी की अपेक्षा नहीं, पिण्ड के व्यय की अपेक्षा नहीं। तो निमित्त की अपेक्षा तो उसमें कहाँ है? आहाहा! तो उसे नियत हो जाता है। परन्तु नियत का अर्थ ही यह है कि ऐसा जिसे समय-समय की पर्याय काललब्धि उसकी है, छहों द्रव्यों की, उस समय में वह

हो, ऐसा जो निर्णय करनेवाला, उसे वीतरागता आती है। क्यों ?—कि वह द्रव्य पर दृष्टि जाये तो वीतराग की पर्याय समकित होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : घड़े को मिट्टी की आवश्यकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : तो उसकी पर्याय की....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्व पर्याय की—व्यय की आवश्यकता नहीं। प्रवचनसार-१०१ गाथा। उत्पाद को व्यय की आवश्यकता नहीं, व्यय को उत्पाद की आवश्यकता नहीं, उत्पाद को ध्रुव की आवश्यकता नहीं—अपेक्षा नहीं। ओहोहो! तब इसमें तो नियत हो जाता है। यह बदल डाला है न भाई वर्धमान ने? सोनगढ़ का नियतवाद है। जिस समय में जो पर्याय हो, वही मानता है। परन्तु पर्याय होने की योग्यता है, जैसा निमित्त आवे वैसी पर्याय होती है। कुम्हार की इच्छा प्रमाण घड़े की या सकोरा की पर्याय होती है। बापू! ऐसा नहीं, भाई! समझ में आया?

यह ९९, १००, १०१, १०२ (गाथा) यह प्रवचनसार का ज्ञेय अधिकार है और यह समकित का अधिकार है। ज्ञेय का स्वरूप ही ऐसा है कि जिस समय में जो पर्याय होती है, उसका जन्मक्षण है और उस पर्याय को उसके व्यय की आवश्यकता नहीं, उसके ध्रुव की (अपेक्षा नहीं)। ऐसा ज्ञेय का स्वयंसिद्ध स्वरूप है। यह सम्यग्दर्शन का विषय वहाँ वर्णन किया है। आहाहा! ऐसा ही (स्वरूप) है। वह ज्ञेय का वर्णन है, भाई! जरा शान्ति से (समझ)। ऐसा का ऐसा ऊपर से, अध्धर से दिये रखे, ऐसा नहीं चलता। यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर जिसके कहनेवाले हैं, उस वाणी को पहिचानना पड़ेगा, भाई! ऐसे बाहर से आग्रह से नहीं ज्ञात होगा। आहाहा!

यहाँ तो दो बातें कीं। निज-पर के भेद को जाननेवाला। आस्रव और आत्मा दो को भिन्न जाननेवाला। भिन्न जानने की पर्याय का भी स्वकाल है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन की पर्याय भी उत्पन्न होने का स्वकाल है। अर्थात् कि उसकी दृष्टि जाये कहाँ? द्रव्य पर जाये। वास्तव में तो सम्यग्दर्शन की पर्याय द्रव्य-आश्रित होती है, ऐसा भी अपेक्षित है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' अर्थात् कि पर्याय का

लक्ष्य स्व में जाता है, इस अपेक्षा से उसका आश्रय किया, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? बाकी तो पर्याय को द्रव्य का आश्रय है नहीं। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय को '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**' (समयसार) ११वीं गाथा। इसका अर्थ यह कि पर्याय का लक्ष्य वहाँ गया, इसलिए उसका आश्रय किया, ऐसा कहने में आया है। आहाहा! वह पर्याय सम्यग्दर्शन समभावी आनन्द के वेदनवाली। आहाहा! उस पर्याय को कोई निमित्त की अपेक्षा नहीं है, तथा उसे राग की मन्दता व्यवहार आदि हो तो सम्यक् पर्याय हो, ऐसी उसे अपेक्षा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? कनुभाई! ऐसी बात है, बापू! क्या करे? अरे! परमात्मा का विरह पड़ा, केवलज्ञान, अवधिज्ञान रहे नहीं। मति और श्रुतज्ञान थोड़ा रहा, उसमें यह झगड़े उठे। आहाहा!

यहाँ तो ज्ञानी की व्याख्या करते हुए आत्मा और आस्रव दो लिये हैं। उनका भेदज्ञान किया है, ऐसा कहते हैं। आस्रव को साथ रखकर भेदज्ञान किया है, ऐसा नहीं कहा। पृथक् करके। आहाहा! टीका में है। '**परमात्मरागाद्यास्रवयोर्भेदज्ञानी**' संस्कृत में पहली लाईन है। अर्थ में इतनी बात डाली। आहाहा! निज और पर। पर में यह आस्रव। दूसरी चीज़ तो कहीं दूर रह गयी। जिसकी पर्याय में दूसरी चीज़ तो है नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में आस्रव है। आत्मा की पर्याय में कर्म, शरीर, वाणी, परद्रव्य तो है ही नहीं। पर्याय में नहीं। द्रव्य, गुण में तो नहीं परन्तु पर्याय में नहीं। अब पर्याय में आस्रव है। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव, उनसे भेद करना है अर्थात् कि है, उनसे दृष्टि छोड़ देना है। आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, वह आस्रव से भिन्न पड़कर निज स्वरूप को परमात्मारूप से अन्दर जानता है। आहाहा! समझ में आया? उसमें यह बात भी आयी कि पर को पर से भिन्न करके जानने का भी उसका स्वकाल है। परन्तु उस स्वकाल का सच्चा ज्ञान कब होता है उसे? कि जब उस पर्याय को द्रव्य की ओर झुकाये, तब उसका ज्ञान यथार्थ होता है। अरेरे! अब ऐसी बातें इसे... ऐसा मार्ग ऐसा है, बापू! दुनिया से अलग प्रकार है।

निज (और) पर का भेद जाननेवाला ज्ञानी समभाव को छोड़कर **किसी पदार्थ में राग नहीं करता, इसी कारण ज्ञानमयी निर्वाणपद पावेगा,...** क्या कहते हैं यह ? आस्रव से भिन्न अपना स्वरूप जाना तो वह स्वयं है, वह स्वरूप ज्ञानमय है। इसलिए जिसे भेदज्ञान हुआ, वह ज्ञानमय परमात्मपद को प्राप्त करेगा। क्योंकि सिद्धपद, वह ज्ञानमय है। आस्रवमय संसारमय वह पद है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया ? बातें बापू! दुनिया से अलग प्रकार की हैं। आहाहा! यह **उसी समभाव से...** है ? **ज्ञानमयी निर्वाणपद...** पहली तो व्याख्या ऐसी की। निर्वाण क्या चीज़ है ? कि ज्ञानमय है। मोक्ष क्या चीज़ है ? ज्ञानमय है, आनन्दमय है, शान्तमय है। वह वस्तु है। वहाँ राग वस्तु नहीं।

और उसी समभाव से केवलज्ञान पूर्ण... दो भाषा ली है न! '**जेण लहेसइ णाणमउ तेण जि अप्प-सहाउ॥**' आत्मस्वभाव को पायेगा। आहाहा! समझ में आया ? **केवलज्ञान पूर्ण आत्मस्वभाव को आगे पावेगा।** आहाहा! अर्थात् कि राग आस्रव से भिन्न पड़ा हुआ भेदज्ञान, वह ज्ञान है, वह परिपूर्णता को पायेगा, तब उसे केवल(ज्ञान) होगा और पश्चात् जब चार कर्म की अशुद्धता है, वह छूट जायेगी तो वह अकेले आत्मस्वभाव को पायेगा। समझ में आया ? आहाहा! ऐसी बातें अब। वह तो व्रत पालो, तपस्या करो, अपवास करो, यात्रा करो, लो! राग है, बापू! वह तो पुण्य होता है। पाप से बचने को वह होता है परन्तु वह वस्तु धर्म नहीं है तथा वह धर्म का कारण भी नहीं है। वस्तु ऐसी है। आहाहा!

भावार्थ :- जो अनन्त सिद्ध हुए, वे समभाव के प्रसाद से हुए हैं,... इसका अर्थ कि व्यवहार से हुए, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समभाव से, वीतरागभाव से मोक्ष हुआ है। रागभाव से हुआ, ऐसा नहीं। आहाहा! व्यवहार से मोक्ष होता है, ऐसा है नहीं। व्यवहार तो बन्ध का कारण है। आहाहा! **जो (कोई) अनन्त सिद्ध हुए, वे समभाव के प्रसाद से हुए हैं,...** आहाहा! अन्तर में पुण्य के परिणाम से रहित, व्यवहार से रहित, समभाव जो वीतरागी परमानन्दगर्भित अनुभव, उस समभाव से सिद्ध हुए हैं। आहाहा! समझ में आया ?

और जो होवेंगे, इसी भाव से होंगे। भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, वे इस भाव से

होंगे। एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' आहाहा! समभावरूपी अमृत के स्वादिया... आहाहा! वे अनन्त सिद्ध हुए हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह राग के रसिया बन्धन में पड़े हैं। भले शुभराग हो। वह राग का रस तो आकुलता-दु:ख है और समभाव का स्वभाव वीतरागी आनन्द गर्भित समभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! पहले तो समझना कठिन पड़े। ऐसी चीज़ है, बापू! दुनिया चाहे जो मानो। सत्य को कोई आँच नहीं। सत्य तो सत्य है। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं, **इसी भाव से होंगे।** वीतरागी परमानन्द के वेदन द्वारा अनन्त सिद्ध हुए और सिद्ध होंगे। आहाहा! **इसलिए ज्ञानी समभाव के सिवाय अन्य भावों में राग नहीं करते।** आहाहा! अपना जो वीतरागी भाव, पुण्य-पाप के भाव विषमभाव से रहित—ऐसा जो आत्मा का समभाव स्वभाव, उसे छोड़कर वे राग करते नहीं। आहाहा! **इस समभाव के बिना अन्य उपाय से शुद्धात्मा का लाभ नहीं है।** लो! कोई रागादि का उपाय व्यवहार करे और फिर निश्चय हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! **अन्य उपाय से शुद्धात्मा का लाभ नहीं है।** आहाहा! **एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है।** है? आहाहा! ऐसा बताकर पुण्य परिणाम भी विषमभाव है, उससे समभाव होता नहीं और उससे सिद्धि होती नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है। भवसागर। ओहोहो! चौरासी लाख के अवतार (रूप) समुद्र, चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में अनन्त अवतार भवसिन्धु—भव का समुद्र बड़ा दु:ख का। चौरासी लाख के अवतार, प्रभु! उस भवसागर को पार उतरने का उपाय तो एक समभाव है। आहाहा! समभाव अर्थात् वीतरागभाव। रागभाव नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया? **एक समभाव ही भवसागर से...** चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। चींटी के, कौवे के, कुत्ते के... आहाहा! एक-एक नरक में अनन्त बार जन्मा। ३३-३३ सागर नरक में पानी की बूँद नहीं, आहार का कण नहीं और जन्म से सोलह रोग, उसे कोई दवा नहीं वहाँ। आहाहा! सोने के लिए चबूतरा नहीं, ओढ़ने के लिए वस्त्र नहीं। आहाहा! ऐसे इसने ३३ सागर ऐसे अनन्त व्यतीत किये। एक नहीं। यह महा भवसमुद्र। आहाहा! इसे (पार) उतरने का भाव एक समभाव है। भवसागर से पार उतरने का।

वीतरागमूर्ति आत्मा की वीतरागी पर्याय, वह एक भवसागर को पार उतरने का उपाय है। आहाहा!

इस समभाव के बिना अन्य उपाय से शुद्धात्मा का लाभ नहीं है। एक समभाव ही भवसागर से पार होने का उपाय है। समभाव उसे कहते हैं,... यह बात हो गयी। समभाव-समभाव साधारण लोग क्रोध न करे तो समभावी है, ऐसा नहीं। समभाव की व्याख्या पंचेन्द्रिय के विषय की ओर के झुकाव के रागरहित... आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार और देव-गुरु-शास्त्र भी इन्द्रिय का विषय है। ३१ गाथा में कहा है न? **'जो इंदिये जिणित्ता'** द्रव्य इन्द्रिय जड़, भाव इन्द्रिय क्षयोपशम का अंश और इन्द्रिय के विषय, वे भी इन्द्रिय। भगवान और भगवान की वाणी भी इन्द्रिय में जाती है, अणीन्द्रिय में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

पंचेन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा से... आहाहा! पाँचों इन्द्रिय के शुभ-अशुभभाव को सुनना, उसकी अभिलाषारहित। आहाहा! अणीन्द्रिय ऐसा जो भगवान आत्मा, वीतराग परमानन्दसहित... आहाहा! पर्याय में, हों! वस्तु तो वीतराग परमानन्द निर्विकल्प निजभाव त्रिकाल है। यहाँ उसकी पर्याय की बात है।

मुमुक्षु : समभाव को कारण कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : समभाव पर्याय की बात है। यह समभाव प्रगट कहाँ से हुआ? कि वीतराग निर्विकल्प त्रिकाली स्वरूप है, उसमें से, अर्थात् कि उसके आश्रय से। आहाहा! समझ में आया? यह पुण्य के आश्रय से प्रगट नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! व्यवहार बहुत अच्छा किया, इसलिए उसे यह समभाव प्रगट हुआ; विषमभाव करते-करते समभाव प्रगटे—ऐसा नहीं है। आहाहा! पुण्य परिणाम भी विषमभाव है। उसे छोड़कर वीतराग परमानन्दसहित निर्विकल्प निजभाव, निर्विकल्प निजभाव... आहाहा! वह एक ही उपाय है। आहाहा! उस समभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ गये। समभाव में। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र तीनों समभाव की व्याख्या।

पहले आ गया है, ३९ गाथा में कि बारह अंग की सब टीका समभाव है।

समभाव की टीका है सब। अर्थात् कि वीतरागभाव की ही वह सब टीका है। आहाहा! पहले आ गया है यह। ओहोहो! अर्थात् कि इसका अर्थ कि वीतराग पर्याय जो है, उसे बतलाने के लिये पूरा शास्त्र है। अब वह वीतरागी पर्याय प्रगटे कैसे? कि वीतरागी परमानन्द का नाथ भगवान है, उसके अवलम्बन से प्रगटे... निज अवलम्बन से प्रगटे; पर अवलम्बन से प्रगटे नहीं। आहाहा! शास्त्र का तात्पर्य यह और समभाव की पूरी टीका कहते हैं बारह अंग की। अर्थात् कि चारों अनुयोगों में सार तो वीतरागता बतलायी है। वीतरागता, वह समभाव है। समभाव, वह मोक्ष का कारण है। तो वह समभाव प्रगटे कैसे? वह तो पर्याय है। त्रिकाली समभावी वस्तु भगवान के अवलम्बन से प्रगटे। निज अवलम्बन से प्रगटे। पर अवलम्बन से तो विषमभाव उत्पन्न होता है। चाहे तो भगवान की वाणी हो तो भी विषम-पुण्यभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! ऐसी बातें है। समझ में आया? यह ४७ (गाथा) हुई।

गाथा - ४८

अथ ज्ञानी कमप्यन्यं न भणति न प्रेरयति न स्तौति न निन्दतीति प्रतिपादयति -

१७२) भणइ भणावह णवि थुणइ णिदह णाणि ण कोइ।
सिद्धिहिँ कारणु भाउ समु जाणंतउ पर सोइ।।४८।।

भणति भाणयति नैव स्तौति निन्दति ज्ञानी न कमपि।
सिद्धेः कारणं भावं समं जानन् परं तमेव।।४८।।

भणइ इत्यादि। भणइ भणति नैव भणावह नैवान्यं भाणयति न भणन्ते प्रेरयति णवि थुणइ नैव स्तौति णिदइ णाणि ण कोइ निन्दति ज्ञानी न कमपि। किं कुर्वन् सन्। सिद्धिहिं कारणु भाउ समु जाणंतउ पर सोइ जानन्। कम्। परं भावं परिणामम्। कथंभूतम्। समु समं रागद्वेषरहितम्। पुनरपि कथंभूतं कारणम्। कस्याः। सिद्धेः परं नियमेन सोइ तमेव सिद्धिकारणं परिणाममिति। इदमत्र तात्पर्यम्। परमोपेक्षासंयमभावनारूपं विशुद्धज्ञानदर्शननिजशुद्धात्मतत्त्व-सम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुभूतिलक्षणं साक्षात्सिद्धिकारणं कारणसमयसारं जानन् त्रिगुप्तावस्थायां अनुभवन् सन् भेदज्ञानी पुरुषः परं प्राणिनं न भणति न प्रेरयति न स्तौति न च निन्दतीति।।४८।।

आगे कहते हैं, कि ज्ञानीजन समभाव का स्वरूप जानता हुआ न किसी से पढ़ता है, न किसी को पढ़ाता है, न किसी को प्रेरणा करता है, न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निंदा करता है -

पढ़ते नहीं पढ़ाते भी नहिं निन्दा स्तुति नहीं करें।
मोक्ष हेतु समभाव जानते, अतः उसी में लीन रहें।।४८।।

अन्वयार्थ :- [ज्ञानी] निर्विकल्प ध्यानी पुरुष [कमपि न] न किसी का [भणति] शिष्य होकर पढ़ता है, न गुरु होकर किसी को [भाणयति] पढ़ाता है, [नैव स्तौति निंदति] न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निंदा करता है, [सिद्धेः कारणं] मोक्ष का कारण [समं भावं] एक समभाव को [परं] निश्चय से [जानन्] जानता हुआ [तमेव] केवल आत्मस्वरूप में अचल हो रहा है, अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता।

भावार्थ :- परमोपेक्षा संयम अर्थात् तीन गुप्ति में स्थिर परम समाधि उसमें आरूढ जो परमसंयम उसकी भावनारूप निर्मल यथार्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान,

सम्यक्चारित्र वही जिसका लक्षण है, ऐसा मोक्ष का कारण जो समयसार उसे जानता हुआ, अनुभवता हुआ, अनुभवी पुरुष न किसी प्राणी को सिखाता है, न किसी से सीखता है, न स्तुति करता है, न निंदा करता है। जिसके शत्रु, मित्र, सुख, दुःख, सब एक समान हैं।।४८।।

गाथा-४८ पर प्रवचन

अब विषमभाव की थोड़ी व्याख्या करते हैं। समभाव का वर्णन किया, वह विषमभावरहित है। तो विषमभाव का क्या स्वरूप है?

आगे कहते हैं, कि ज्ञानीजन समभाव का स्वरूप जानता हुआ न किसी से पढ़ता है,... आहाहा! किसी से पढ़ना, वह तो राग है। आहाहा! धन्नालालजी! अरे! ऐसी बातें! **न किसी से पढ़ता है, न किसी को पढ़ाता है,...** नहीं कुछ पढ़ता और नहीं कुछ पढ़ाता। पढ़ना भी एक विकल्प—विषम भाव है। आहाहा! ऐसा मार्ग सुना नहीं। उसे तो ऐसा लगे कि वह यह क्या बात करते हैं ऐसी?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पंचम काल की बात चलती है। यह पंचम काल की पुस्तक है न? पंचम काल के लिये बनायी है न! पंचम काल के साधु हैं, यह योगीन्द्रदेव। आहाहा! समझ में आया? यह तो पहले आ गया। पंचम काल में शुक्लध्यान नहीं, परन्तु धर्मध्यान तो है या नहीं? और वह धर्मध्यान आत्मा के अवलम्बन से, निज अवलम्बन से होता है। पर के अवलम्बन से धर्मध्यान नहीं हो सकता। यह बात पहले आ गयी है। आहाहा! भारी कठिन बातें! ऐसे शत्रुंजय की यात्रा, सम्मेदशिखर की यात्रा (करे), लो। 'एक बार वंदे जो कोई नरक पशु (गति) न होई।' परन्तु उसमें क्या हुआ? वह तो एक बार पुण्य हुआ हो तो स्वर्ग में जाये कदाचित्। वहाँ से वापस नीचे गिरनेवाला है। आहाहा!

सम्मेदशिखर की लाख-करोड़ यात्रा करे नहीं, वह तो परद्रव्य है। साक्षात् त्रिलोक के नाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में विराजते हैं। वहाँ जाकर मणिरत्न के दीपक

से, हीरा के थाल, कल्पवृक्ष के फूल से अनन्त बार भगवान की पूजा की। वह शुभभाव है। परद्रव्य के ऊपर झुकाव है, वह शुभभाव है। निज अवलम्बन बिना शुद्धभाव कहाँ से होगा? आत्मा के निज अवलम्बन बिना शुद्धभाव नहीं होता। पर के अवलम्बन से तो शुभ-अशुभ ही होते हैं। समझ में आया? आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा आदि के अवलम्बन से पाप होता है।

मुमुक्षु : वह तो किये बिना छुटकारा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? अरे! जीवन के पल चले जाते हैं। महंगे मूल्य का कीमती (पल) चला जाता है। उसमें इस संसार के लिये स्त्री, पुत्र, परिवार और धन्धे के लिये रुके, वह तो मात्र पाप है। आहाहा! यह सब पड़े रहेंगे और पाप लेकर चला जायेगा।

मुमुक्षु : स्त्री-पुत्र को भेजना कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहाँ थे इसके पास? इसके कहाँ थे, उन्हें भेजना अन्यत्र? वे तो उनके होकर रहे हैं। वे तेरे कहाँ थे (कि) उन्हें भेजना और रखना? आहाहा! परद्रव्य को रखना और परद्रव्य को अन्यत्र भेजना, ऐसा है? वह तो परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके बिना काम कैसे चले?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनके बिना ही रहा है। स्व से रहा है और पर से नहीं, तब टिक रहा है। स्त्री, कुटुम्ब, शरीर, कर्म के अभाव से—उनकी नास्ति जीव में है, तब तो इसकी अस्ति टिक रही है। उनके कारण टिकी है? आहाहा!

यह प्रश्न हुआ था वहाँ बोटाद, बोटाद। (संवत्) २०१० के वर्ष। ऐसा कि यह लक्ष्मी बिना कुछ चलता है? ऐसा पूछा था। एक हरजीवनभाई थे। समढियाळावाले। नागरभाई के भाई। वैसे स्वामीनारायण थे। परन्तु उनके भाई यहाँ थे। नागरभाई यहाँ। फिर उन्होंने प्रश्न किया था। व्याख्यान चलता था, बोटाद २०१० के वर्ष। पंच कल्याणक थे न? वेदी प्रतिष्ठा। यह पैसे बिना कुछ चलता है? मैंने कहा, पैसे बिना तीन काल में आत्मा ने चलाया है। क्योंं पैसा पर है, उससे अभावरूप से आत्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : त्यागी तो ऐसा ही कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप ऐसा है। यह एक अँगुली इस अँगुली के अभाव से रही है। या इसके कारण यह रही है?

मुमुक्षु : न्याय बराबर है परन्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बात खोटी है। आहाहा! स्वतत्त्व में परतत्त्व का तीनों काल अभाव है। उस अभाव से ही अपना भाव टिक रहा है। अब यह माने कि इस भाव से मुझे टिकना होता है। बड़ी मूर्खता है। आहाहा! सेवा करनेवाले हों, काम करनेवाले हों, सब अनुकूल हों। कौन सेवा करे? प्रभु! तुझे खबर नहीं।

मुमुक्षु : सेवा करनेवाला न हो तो यहाँ से घर में पहुँचाये कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन पहुँचे? यह तो शरीर को पहुँचना हो तो जाता है। आत्मा कहीं पहुँचे? शरीर घर में ले जाना, वह आत्मा से ले जाया जाता है? शरीर की उस समय की क्रियावर्ती की पर्याय गति करके जाने की हो तो उसके कारण से जाती है, आत्मा से नहीं। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! भेदज्ञान किसे कहें? कि जो परतत्त्व और स्वतत्त्व अत्यन्त भिन्न है। उस परतत्त्व से स्वतत्त्व में कुछ हो और स्वतत्त्व से पर में कुछ हो, ऐसा है नहीं। आहाहा! पाँच-पचास वर्ष की उम्र, उसमें चालीस-पचास (वर्ष) वहाँ डाले। कमाना और विषय और इज्जत और स्त्री-पुत्र। मारा डाला इसने। आहाहा! अपने को जाना है मरकर कहीं चला (जायेगा)। आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकता-रूलता हुआ। वहाँ कोई सहायता करने नहीं आता। आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, देखो तो आचार्यों ने कहाँ तक बात ली है! कि **न किसी से पढ़ता है, न किसी को पढ़ाता है,...** पर को पढ़ाना, वह भी एक विकल्प-राग है। आहाहा! व्याख्या तो देखो! पढ़ना, वह भी राग है और पढ़ाना, वह भी राग है, ऐसी व्याख्या की है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : सोगानीजी ने दीनता लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दीनता है। स्वयं के कहने से दूसरा माने तो प्रसन्न होता है, न माने तो अप्रसन्न होता है। इसका अर्थ... आहाहा! सभा प्रसन्न हो तो इसे ठीक पड़े। इसका

अर्थ क्या ? आहाहा ! बापू ! मार्ग अलग, नाथ ! तेरे समभाव का मार्ग ऐसा है । आहाहा !

यही कहा, देखो न ! **न किसी को प्रेरणा करता है,...** ठीक ! विकल्प से यह कर तू । यह पुस्तक बना या अमुक कर, यह प्रेरणा नहीं करते । क्योंकि प्रेरणा करना, वह विकल्प—विषमभाव है । अभी इसे विषम और समभाव की व्याख्या की खबर नहीं होती । वह तो (ऐसा कहता है, हमने) भगवान के नाम से प्रेरणा की, उसमें राग कहाँ से आया ? परन्तु वह स्वयं ही राग है । समझ में आया ? आहाहा ! शास्त्र बनाओ, मन्दिर बनाओ, मकान बनाओ, यह प्रेरणा का भाव भी राग है । आहाहा !

यहाँ तो रागरहित समभाव की व्याख्या करनी है न ? भले हो राग, परन्तु है विषमभाव । आहाहा ! यह पढ़ना और पढ़ाने के भाव से धर्म हो या मोक्ष हो... आहाहा ! बहुत लोग प्रसन्न हो अन्दर और धर्म प्राप्त करे, इसलिए आत्मा को मोक्ष होगा, ऐसा होगा ? आहाहा ! और एक भी व्यक्ति धर्म प्राप्त न करे और इसका उपदेश खाली जाये, इससे इसे नुकसान होगा ? आहाहा ! ऐसी बातें है, भाई ! एक ओर कहना कि नौ तत्त्व भिन्न हैं तथा एक ओर कहे कि आस्रवतत्त्व से आत्मा को लाभ होता है । तो दोनों तत्त्व एक हो गये । आहाहा !

मुमुक्षु : व्यवहार, वह आस्रवतत्त्व है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आस्रवतत्त्व ही है । आहाहा ! व्यवहार है, वह आस्रवतत्त्व है, पूरा शुभराग है । देव, गुरु, शास्त्र की श्रद्धा का भाव स्वयं शुभराग है । पंच महाव्रत के परिणाम शुभराग है । शास्त्र का ज्ञान परलक्ष्यी करना, वह भी एक विकल्प-राग है । आहाहा !

न किसी को प्रेरणा करता है, न किसी की स्तुति करता है,... भगवान की स्तुति नहीं । क्योंकि भगवान की स्तुति करे तो राग है । आहाहा ! हो, परन्तु है राग । उसका इसे ज्ञान होना चाहिए न ? आहाहा ! यहाँ तो एकदम शुभभाव की व्याख्या चलती है । कहो, सेठ ! भगवान की स्तुति करना, वह राग है । शास्त्र वाँचना, वँचवाना, अरेरे ! बेचना, वह सब विकल्प है । आहाहा ! ज्ञानस्वरूप भगवान में उस विकल्प का अवकाश कहाँ है ? आवे तो वह विषमभाव है, ऐसा उसे जानना चाहिए । मुझे लाभदायक है, उससे... आहाहा ! बहुत लोग समझे तो मुझे उसका कुछ लाभ मिले, ऐसा नहीं होता ? तो तुम

किसलिए उपदेश देते हो? अरे... ! भगवान! बापू! उपदेश के काल में उपदेश होता है। विकल्प भी होता है, परन्तु वह समभाव नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निन्दा करता है—यह खराब है, यह झूठी श्रद्धा है, ऐसा फिर विकल्प है ही नहीं समभाव में। ऐसा कहते हैं। वह भी विकल्प है। सत्य को स्थापना करना और असत्य को उत्थापना... आहाहा! वह भी एक विकल्प है। आहाहा! समभाव की व्याख्या तो देखो! आहाहा! होय, परन्तु है वह विषमभाव। उसे छोड़कर स्थिर होगा, वह मुक्ति का कारण है। उसमें प्रेरणा करके इतने मन्दिर बनाये, इतनी पुस्तकें (प्रकाशित) कीं। लो! बीस लाख पुस्तकें हुई हैं। चौदह लाख तो यहाँ से (प्रकाशित हुई हैं) और छह लाख जयपुर से। हुकमचन्दजी ने छह लाख प्रकाशित की हैं। चौदह लाख यहाँ से प्रकाशित हुईं हैं। रामजीभाई ने प्रकाशित की हैं। आहाहा! कहते हैं कि वह तो विकल्प है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : विकल्प भले ही हो परन्तु बहुतों को लाभ तो हुआ न?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे लाभ होता है?

मुमुक्षु : जगत को लाभ हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगत को उससे लाभ होगा? या उसके आत्मा के आश्रय से (होगा)? आहाहा!

'शास्त्र दिशा दिखाकर अलग रहते हैं।' दिशा तो इसे देखनी है। सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! लोगों को व्यवहार के रसिकों को तो यह बात ऐसी लगे। आहाहा! धर्म के नाम का व्यवहार भी विकल्प है। संसार के पाप की तो बात क्या करना? आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश है न! समभाव की व्याख्या करते हुए यह सब विषमभाव है, ऐसा बतलाना है। यह विषमभाव समभाववाला करता नहीं, ऐसा बतलाना है। आहाहा! समझ में आया? **न किसी की निन्दा करता है**— ४८।

१७२) भणइ भणावह णवि थुणइ णिदह णाणि ण कोइ।
सिद्धिहिं कारणु भाउ समु जाणंतउ पर सोइ।।४८।।

अन्वयार्थ :- निर्विकल्प ध्यानी पुरुष... यहाँ तो ध्यान में स्थित होता है, उसकी

बात ली है। क्योंकि विकल्प उठता है, वह तो विषमभाव है। आहाहा! और जो अन्तर में आत्मा के ध्यान में मस्त हो गया है, वह समभाव है। आहाहा! यहाँ तो अभी संसार के धन्धे से निवृत्त होना हो तो इसे पानी उतरता है। कैसे निवृत्त हुआ जाये? अपने लड़के-बड़के को अपने अनुभव का लाभ देना चाहिए न? अपने इतने वर्ष बिताये, पचास वर्ष। उसका अनुभव (देना चाहिए), लड़के को सब खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : उसके लड़के को सिखाना।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा सिखलाना है उसे दुकान पर बैठाकर। होली है वहाँ।

यहाँ तो धर्म के नाम का सीखना, पढ़ना, प्रेरणा, वह राग है। सेठ! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! एक ओर कहे कि शास्त्र का अभ्यास करना, परन्तु स्वलक्ष्य से करना। ऐसा। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा के लक्ष्य से (करना)। यहाँ कहते हैं कि पढ़ना, पढ़ाना, वह राग है। आहाहा! और मानो कुछ बोलना आया हो अधिक, वह अधिक ज्ञानी कहलाता है। बोलना न आवे, वह कम ज्ञानी। ऐसा होगा? ऐसा नहीं है, भाई! आहाहा! पढ़ना और पढ़ाना भी, कहते हैं कि समभाव नहीं। यह व्याख्या। यह राग है। पढ़ने-पढ़ाने में शुभराग है, वहाँ कोई अशुभराग नहीं है। परन्तु है वह राग। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव ही है यहाँ अकेला।

निर्विकल्प ध्यानी पुरुष न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है,... इसका अर्थ कि शिष्य होकर पढ़ता है, वहाँ तक उसका विकल्प है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! **न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है, न गुरु होकर किसी को पढ़ाता है,...** आहाहा! ऐसी बात ऐसी लगे। व्यवहार है वह सब। पढ़ना-पढ़ाना, वह व्यवहार है, वह हेय है। आहाहा! जो आत्मा में स्थिर हो गये हैं, उन्हें यह व्यवहार है नहीं, तब उन्हें लाभ होता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। एकान्त है... एकान्त है... यह सब ऐसा कहते हैं। कहो, भाई! भगवान परमात्मप्रकाश को। आहाहा! सम्यग्ज्ञान दीपिका निकली दिगम्बर का ग्रन्थ। इसलिए अब उसमें रास आया नहीं। सम्यग्ज्ञान दीपिका में दोष निकाला था कि यहाँ का है और निकला दिगम्बर का ग्रन्थ। उसकी खबर नहीं होती उन्हें। अब नियतवाद निकाला। क्योंकि जिस समय में जो पर्याय होती है, वह होनेवाली,

वह तो नियत हो गया। परन्तु नियत, वह निश्चय है। जिस समय में जो पर्याय होती है, वह निश्चय है, ऐसा आता है। आत्मावलोकन और अनुभवप्रकाश। निश्चय का अधिकार है न वहाँ (आता है)। जिस समय में जो जहाँ होनेवाला है, वह निश्चय है और उसमें ही अन्तर आत्मा का आश्रय है। आहाहा! समझ में आया? क्या हो? बात ही सब उल्टी हो गयी थी न! इन सेठियाओं ने फिर पक्ष इतना किया कि यह खराब किया है। इन पुस्तकों को पानी में डाला, इतना काल अभी... सब सेठिया जयपुर इकट्ठे होकर (विरोध किया)। बहुत लेख आये हैं, हों! भाई शाहूजी तो बेचारे गदगद होकर बोले थे, गदगद होकर। अरेरे! कुन्दकुन्दाचार्य की गाथायें, अमृतचन्द्राचार्य की टीकायें, उनका अनुवाद और उसे पानी में डुबोना, वे निरक-निगोद में जायेंगे। कल जगनमोहनलालजी का लेख है। नरक-निगोद पायेंगे बेचारे। ऐसा? आहाहा!

मुमुक्षु : निगोद कहते हैं, उससे भी कुछ डरते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं है ही। बात तो यही है। वह तो अपनी मान्यता में कट्टर है न! आहाहा!

न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निन्दा करता है,... आहाहा! **मोक्ष का कारण एक समभाव को निश्चय से जानता हुआ...** आहाहा! मोक्ष का कारण तो एक वीतरागभाव है। उसे वास्तव में जानता है। **'तमेव' केवल आत्मस्वरूप में अचल हो रहा है,... केवल आत्मस्वरूप में अचल हो रहा है, अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता।** आहाहा! शुभकार्य भी बन्ध का कारण है, राग। राग, हों! देह के कार्य करे, वह प्रश्न नहीं। देह के और मन्दिर के कार्य कर सके शुभ के, वह तो कर सकता ही नहीं। आहाहा! परन्तु शुभ-अशुभभाव जो है, वह कार्य भी जीव का नहीं। आहाहा!

अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता। एकदम समभाव का वर्णन है न? और इस द्वारा उसे विषमभाव का ज्ञान कराना है। ऐसा कि पढ़ना-पढ़ाना, प्रेरणा (करना) वह तुम जानो कि कोई धर्म है, वह वीतरागभाव है, ऐसा नहीं है। ऐसा करके वह विषमभाव है, ऐसा बतलाना है। समझ में आया? भावार्थ में लेंगे। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ४, गुरुवार
दिनांक-११-११-१९७६, गाथा-४८, ४९, प्रवचन-१३०

परमात्मप्रकाश। ४८ गाथा चलती है न? ४८ का भावार्थ।

परमोपेक्षा संयम... कहना क्या चाहते हैं? जिसे अन्दर परम उपेक्षा, पर से उपेक्षा होकर स्वरूप में समभाव प्रगट हुआ है, उसे मुक्ति का कारण है। इसे पहले पढ़ना, पढ़ाना, यह सब राग के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बात कहते हैं। दूसरे से सिखना या सिखलाना, वह भी एक विकल्प है, राग है। वह राग त्यागनेयोग्य है, इसलिए राग को छोड़कर परम उपेक्षा में समभाव में रहेगा, उसे मुक्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? **परमोपेक्षा संयम अर्थात् तीन गुप्ति में स्थिर परम समाधि उसमें आरूढ़...** यहाँ तो यह बात करनी है कि जो विकल्प है, वह हो सम्यग्दृष्टि को, पंचम गुणस्थान में (हो), मुनि को भी वह हो। परन्तु वे विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार है, उसे साधन कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस व्यवहार का अभाव करे तो मुक्ति होगी। आहाहा! उपदेश करना, सुनना, सीखना... ओहोहो! शास्त्र वाँचन करना, वह हो, परन्तु है विकल्प। राग है, ऐसा समाधान यहाँ करना है। आहाहा! इससे वह राग है, वह साधन नहीं। इसका अभाव करके समभाव करे, वह साधन है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? व्यवहार साधन और निश्चय साध्य, ऐसा कहा है। वह तो आरोपित साधन को बतलाया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **परमसंयम उसकी भावनारूप निर्मल यथार्थ सम्यग्दर्शन...** शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की अन्तर अनुभव में प्रतीति (होना) अर्थात् कि जो वस्तु है, उसकी ज्ञान की पर्याय में उसका ज्ञान होने पर, उसके अन्तर में 'यह आत्मा' —ऐसी प्रतीति होना, ज्ञान में आत्मा ज्ञात हुआ, उसकी (प्रतीति)। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय जो पूर्ण स्वरूप, वह पर्याय में ज्ञात हुआ। पर्याय में वह आया नहीं। द्रव्य जो स्वरूप, द्रव्यस्वरूप, वह पर्याय में आया नहीं, परन्तु पर्याय में

उसका ज्ञान आया। आहाहा! ऐसा ज्ञान में आत्मा जाना, उसमें प्रतीति होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

परमसंयम उसकी भावनारूप... भावना अर्थात् अन्दर एकाग्रता। आहाहा! **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वही जिसका लक्षण है,...** आहाहा! **ऐसा मोक्ष का कारण जो समयसार, उसे जानता हुआ,...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में भगवान आत्मा को रमणता करता हुआ, जानता हुआ... आहाहा! **अनुभवता हुआ,...** यहाँ तो वह विकल्प है पढ़ना—पढ़ाना, उसे छोड़ने का कहना है न? छोड़ना का कैसे? कि वह बन्ध का कारण है। आहाहा! पढ़ना—पढ़ाना, वह बन्ध का कारण है, फिर वह साधक कैसे होगा? ऐसी बात है। वीतरागमार्ग। जो शास्त्र का उपदेश करना, वह विकल्प है। छद्मस्थ को। केवली को तो इच्छा बिना वाणी निकलती है। आहाहा! और सुनने में भी इच्छा रागभाव है। उस राग को बन्ध का कारण गिनकर, उसे छोड़कर स्थिर होता है, उसे मुक्ति होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग!

तब कोई कहे, परन्तु यह तो ऐसा हो, परन्तु वह पुरुषार्थ से ही होगा न उसमें। जिस समय में होनेवाला है, तब होगा, ऐसा तुम कहते हो। प्रवचनसार ऐसा ही कहता है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह उसके काल में होती है। उसका क्षण जो समय है, उस काल में वह होती है। आहाहा! उसके काल में हो, तब पुरुषार्थ कहाँ रहा उसमें? वह तो नियत हो गया। भाई! उसके काल में होता है, ऐसा निर्णय स्वद्रव्य के निर्णय में होता है। आहाहा! स्वद्रव्य ज्ञायकभाव की पूर्णता के निर्णय में उस काल में होता है, इसका निर्णय वहाँ होता है। समझ में आया? जिसमें राग का कर्तापना है, वह छूट जाता है। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणतिरूप से परिणमित भगवान आत्मा, वह जिसने दृष्टि में लिया है, उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है। इसलिए उस समय होती है, यह बात रखकर... १०२ में तो यह आया (कि) निज क्षण में होगी। परन्तु निज क्षण में होगी, तो उसका निर्णय कौन करे? वह निर्णय किस प्रकार करे? वह पर्याय के सामने देखकर निर्णय करे? पर्याय में खड़ा रहकर निर्णय करे? आहाहा! यही पुरुषार्थ आया।

वह पर्याय जिस समय में दर्शन-ज्ञान-चारित्र की होनेवाली है, वह उसका काल है। परन्तु इसका अर्थ यह कि उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का यथार्थ ज्ञान कब हुआ? कि द्रव्य का आश्रय लिया, तब वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ है। वह पुरुषार्थ है। वह स्वभाव-सन्मुख का पुरुषार्थ है। वह काल, उस समय में होने का वह काल, वह कारण उसमें साथ में है। उस समय में भवितव्यता का भाव होनेवाला, वह भी उस समय में साथ में है। आहाहा! ऐसी बात! और उसी समय में कर्म के निमित्त का भी स्वतन्त्र उसके कारण से उसका अभाव है उतना। यह पाँचों समवाय एक समय में है। समझ में आया?

यह तो ऐसा कहे, जिस समय में जो पर्याय होनी है, उस काल में होगी तो फिर निमित्त ने क्या किया? निमित्त तो निरर्थक जाता है। उपादान की पर्याय की योग्यता अनेक प्रकार की हो। परन्तु जैसा निमित्त आवे, वैसी पर्याय होती है तो इसने पुरुषार्थ किया कहलाये। ऐसा (वे) कहते हैं। भाई! ऐसा नहीं है, बापू! तुझे (बात) बैठी नहीं।

ज्ञेय का स्वभाव... आहाहा! एक ओर कहा कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जिसका लक्षण, वह मोक्ष का कारण। और एक ओर ऐसा कहा कि यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो समय है, उस काल में वह होगा। प्रवचनसार की १०२ गाथा। समझ में आया? और ऐसा कहा कि फिर उस पर्याय को पूर्व के व्यय की भी अपेक्षा नहीं। उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं और वहाँ ऐसा कहा। यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय द्रव्य के आश्रय से होती है। इसका अर्थ यह कि उसका लक्ष्य वहाँ जाता है, बस इतना। यही पुरुषार्थ है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

मुमुक्षु : लक्ष्य तो तब जाये कि जब काल पाके।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य जाता है, तब काल पकने का ज्ञान होता है। यह तो साथ ही कहा। तब काललब्धि का ज्ञान हुआ कि इस समय में यह होनेवाला था, उसका ज्ञान हुआ। यों तो काललब्धि की धारणा की थी।

बात आवे शास्त्र में। काललब्धि और गुरु का उपदेश, ऐसा बहुत जगह आता

है। आत्मावलोकन में, अनुभवप्रकाश में। परन्तु उस काललब्धि को मोक्षमार्गप्रकाशक में क्या कहा? यह बड़ी चर्चा चली थी कि काललब्धि, भवितव्यता कोई चीज़ नहीं। यह तो जब पुरुषार्थ से होता है, उसका नाम काललब्धि। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है। आहाहा! यह तो बड़ी चर्चा चली थी। (संवत्) १९८३ में, दामनगर। सेठ थे, दामोदर सेठ। बहुत आग्रही बाहर के। पुरुषार्थ नहीं। भगवान ने देखा होगा, तब होगा। उसमें अपने पुरुषार्थ क्या करें? परन्तु बापू! यह और (संवत्) १९८३ में चला हुआ। पहली बात (संवत्) १९७२ में चली थी।

भाई! परन्तु भगवान है, उनकी इतनी पर्याय है। एक समय में अनन्त सिद्धों को जाने और एक-एक द्रव्य के अनन्त गुण, आकाश के प्रदेश से अनन्तगुणे गुण, ऐसे अनन्त द्रव्यों के गुण जो एक समय में जाने, ऐसी समय की पर्याय की सत्ता का स्वीकार कब हो? धन्नालालजी! यह कहीं बातें करने की बातें नहीं हैं, बापू! आहाहा! यह है भगवान जगत में। आहाहा! वह जब स्वभाव-सन्मुख हो, सर्वज्ञस्वभाव का भान-प्रतीति हो, तब सर्वज्ञ की पर्याय जगत में है, ऐसी इसकी व्यवहार से प्रतीति हो। निश्चय से यहाँ हो तो उसकी व्यवहार प्रतीति हो। ऐसा है परन्तु अब... आहाहा!

सम्यग्ज्ञान दीपिका का जब खोटा पड़ा, तो अब नियतभाव लिया इस बार। जैनगजट में वर्धमान... भगवान! क्या करता है? बापू! आहाहा! यह तो नियतवाद है। क्योंकि बात सच्ची। जिस समय में जो पर्याय उत्पन्न होने का उसका क्षण—काल है, यह बात उसे नहीं बैठती। यह तो निमित्त आवे तो होती है। घड़ा होने का काल है तो घड़ा होता है। घड़ा की उत्पत्ति के लिये कुम्हार की आवश्यकता नहीं, मिट्टी के पिण्ड के व्यय की आवश्यकता (अपेक्षा) नहीं, उसे मिट्टी की अपेक्षा नहीं। यह तो (कैसी बात)? धन्नालालजी! फिर नियत लगे।

अरे! भगवान! सुन, बापू! वस्तु तो ऐसी है। जो भगवान ने ऐसी कही है और वस्तु ऐसी है। परन्तु उसका निर्णय कब होगा? कि ज्ञायकस्वभाव सन्मुख झुके, वह पुरुषार्थ है। तब उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय होती है। होती है तो अपने कारण से, परन्तु उस समय यह हुआ, इसका ज्ञान तब यथार्थ होगा। समझ में आया?

अरे! इतनी सूक्ष्म बातें! आहाहा! तत्त्वज्ञान सूक्ष्म वस्तु है। ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहीं नहीं होती।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ करने का कहते हो और नियत भी कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ में हैं। नियत भी कहा न? १०२ गाथा और १०१ गाथा प्रवचनसार! जिस समय में जिसका उत्पाद, उस पर्याय का उस समय में वही होता है। ऐसे उत्पाद को मोक्षमार्ग की पर्याय के—उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं, ध्रुव की नहीं, राग की मन्दता के व्यवहार की तो नहीं, नहीं और नहीं। आहाहा! घड़ा होने का काल है, उस समय घड़ा की पर्याय उत्पन्न होता हो, वह उसका निजक्षण है। उसे कुम्हार की आवश्यकता नहीं। आहाहा! गजब बात है न! सुना नहीं। यह बात थी नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें निमित्त को नहीं माना।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है, ऐसा माना। निमित्त से होता नहीं। निमित्त है, दूसरा उस ज्ञान में आता है। परन्तु निमित्त से वहाँ होता है, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : निमित्त से होता नहीं तो निमित्त का काम क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी चीज़ है। ज्ञान का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। तो परप्रकाशक दूसरी चीज़ है। निमित्त है; नहीं है—ऐसा नहीं है। परन्तु उससे वहाँ कार्य होता है, ऐसा नहीं है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : नियति और पुरुषार्थ का इस प्रकार मेल खाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रकार मेल खाता है।

मुमुक्षु : ख्याल में ही न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं कि भगवान ऐसा कहते हैं कि जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, उस पर्याय का काल है, उस प्रकार से होगी। अब उसमें क्या आया? तब शास्त्र का तात्पर्य तो यह है कि वीतरागता। इस वाक्य में भी वीतरागता लाना चाहिए।

मुमुक्षु : .... वीतरागता आनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। तब उस समय वीतरागता आवे किस प्रकार? उस पर्याय में वीतरागता आवे कब? कि द्रव्यस्वभाव पर (दृष्टि) जाये तब। आहाहा! यह शास्त्र का तात्पर्य है। (पंचास्तिकाय) १७२ गाथा। चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है। वीतरागता हो कब? वीतरागता की पर्याय, वीतरागता की पर्याय के काल में होती है। परन्तु होवे किस प्रकार? द्रव्य के आश्रय से होती है। इसके अतिरिक्त होती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आश्रय का अर्ध्थ कि वहाँ लक्ष्य जाता है, चेतन का। जड़ को तो कुछ लक्ष्य करना, यह है ही नहीं। आहाहा! परम-परम सत्य तो ऐसा है, बापू! आहाहा! इस बात का विचार नहीं किया, मेल किया नहीं और अध्धर से ऐसा का ऐसा उड़ाना, ऐसा बापू! नहीं (होता), भाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र वही जिसका लक्षण है, ऐसा मोक्ष का कारण जो समयसार, उसे जानता हुआ,...** देखो! जानता हुआ यह क्या हुआ? यह पुरुषार्थ हुआ। ज्ञायकस्वरूप को जानता हुआ, ज्ञायकस्वरूप को अनुभव करता हुआ। आहाहा! तब कहे, परन्तु वह तो अनुभव की पर्याय होनेवाली (हो), तब (होती है)। परन्तु होनेवाली होती है, यह तो ऐसा ही है। इससे किसने इनकार किया? यह तो रखकर बात है यहाँ। परन्तु वह पर्याय द्रव्य के आश्रय से उसका लक्ष्य जाये, तब अनुभव होता है।

मुमुक्षु : ....कर्ता होता ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता-फर्ता द्रव्य है ही नहीं। द्रव्य निमित्त कर्ता तो है ही नहीं, व्यवहार कर्ता तो है ही नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म, बापू! ऐसी बात चर्चित नहीं है। चर्चित नहीं है। आहाहा!

भगवान के शास्त्र में तो दीपक, सूर्य जैसी बातें रखी है। प्रवचनसार। आहाहा! यह सिद्धान्त में पड़ी है अभी। मूल पाठ है, उसकी टीका है। आहाहा! पण्डित जयचन्दजी ने किया हुआ अर्थ है। प्रवचनसार का भाई हेमराजजी (कृत)। अब तो अपने यहाँ टीका का गुजराती हो गया है। आहाहा! टोडरमलजी ने तो ऐसा कहा कि काललब्धि

और भवितव्यता कोई वस्तु नहीं। आत्मा की ओर पुरुषार्थ करके जो काललब्धि पकी, उसका ज्ञान उसे होता है। आहाहा! यह यहाँ कहते हैं।

उस स्वरूप को **अनुभवता हुआ, अनुभवी पुरुष...** अन्तर के वीतरागभाव से आत्मा को अनुभवता हुआ। **न किसी प्राणी को सिखाता है,...** यह तो ठीक। यह कहते हैं, उसका आशय ऐसा है कि जो सीखना, वह विकल्प है और वह विकल्प टूटकर स्थिर हुआ, ऐसा ऐसा नहीं रहता, ऐसा कहना है। समझ में आया? न सिखाता है, इसका अर्थ कि अब विकल्प नहीं है। विकल्प था, तब सिखाता था इसलिए इसका अर्थ यह हुआ (कि) तो वहाँ तक मोक्ष के कारण का समभाव पूर्ण नहीं था। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जितनी स्थिरता थी, उतना था। परन्तु यह विकल्प उठा पढ़ाने का, तब यह समभाव पूरा चाहिए, वह नहीं था। आहाहा!

मुमुक्षु : अनुभव की व्याख्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अनुभवी है। अन्तर स्वरूप की स्थिरता में अनुभव है। निर्विकल्प आनन्द में स्थित है। आहाहा!

मुमुक्षु : पढ़ाने के काल में भी विकल्प तो चालू ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह विकल्प है परन्तु तब उससे भिन्न हूँ, उसका तो भान है, परन्तु समभाव पूरा नहीं। इससे विकल्प है, वह विषमभाव है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! शैली तो देखो! उसे विकल्प नहीं और पहले विकल्प था। वह विकल्प था, वह समभाव नहीं, राग है। मुनियों को भी समझाने का विकल्प उठता है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि अरे रे! यह लोग ऐसा कैसे करते हैं? खेद से कहा। आता है न? समयसार में आता है। खेद और आश्चर्य। क्योंकि विकल्प है वहाँ तक। परन्तु आनन्द में स्थित, निर्विकल्प अनुभव में फिर विकल्प ही जहाँ नहीं। ऐसा करके विकल्प बन्ध का कारण है, उसे छुड़ाया है। आहाहा! समझ में आया?

अनुभवी पुरुष न किसी प्राणी को सिखाता है,... आहाहा! तब अब हमारे सिखाना नहीं न किसी को? भाई! वह विकल्प टूट गया है, वह सिखलाता नहीं, ऐसा कहने में आता है, परन्तु जब तक विकल्प है, वह सिखलाता है तो वह विकल्प बन्ध का कारण

है, ऐसा है। ऐई! आहाहा! ऐसी बात है। सत्य का मिलान तो खाये, ऐसा है। वरना तो मिलान खाये, ऐसा नहीं। आहाहा! **न किसी से सीखता है...** आहाहा! जहाँ आत्मा आनन्द के अनुभव में, निर्विकल्प अभेद अनुभव में स्थित है, वह किसी को सिखलाता नहीं। विकल्प है कहाँ? आनन्द अनुभव करता हूँ, यह विकल्प भी वहाँ कहाँ है? यहाँ तो समभाव है, वह मोक्ष का कारण है, उस समभाव की व्याख्या ऐसी है कि जिसे विकल्प पढ़ने का या पढ़ाने का होता नहीं, इसका नाम समभाव है। समझ में आया? तो यह चौथे, पाँचवें, छठवें में ऐसा समभाव हो नहीं सकता। चौथे, पाँचवें में भी जब ध्यान में आवे, तब (समभाव) होता है, परन्तु वही समभाव सातवें का चाहिए, वह समभाव नहीं। समकिती को आनन्द के अनुभव में होता है, तब तो उसे कुछ खबर नहीं। सीखता हूँ या ज्ञान हूँ, कुछ नहीं। वह तो आनन्द के अनुभव में है। एक क्षणमात्र तो। आहाहा! परन्तु उस अनुभव में तो अन्दर अभी बुद्धिपूर्वक विकल्प गया है और फिर तुरन्त विकल्प उठनेवाला है। और यहाँ तो विकल्प छोड़कर समभाव हो गया है। उसे समभाववाले को मुक्ति का कारण है, ऐसा कहना है। अर्थात् कि वीतरागभाव मुक्ति का कारण है, रागभाव, वह मुक्ति का कारण नहीं। आहाहा! कहेंगे। देखो!

न स्तुति करता है,... वह तो भगवान की स्तुति भी नहीं करता, आनन्द में स्थित है, उसे कहाँ विकल्प तो टूट गया है। इसका अर्थ कि जो स्तुति करता है, वह अभी विकल्पवाला है। आहाहा! अरे! ऐसी बात कहाँ मिले? यह तो वीतराग के घर की बातें हैं। परन्तु जगत को बैठना (कठिन)। आहाहा! **न स्तुति करता है,...** इसका अर्थ यह कि जो विकल्प टूटकर निर्विकल्प आनन्द में स्थित है, उसे सीखना है कहाँ और सिखलाना है कहाँ? तब इससे पहले कहा था न? यह था, उसे विकल्प था, ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? वह धर्म था, ऐसा नहीं। आहाहा! छद्मस्थ जीव सिखाता है, सीखता है, उस समय उसे विकल्प है, राग है—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! और राग है, वह बन्ध का कारण है। भले मुनि का (राग) हो।

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा नहीं? '**कल्माषितायाः**' मेरे परिणाम कल्माषित हैं—मलिन हैं। मैं टीका करता हूँ परन्तु मेरे परिणाम मलिन हैं, विकल्प है। तो टीका करने

से मेरी मलिनता टल जाओ। अर्थात्? टीका करते हुए तो विकल्प है। परन्तु टीका के काल में मेरा लक्ष्य-जोर जाता है द्रव्य के ऊपर, उस काल में मलिनता टल जाओ। आहाहा! समझ में आया? अब क्या हो इसमें? उसमें भी ऐसा आवे। '**ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये**' '**तद्गुणलब्धये**' तुम्हारे गुण के लिये मैं वन्दन करता हूँ। तो वन्दन करता हूँ, यह स्तुति है, विकल्प है। इसीलिए वे लोग कहते हैं, देखो! इस विकल्प से भी भगवान के गुण का लाभ होता है। ऐसा है। यह सब इस ओर से आया था। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि स्तुति करते नहीं, उसका नाम निर्विकल्प वीतरागता है। आहाहा! और स्तुति करना, उससे धर्म होगा, '**तद्गुणलब्धये**' आपके गुण की प्राप्ति के लिये मैं आपको वन्दन करता हूँ। यह तो व्यवहार की बातें हैं। ऐई! क्या करना तब? बापू! आहाहा! यहाँ इनकार करते हैं कि जो स्तुति करता है, वह विकल्पवाला है। और जहाँ स्थिर हुआ है, वहाँ स्तुति करने का विकल्प है नहीं। वह समभाव है। वह समभाव मुक्ति का कारण है। आहाहा! पहले में सम्यग्दर्शन आदि जितना हुआ, उतना मुक्ति का कारण है। परन्तु यह बीच में विकल्प उठता है, उतना बन्ध का कारण है। आहाहा! यह विकल्प तोड़कर ऐसे आनन्द में लीन हो गया, चारित्रसहित की बात है, हों! यह। परमदर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित अन्तर में लीन हो गया है। जिसे अनुभव करता हूँ और यह अनुभव में आता है, ऐसा भी विकल्प नहीं। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द में, वेदन में पड़ा है। उसे नहीं सीखना, नहीं सिखलाना, नहीं स्तुति करना। भगवान की स्तुति यदि लाभदायक हो, तब तो फिर स्तुति छोड़कर उसमें कैसे जाये? समझ में आया? भगवान त्रिलोक के नाथ परमात्मा की पूजा और स्तुति, यदि धर्म के लाभवाली हो तो उसे छोड़कर अन्दर में कैसे जाये? यह बात सिद्ध करते हैं। जब तक परमात्मा तीन लोक के नाथ की पूजा, भक्ति है, उनकी स्तुति है, तब तक वह भाग राग है। वह राग का अंश है, वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

न स्तुति करता है, न निन्दा करता है। यह झूठी बात है, यह श्रद्धा खोटी है, ऐसा विकल्प भी नहीं। आहाहा! निश्चय जब सत्य को स्थापित करे और असत्य को उत्थापित करे, तब विकल्प है। आहाहा! सत्य यह है, यह झूठा है, आहाहा! निचली दशा में तो ऐसा विकल्प होता है। परन्तु वह विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! यह

आया है, उसमें अपने समयसार में। कर्ता-कर्म अधिकार में। वह ध्यान में हो तो कुछ नहीं। इसके पश्चात् जब ध्यान बाहर आवे, तब उसे ऐसा विकल्प उठता है। स्थापन करे सत्य का, असत्य को उत्थापित करे। अन्तर में अमुक समभाव करे, परन्तु वह विकल्प उठा, इतना समभाव टूट गया, अल्प हुआ है। आहाहा!

न निन्दा करता है। जिसके शत्रु, मित्र, सुख, दुःख सब एक समान हैं। आहाहा! अभी विकल्प होता है, तब तक तो यह देव-गुरु-शास्त्र, इनकी श्रद्धा, पंच महाव्रत के विकल्प का आचरण, वह राग बन्ध का कारण है। पंच महाव्रत के विकल्प हैं, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! यहाँ जहाँ अन्दर स्थिर हुआ... आहाहा! वीतरागभाव से मुक्ति मिलती है। वह वीतरागभाव ऐसा होता है कि जिसमें शत्रु-मित्र, सुख-दुःख आदि में समभाव—वीतरागभाव वर्तता है। यह मित्र है या शत्रु है, ऐसा विकल्प वहाँ है नहीं। यह अनुकूल है और यह प्रतिकूल है, ऐसा विकल्प भी वहाँ है नहीं। आहाहा! सुख-दुःख और अनुकूल-प्रतिकूल, हों! वह **सब एक समान हैं।** आहाहा! ऐसी बातें।

यह तो समभाव की उत्कृष्ट दशा का स्वरूप कैसा और समभाव ऐसा न हो, तब विकल्प होता है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा समझाने के लिये स्पष्टीकरण किया है। कोई ऐसा मान ले कि समकिती हुआ, इसलिए अब उसे जो कुछ विकल्प आता है, वह निर्जरा हो जाती है। 'ज्ञानी को भोग निर्जरा का हेतु है'—आता है न? वह तो ज्ञान का माहात्म्य बतलाने को कहा है। बाकी भोग तो अशुभभाव है। यहाँ तो शुभभाव विकल्प है, उसे बन्ध का कारण कहते हैं। भोग निर्जरा का हेतु नहीं है, परन्तु शुभभाव निर्जरा का हेतु नहीं है। लो! आहाहा! किस अपेक्षा से बात कहते हैं, बापू! क्या हो? यह तो वीतराग का मार्ग है। सर्वज्ञ इसके मालिक हैं। वीतरागभाव के। आहाहा! उन्होंने जो कहा, उस प्रकार से उसे समझना चाहिए न? आहाहा! अपना पक्ष बाँधा हो, उस प्रकार से शास्त्र को मानना, ऐसा नहीं चाहिए। शास्त्र को क्या कहना है, उस प्रकार से मानना चाहिए। अपनी मान्यता प्रमाण शास्त्र का अर्थ करना, (ऐसा नहीं होना चाहिए)। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें। यह ४८ गाथा हुई।

गाथा - ४९

अथ बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेच्छापञ्चेन्द्रियविषयभोगाकांक्षादेहमूर्च्छाव्रतादिसंकल्पविकल्प-रहितेन निजशुद्धात्मध्यानेन योऽसौ निजशुद्धात्मानं जानाति स परिग्रहविषयदेहव्रताव्रतेषु रागद्वेषौ न करोतीति चतुःकलं प्रकटयति -

१७३) गंथहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
गंथहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।४९।।

ग्रन्थस्य उपरि परममुनिः द्वेषमपि करोति न रागम्।
ग्रन्थाद् येन विज्ञातः भिन्नः आत्मस्वभावः।।४९।।

गंथहं इत्यादि। गंथहँ उप्परि ग्रन्थस्य बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहस्योपरि अथवा ग्रन्थ रचनारूप-शास्त्रस्योपरि परम-मुणि परमतपस्वी देसु वि करइ ण द्वेषमपि न करोति न राउ रागमपि। येन तपोधनेन किं कृतम्। गंथहं जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्पसहाउ ग्रन्थात्सकाशाद्येन विज्ञातो भिन्न आत्मस्वभाव इति। तद्यथा। मिथ्यात्वं, स्त्र्यादिवेदकांक्षारूप-वेदत्रयं हास्यरत्यरतिशोकभय-जुगुप्सारूपं नोकषायषट्कं, क्रोधमानमायालोभरूपं कषायचतुष्टयं चेति चतुर्दशाभ्यन्तरपरिग्रहाः, क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यभाण्डरूपा बाह्यपरिग्रहाः इत्थंभूतान् बाह्याभ्यन्तर-परिग्रहान् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यक्त्वा शुद्धात्मोपलम्भलक्षणे वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा च यो बाह्याभ्यन्तर-परिग्रहाद्भिन्नमात्मानं जानाति स परिग्रहस्योपरि रागद्वेषौ न करोति। अत्रेदं व्याख्यानं एवं गुणविशिष्टनिर्ग्रन्थस्यैव शोभते न च सपरिग्रहस्येति तात्पर्यार्थः।।४९।।

आगे बाह्य अंतरंग परिग्रह की इच्छा से पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों की वांछा से रहित हुआ देह में ममता नहीं करता, तथा मिथ्यात्व अव्रत आदि समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित जो निज शुद्धात्मा उसे जानता है, वह परिग्रह में तथा विषय देहसंबंधी व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता, ऐसा चार-सूत्रों से प्रगट करते हैं -

जो समस्त परिग्रह विहीन अपने स्वभाव का ज्ञान करें।
नहीं किसी भी परिग्रह से वह राग करें ना द्वेष करे।।४९।।

अन्वयार्थ :- [ग्रंथस्य उपरि] अंतरङ्ग बाह्य परिग्रह के ऊपर अथवा शास्त्र के

ऊपर जो [परममुनिः] परम तपस्वी [रागम् द्वेषमपि न करोति] राग और द्वेष नहीं करता है [येन] जिस मुनि ने [आत्मस्वभावः] आत्मा का स्वभाव [ग्रंथात्] ग्रंथ से [भिन्नः विज्ञातः] जुदा जान लिया है।

भावार्थ :– मिथ्यात्व, वेद, राग, द्वेष, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ–ये चौदह अंतरङ्ग परिग्रह और क्षेत्र, वास्तु (घर), हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भांडरूप दस बाह्य परिग्रह–इस प्रकार चौबीस तरह के बाह्य अभ्यंतर परिग्रहों को तीन जगत में, तीनों कालों में, मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदना से छोड़ और शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है, वो ही परिग्रह के ऊपर राग–द्वेष नहीं करता है। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान निर्ग्रंथ मुनि को ही शोभा देता है, परिग्रहधारी को नहीं शोभा देता है, ऐसा तात्पर्य जानना।।४९।।

गाथा-४९ पर प्रवचन

४९। **आगे बाह्य-अन्तरंग परिग्रह की इच्छा से पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों की वांछा से रहित...** इतना शब्द जरा रह गया है अन्दर। है? सुधारा है? **रहित हुआ...** नये में यह प्रकाशित है। कौन देखता है? **बाह्य-अन्तरंग परिग्रह की इच्छा से रहित और पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों की वांछा से रहित...** ऐसा चाहिए। है न? पाठ में है अन्दर। '**बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहेच्छापञ्चेन्द्रियविषयभोगाकांक्षादेहमूर्च्छाव्रतादि**' सबको इकट्ठा लेकर रहित है, ऐसा कहना है। हो जाये वह तो अन्दर। वापस नये प्रकाशित करनेवाले भी इसका वह उसमें लिखा हो, उसे छाप डालते हैं।

यहाँ तो मुनि का उत्कृष्ट समभाव, जिसमें पुण्य के विकल्प का भी अवकाश नहीं, यह बात सिद्ध करते हैं। और पुण्य का विकल्प है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! **बाह्य-अन्तरंग परिग्रह की इच्छा से, रहित पाँच इन्द्रियों के विषय-भोगों की वांछा से रहित हुआ देह में ममता नहीं करता,...** देह में भी ममत्व नहीं करता अब तो। आहाहा! **तथा मिथ्यात्व अव्रत आदि समस्त संकल्प-विकल्पों से रहित जो**

निज शुद्धात्मा, उसे जानता है,... मूर्च्छा, अव्रतादि। मूर्च्छा और व्रत आदि? आहाहा! मिथ्यात्व, अव्रत आदि, व्रत आदि का भी संकल्प-विकल्प है, उसे छोड़कर।

संकल्प-विकल्पों से रहित जो निज शुद्धात्मा, उसे जानता है,... आहाहा! शुद्ध परमात्मस्वरूप जो अपना वीतरागमूर्ति, वे यह सब व्रत आदि, अव्रतादि के विकल्प से रहित होकर अन्तर के अनुभव में जानता है। आहाहा! ऐसा कहकर यह भी कहा, व्रत के विकल्प हैं, वह भी बन्ध का कारण है। अव्रत का विकल्प जैसे अशुभ है, वैसे व्रत का विकल्प शुभ है, वे दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! अव्रतादि, व्रतादि के विकल्परहित होकर... आहाहा! जब तक विकल्प है राग, तब तक उसे इतना बन्ध है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! ऐसे व्रत और अव्रत के संकल्प-विकल्प से रहित होकर... आहाहा! देखो! यह समभाव की व्याख्या। आहाहा!

जानता है, वह परिग्रह में तथा विषय देहसम्बन्धी व्रत-अव्रत में... देखो! आया। अर्थ में आया, देखो! **परिग्रह में तथा विषय देहसम्बन्धी व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता,...** देखो! आया। व्रत है, वह शुभराग विकल्प है। पंच महाव्रत, वह शुभराग है, वह चारित्र नहीं, वह गुण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....देह सम्बन्धी...

पूज्य गुरुदेवश्री : देह सम्बन्धी सब। देह सम्बन्धी व्रतादि सब। ऐसा। देहादि के और व्रतादि के विकल्प राग-द्वेष नहीं, ऐसा। देह सम्बन्धी राग-द्वेष नहीं और व्रत-अव्रत सम्बन्धी राग-द्वेष नहीं, ऐसा। समझ में आया? आहाहा! **ऐसा चार-सूत्रों से प्रगट करते हैं—**

१७३) गंथहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
गंथहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।४९।।

अन्वयार्थः—आहाहा! **अन्तरंग-बाह्य परिग्रह के ऊपर...** राग-द्वेष करता नहीं और **शास्त्र के ऊपर...** भी राग-द्वेष करता नहीं। आहाहा! शास्त्र है, वह परचीज़ है। उसे पढ़ने का भाव, वह राग है। शास्त्र में बुद्धि जाती है, वह व्यभिचारिणी बुद्धि है। आहाहा! ऐसा मार्ग। पद्मनन्दि पंचविंशति में कहा है कि बुद्धि व्यभिचारिणी है। अपने घर में से

निकलकर पर में लक्ष्य जाता है न? आहाहा!

यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि शास्त्र में जो लक्ष्य जाता है, वह राग है। और उसके ऊपर से राग छोड़कर स्थिर होता है, उसे समभाव है। आहाहा! एक ओर प्रवचनसार में ऐसा कहते हैं कि भाई! आत्मा के लक्ष्य से आगम का अभ्यास कर, तेरा कल्याण होगा। आता है? आहाहा! वहाँ आगे तो वह विकल्प है, उसकी मुख्यता नहीं। चैतन्य के लक्ष्य की मुख्यता है। यहाँ है, वह विकल्प होता है परसन्मुख, उसका निषेध करते हैं। आहाहा! शास्त्र के अर्थ में बड़ा अन्तर। वे लोग ऐसा कहते हैं कि तुम सब अर्थ बदल डालते हो। सोमचन्दभाई थे, वे कहते थे। कलोलवाले। सब अर्थ कितने ही बदलोगे तुम? ऐई! आत्माराम! कहते नहीं? कहते थे। बापू! मार्ग के जो अर्थ हैं, वे हैं। आहाहा!

यहाँ तो क्या कहा? देखो न! ग्रन्थ के ऊपर का राग छोड़ दे। आहाहा! समयसार बहुत अच्छा है; कामशास्त्र खोटे हैं, यह विकल्प है, कहते हैं। यहाँ तो समभाव की व्याख्या करनी है न! आहाहा!

मुमुक्षु : परम उपेक्षासंयम की चर्चा चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चल रही है और उसमें वह परसन्मुख का लक्ष्य बन्ध का कारण है, यह बात सिद्ध करनी है। इसलिए उसे छोड़कर स्थिर होता है, ऐसा। यदि लाभ का कारण हो तो छोड़कर स्थिर किसलिए हो? आहाहा! उसकी श्रद्धा में तो यह पक्का आना चाहिए कि शास्त्र की ओर का लक्ष्य है, वह भी बन्ध का कारण है। भले है शुभभाव, परन्तु है राग और राग, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का।

वहाँ ऐसा कहते हैं कि ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है। यहाँ कहे, ज्ञानी का शास्त्र में लक्ष्य जाये तो राग (होता है, वह) बन्ध का कारण है। किस अपेक्षा से कहा है? यह तो वहाँ ज्ञान का माहात्म्य, चैतन्य के स्वभाव का माहात्म्य बतलाना है। माहात्म्य बतलाने के लिये इसने दशा हीन कर डाली। वह निर्जरित हो जाती है, ऐसा। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञानी को बन्ध का कारण, अज्ञानी को तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी को भी बन्ध का कारण है। यहाँ तो शुभभाव बन्ध का कारण है, फिर भोग की बात क्या करना? आहाहा!

मुमुक्षु : अमृतचन्द्राचार्य ने कहा....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, यह तो कहा न! अभी डाला है न यह सब, नहीं? भाई! सम्यग्ज्ञान (दीपिका) में से तुम यह सब बात निकाल डालते हो। शास्त्र में भी ऐसा है।

समयसार में ऐसा कहा है, हे ज्ञानी! तू भोग को भोग। परद्रव्य के अपराध से तुझे नुकसान नहीं है। आता है? वहाँ तो परद्रव्य का अपराध, वह तुझे नुकसान है, यह सिद्ध करना है। नहीं कि भोग। उसे भोगना, ऐसा बताते हैं वहाँ? भाषा का अर्थ सीधा करने जाये तो ऐसा अर्थ होता है। ऐसा नहीं होता, भाई! सिद्धान्त का आशय क्या है, यह दृष्टान्त में से एक अंश ले लेना चाहिए। पूरा दृष्टान्त सिद्धान्त में लागू नहीं पड़ता। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : आपको तो छपानी नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छपाता है? और छपाने में तो सब लाखों पुस्तकें दिगम्बर के भी छपते हैं और साथ में दिगम्बर का पुस्तक है। पुस्तक किसकी है? दिगम्बर क्षुल्लक ब्रह्मचारी ने बनायी हुई है। इसका अर्थ क्या? तो समयसार छपाया, साथ में यह भी छापते हैं। दिगम्बर के ग्रन्थ हो, वे सब प्रकाशित होते हैं। उसमें क्या? और वह उसमें भूल नहीं है। उसमें उन्हें सिद्धान्त सिद्ध करना है दृष्टान्त में। वह भी उसमें दोष लगता नहीं, ऐसा नहीं है। दोष बाहर कहने में आता नहीं। उसका दोष बाहर प्रसिद्ध नहीं होता। स्त्री के सिर पर पति है और स्यात् शब्द है वहाँ। कदाचित् ऐसा हो जाये तो दोष बाहर नहीं आता, ऐसा इतना। दोष नहीं लगता, ऐसा नहीं है। दोष लगता नहीं, ऐसा नहीं है। यह अभी स्पष्टीकरण किया भाई ने फिर। यहाँ बातचीत हुई। हुकमचन्दजी।

मुमुक्षु : लोगों के जानने में न आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, लोगों के ख्याल में नहीं आता, यह बात सिद्ध करनी है वहाँ। आहाहा!

इसी प्रकार जिसके सिर पर भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा चैतन्यमूर्ति परमात्मा जिसकी दृष्टि में सिर पर है, उसे कोई रागादि आवे तो उसे कोई बाहर में प्रसिद्ध नहीं

होता। लोग उसे जान नहीं सकते। आहाहा! अरेरे! ऐसा है। बात-बात में अन्तर पड़ता है। कनुभाई! ऐसी बातें, ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा!

नियत में ऐसा कहना है, गोम्मटसार में। जो जहाँ जैसे होनेवाला हो, वह होता है, यह नियतवाद है, ऐसा कहा गोम्मटसार में। और यहाँ ऐसा कहा वापस प्रवचनसार में तो कि जिस समय में जिस प्रकार से जिस समय पर्याय होनी है, उस काल में वही होगी। यह नियतवाद नहीं है, यह पुरुषार्थ से हुई पर्याय है। उसमें पाँचों समवाय वहाँ लागू पड़ते हैं। नियत में तो एक ही समवाय है। चार नहीं। आहाहा! इतना सब कहाँ लक्ष्य करने जाये! वीतराग का ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! यह बात थी नहीं। फेरफार आया, इसलिए एकदम भड़के-भड़के। आहाहा! बापू! तू भी भगवान है। एक समय की भूल टालने को समर्थ है। चाहे जैसी भूल करे, उसका सामर्थ्य तो भूल को टालने का है। यह व्यवहार है। भगवान स्वरूप में स्थिर होता है, तब भूल नहीं होती, इसलिए टालता है, ऐसा कहने में आता है। यह भूल है और टालूँ, ऐसा है वहाँ? आहाहा! ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा में जहाँ अन्दर दृष्टि में स्थिर होता है, वहाँ मिथ्यात्व की पर्याय उत्पन्न नहीं होती। उसने मिथ्यात्व नाश किया, ऐसा कहा जाता है। दूसरा क्या हो? भाई! और यहाँ तो ऐसा भी कहा कि अन्दर स्थिर होने की पर्याय उत्पन्न होती है, इस व्यय की उसे अपेक्षा नहीं। ऐसा भी कहा। वह तो उत्पन्न हुई है स्वयं से। उसके पुरुषार्थ से, उसे व्यय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह प्रवचनसार १०१ गाथा। अब इसका क्या? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **अन्तरंग बाह्य-परिग्रह के ऊपर अथवा शास्त्र के ऊपर जो परम तपस्वी राग और द्वेष नहीं करता है...** आहाहा! महामुनि। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि इस ग्रन्थ के प्रति विकल्प है, बाह्य-अभ्यन्तर रागादि का, वह सब बन्ध का कारण है, इसलिए वह छोड़नेयोग्य है। भले छूटे नहीं, परन्तु छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वाँचन और यह उपदेश। आहाहा! साधारण प्राणी बेचारे को दिमाग ही नहीं होता और ऐसा... वीतराग का तत्त्वज्ञान सूक्ष्म है, प्रभु! उनकी शैली अलौकिक है। उस शैली को जिस शैली से कहा गया है, उस प्रकार से समझना

अलौकिक बात है। जिस प्रकार से कहा गया है, जिस अभिप्राय से, उस अभिप्राय से समझना। अपने पक्ष से इसका अर्थ करना, ऐसा नहीं चलता। आहाहा!

जिस मुनि ने आत्मा का स्वभाव ग्रन्थ से जुदा जान लिया है। आहाहा! एक तो बाह्य परिग्रह और अभ्यन्तर रागादि और शास्त्र, इनसे आत्मा का ज्ञान भिन्न पड़ गया है। भिन्न जान लिया है। समझ में आया? आहाहा! है? '**आत्मस्वभावः भिन्नः विज्ञातः**' बाह्य परिग्रह अर्थात् स्त्री, पुरुष, लक्ष्मी, इज्जत, मकान, बँगले से तो मेरा स्वरूप भिन्न है। और अन्दर में राग आता है, वह भी अत्यन्तर परिग्रह, उससे मेरा स्वरूप भिन्न है। आहाहा! ऐसा धर्मी ने जान लिया है। आहाहा! देखा! व्यवहार का राग आता है, उससे मेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा जाना है। ऐसा कहा। आहाहा! पूर्ण वीतराग न हो, इसलिए व्यवहार तो आयेगा, परन्तु उसका उत्साह करनेयोग्य नहीं है। उसे हेय करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव, यह ग्रन्थ अर्थात् राग से, ग्रन्थ अर्थात् लक्ष्मी से और ग्रन्थ अर्थात् शास्त्र से, तीनों से जिसने पृथक् जान लिया है। आहाहा! '**सत्थं ण याणदे किंचि**' नहीं आता? समयसार की (३९० से ४०४) १५ गाथायें।'**सत्थं ण याणदे किंचि**' शास्त्र कुछ जानते नहीं।'**सत्थं ण याणदे किंचि**' मैं तो जाननेवाला भिन्न हूँ। शास्त्र कुछ जानते नहीं। आहाहा! कठिन लगे। एक ओर कहे कि शास्त्र का—आगम का अभ्यास करना, इससे तुम्हारा कल्याण होगा। मोक्षमार्गप्रकाशक के पहले अध्याय में अन्त में नहीं आया? आगम का अभ्यास... क्या अपेक्षा है? बापू! जो कुछ भी अभ्यास नहीं करता, उसके बदले स्व के लक्ष्य से अभ्यास करे (ऐसा कहते हैं)। समझ में आया? भले वह विकल्प है, परन्तु उससे रहित, उसमें दृष्टि होगी उसे। शास्त्रकार ऐसा कहना चाहते हैं कि विकल्प से रहित तू है। हमारे सामने देखने का विकल्प है, इससे भी तू रहित है। वह शास्त्र उसे बतलायेगा। आहाहा! उसे देखेगा, तब वह बतायेगा, ऐसा कहने में आयेगा। आहाहा! समझ में आया? अब इसमें वह सामायिक करता हो, प्रोषध, प्रतिक्रमण। स्थानकवासी में अपवास करता हो, उसे यह क्या। दिगम्बर में यात्रा सम्मेदशिखर की, शत्रुंजय की। भगवान की पूजा, मन्दिर, गजरथ निकालना। यह सब

राग की मन्दता रखता हो तो शुभभाव है। बन्ध का कारण है, ऐसा सिद्ध करते हैं, यहाँ तो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ समभाव है, वह बन्ध के अभाव का कारण है। मोक्ष का कारण है और शुभभाव है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे लोगों को दुःख हो उसमें....

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य है, उसमें उसे दुःख हो, यह तो उसके कारण से होता है। सत्य के कारण से होता है? आहाहा! तथापि वस्तु ऐसी है, ऐसा कहा जाता है, बापू! तुमको ठीक न लगे तो क्षमा करो। यह तो कहते हैं। बापू! दूसरा क्या हो? तीन काल में यह मार्ग है। आहाहा! 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' यह मार्ग है। आहाहा! तुम्हारी दृष्टि में मिलान न खाये तो दुःख लगे तो हमको क्षमा करो, बापू! भाई! तुम्हारा द्रव्य ऐसा है कि क्षमा करने के योग्य... है। द्रव्य, हों! आहाहा!

वस्तु है, वह साधर्मी भगवान है। प्रत्येक का आत्मा साधर्मी भगवान है। आहाहा! भगवान क्षमा करना, भाई! तुझे पर्याय में दुःख लगता हो तो। मार्ग तो ऐसा है, बापू! इसमें तेरे हित का मार्ग है। तुझे सुख की प्राप्ति हो, उसका यह रास्ता है। तुझे दुःख की प्राप्ति हो, उस रास्ते में तुझे उत्साह लगे, वह तो दुःख होगा, बापू! आहाहा! प्रकृति के नियम में जिसमें मिथ्यात्व में जहाँ नरक और निगोद है... आहाहा! एक श्वास में अठारह भव निगोद के, बापू! इसने शब्द सुने हैं। परन्तु उसका दीर्घ विचार करके... आहाहा! एक श्वास में अठारह भव निगोद के। नारकी से निगोद का दुःख बहुत है। क्योंकि नारकी को तो अभी क्षयोपशमभाव विशेष है। इसे तो एक अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ रह गया है। आहाहा! वह दुःखदशा बहुत है, बापू! नारकी को संयोग से दुःख दिखता है लोगों को। और इसे इसका स्वभाव ही दुःखरूप हुआ है। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

आत्मा का स्वभाव आनन्दस्वरूप भगवान, ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उस आत्मा का स्वभाव। वह बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह राग, वह कहीं आत्मा का स्वभाव

नहीं, तथा शास्त्र, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा! आगे तो आया है, इसमें कि ऐसा आत्मा है, यह प्रभु कि दिव्यध्वनि से भी ज्ञात न हो, ऐसा यह है। आ गया है इसमें पहले। वेद... वेद। वेद अर्थात् दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात नहीं होता। क्योंकि वह तो परवस्तु है। आहाहा! और उस समय जो ज्ञान होता है, वह उपादान स्वयं का है। यह तो निमित्त है, वाणी। यह ज्ञान हुआ, वह भी सम्यग्ज्ञान नहीं। परलक्ष्यी ज्ञान है। आहाहा! अर्थात् उससे भी आत्मज्ञान नहीं होता। आहाहा! आत्मज्ञान, वह आत्मा से होता है। वाणी से नहीं, वाणी से हुआ ज्ञान निमित्त से और उपादान अपना, उससे भी नहीं। आहाहा!

आत्मा का स्वभाव ग्रन्थ से जुदा जान लिया है। आहाहा! विशेष कहेंगे भावार्थ में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ५, शुक्रवार
दिनांक-१२-११-१९७६, गाथा-४९, ५०, प्रवचन-१३१

परमात्मप्रकाश। ४९ गाथा का भावार्थ।

मिथ्यात्व... यह अभ्यन्तर परिग्रह है। पुण्य, पाप, रागादि भाव मेरे हैं, जो चीज़ उसकी पर्याय में नहीं, वह चीज़ 'मेरी है' ऐसा मानना, वह मिथ्यात्व है। वह मिथ्यात्व भी एक अभ्यन्तर परिग्रह है। पकड़ है, पकड़। आहाहा! उसे छोड़कर। ऐसा कहना है न यहाँ? उसे छोड़कर। मिथ्या अभिप्राय जो पुण्य से धर्म होता है, पाप में मजा है, पर का कर सकता हूँ, पर से मुझे कुछ लाभ होता है—ऐसा माननेवाला पर को अपना मानता है। यह मान्यता छोड़ दे। आहाहा! इस मान्यता में तो सब बात छूट गयी पहले। मिथ्यात्व छूटने से तो वेदवासना, क्रोध, मान, पुण्य, पापभाव, उनके फल, इन सबसे रहित हूँ, इस प्रकार दृष्टि में से (वह) छूट गया। समझ में आया?

अब यहाँ अस्थिरता में से छोड़कर स्थिरता करने की बात है। आहाहा! मिथ्यात्व छूटने से, सम्यग्दर्शन होने से जगत्रय, लोकत्रय, कालत्रय, मन, वचन, काया आदि से मिथ्यात्वभाव तो पर से भिन्न जान लिया। मिथ्यात्वभाव छूटा, अभ्यन्तर परिग्रह, उसे तो सर्व विकल्प से भी भिन्न है, ऐसे आत्मा को जानकर। आया न? '**आत्मस्वभावः भिन्नः विज्ञातः**' अन्तिम शब्द है। '**आत्मस्वभावः भिन्नः विज्ञातः**' आहाहा! एक राग का कण या पुद्गल का रजकण, वह मेरी चीज़ नहीं, मुझमें नहीं, उसमें मैं नहीं। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शनभाव, उससे उसने मिथ्यात्वभाव छोड़ दिया।

फिर **वेद...** स्त्री आदि वेद, कांक्षारूप वेद। स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वासना, ऐसा जो वेद, वह भी विकार है, दृष्टि में से पहले छोड़ दिया है कि वह मैं नहीं हूँ। यहाँ तो अब अस्थिरता छोड़कर स्थिरता करने की बात है। समझ में आया? आहाहा! वेदत्रय। स्त्री, पुरुष, नपुंसक की वासना, वह मैं नहीं। वह तो सम्यग्दर्शन में छूट गया है। परन्तु अब तो यहाँ विषय की वासना छोड़कर वस्तु में स्थिर होना; जब तक स्थिर न हो, तब तक वह दोष है और वह दोष बन्ध का कारण है। आहाहा! वेद-वासना। टीका में है।

'**स्त्र्यादिवेदकांक्षारूपवेदत्रयं**' पश्चात् **राग...** को छोड़कर। विषय-वासना, वह दूसरी बात हो गयी। इसके अतिरिक्त **राग, द्वेष...** छोड़ दे। आहाहा!

हास्य, रति,... यह अभ्यन्तर परिग्रह है। **अरति...** अनुकूलता में रति होना, प्रतिकूलता में अरति होना। हास्य-विनोदभाव प्रगट करना। आहाहा! उसे छोड़ देना। क्योंकि वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहा! वह वस्तु में है नहीं। **शोक...** प्रिय पुत्र का वियोग होने पर शोक होता है। उसे छोड़ दे। दृष्टि में से तो पहले छूट गया है, परन्तु जो अस्थिरता का शोक था, उसे छोड़कर स्वरूप का ध्यान कर, आत्मा को भिन्न जान। इस प्रकार भिन्न करके भिन्न जान, ऐसा। अकेला रागादि है, वह हमने जाना, ऐसा नहीं। वह राग और पुण्य और पाप के भाव, उनसे भिन्न, भिन्न करके भिन्नरूप से जान। आहाहा! समझ में आया?

भय... भय पाना—डर छोड़ दे। भगवान निर्भय वस्तु है। **जुगुप्सा...** ग्लानि छोड़ दे। **क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चौदह अन्तरंग परिग्रह...** है। आगे तो कहेंगे अभी। तीन जगत में और तीन काल में और मन, वचन और काया तथा करना, कराना और अनुमोदन, इस प्रकार से छोड़ दे। आहाहा! समभाव सिद्ध करना है न यहाँ? तीन जगत—अधो, मध्य और ऊर्ध्व। उसमें से यह परिग्रह की ममता छोड़ दे। तीन लोक में से, तीन काल में से। भूतकाल में यह मेरा था और भविष्य में मेरा होगा, यह परिग्रह छोड़ दे। आहाहा! मन से छोड़ दे, वचन से छोड़ दे, काया से छोड़ दे। आहाहा! और करना, कराना, अनुमोदन से छोड़ दे। जगत्रय, कालत्रय, मन-वचन-कायत्रय, करना, कराना, अनुमोदनत्रय। आहाहा!

भगवान तो इस वस्तु से भिन्न है। जिसे अन्दर में स्थिर होना है, उसे तो इन सबसे भिन्न करना पड़ेगा। दृष्टि में से तो भिन्न किया है, परन्तु स्थिरता के लिये उसे भिन्न करके स्थिर होना पड़ेगा। यह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? दृष्टि में से छूटा परन्तु अस्थिरता में से नहीं छूटे, तब तक मोक्षमार्ग पूरा नहीं होगा उसे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाह्य (परिग्रह) दस, अभ्यन्तर चौदह, बाह्य दस।

क्षेत्र... वस्तु बाह्य। **वास्तु (घर)...** क्षेत्र अर्थात् जंगल में क्षेत्र हो न वह? **(घर),**

हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य... अनाज। आहाहा! यह बाह्य परिग्रह है। **दासी, दास,...** यह हमारी दासी है और यह हमारा नौकर है। **कुप्य,...** फर्नीचर। घर में फर्नीचर होता है न? क्या कहते हैं? (गुजराती में) घरबखरा को (हिन्दी में) क्या कहते हैं? घर में सामग्री होती है न सब? फर्नीचर। सामग्री है सब प्रयोग करने की।

मुमुक्षु : केसर, चन्दन...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह कुप्य अलग चीज़ है। फर्नीचर है। क्षेत्र है, वह बाह्य की चीज़ में जाता है। वास्तु, वह घर में जाता है। और कुप्य है, वह घर का फर्नीचर अन्दर। बर्तनों को जमाते हैं न, सब क्या कहलाता है? फर्नीचर। अभी तो यह सब बहुत प्रत्येक घर में हाथी, घोड़ा और मनुष्य को रखते हैं न उसमें? अलमारी में। अलमारी में रखते हैं न लड़के के लिये। हाथी, घोड़ा, मनुष्य ऐसे देखते (हुए खिलौने)। वह सब फर्नीचर परवस्तु है। लड़के के लिये रखते हैं, लड़के के लिये। आहाहा!

मुमुक्षु : अलमारी में रखे उसमें परिग्रह कहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अलमारी है, वह मेरी है, यही परिग्रह है। फिर उसमें चीज़ रखी, वह मेरी, यह परिग्रह है।

मुमुक्षु : मूर्च्छा परिग्रह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ। आहाहा!

दास मेरा है। यह नौकर। वह तो परवस्तु है। दास कैसा आत्मा को? आहाहा! दासी। काम करनेवाली बाईयाँ होती हैं न? हमारी दासी है। कौन वह चीज़? बापू! वह तो परचीज़ है जगत की। तुझे और उसे कुछ लेना-देना नहीं। फर्नीचर। **भांडरूप...** बर्तन-बर्तन। चाँदी के, सोने के, चाँदी के बर्तन नहीं रखते? तपेला चाँदी का, थाली चाँदी की और कटोरी चाँदी की और ऊँचेवाला हो तो सोने की कटोरी हो। यह चाय पीते हैं न दिल्ली में? बड़ा है न वह मकान? जॉर्ज और एडवर्ड इकट्ठे होकर।

मुमुक्षु : राष्ट्रपति भवन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वहाँ गये थे न, हम देखने गये थे। वहाँ सब सोने के बर्तन

में चाय दे सबको। आहाहा! वह कोई साथ में था तब। कौन? जयन्तीभाई। जयन्तीभाई साथ में थे। वहाँ धारासभा में थे। वहाँ बड़ा दिल्ली में देखने गये थे। आहाहा!

मुमुक्षु : कैसा था?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं था कुछ। आहाहा!

अरे! निज परिग्रह तो आनन्द और ज्ञान, वह निज परिग्रह है। अपना स्वरूप परि—समस्त प्रकार से, ग्रह—पकड़ रखा है। भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति... आहाहा! परवस्तु को और उसे क्या सम्बन्ध है? आहाहा! देह छोड़कर चला जाये अकेला। हो गया। कुछ सम्बन्ध है नहीं साथ में। यह अभी ही ऐसा है। संयोगी, वह वियोगी होगा, परन्तु अभी संयोग है, वह वियोग में ही है अभी।

मुमुक्षु : वियोग अर्थात् पृथक्।

पूज्य गुरुदेवश्री : पृथक्। ऐसा लोग कहते हैं, भाई! संयोग है, उसका वियोग होगा। परन्तु वह अभी संयोग है, वह वियोगरूप ही रहा हुआ है। या सम्बन्धरूप से रहा है? आहाहा!

मुमुक्षु : माना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : माने चाहे जिस प्रकार।

शरीर, कर्म, पुण्य-पाप सभी संयोगी चीज़ें वियोगभाव से ही अभी है। समझ में आया? उसे अपना मानना अथवा अस्थिरता करना, वह परिग्रह है। अपना मानना, वह मिथ्यात्व परिग्रह है और अस्थिरता का परिग्रह है, वह चारित्रदोष है। आहाहा! दोनों को छोड़ना, जिसे समभाव करना है। यहाँ तो बात यह लेनी है न? समभाव—वीतरागभाव, वह मुक्ति का कारण है। वीतरागभाव की पूर्णता कब होगी? कि दृष्टि में से तो पर को निकाल डाले, परन्तु अस्थिरता में से छोड़ दे, तब उसे वीतरागता होती है। वह वीतरागता साक्षात् मोक्ष का कारण है। ऐसी वीतरागता न हो, तब तक राग हो, वह सब दोष है, ऐसा सिद्ध करना है। चाहे तो भक्ति का राग हो, पुण्य का, पूजा, व्रत का राग हो, वह राग है, वह दोष है। ऐसा दृष्टि से तो जाना है, परन्तु स्थिरता के लिये उस दोष को छोड़कर स्थिरता करे, तब उसे वीतरागता होती है। आहाहा!

धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य, भांडरूप दस बाह्य परिग्रह—इस प्रकार चौबीस तरह के बाह्य अभ्यन्तर परिग्रहों को तीन जगत में... आहाहा! यह शब्द आता है न अपने? पीछे बन्ध अधिकार और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में। तीन जगत, तीन लोक में निर्विकल्पो अहम्। बन्ध अधिकार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, अन्त में आता है। इसमें भी आता है या नहीं, परमात्मप्रकाश में? अन्त में कलश में है न? '**परमात्मप्रकाशवृत्ते-र्व्याख्यानं ज्ञात्वा किं कर्तव्यं भव्यजनैः। सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभाववोऽहं**' अन्त में है। अन्तिम पृष्ठ। यह सब शब्द इसमें आते हैं, देखो! है? अन्तिम पृष्ठ। ३५१ पृष्ठ है इसमें। ...देखो! '**परमात्मप्रकाशवृत्तेर्व्याख्यानं ज्ञात्वा किं कर्तव्यं**' है? यह जानकर करना क्या? भव्यजन को क्या करना?

'**सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभाववोऽहं**' आहाहा! स्वाभाविक आनन्द एक स्वभाव। एकरूप स्वभाव। त्रिकाल। आहाहा! पहला वहाँ से शुरु किया है। आनन्द से। आहाहा! स्वाभाविक शुद्ध आत्मा आनन्द एक स्वभावोहं। सहजात्मस्वरूप, सहज आनन्दस्वरूप। ऐसा मैं हूँ, ऐसा अनुभव करना। ऐसा है। है? '**निर्विकल्पोऽहं**' यह शब्द तो आये थे। कहा था न पहले नाटक का? (संवत्) १९६४ के वर्ष में वड़ोदरा में नाटक देखने गये थे। मूल तो व्यापार के लिये गये थे। परन्तु फिर समय मिला तो रात्रि को गये थे। माल लेने गये थे। १९६४ के वर्ष की बात है। वहाँ वह अनुसूईया बाई है। उसे फिर लड़का हुआ। '**निर्विकल्पोऽहं, शुद्धोऽहं, उदासीनोऽहं**' बेटा। ऐसा वहाँ कहती थी। नाटक में, हों! आहाहा! अनुसूईया बाई (सति) का नाटक। यह भरूच के किनारे नर्मदा है न? नर्मदा और अनुसूईया दो बहिनें थी। दो बहिनें थी। फिर नाम पड़ा नदी का नाम। दो बहिनें थी। यह अनुसूईया का नाटक था बड़ा। वड़ोदरा। १९६४ के वर्ष की बात है। फिर माल लेने गये थे। रात्रि में देखने गये थे। एक पोपटभाई थे, पालेज में। वे भी उस दिन साथ में थे। बहुत वर्ष हो गये। १९६४। ६८-६९ वर्ष हो गये। वहाँ नाटक में उस लड़के को सुलाती थी बाई। वह ऐसा कहा था कि बाई बिना विवाह किये स्वर्ग में जाती थी। तो उन लोगों ने इनकार करते हैं न कि अपुत्रस्य गति नास्ति। पुत्र नहीं, उसे स्वर्गगति नहीं मिलती। जाओ, वापस जाओ। कहे, कहाँ जाऊँ? कि नीचे जो हो उसका वरण कर। नीचे एक अन्ध ब्राह्मण था। नाटक था, बड़ा नाटक। वड़ोदरा। उससे विवाह

किया। उसमें लड़का हुआ। वह लड़का ले आये होंगे कहीं से। वर्ष, दो वर्ष का। फिर ऐसे सुलाती थी। '**निर्विकल्पोऽहं, शुद्धोऽहं, उदासीनोऽहं**' बेटा! ऐसा कहती थी। इतने शब्द याद रहे हैं। बाकी तो बहुत कहती होगी। अपने उसमें डाले हैं न। शुद्धोसि, निरंजनोसि। आहाहा! ऐसे शब्द नाटक में दर्शाये। यह अब धर्म में भी रहे नहीं। समझ में आया? शुद्धोसि, निरंजनोसि, निर्विकल्पोसि, उदासीनोसि। अभेदस्वरूप है, उदासीन है। पूरी दुनिया से भिन्न तेरी चीज़ है। आहाहा!

यह यहाँ कहा न? देखो! '**निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं, निजनिरंजनशुद्धात्म-सम्यक्श्रद्धान ज्ञानानुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रयात्मनिर्विकल्पसमाधिसंजात..**' देखा! अपने अभी कहते हैं न यह। '**वीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः**' मैं तो अपने ज्ञान के वेदन से वेदन में आऊँ, ऐसा मैं हूँ। किसी राग से और निमित्त से वेदन में आऊँ, ऐसा मैं हूँ नहीं। आहाहा! ज्ञान जो शुद्ध चैतन्यपरिणति, उससे स्व-अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन करूँ, प्रत्यक्ष वेदन करूँ, वह मैं हूँ। आहाहा! है न? '**स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः**' देखा! '**स्वसंवेद्यो गम्यः**' स्व अर्थात् मुझसे, प्रत्यक्ष से मैं गम्य हूँ। मति-श्रुतज्ञान से मैं प्रत्यक्ष गम्य हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग! लोगों को व्यवहार के रसिक ने ऐसी बात सुनी न हो न, इसलिए वह निश्चय... निश्चय... निश्चय... करके निकाल दे। रखने का तो यह है। करने का कर्तव्य तो यह है।

'**प्राप्यो भरितावस्थोऽहं**' आहाहा! '**गम्यः प्राप्यो**' अर्थात् स्वसंवेदन प्राप्ति। '**भरितावस्थोऽहं**' मेरी चीज़ तो पूर्ण अवस्था से भरपूर है—पूर्ण शक्तियों से। अवस्था अर्थात् पर्याय नहीं। '**भरित अवस्थ**' निश्चय स्वभाव से भरपूर भगवान मैं हूँ। आहाहा! अवस्था शब्द प्रयोग किया है। परन्तु यह '**भरितावस्थोऽहं**' निश्चय से स्वभाव के भाव से भरपूर मैं हूँ। पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान हूँ। आहाहा! राग-द्वेष... है? '**रागद्वेषमोह-क्रोधमानमायालोभपञ्चेन्द्रियविषयव्यापार...**' देखा! आया अब। '**मनवचनकायव्यापार-भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदान्मायामिथ्या-शल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहितशून्योऽहं,...**' फिर अब आया यह। '**जगत्त्रये कालत्रयेऽपि...**' आहाहा! '**जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च**

शुद्ध निश्चयनयेन। तथा सर्वेऽपि जीवाः, इति निरन्तरं भावना कर्तव्येति॥' सर्व जीव ऐसे हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा जो इस प्रमाण कहा। सब जीव ऐसे ही हैं। तीन काल—तीन लोक मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदन से भिन्न... आहाहा! उदास शुद्ध चैतन्यघन भरित अवस्थ। पूर्ण स्वभाव से भरपूर मैं भगवान पूर्ण हूँ। पर्याय इतनी नहीं। पूर्ण स्वभाव से भरपूर भगवान हूँ। आहाहा! वह कर्तव्य और वह करनेयोग्य है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बात तो भाई! महँगी परन्तु अपूर्व बात है। पूर्व में कभी की नहीं, वास्तविक रीति से—रुचि से पूर्व में सुनी नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान पूर्णानन्द का नाथ चैतन्य हीरा परमेश्वरस्वरूप ही प्रभु स्वयं है। आहाहा! उसे अन्तर में निश्चय की भावना से स्वसंवेदन में लेकर अनुभव करना... आहाहा! वह भव्यजीव का कर्तव्य है। आहाहा! भारी कठिन ऐसा यह। इसका कोई साधन-फाधन (है या नहीं)? यहाँ तो साधन भी कुछ किया नहीं बेचारे ने। यह तो व्यवहार साधन-साधन, यह नहीं कहा इसमें। पंचास्तिकाय में कहा न? व्यवहार भिन्न साध्य-साधन। वह तो उपचार से कथन है। आहाहा!

भगवान! तेरी महत्ता और महिमा की क्या बात! आहाहा! जिसके आगे सिद्ध की पर्याय का वेश भी एक अंश है। आहाहा! ऐसा भगवान ऐसे अनन्त अंश से भरपूर वीतरागमूर्ति, समभाव के स्वभाव से भरपूर वीतरागी परमानन्द के वेदन से ज्ञात हो, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? कठिन (लगे) लोगों को। वहाँ भी ऐसा कहा था। अगास गये थे न, अगास। दोपहर में व्याख्यान चला। सुना। परन्तु फिर रात्रि में एक मारवाड़ी आया, (उसने पूछा) कि परन्तु साधन? साधन ऐसा कि यह भक्ति करना, वह साधन। अरे! भाई! तुमको... वह तो पुण्य के परिणाम हैं। यह साधन कहलाये? साधन तो पुण्य परिणाम से भिन्न चिदानन्द स्वभाव को प्रज्ञाब्रह्म से साधन द्वारा अन्दर अनुभव करना, प्रज्ञा के अनुभव से अनुभव करना, वह साधन है। परन्तु क्या हो? यह लोग वापस वहाँ अटक जाते हैं। 'निश्चय रखकर लक्ष्य में साधन करना सोय।' वह साधन बाहर के विकल्प। उसे यहाँ जरा खड़ा रखा है। आहाहा!

यहाँ तो यह कहा है। देखा! '**सर्वेऽपि जीवाः, इति निरन्तरं भावना कर्तव्येति॥**'

निरन्तर यह भावना रखना। आहाहा! यह यहाँ कहा है। **'जगत्त्रये'** अपने चलता है इसमें। **तीन जगत में, तीनों कालों में...** आहाहा! तीनों काल में से समेट लिया इसे। तीन काल में कोई मेरी चीज़ ही नहीं। आहाहा! चीज़ तो वह मैं हूँ। तीन लोक, तीन काल। मध्य, अधो, तिरछा, उसमें तीन लोक। तीन काल—भूत, भविष्य और वर्तमान। उनसे अत्यन्त (भिन्न हूँ)। किसी चीज़ में कहीं मैं नहीं। आहाहा! **मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़...** इस परिग्रह को तीन काल—तीन लोक में मन, वचन, काया से छोड़ दे। आहाहा! एकदम वीतरागता वर्णन करनी है न! समझ में आया? है? यह तो नास्ति से बात की है कि छोड़। अब अस्ति क्या?

शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर... लो! यह अस्ति। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है, बापू! इसे पहले समझण में तो ले। आहाहा! अनन्त बार मर गया ऐसा का ऐसा। तडपते, तड़पते वेदना (भोगी है)। आहाहा! यह अफीमची को अफीम न मिले न, यह छोटी उम्र में देखा है हमारे उमराला में। फिर अफीम मिले नहीं। गरीब व्यक्ति और अफीम न मिले। पैर रगड़े फिर। अफीम बिना। अफीम का बंधन होता है। गरीब व्यक्ति हो। अफीम मिले नहीं फिर। आहाहा! देखा हुआ है छोटी उम्र में। तड़पड़ाहट करता हो। उसमें और कोई महाजन-बहाजन को जरा दया आवे तो अफीम पाव भाग थोड़ा दे। आहाहा!

इस प्रकार इस पर की विषयवासना में पर में तड़पता हुआ भटक रहा है। आहाहा! उसे तो यह औषध है। पर से हटकर अपने स्वभाव में आना। आहाहा! पर से खस, स्व में बस, यह टुकूं टच और इतना बस। आहाहा! (पर के) विकल्प से लेकर दया, दान का विकल्प भी पर है। आहाहा! वह तेरे स्वरूप में नहीं। एक समय की पर्याय भी त्रिकाल स्वरूप में नहीं। आहाहा! ऐसा पूर्णानन्द भरपूर भगवान का वेदन करना, वह कर्तव्य है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! बात यह है। इसकी पहली श्रद्धा में तो इस बात को ले कि चाहे जो बातें व्रत और तप की शास्त्र में चली हो, परन्तु उससे रहित होकर अपने में एकाग्र होना, वह वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्तिम फैसला किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा परमात्मप्रकाश सुनकर, वाँचकर करना क्या? करना यह। तीन काल—तीन लोक में से हटकर। उसमें कहीं परिग्रह नहीं। आहाहा! मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदना से हटकर। आहाहा! अकेला वीतरागभाव। कैसा? **शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप...** है? **वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर...** आहाहा! दिगम्बर के वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। श्रीमद् में आता है एक जगह। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया। ऐसे शब्द आते हैं। श्वेताम्बर की वाणी ढीली... ढीली... ढीली... विपरीत करते... करते... करते... सब रस चला गया। दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण... आहाहा! रहस्य समझा जा सकता है कि क्या कहना चाहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : (ऐसा उसमें आता है) श्वेताम्बर शास्त्र निषेधनेयोग्य नहीं हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पहले कहा था। शुरुआत में रही है न! यह तो आत्मसिद्धि में केवली विनय करे, यह सब असर श्वेताम्बर का है। बाद में निकल गया है। फिर जब सत्शास्त्र के नाम दिये हैं न, वहाँ आगे कोई श्वेताम्बर के शास्त्र का नाम नहीं है। बीस शास्त्रों में उन्नीस दिगम्बर के और एक ग्रंथ है, हरिभद्र का बनाया हुआ। वह तो तर्क से सिद्ध किया है। शास्त्र का नाम नहीं। परन्तु वे लोग नहीं मानते। पहले तो पोषाण हो गया। आत्मसिद्धि जो मुख्य बनायी, उसमें भी केवली विनय करे छद्मस्थ का, यह श्वेताम्बर की झलक है। श्वेताम्बर में दस वैकालिक का नवाँ अध्ययन है। उसमें यह आता है। यह कण्ठस्थ किये हुए थे सब? अनन्तनाणं... अनन्त ज्ञान को प्राप्त हुआ शिष्य भी गुरु का विनय नहीं छोड़ता, ऐसा पाठ है। परन्तु केवली के विनय होता ही नहीं। केवलज्ञान वीतराग पूर्ण दशा हुई (पश्चात् विकल्प कैसा?) परन्तु श्वेताम्बर की शैली ऐसी है ही ढीली और विपरीत कि उसमें कहीं कठिन काम...

मुमुक्षु : सातवें गुणस्थान में वंद्य-वन्दकभाव....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में वंद्य-वन्दकभाव नहीं। छठे तक विकल्प है, तब तक वंद्य वन्दकभाव होता है। यह द्रव्यसंग्रह तो बाद में उन्होंने कहा है। पहले यह लिख गया इसलिए...

केवलज्ञानी परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, वह किसका विनय करे? वीतराग है, पूर्ण है, अब कहाँ पूर्ण में बाकी रहा है कुछ? आहाहा! परन्तु उस समय जरा श्वेताम्बर की झलक रह गयी, और यह श्लोक बनाये। पश्चात् मैंने तो इसका अर्थ तब दूसरा ही किया था। (संवत्) १९९५ में अर्थ हो गया है न? आत्मसिद्धि के (प्रवचनों के) सब पाँच-सात हजार पुस्तकें प्रकाशित हो गयी हैं। यहाँ दो-तीन पुस्तकें हैं। आत्मसिद्धि के प्रवचन की। शान्तिभाई कल लाये थे। तीन है न तीन? आत्मसिद्धि प्रवचन। वे १९९५ में राजकोट में हुए हैं। तब वहाँ अर्थ ऐसा किया था कि केवली विनय करे, इसका अर्थ क्या लेना? कि पूर्व में गुरु का विनय किया था, वह केवलज्ञान में ज्ञात हुआ। केवली किसका विनय करे? पूर्णानन्द का नाथ तो... अरे! तीर्थंकर तो दीक्षा लेते हैं छद्मस्थ (अवस्था में) तब भी णमो अरिहंताणं करते नहीं। नमः सिद्धेभ्य। बस। तीर्थंकर भगवान जब दीक्षित होते हैं, नमः सिद्धेभ्य (बोलते हैं)। पंच णमोकार नहीं।

मुमुक्षु : ॐ भी नहीं बोलते?

पूज्य गुरुदेवश्री : नमः सिद्धेभ्य। उसमें आ गया सब। ॐ उसमें आ गया।

यह तो उसमें आता है। नेमिनाथ भगवान जब नहाते हैं न? नहाने जाते हैं, तब श्रीकृष्ण की रानियाँ साथ में होती हैं। रुक्मणी और सब। फिर उन्हें कहते हैं कि तुम विवाह करने की हाँ करो। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण की रानियाँ बहुत प्रार्थना करती हैं। फिर इतना कहते हैं। ॐ बस। ॐ। ऐसा कि ठीक-ठीक। भजन में आता है। ॐ। हाँ, ऐसा। विवाह करने जाते हैं, वहाँ वे पशु देखते हैं। यह हमारा विवाह और यह नहीं होता। उन पशुओं की पुकार हमारे प्रसंग में न हो। सारथी से कहते हैं कि सारथी! वापस मुड़ो। आहाहा! हम तो वीतरागभाव को अंगीकार करेंगे। वापस मुड़ो। यह नहीं। यह विवाह नहीं। हमारा विवाह तो आत्मा के साथ होगा अब। आहाहा! छोड़ देते हैं। हाँ किया था वहाँ। नहाते समय रानियाँ बोलने लगीं और बहुत (विनय) करने लगीं। कपड़े-बपड़े। रुक्मणी को ऐसा कहे, हमारे वस्त्र धो दें। क्या हम तुम्हारी दासी हैं? स्त्री हैं तुम्हारी कि वस्त्र धोने का कहते हो? विवाह करो। तो कहते हैं, ॐ। इतना कहा। ॐ कहकर हाँ किया, ऐसा। आहाहा! यह तो भाई ज्ञानी की मौज और क्रीड़ा अलग प्रकार की है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि तीन काल—तीन लोक में से हटकर वीतराग निर्विकल्प शान्ति (में स्थिर हो)। आहाहा! उत्कृष्ट बात लेनी है न? और पहले के जो अस्थिरता के विकल्प थे, वे सब दोषवान थे, बन्ध के कारण थे, ऐसा ठहराकर, उनसे छोड़कर सिरि हो अब, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प अभेद समाधि शान्ति में **ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,...** देखा! क्या कहा? परवस्तु को भिन्न जानता है। किस प्रकार? किस काल में? सम्यग्दर्शन में तो भिन्न जानता है, परन्तु उसमें इस प्रकार से ठहरकर भिन्न जाने, उसका नाम जाना, ऐसा। क्या कहा यह? धन्नालालजी! क्या कहा? **निर्विकल्प समाधि में ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन में तो परवस्तु से भिन्न जाने, परन्तु यहाँ तो परवस्तु में से हटकर स्वरूप में स्थिर होकर... आहाहा! **परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,...** आहाहा! अन्दर में वीतरागपने स्थिर हुआ, वह परवस्तु को भिन्न जानता है। आहाहा! समभाव लेना है न एकदम। समझ में आया? आहाहा!

समाधि में ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,... आहाहा! सन्तों की कथनी तो देखो। दिगम्बर सन्तों की। आहाहा! **वो ही परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता है।** पाठ यह है न? **'गंथहँ उप्परि'** गाथा यह है। **'गंथहँ उप्परि'** ग्रन्थ के ऊपर राग नहीं करना। अर्थात् यह ग्रन्थ बाह्य-अभ्यन्तर आदि सबका और शास्त्र। शास्त्र के ऊपर अर्थात् शास्त्र पर भी राग-द्वेष नहीं करना। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई! ऐसा **वीतराग निर्विकल्प समाधि में ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है,...** आहाहा! **वो ही परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता है।** देखा! आहाहा! शरीर, वाणी, मन, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि परवस्तु। अब उसके लिये रुकना, अकेले पाप के लिये है। आहाहा! अकेला पाप का बोझा बढ़ाता है। धर्म तो नहीं, पुण्य भी नहीं। आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, मकान, इज्जत, कमाना। आहाहा! अमूल्य जिन्दगी की कीमत वहाँ चली जाती है। आहाहा! अकेला पाप का बोझा बढ़े। धर्म तो नहीं। पाप को बोझा बढ़े और पुण्य भी नहीं वहाँ तो। आहाहा! दो-चार घण्टे सुनना, वाँचन करना, ऐसा जो समय, वह पुण्य का समय है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह .... परम्परा....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है। यह तो इसे पुण्य का भी ठिकाना नहीं, ऐसा। चार-चार, दो-चार घण्टे वाँचन, श्रवण, सत्समागम, उसे श्रवण करना ऐसा समय हमेशा निकालना, इसका नाम पुण्य है। सेठ! और दुकान, मकान, घर के स्त्री, पुत्र में रुकना अकेला पाप है। यहाँ तो दोनों को छोड़कर अन्दर समाधि में स्थिर हो तब भिन्न जाना कहलाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे रे! दुनिया की मिठास बाहर की न...

समाधि में ठहरकर परवस्तु से अपने को भिन्न जानता है, वो ही परिग्रह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता है। यहाँ पर ऐसा व्याख्यान... अब क्या कहते हैं ? **निर्ग्रन्थमुनि को ही शोभा देता है,...** क्योंकि गृहस्थाश्रम में समकिती है, परन्तु अभी उसे राग है। अस्थिरता का राग है। भिन्न जाना, भिन्न अनुभव किया है, परन्तु अभी अस्थिरता का भाव है, उसे यह व्याख्यान शोभा नहीं देता। आहाहा! है ? **निर्ग्रन्थमुनि को ही शोभा देता है,...** आहाहा! **परिग्रहधारी को नहीं शोभा देता है,...** समकिती है, ज्ञानी है, परन्तु जब तक रागभाग है, उसे यह व्याख्यान शोभा नहीं देता, उसे यह लागू नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....तो गिरेगा या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न! पहले यह तो पहिचान और श्रद्धा तो कर सच्ची पहले। व्यवहार श्रद्धा, हों! अभी निश्चय श्रद्धा तो अनुभव है। समझ में आया ? आहाहा! अरे! अकेला आया, अकेला जाये और अकेला रहे। किसी के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहा न ? तीन काल, तीन लोक में से हटकर। क्योंकि वह परवस्तु है, उसमें तू है कहाँ ? आहाहा! उसमें से छूटकर स्थिर कहाँ होना ? शुद्ध आत्मा में समाधि-शान्ति में स्थिर होकर पर को भिन्न जान। आहाहा! समझ में आया ? **ऐसा व्याख्यान निर्ग्रन्थमुनि...** आहाहा! जिसे अभ्यन्तर परिग्रह छूट गया है, बाह्य परिग्रह छूट गया है, ऐसे को यह शोभा देता है। **परिग्रहधारी को नहीं शोभा देता है, ऐसा तात्पर्य जानना।** इसका तात्पर्य यह है। आहाहा!

गाथा - ५०

अथ -

१७४) विसयहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
विसयहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।५०।।

विषयाणां उपरि परममुनिः द्वेषमपि करोति न रागम्।
विषयेभ्यः येन विज्ञातः भिन्नः आत्मस्वभावः।।५०।।

विसयहं इत्यादि। विसयहं उप्परि विषयाणामुपरि परम-मुणि परममुनिः देसु वि करइ ण राउ द्वेषमपि नापि करोति न च रागमपि। येन किं कृतम्। विसयहं जेण वियाणियउ विषयेभ्यो येन विज्ञातः। कोऽसौ विज्ञातः। भिण्णउ अप्प-सहाउ आत्मस्वभावः। कथंभूतो भिन्न इति। तथा च द्रव्येन्द्रियाणि भावेन्द्रियाणि द्रव्येन्द्रियभावेन्द्रियग्राह्यान् विषयांश्च दृष्टश्रुतानुभूतान् जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनगकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यक्त्वा निजशुद्धात्मभावनासमुत्पन्न-वीतरागपरमानन्दैकरूपसुखामृतरसास्वादेन तृप्तो भूत्वा यो विषयेभ्यो भिन्नं शुद्धात्मानमनुभवति स मुनिपञ्चेन्द्रियविषयेषु रागद्वेषौ न करोति। अत्र यः पञ्चेन्द्रियविषयसुखान्निवर्त्य स्वशुद्धात्मसुखे तृप्तो भवति तस्यैवेदं व्याख्यानं शोभते न च विषयासक्तस्येति भावार्थः।।५०।।

आगे विषयों के ऊपर वीतरागता दिखलाते हैं -

जो पञ्चेन्द्रिय विषय ग्राम से भिन्न आत्मा को जानें।
परम तपोधन वे विषयों से राग द्वेष नहिं कभी करें।।५०।।

अन्वयार्थ :- [परममुनिः] महामुनि [विषयाणां उपरि] पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों पर [रागमपि द्वेषं] राग और द्वेष [न करोति] नहीं करता, अर्थात् मनोज्ञ विषयों पर राग नहीं करता और अनिष्ट विषयों पर द्वेष नहीं करता; क्योंकि [येन] जिनसे [आत्मस्वभावः] अपना स्वभाव [विषयेभ्यः] विषयों से [भिन्नः विज्ञातः] जुदा समझ लिया है। इसलिये वीतराग दशा धारण कर ली है।

भावार्थ :- द्रव्येन्द्री, भावेन्द्री और इन दोनों से ग्रहण करने योग्य देखे सुने अनुभव किये जो रूपादि विषय हैं, उनको मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़कर और निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानंदरूप अतीन्द्रियसुख

के रस के आस्वादने से तृप्त होकर विषयों से भिन्न अपने आत्मा को जो मुनि अनुभवता है, वो ही विषयों में राग-द्वेष नहीं करता। यहाँ पर तात्पर्य यह है, कि जो पंचेन्द्रियों के विषय-सुख से निवृत्त होकर निज शुद्ध आत्म-सुख में तृप्त होता है, उसी को यह व्याख्यान शोभा देता है, और विषयाभिलाषी को नहीं शोभता।।५०।।

गाथा-५० पर प्रवचन

५०। यह ४९ गाथा हुई। **आगे विषयों के ऊपर वीतरागता दिखलाते हैं—** उसमें था न? '**गंथहँ उप्परि**' पहले में '**गंथहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।**'

१७४) **विसयहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।**
विसयहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।५०।।

आहाहा! यहाँ तो उत्कृष्ट महामुनि की बात ली है न? कि जिसमें समभाव, वीतरागता आवे तब, उसे मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण होने पर भी, उसे अभी रागभाग और आसक्ति है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं है। तीर्थंकर जैसे को भी जब तक वस्त्र में और गृहस्थाश्रम में रहते हैं, तब तक उन्हें मुक्ति नहीं है। आहाहा! वह भी सर्वथा परिग्रह छोड़कर, अन्तर में वीतरागभाव को प्रगट करे, तब उसे भी मुक्ति है। आहाहा!

अन्वयार्थ :- महामुनि पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों पर राग और द्वेष नहीं करता,... आहाहा! यहाँ तो इन्द्रियाँ पाँच जड़ और पाँच भाव इन्द्रिय और उनका विषय स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु, शास्त्र और वाणी, वह सब विषय इन्द्रियों का है। आहाहा! समझ में आया? वे सब **पाँच इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों पर राग और द्वेष नहीं करता अर्थात् मनोज्ञ विषयों पर राग नहीं करता...** आहाहा! अनुकूल पाँच इन्द्रियों के विषयों में शब्द, स्पर्श आदि, वहाँ राग नहीं करता **और अनिष्ट विषयों पर द्वेष नहीं करता; क्योंकि जिनसे अपना स्वभाव विषयों से जुदा समझ लिया है...** आहाहा! स्त्री, कुटुम्ब, परिवार से तो भिन्न जान लिया परन्तु देव, गुरु और शास्त्र की वाणी से भी आत्मा को भिन्न जाना। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! अकेला भगवान... आहाहा!

अपना स्वभाव विषयों से जुदा समझ लिया है। इसलिए वीतराग दशा धारण कर ली है। आहाहा!

भावार्थ :- द्रव्येन्द्रिय... देखो! आया। जड़-जड़। **भावेन्द्रिय...** एक-एक इन्द्रिय एक-एक विषय को जाने वह (भावेन्द्रिय)। **और इन दोनों से ग्रहण करनेयोग्य देखे सुने अनुभव किये जो रूपादि विषय हैं,...** आहाहा! इन्द्रिय से देखा, इन्द्रिय से सुना और इन्द्रिय का अनुभव। आहाहा! **उनको मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़कर...** आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र, पंच परमेष्ठी भी परद्रव्य है, इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! अणीन्द्रिय का विषय तो भगवान आत्मा है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

उनको मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़कर... अब यह तो नास्ति की। **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** आहाहा! निज शुद्धात्मा। देखा! भगवान की भावना और भक्ति से नहीं। **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** आहाहा! भगवान आत्मा निज शुद्ध पवित्र प्रभु, परमानन्द का नाथ आत्मा, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! उससे उत्पन्न **वीतराग परमानन्दरूप अतीन्द्रिय सुख के रस के आस्वादन से...** आहाहा! यह भाषा। मन, वचन, काया से, कृत, कारित, अनुमोदन से विषय और परसन्मुख का झुकाव छोड़ दे। आहाहा! मन से सुनने का भी छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। मन से सुना, उसका विचार करने का मन से छोड़ दे। ऐसा मार्ग!

मुमुक्षु : कर विचार तो पाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिरता कर तो पाम। विचारकर। आहाहा! है न? देखो न!

निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... आहाहा! जगत के पदार्थ के लक्ष्य से उत्पन्न होने से तो अकेला दुःख होता है। आहाहा! परन्तु उसमें उत्साह लगे, कुछ आगे बढ़े। पाँच-दस लाख पैदा हुए हों। मकान बड़े हों, मकान बनावे, बढ़े, अपने अब घर-बारवाले हुए। ऐसा बाहर उत्साह लगे। अरेरे! यह तो सब दुःख की उत्पत्ति है। पाप के भाव तो दुःख के भाव हैं। पुण्य का भाव, वह दुःख का है तो पाप में तो तीव्र दुःख का कारण है। आहाहा! भारी कठिन काम।

इसीलिए कहा। पर के प्रति सब झुकाव दशा छोड़कर मन, वचन और काया,

कृत, कारित, अनुमोदन भी छोड़कर। आहाहा! मन से भी छोड़ दे कि यह ठीक है। आहाहा! वाणी सुनना और भगवान के दर्शन करना, यह मन से छोड़ दे कि यह ठीक है, ऐसा छोड़ दे। ऐसी बात है, बापू! आहाहा! संसार के रसिक को तो पागल जैसा लगे, ऐसा है। पागल है, यह कैसी बातें करता है? बापू! तू अकेला है, प्रभु! तुझे पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। आहाहा! सम्बन्ध, वह बन्ध। वह विसंवाद खड़ा करता है।

समयसार की तीसरी गाथा में आता है न? '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे। बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥**' आहाहा! भगवान एकत्वस्वरूप, उसे राग और पर के सम्बन्ध में लाना, वह विसंवाद—झगड़ा होता है, खेद खड़ा होता है। आहाहा! '**एयत्तणिच्छयगदो समओ**' भगवान सर्वत्र सुन्दर, अकेला निश्चय वह सुन्दर है। उसे राग के और निमित्त के सम्बन्ध में देखना, वह झगड़ा उत्पन्न करता है, कहते हैं। आहाहा! है न? '**सव्वत्थ सुंदरो लोगे। बंधकहा एयत्ते**' एकत्व में राग के सम्बन्ध की बात विसंवाद खड़ा करती है। आहाहा! ऐसी वाणी तो देखो मुनि की! ओहोहो!

वीतराग परमानन्दरूप अतीन्द्रियसुख के रस के आस्वादन से... भाषा देखो! अतीन्द्रिय आनन्द के रस के आस्वाद से तृप्त होकर। आहाहा! **शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्दरूप...** वापस ऐसा। आहाहा! **अतीन्द्रियसुख के रस के आस्वादन से...** अतीन्द्रिय आनन्द के रस के स्वाद में **तृप्त होकर...** आहाहा! **विषयों से भिन्न अपने आत्मा को जो मुनि अनुभवता है,...** तब विषयों से पृथक् आत्मा को अनुभव करता है। आहाहा! समझ में आया? यह क्या कहते हैं परन्तु ऐसी बातें? व्रत पालना, अपवास करना, भक्ति करना, पूजा करना, ऐसा तो कुछ कहते नहीं। वह हो, परन्तु वह राग है; वह धर्म नहीं। आहाहा!

अकेला स्वभाव भगवान वीतराग, ऐसे पर से छूटकर वीतरागी परमानन्दरूप अतीन्द्रिय सुख के आस्वाद में तृप्त हुआ। आहाहा! **विषयों से भिन्न अपने आत्मा को...** इस प्रकार **तृप्त होकर विषयों से भिन्न अपने आत्मा को जो मुनि अनुभवता है,...** आहाहा! वीतरागी सुखरस आनन्द के अमृत के रस में आस्वाद में तृप्त हुआ। आहाहा! जैसे लड्डू इसने बहुत बढ़िया-बढ़िया खाये हों और तृप्त हो गया हो, फिर इसे कोई पानी या

आहार की इच्छा नहीं रहती। आहाहा! इसी प्रकार वीतरागी आनन्द भगवान आत्मा में है, यह दृष्टि और स्थिरता द्वारा जो वीतरागी परमानन्द में तृप्त हुआ है। आहाहा!

यह **विषयों से भिन्न अपने आत्मा को...** ऐसी दशा में। ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागी परमानन्द के सुखरस के स्वाद से तृप्त हुआ। हुआ उस काल में। आहाहा! **विषयों से भिन्न अपने आत्मा को जो मुनि अनुभवता है,...** आहाहा! **वो ही विषयों में राग-द्वेष नहीं करता।** कौन? जो निज आत्मा की भावना से उत्पन्न हुए वीतरागी परमानन्दरस में तृप्त हुआ आत्मा विषयों में राग-द्वेष नहीं करता। क्योंकि वह विषयों से भिन्न पड़कर आत्मा के अनुभव में तृप्त है। आहाहा! अरे! ऐसी बातें, लो! पाँचवें काल के लिये ऐसी बातें! हल्का काल, हल्के लोग साधारण बेचारे। आहाहा! बापू! तुझे एक ही काल... काल तीनों काल तीनों काल में है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' परमार्थ का पंथ पाँचवें और चौथे के लिये अलग है, ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा! अरे! इसकी श्रद्धा में—रुचि में तो ले पहले बात। आहाहा!

यहाँ पर तात्पर्य यह है कि जो पंचेन्द्रियों के विषय-सुख से निवृत्त होकर निज शुद्ध आत्म-सुख में तृप्त होता है,... आहाहा! धर्मात्मा को अतीन्द्रिय आनन्द में तृप्ति है। आहाहा! **उसी को यह व्याख्यान शोभा देता है,...** विषयों को भिन्न जाना। सम्यक्त्व में भी विषय का सेवन छोड़ा नहीं, तब तक यथार्थ शोभा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **शुद्ध आत्म-सुख में तृप्त...** निज आत्मसुख में तृप्त, ऐसा। आहाहा! **पंचेन्द्रियों के विषय-सुख से निवृत्त होकर...** प्रवृत्ति कहाँ हुई अब? कि **निज शुद्ध आत्म-सुख में तृप्त...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की तृप्ति... तृप्ति... तृप्ति... हो गयी। आहाहा! जैसे चूरमा के लड्डू दो-तीन खावे और घी में डुबो-डुबोकर लड्डू वापस। लड्डू तो हो। घी डाले घी, अधसेर। हमारे हरिभाई थे, वे ऐसा ही करते थे। हरिभाई थे। शान्तबहिन के काका। हरिभाई नहीं? ब्रह्मचारी। वे लड्डू और घी ले। अन्य दाल में डुबोकर खाये, यह घी में डुबोकर खाये। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा को आनन्द में डुबोकर अनुभव कर, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! उसे यह व्याख्यान शोभा देता है, ऐसा कहते हैं। **और विषयाभिलाषी को नहीं शोभता।** विषय के अभिलाषी को आनन्द की तृप्ति नहीं हो सकती। विशेष कहेंगे.....   (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५१

अथ -

१७५) देहहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
देहहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।५१।।

देहस्य उपरि परममुनिः द्वेषमपि करोति न रागम्।
देहाद् येन विज्ञातः भिन्नः आत्मस्वभावः।।५१।।

देहहं इत्यादि। देहहं उप्परि देहस्योपरि परम-मुणि परममुनिः देसु वि करइ ण राउ द्वेषमपि न करोति न रागमपि। येन किं कृतम्। देहहं जेण वियाणियउ देहात्सकाशाद्येन विज्ञातः कोऽसौ। भिण्णउ अप्प-सहाउ आत्मस्वभावः। कथंभूतो विज्ञातः। तस्माद्देहाद्भिन्न इति। तथाहि – 'सपरं बाधासहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं। जं इंदिएहिं लद्धं तं सुक्खं दुक्खमेव तहा।' इति गाथाकथितलक्षणं दृष्टश्रुतानुभूतं यद्देहजनितसुखं तज्जगत्रये कालत्रयेऽपि मनवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यक्त्वा वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबलेन पारमार्थिकानाकुलत्वलक्षणसुख-परिणते निजपरमात्मनि स्थित्वा च य एव देहाद्भिन्नं स्वशुद्धात्मानं जानाति स एव देहस्योपरि रागद्वेषौ न करोति। अत्र य एव सर्वप्रकारेण देहममत्वं त्यक्त्वा देहसुखं नानुभवति तस्यैवेदं व्याख्यानं शोभते नापरस्येति तात्पर्यार्थः।।५१।।

आगे साधु देहके उपर भी राग-द्वेष नहीं करता –

जो शरीर से भिन्न आत्मा के स्वभाव का ज्ञान करें।
परम तपोधन वे मुनि तन से राग द्वेष नहिं कभी करें।।५१।।

अन्वयार्थ :- [परममुनिः] महामुनि [देहस्य उपरि] मनुष्यादि शरीर के ऊपर भी [रागमपि द्वेषम्] राग और द्वेष को [न करोति] नहीं करता अर्थात् शुभ शरीर से राग नहीं करता, अशुभ शरीर से द्वेष नहीं करता, [येन] जिसने [आत्मस्वभावः] निजस्वभाव [देहात्] देह से [भिन्नः विज्ञातः] भिन्न जान लिया है। देह तो जड़ है, आत्मा चैतन्य है, जड़ चैतन्य का क्या संबंध?

भावार्थ :- इन इन्द्रियों से जो सुख उत्पन्न हुआ है, वह दुःखरूप ही है। ऐसा कथन श्रीप्रवचनसार में कहा है। 'सपरम' इत्यादि। इसका तात्पर्य ऐसा है, कि जो

इन्द्रियों से सुख प्राप्त होता है, वह सुख दुःखरूप ही है, क्योंकि वह सुख परवस्तु है, निजवस्तु नहीं है, बाधा सहित है, निराबाध नहीं है, नाश के लिए हुए है, जिसका नाश हो जाता है, बन्ध का कारण है, और विषम है। इसलिये इन्द्रियसुख दुःखरूप ही है, ऐसा इस गाथा में जिसका लक्षण कहा गया है, ऐसे देहजनित सुख को मन, वचन, काया, कृत, कारित अनुमोदना से छोड़े। वीतरागनिर्विकल्पसमाधि के बल से आकुलता रहित परमसुख निज परमात्मा में स्थित होकर जो महामुनि देह से भिन्न अपने शुद्धात्मा को जानता है, वही देह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता। जो सब तरह देह से निर्ममत्व होकर देह से सुख को नहीं अनुभवता, उसी के लिए यह व्याख्यान शोभा देता है, और देहबुद्धिवालों को नहीं शोभता, ऐसा अभिप्राय जानना।।५१।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ६, शनिवार
दिनांक-१३-११-१९७६, गाथा-५१, प्रवचन-१३२

परमात्मप्रकाश ५१ गाथा। यहाँ समभाव की व्याख्या साधुरूप से गिनने में आयी है। समभाव की शुरुआत तो सम्यग्दर्शन में से होती है, परन्तु साधु को समभाव बहुत ही उत्कृष्ट होता है और इसीलिए वह समभाव मोक्ष का कारण है, ऐसा वर्णन कर यह समता का स्वरूप वर्णन किया है। समभाव अर्थात् वीतरागता। चौथे गुणस्थान में भी सम्यग्दर्शन की पर्याय, वह वीतरागी पर्याय है। पाँचवें गुणस्थान में भी जितनी दो कषाय मिटकर, मिथ्यात्व टलकर जितनी शान्ति हुई है, वह वीतरागी है। मुनि को विशेष है। इसलिए उसमें भी यहाँ निर्विकल्प समाधि के बल से मुक्ति प्राप्त होती है, यह वर्णन चलता है। इसका अर्थ कि निचलीदशा में जो कुछ शुभ-अशुभ विकल्प है, वह बन्ध का कारण है। चाहे तो मुनि को पंच महाव्रत के विकल्प हों, वह बन्ध का कारण है। वह समभाव नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! इतना भी अभी विषमभाव है। आहाहा! भगवान आत्मा अत्यन्त वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता, वह वीतरागता होती है। समझ में आया?

यह लोग कहते हैं न कि चार अनुयोग को मानते नहीं। उन्हें ऐसा कहकर कहना चाहेंगे, निश्चित करेंगे कि देव को मानते नहीं, गुरु को मानते नहीं, शास्त्र को मानते

नहीं। तीनों को मानते नहीं, ऐसा कहेंगे, ऐसा निश्चित करेंगे। देव को क्यों नहीं मानते ? कि प्रतिमा आदि को भी... कैसी कहलाये देवी ? पद्मावती। उसे पानी में डालते हैं। इतना... कुछ करते होंगे, अपने को कुछ खबर नहीं, परन्तु वह तो यहाँ के ऊपर डाले न ! गुरु को मानते नहीं, जो यह वर्तमान मुनि हैं, वे गुरु हों तो गुरु को मानते नहीं। चार अनुयोग को मानते नहीं, (तो) शास्त्र को मानते नहीं। ताराचन्दजी ! ऐसा कहेंगे, ऐसा निश्चित करेंगे। फलटन में।

मुमुक्षु : उत्सर्ग और अपवादमार्ग....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवादमार्ग है, वह अपवाद है। अपवादमार्ग है, वह अपवाद है, निन्दा करनेयोग्य है। कहो, देवानुप्रिया ! यह प्रश्न नारद है। आहाहा ! उत्सर्गमार्ग एक ही वीतरागता है, वही मोक्ष का कारण है। बीच में अपवादमार्ग पंच महाव्रत आदि, श्रावक को बारह व्रत आदि आगे कहेंगे, अभी कहेंगे कि पंच महाव्रत के परिणाम, वे भी एक प्रवृत्ति है। अशुभ से निवृत्ति है परन्तु शुभ में प्रवृत्ति है। इसलिए व्रत और अव्रत दोनों विकल्प से रहित दशा, अन्दर में स्थिरता को निश्चयव्रत कहते हैं, ऐसा कहेंगे, बाद में कहेंगे। समझ में आया ? आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं कि **साधु देह के ऊपर भी राग-द्वेष नहीं करता।** आहाहा ! शरीर के ऊपर भी जिसे अब अस्थिरता का राग, श्रावक को, समकिती को होता है, वह इन्हें नहीं होता, ऐसा सिद्ध करना है। और अस्थिरता का राग बन्ध का कारण है और यह स्थिरता—वीतरागभाव, वह मोक्ष का कारण है। और चार अनुयोग को मानने का अर्थ चार अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। वे लोग ऐसा कहना चाहते हैं कि यह चरणानुयोग का जो व्यवहार वर्तन है, वह साधक है। इसलिए इसे व्यवहार साधता है, अभी उसे तुम मानते नहीं। ऐसा (वे) कहते हैं। भगवान ! क्या करे ? बापू ! भाई ! चरणानुयोग में व्यवहार का साधन कहा है, वह जाननेयोग्यरूप से वर्णन किया है। उसका भी तात्पर्य—चरणानुयोग का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा ! शास्त्र का तात्पर्य ही वीतरागता है। तो शास्त्र एक ही द्रव्यानुयोग है ? चारों प्रकार के (अनुयोगों के) शास्त्रों का तात्पर्य—प्रयोजन स्वद्रव्य का आश्रय लेकर वीतरागता उत्पन्न करना, यह उनका तात्पर्य है। ऐसी बात है।

देव, गुरु, धर्म को मानना, ऐसा विकल्प होता है, परन्तु वह भी राग है। उसे छोड़कर स्वदेव को मानना। आहाहा! स्वयं भगवान वीतरागमूर्ति प्रभु है, उन देव को मानना और वह स्वयं वस्तु है, वह गुरु है। आहाहा! और उस वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है। समझ में आया? यहाँ साधुपने की व्याख्या में वीतरागता (कहते हैं), देह से भी जिनकी ममता छूट गयी है, ऐसा कहते हैं। देह की अस्ति होने पर भी, देह के प्रति का राग मुनि को छूट गया है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : आहार लेने क्यों जाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अभी विकल्प है। वहाँ तक की बात नहीं। यह तो बाद की बात है। वहाँ इतना राग है, उसे भी छोड़कर जब समभाव में निर्विकल्प में हों, उसकी यहाँ बात है। क्योंकि आहार लेने का विकल्प है, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! संयम के हेतु से भी आहार (लेने की) वृत्ति (हो), वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तनपोषण के लिये नहीं, तथापि वह विकल्प है, राग है। चरणानुयोग के वचन में ऐसा आता है, प्रवचनसार में आता है कि आहार लेने पर भी अनाहारी के ऊपर दृष्टि है, और निर्दोष लेते हैं, इसलिए उन्हें अनाहारी कहा जाता है। प्रवचनसार चरणानुयोग(सूचक चूलिका)। आहार लेने पर भी। आहाहा! शब्द-शब्द में उसका विचार समझना कठिन। अनाहारी भगवान आत्मा का जिसे आश्रय है, इसलिए वह अनाहारी है और विकल्प से आहार लेता है तो इस अपेक्षा से भी व्यवहार से निर्दोष लेता है, इसलिए व्यवहार से उसे अनाहारी कहा गया है, यह चरणानुयोग की अपेक्षा से। निश्चय से तो वह आहार लेने का विकल्प है, आहाहा! वह पुण्यबन्ध का कारण है। वह समभाव नहीं। इतना विषमभाव है। यहाँ तो समभाव अर्थात् वीतरागता, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा बतलाना है न! आहाहा! ५१।

१७५) देहहँ उप्परि परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
देहहँ जेण वियाणियउ भिण्णउ अप्प-सहाउ।।५१।।

अन्वयार्थ :— **'परममुनिः' महामुनि मनुष्यादि शरीर के ऊपर भी राग और द्वेष को नहीं करता अर्थात् शुभ शरीर से राग नहीं करता,...** आहाहा! शरीर सुन्दर हो, रूपवान हो, दृढ़ हो, मजबूत हो, निरोग हो तो उसके प्रति भी राग नहीं, वह तो जड़ है। आहाहा! पुद्गल की दशा जड़ है। अजीव की अवस्था, वह देह है। ऐसे शुभ देह पर भी राग (नहीं करते)। यहाँ तो वीतरागता वर्णन करनी है न, प्रभु! परवस्तु क्या? वह तो जड़ है, मिट्टी है। आत्मा को और उसे कहीं (कुछ सम्बन्ध नहीं है)। आत्मा में तो उसका अभाव है। शरीर के रजकणों की अवस्था का या उसके द्रव्य-गुण का भगवान आत्मा में तो अभाव है, उसे भाववाला मुझे मानना, वह तो मिथ्याभ्रान्ति है और उसमें भी अस्थिरता पोषण आदि करना, वह भी राग है और विषमता है। आहाहा!

राग और द्वेष को नहीं करता अर्थात् शुभ शरीर से राग नहीं करता,... शुभ शरीर अर्थात् सुन्दर शरीर अनुकूल हो, वज्रनाराचसंहनन हों, समचतुरस्र संस्थान हो, शरीर, परन्तु वह तो जड़ है, भगवान! आहाहा! तू कहाँ चेतन और वह कहाँ जड़! परस्पर दो विरोधी चीज़ है। आहाहा! दृष्टि में तो प्रथम से ही शरीर मेरा नहीं, मैं आत्मा परिपूर्ण हूँ, ऐसी प्रतीति हुई होती है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो बाद की जो शरीर के प्रति जरा अस्थिरता है, उसे भी मुनि छोड़ देते हैं। आहाहा!

अशुभ शरीर से द्वेष नहीं करता,... शरीर रोगवाला हो, क्षय हुआ हो, जीर्णता हो, हड्डियाँ अकेली चमड़ी दिखती हो, रक्त, माँस की अन्दर में कमी हो गयी हो। आहाहा! परन्तु वह तो जड़ में कमी हुई, जड़ है। आहाहा! उसके प्रति अरुचि नहीं करता। अरुचि अर्थात् द्वेष। आहा! सुन्दर शरीर के प्रति राग अर्थात् रुचि। रुच गया उसे, रुचा। आहाहा! भगवान! तू कहाँ... ?

मुमुक्षु : महामुनि की व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की व्याख्या है। महामुनि अर्थात् निर्विकल्प रहनेवाले की। निर्विकल्प की यहाँ बात चलती है न! विकल्पवाले की बात है नहीं। नहीं, क्योंकि विकल्प है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा बतलाने के लिये (बात है)।

मुमुक्षु : सप्तम गुणस्थान की बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह सप्तम गुणस्थान की बात है। छठवें गुणस्थान में भी महाव्रतादि के जितने विकल्प उठें भक्ति, पूजा, विनय आदि, सब बन्ध का कारण है। विषमभाव है, ऐसा बतलाने के लिये यह समभाव बतलाते हैं। आहाहा! समभाव में तो उस जाति का विकल्प भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। उसे समता, वीतरागता कहा जाता है कि जिसमें... यह अर्थ आ गया है। अनन्त अतीन्द्रिय आनन्दगर्भित वीतरागता होती है, उसे समभाव कहा जाता है और उस समभाव की सब बारह अंग टीका है। बारह अंग में सब कथन इस समभाव के लिये है। आहाहा! यह आ गया है पहले। इसका अर्थ यह हुआ कि चारों अनुयोगों का कथन, शास्त्रतात्पर्य वीतरागता कहो या वीतरागता का यह कथन चारों अनुयोग में है, ऐसा कहो। आहाहा! चरणानुयोग में व्रत और तप की व्याख्या आवे, परन्तु वह तो जानने के लिये आती है, वहाँ होते हैं, ऐसा जानने के लिये।

मुमुक्षु : चरणानुयोग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आवे न चरणानुयोग में जानने के लिये। वह आदरने के लिये वीतरागभाव नहीं है। चरणानुयोग में भी शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है और इस समभाव में भी वीतरागता है। आहाहा! जिसे समभाव वीतरागता कहते हैं, वह तो अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द के स्वाद के साथ वीतरागता (होती है), उसे समभाव कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! समझ में आया? इसके अतिरिक्त के चौथे, पाँचवें, छठवें (गुणस्थान) में देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति के, महाव्रत के, विनय के विकल्प उठें, वह सब विषमभाव है, ऐसा सिद्ध करने के लिये यह समभाव का वर्णन है। आहाहा! प्रभु का मार्ग है शूरों का, कायर का वहाँ काम नहीं। आहाहा!

ऐसा जो भगवान, समरस से भरपूर प्रभु अकेला वीतरागस्वभाव से भरपूर भगवान है, अर्थात् कि अकषायस्वरूप है, अर्थात् कि चारित्रस्वरूप वीतरागभावस्वरूप ही वह आत्मा है। आहाहा! उसका आश्रय लेकर जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हो, वह भी वीतरागता है, वह समभाव है। आहाहा! उसमें निचली भूमिका में जितना विकल्प उठता है, वह सब विषमभाव है, ऐसा बतलाने के लिये, इसे समभाव है, वीतरागभाव है—ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू!

चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता है। चरणानुयोग में कथन भले व्यवहार का हो, वह जानने के लिये है, परन्तु उसका तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट हुई है, वह उसका सार है। बाकी राग रहा, वह कहीं उसका सार नहीं है। आहाहा! व्यवहार का अकेला आचरण, वह तो व्यवहार ही नहीं है। निश्चय के वीतरागी स्वभाव के आचरण में कमी होने के कारण व्यवहारचारित्र का आचरण आवे, उस राग को वीतरागभाव से ज्ञानभाव से जाननेयोग्य है, आदरनेयोग्य वह है नहीं। व्यवहारनय से आदरनेयोग्य कहा हो तो उसका वह निमित्त आदि का ज्ञान कराने को बात की है। आहाहा! व्यवहार साधन कहा है, वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है। बात ऐसी है, बापू! क्या हो? लोगों को खटकती है।

कल का वाँचकर कहा कि (तो) क्या करना चाहते हैं यह? यह योगफल यहाँ निकालेंगे। फलटन में। देव को मानते नहीं, क्योंकि पानी में डालते हैं। भले कोई डालता होगा, अपने को तो कुछ खबर नहीं। गुरु को मानते नहीं। क्योंकि वर्तमान साधु दिगम्बर गुरु हैं, उन्हें तो गुरु मानते नहीं, चार अनुयोग को मानते नहीं, (इसलिए) शास्त्र मानते नहीं, देव-गुरु-शास्त्र तीनों नहीं मानते, फिर भले वे आत्मा की बातें करें। भगवान! स्वतन्त्र है न आत्मा! ऐसा कहकर अपनी बात को दृढ़ करने के लिये अनुकूलता करे न। आहाहा! भगवान की तेरी बलिहारी है, भाई! अशुद्धता के पोषण में भी उसका जोर है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं। तो फिर यह किया तो वह डाले किसलिए? वह तो यह कहा है, दिगम्बरों को जलाने के लिये, ऐसा कहते हैं। यह मन्दिर सर्वत्र बनाते हैं... स्वतन्त्र... स्वतन्त्र लोगों को विचार (आवे)। मन्दिर बनाये हैं, कोई ऐसा कहे कि मानस्तम्भ किया है, वह कहाँ श्वेताम्बर में है? परन्तु यह सब जलाने, दिगम्बर को जलाने के लिये किया है, बाद में तो सबको श्वेताम्बर बनानेवाले हैं। भगवान! बलिहारी है, नाथ! तेरी।

मुमुक्षु : कुबुद्धि का विकास....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो चलता है, बापू! उसने अनन्त काल में ऐसा किया है। यह कहीं विषमभाव से देखनेयोग्य नहीं है। वह इसे बैठा हो, तत्प्रमाण ही बुद्धि काम करे। उसमें दूसरा क्या? 'जिसमें जितनी बुद्धि है, इतनो दियो बताये, बाको बुरो न मानिये, और कहाँ से लाये?' प्रभु! आहाहा! यह तो मार्ग आ गया। इसमें उसे कठिन पड़े। प्रथा और परम्परा का व्यवहार करना और यह करना और यह करना, उसमें धर्म मनाया था, इसलिए यह जरा कठिन पड़ता है लोगों को। इसलिए अपना अपमान न हो, इसके लिए शोधना तो चाहिए न! वस्तु तो ऐसी है। मान जगत को...

यहाँ कहते हैं, शरीर के प्रति भी मुनि को विकल्प ही नहीं। ऐसा कहकर समभाव, वही मुक्ति का कारण है, (ऐसा कहना है)। निचलीदशा में समभाव अल्प है, साथ में विकल्प उठता है, वह विषमभाव है, ऐसा बतलाना है। आहाहा! वीतरागभाव ही मुक्ति का कारण है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों वीतरागभाव है, परन्तु उनकी पूर्णता न हो, तब जो विकल्प होता है, वह सब विषमभाव है। आहाहा! विषम कहो या राग-द्वेष कहो। समता कहो या राग-द्वेषरहित भाव कहो। आहाहा! समझ में आया? मनुष्यादि, ऊपर कहा है न! अपना शरीर और दूसरे का भी शरीर। ऐसे अपने शरीर पर जिसे ममता है, उसे दूसरे के शरीर पर भी ममता है। उसका शरीर है, उसका है, ऐसा मानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जीवदया....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : जीवदया....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन दया? जीवदया किसे कहना? दया की व्याख्या उसमें की है। वह क्या है? **विकारमय परिणामों द्वारा अपने निज स्वभाव का घात न करना तथा अपने स्वभाव का पालन करना, वही दया है।** आत्मावलोकन। संस्कृत है, हों! **'यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया॥६॥'** चिमनभाई! ऐसा है, भगवान! आत्मावलोकन में श्लोक रखे हैं। (पृष्ठ १५०)। दया की व्याख्या।

मुमुक्षु : व्यवहार दया.... यह तो निश्चय की व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दया, यही दया है। वह दया का भाव तो राग-हिंसा है। पर की दया का भाव तो राग है। यह पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा नहीं? वह तो हिंसा है। आहाहा! विषमभाव है, वह समभाव नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, पुण्य और पाप के परिणामों द्वारा अपने निज स्वभाव का घात नहीं करना। व्रत और अव्रत के परिणाम द्वारा अपना घात न करना। आहाहा! **तथा अपने स्वभाव का पालन करना...** यह घात नहीं करना और स्वभाव चिदानन्द का पालन करना। चिदानन्द आत्मा का पालन / रक्षा करना, उसका नाम दया है। ताराचन्दजी! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान किसका ज्ञान करते होंगे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। अपनी परिणति का ज्ञान और आनन्द वेदते हैं।

मुमुक्षु : सिद्ध भगवान के ज्ञान का विषय क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान का विषय स्वयं अपना है उन्हें। परप्रकाशक है कहाँ वह? स्वपरप्रकाशक वह आत्मज्ञ पर्याय अपनी है। पर के कारण परप्रकाशक है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वपरप्रकाशक तो स्व की पर्याय है, वह आत्मज्ञ पर्याय है। परप्रकाशक अर्थात् पर को प्रकाशित करती है, ऐसा नहीं अन्दर। आहाहा! स्व और पर सम्बन्धी का अपना ज्ञान जो विकासरूप प्राप्त हुआ है, उसे यहाँ आत्मज्ञ कहा जाता है, व्यवहार से उसे सर्वज्ञ कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई! वीतरागमार्ग बहुत दुर्लभ है, प्रभु! यह दया का पूछा तो दया की व्याख्या ऐसी। संस्कृत, संस्कृत है। आत्मावलोकन, दीपचन्दजी कृत।

'**यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति**' आहाहा! शुभभाव से भी आत्मा का घात न करे, उसे दया कहा जाता है। कहो, शान्तिभाई! 'दया वह सुख की वेलड़ी, दया वह सुख की खान, अनन्त जीव मुक्ति गये, दया तणो (फल जान)...' ऐसा स्थानकवासी में बहुत बोलते हैं। बहुत बोलते हैं, खबर है न। (संवत्) १९८१ में हमारे गढडा चौमासा था। वहाँ घड़ी के पास यह पम्पलेट चिपका कर रखा था। 'दया वह

सुख की वेलडी...' बापू! यह दया कौन सी? आत्मा की दया। अर्थात्? जैसा वह पूर्णानन्द का नाथ जीवन्त टिकता तत्त्व है, उसे इस प्रकार से रखना, इसका नाम दया है। और उस प्रकार से न रखकर, राग से रहेगा और राग से लाभ होगा, तो उसके जीवन का जो पूर्ण स्वरूप है, उसका इसने घात किया। यह नहीं, यह राग है तो लाभ होता है, वह जीव की अस्ति की महत्ता जितनी है, उतनी का इसने नाश किया। वही हिंसा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु, ज्ञान का सागर परिपूर्ण स्वरूप जिसका है, उस प्रकार से जिसने दृष्टि में और स्थिरता में स्वीकार किया है तो उसने दया पालन की। अर्थात् है वैसा उसने रखा। आहाहा!

उसमें तप की व्याख्या है, हों! यह तप कहते हैं न? तप। **शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रुरूप परज्ञेयों को छोड़ना अथवा उनमें ममतारहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना, ऐसी तपस्या ही वह तप कहलाती है।** आहाहा! भाई! मार्ग प्रभु का... बापू! आहाहा! अनन्त बार मरण करके मर गया है। वह जब मरने का अवसर आवे, तब दबाव दबाव होता है अन्दर... आहाहा! यह हार्टफेलवाले को मूल क्या होता है? पसीना बहुत निकले अर्थात् रक्त जम जाता है। रक्त जम जाता है तो श्वास अटक जाती है और फिर... आहाहा!

एक को देखा था। (संवत्) १९७६ के वर्ष। ध्रांगध्रा (में) एक संघवी थे, संघवी। पहले (गाँव में) जाते ही। कोई जेठालाल संघवी थे, प्रायः। यह तो १९७६ की बात है। २४+३२=५६ वर्ष पहले की बात है। वहाँ गये, फिर उसे पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... खाट पर तो सुलाते नहीं थे। नीचे सुलाते थे। नीचे सुलावे तो बिस्तर में रह नहीं सकता था। वृद्ध व्यक्ति था। पचास-साठ वर्ष की उम्र होगी। १९७६ की बात है। महाराज! मांगलिक सुनाओ, परन्तु मांगलिक (कहाँ) सुने। बेचारे को इतनी पीड़ा, बिस्तर में से नीचे खिसक जाता। ऐसे से ऐसे, घाणी में पिले ऐसे। पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... अन्दर में से श्वास ले सके नहीं और ऐसे उलझन... उलझन का पार नहीं। आहाहा! बापू! यह उलझन किसकी है? यह शरीर की एकत्वबुद्धि की उलझन है। रोग की नहीं। आहाहा! भाई! इसकी भिन्नता करना अलौकिक बातें हैं। यह साधारण बात नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : थोड़ा सरल दिखाओ न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जो है, वैसा होगा, इसका नाम सरल। जो है, वैसा न हो, इसका नाम महँगा। कहो, देवानुप्रिया! आहाहा! अरे रे! यह तब मैंने उसे देखा था न! आहाहा! और एक देखा था, वढवाण में। वह कैसे कहलाये? दादभावाला। चुन्नीभाई। चुन्नीभाई का घर है, उसके इस ओर था। उसका कोई कुटुम्ब था। यह तो (संवत्) १९८२ की बात है। यह ध्रांगध्रा की बात १९७६ की है। वह भी सेठिया था। यह चुन्नीभाई के काका का पुत्र। उसका यह हुआ और गाँव में मैं था। महाराज का मांगलिक सुनना है। गये। परन्तु यह बेचारे ऐसे... सारा परिवार इकट्ठा हुआ। क्योंकि वह दर्द पड़ा है, और कदाचित् उड़ जायेगा। आहाहा! अरेरे! ऐसी पीड़ा में तू पीड़ित हो गया, प्रभु! तेरी दया तुझे कहाँ रही? आहाहा!

जिसने शरीर और राग से भिन्न अपना पूर्णानन्दस्वरूप है, उसे उस प्रकार से स्वीकार किया तो वह जीव की दया कहलाती है। जीव को जीवित रखना, वह दया। मार डालना... ऐसा इसके जैसा है, वैसा रखना। अपूर्ण और विकार, वह मैं नहीं, मैं तो पूर्णानन्दस्वरूप हूँ। आहाहा! दृष्टि में और वीतरागता की स्थिरता में पूर्ण स्वरूप का जो आश्रय और अवलम्बन है, आहाहा! वह दया है। जीव की अपनी दया है, बापू! आहाहा! पर की दया कौन पाल सकता है? वह तो बन्ध अधिकार में कहा नहीं? मैं पर को जिलाऊँ, तो बापू! तू तेरा आयुष्य उसे दे सकता है कि उसे जिला सके? तेरा आयुष्य उसे देता है कुछ? उसके आयुष्य प्रमाण जीता है। उसमें तू उसे आयुष्य देता है कि उसे जिला दूँ? आहाहा! और उसे मार डालूँ तो उसका आयुष्य तू तोड़ सकता है? आहाहा! तेरी भ्रमणा है कि इसे जिलाऊँ और इसे मारूँ। प्रभु! तू भ्रमणा में भगवान भूला है यह। आहाहा! भ्रमणा में भगवान की गली यह भूल गया। शेरी समझते हो? गली। गली कहते हैं न? आहाहा! भ्रमणा छोड़कर भगवानस्वरूप भगवान आत्मा स्वरूप है, वहाँ जाना चाहिए, उसके बदले यहाँ भ्रमा। ऐसी बातें हैं, भगवान! आहाहा! लोगों से तो पागल जैसा लगे व्यक्ति, हों! सब पण्डित बड़ी बातें करे। आहाहा! संस्कृत और व्याकरण और कथा... उसमें और वह वाजिंत्र हो। क्या कहलाता है उसके साथ गाने का? या यह हो और या ऐसा हो। यह गायन इकट्ठा करते हों न... आहाहा! कथा करते हों, इसलिए लोगों को... आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! एक बार सुन न! ऐसी कथा सुनने में भी तुझे राग है। अरे! तीन लोक के नाथ की कथा सुनना, वह भी राग है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि, आहाहा! जिसे अपने शरीर और पर के शरीर पर, शुभ-अशुभ पर राग-द्वेष है ही नहीं। जिसे ऐसा नहीं, (उसने) **निजस्वभाव देह से भिन्न जान लिया है।** आहाहा! उसने देह से भिन्न जीव को जाना है। आहाहा! समझ में आया? **जिसने निजस्वभाव देह से भिन्न जान लिया है।** उसे समभाव होता है, ऐसा कहते हैं। समभाव में इसने देह से भिन्न चैतन्य को जाना है। आहाहा! समझ में आया? अकेली बातें करके या धारणा करके नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देह से भिन्न भगवान को समभाव में रहकर जाना है। आहाहा! निर्विकल्प समभाव में रहा है, उसने देह से भिन्न को जाना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बाकी देह से भिन्न ऐसी बातें करे और जानने में, धारणा में रखे और कहता है कि यह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : कुछ तो फायदा होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी फायदा नहीं उसमें। पुण्यबन्ध होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें साहेब! चौथा गुणस्थान ही नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथा आ गया पहले, इसके ऊपर का आया। यह तो पहले कहा था। चौथे में समभाव का अंश तो पहले आया है, परन्तु उसमें विकल्प जितने उठते हैं, वह बन्ध का कारण है। उसे छुड़ाकर मुनि को भी जितने विकल्प उठें, वह बन्ध का कारण है। शास्त्र पढ़ना, वाँचना... यह तो पहले कल आ गया है। शास्त्र पढ़ना, पढ़ाना, वह भी विकल्प है। आहाहा! यहाँ तो वीतरागता का वर्णन है, उसमें दूसरी बात क्या आवे? यह तो गाथा आ गयी न, इसके पहले। पढ़ना और पढ़ाना यह, ४८-४८, ४८ गाथा। '**भणइ भणावह णवि थुणइ णदिह**' जो पढ़ावे नहीं, पढ़े नहीं, भगवान की स्तुति करे नहीं, तथा यह झूठा है, ऐसी निन्दा भी न करे। वह तो समभाव में वर्तता है। आहाहा! यह मार्ग झूठा है और यह मार्ग सत्य है, उसमें भी विकल्प का अंश है, वह चारित्रदोष है। आहाहा! वह विकल्प का समभाव नहीं और वह विषमभाव है, ऐसा बतलाकर उसे छोड़कर समभाव में रहे, उसने आत्मा को देह से भिन्न जाना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने अन्दर प्रयोग करके देह से भिन्न जाना है। समझ में आया?

आहाहा! वह हार्ट के समय तुमको वहाँ नहीं खबर पड़ी होगी? अन्दर पीड़ा होती होगी? थोड़ी बहुत होगी, छोटा होगा।

मुमुक्षु : यह तब तो स्वसंवेदन था। (वह दुःख का था या सुख का था स्वसंवेदन) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके ऊपर लक्ष्य रहे, वह तो द्वेष का वेदन है। स्वसंवेदन कहाँ आया वहाँ? स्वसंवेदन तो वीतरागभाव हो, वह स्वसंवेदन है।

मुमुक्षु : दुःख में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दुःख है, वह स्वयं ही विषमभाव का वेदन है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! यह देह से अत्यन्त भिन्न चौसला भिन्न है। आहाहा! समभाव द्वारा जिसने भिन्न जाना है। अकेले जानपने द्वारा भिन्न जाना है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसने अन्दर में राग से भिन्न प्रयोग करके जिसने भगवान को भिन्न जाना है... आहाहा! उसने उस भाव में देह से भिन्न जाना कहलाता है। आहाहा! टीका में कहेंगे, देखो! ५१ है न?

भावार्थ :- इन इन्द्रियों से सुख उत्पन्न हुआ है, वह दुःखरूप ही है। आहाहा! है? **देह तो जड़ है, आत्मा चैतन्य है। जड़-चैतन्य का क्या सम्बन्ध?** भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति आनन्द का नाथ भगवान, यह देह तो जड़-मिट्टी है। आहाहा! दोनों को क्या सम्बन्ध है? सूर्य और अन्धकार को क्या सम्बन्ध है? प्रकाश और अन्धकार को क्या सम्बन्ध है? आहाहा! इसी प्रकार भगवान चैतन्यस्वरूप और शरीर अन्धकार जड़स्वरूप, दोनों को क्या सम्बन्ध है? आहाहा! यह तो वीतराग की वाणी है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : कथंचित् भिन्न है, ऐसा ले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् भिन्न है, यह तो अज्ञान है। सर्वथा भिन्न है, यह ज्ञान है। कथंचित् भिन्न (कहा तो) कथंचित् अभिन्न हो गया। कहाँ जड़, यह तो परमाणु मिट्टी और भगवान चैतन्यस्वरूप सच्चिदानन्द! इसकी इसे खबर नहीं कि मैं आत्मा इतना हूँ। एक समय की पर्याय की अवस्था में अनादि की लीनता। अनादि की। जैन दिगम्बर साधु हुआ परन्तु एक समय की पर्याय में सब लीनता। राग की मन्दता और राग की तीव्रता का त्याग और यह चलता नहीं और यह चलता है, यह सब एक समय की

पर्याय में क्रीड़ा, परन्तु पर्याय के पीछे भगवान पूर्णानन्द वस्तु है। पर्याय तो एक समय की अवस्था है, वह तो पलटती अवस्था है। पलटती के पीछे नहीं पलटता ऐसा ध्रुव तत्त्व भगवान है या नहीं आत्मा? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भगवान! बापू! लोगों को...

मुमुक्षु : पर्याय बिना का द्रव्य कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय बिना का ही द्रव्य है। ऐसा ही है। पर्याय में द्रव्य आता नहीं। पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आता है। क्या कहा? द्रव्य नहीं आता। पर्याय में द्रव्य का ज्ञान आता है। (यह) पर्याय है। जितना है, उतना ज्ञान आता है। पर्याय में, द्रव्य जितना है, उसकी श्रद्धा आती है, द्रव्य नहीं आता। एक पर्याय में द्रव्य आता नहीं। द्रव्य आवे तो द्रव्य और पर्याय एक हो जाये। जितना जैसा स्वरूप है, वैसा ही यहाँ ज्ञान आता है। आहाहा! और जितना उसका स्वरूप है, पूर्णानन्द वीतराग अनन्त गुण का कन्द आतम, ऐसा ही उसे पर्याय की श्रद्धा में पूरी श्रद्धा आती है, वस्तु नहीं आती। आहाहा!

मुमुक्षु : परिणाम द्रव्य का आश्रय लेते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का आश्रय है, तथापि उस द्रव्य के आश्रय का अर्थ? लक्ष्य वहाँ किया अर्थात? उस ओर लक्ष्य किया है परन्तु वह द्रव्य इसमें आया नहीं। तथा पर्याय द्रव्य में गयी नहीं।

मुमुक्षु : लक्ष्य और आलम्बन एक ही बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही बात है। यह सब उस ओर जाये। उसका लक्ष्य और आलम्बन। आहाहा!

एक समय की पर्याय पलटती अवस्था में भगवान जानने में आया, उसका जितना सामर्थ्य है, उतना सब ज्ञान पर्याय में आया, परन्तु पर्याय में द्रव्य आया नहीं, द्रव्य में पर्याय गयी नहीं। आहाहा! द्रव्य से पर्याय भिन्न रहकर द्रव्य का पूर्ण ज्ञान किया, प्रभु! ऐसा मार्ग है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीनों स्वतन्त्र हैं। उत्पाद के कारण उत्पाद, ध्रुव के कारण

उत्पाद नहीं, पर्याय के कारण ध्रुव नहीं। वह तो बात यहाँ बहुत हो गयी है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव एक समय में तीन, तथापि उत्पाद के कारण ध्रुव नहीं और ध्रुव के कारण उत्पाद नहीं, व्यय के कारण उत्पाद नहीं और उत्पाद के कारण व्यय नहीं। तीनों सत् अहेतुक स्वतन्त्र सिद्ध है। आहाहा! उत्पाद पर्याय का सम्यग्दर्शन में उसकी पूर्णता की प्रतीति आवे, पर्याय में, परन्तु पूर्ण वस्तु यहाँ नहीं आती और वह पूर्ण वस्तु ध्रुव है, इसलिए उत्पाद हुआ है, ऐसा भी नहीं है। ऐसी बात है, इसलिए लोगों को, पण्डितों को कठिन पड़ती है।

मुमुक्षु : सुख का भोग कौन करेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ करे, कौन करे? अज्ञान करे, वह जड़ है। आहाहा! राग के संसार के सुख का भोग कौन करे? अज्ञान करे। आत्मा के आनन्द का भोग पर्याय करे, परन्तु पर्याय में द्रव्य आता नहीं और अनुभव करे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग, बापू! वीतराग का ऐसा मार्ग है अभी तो। अभी तो चोर कोतवाल को दण्डे, ऐसा कर डाला है। सत्य मुश्किल बाहर आया। वहाँ कहे—नहीं, नहीं। यह नियत है, नियतपंथ है। आया है अभी। सोनगढ़ का नियत पंथ है। क्योंकि जिस समय की जो पर्याय जिस क्षण में होनेवाली है, वह होगी और निमित्त से नहीं होता, यह नियत है। प्रभु! ऐसा ही है। सुन न! जिस समय में जो... यह तो कहा न १०२ गाथा में, निजक्षण है। वह पर्याय की उत्पत्ति का काल है। आहाहा! उस काल का जानना, परन्तु तात्पर्य क्या? स्व का आश्रय करना, वह उसका तात्पर्य है, पर्याय में खड़े रहना वह नहीं। पर्याय उस समय में वही होनेवाली, वह हुई, वह तो ऐसा ही है। निमित्त से होती नहीं। निमित्त हो, निमित्त से होती नहीं। व्यवहार हो; निश्चय, व्यवहार से होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें साहेब! पुरुषार्थ नहीं आया, काललब्धि आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ इसमें आया, काललब्धि आयी और भवितव्यता आयी और स्वभाव आया, निमित्त का अभाव आया—पाँचों आ गये। आहाहा! यह तो सब अभी यह बहुत चलता है। पण्डितों में जरा खलबलाहट करने लगे हैं न! आहाहा! उसे न बैठा हो, उसे अपमान होता है न! अपमान हुआ है उसे। एक तो सम्यग्ज्ञान दीपिका

से अपमान हुआ। सम्यग्ज्ञान दीपिका जैन दिगम्बर का ग्रंथ और यहाँ के नाम से चढ़ा डाला और बहुत निन्दा की। व्यभिचारी पंथ है, देखो यह सम्यग्ज्ञान दीपिका में लिखा है। उनकी ओर से प्रकाशित हुआ है। परन्तु वस्तु किसकी है?

मुमुक्षु : जिसने छपाई उसकी।

पूज्य गुरुदेवश्री : छपाई उसकी? ८७ वर्ष पहले की छपाई हुई है वह तो। आहाहा! हमारे जन्म से पहले की यह तो छपाई हुई है। ५४ वर्ष पहले (संवत्) १९७८ के वर्ष में वाँचन में आयी। १९७८। सम्यग्ज्ञान दीपिका। छपाई थी ८७ वर्ष पहले। आज से, हों! फिर वाँचन में आयी १९७८ में। ५४ वर्ष हुए। अब यह सम्यग्ज्ञान दीपिका सोनगढ़ के नाम से चढ़ायी (कहते हैं कि) देखो! यह व्यभिचार स्थापित किया है। भाई! इन्होंने व्यभिचार स्थापित किया नहीं और यह सोनगढ़ की है नहीं। यह क्या करते हो तुम यह? आहाहा! अरे! यहाँ नहीं चले कुदरत के नियम में। आहाहा! अब यह नहीं रास आया उसमें और इन सेठियाओं ने सब इकट्ठे होकर अपमान किया। जिस किसी ने इस शास्त्र को पानी में डुबोया है, वे सब नरक, निगोद में जायेंगे, अनन्त संसार बढ़ाया। अब वे सेठिया इस ओर आये। अब उन्हें चारों ओर से अपमान हो गया। इसलिए अब एकदम साधु को इकट्ठा करके करेंगे कि यह लोग देव-गुरु-शास्त्र को मानते नहीं। देव को भी पानी में डुबोते हैं। पद्मावती को डालते हैं न कितने ही! हमने तो भाई कुछ कहा नहीं। हम तो तत्त्व की बात करते हैं। गुरु को मानते नहीं, जो चरणानुयोग के आचरण करनेवाले... यह कल आया है। चार अनुयोग को मानते नहीं, शास्त्र को मानते नहीं। चार को मानते नहीं। एक द्रव्यानुयोग को मानते हैं, इसलिए शास्त्र को मानते नहीं। जाओ! ऐई! धन्नालालजी! स्वतन्त्र है। उसे विचार आवे वह। भले चाहे जिस प्रकार से। अपमान होता हो उसके लिये परन्तु जो आवे, वह कहे न वह तो बेचारा। बापू! बहुत अन्तर है, भाई! बहुत अन्तर है, भगवान! दुनिया भले मानेगी, बापू! उसके परिणाम कठोर हैं, भाई! आहाहा! यह परिणाम के फल, बापू! अभी दुनिया माने। हा...हो... (करे) परन्तु परिणाम कठोर हैं, भाई! आहाहा! हँसते बाँधे कर्म, वे रोये नहीं छूटे, प्रभु! आहाहा! आता है, क्या कहलाता है? सज्झाय आती है। सज्झायमाला है न

चार? वह वांची थी। तब दुकान पर वांची थी। 'हंसता रे बांध्या कर्म, ऐ रोता न छूटे प्राणिया जी...' चार सज्झाय (माला) आती है। एक-एक सज्झायमाला में २००-२५० सज्झाय आती हैं। ऐसी चार हैं। चारों दुकान पर वांची थी। तब (संवत्) १९६४-६५-६६ की बात है। १९७० में दीक्षा ली, उसके पहले की बात है। घर की दुकान थी न! पिताजी की दुकान थी। घर की स्वतन्त्र। पिताजी गुजर गये, फिर पाँच वर्ष चलायी थी। निवृत्ति से यह सब वाँचते थे। आहाहा! 'होंशथी बांध्या कर्म, अे रोतां न छूटे प्राणीया...' प्रभु! तेरा रोना होगा तो भी। आहाहा! बाहर की अनुकूलता में इसे लगे मानो मैं फावुं हूँ। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **जो इन्द्रियों से सुख प्राप्त होता है, वह दुःखरूप है...** लो। यह सुख की कल्पना होकर कि शरीर ठीक है और शरीर ठीक नहीं, यह सब कल्पना सुख-दुःख की है। आहाहा! निरोग शरीर, रूपवान शरीर और यह अन्दर... आहाहा! स्त्री जवान, पुत्र जवान हुए हों, चालीस वर्ष की उम्र स्त्री की और स्वयं की हो और लड़का बीस वर्ष हुआ विवाह करके और मानो जमे हम तो। अरे! भगवान! बापू! क्या करता है तू? भाई! यह सुख, वह दुःख है। वह सब सुख की कल्पना हुई। हम सुखी हैं। पैसे टके से, कुटुम्ब से, पुत्र भी सब आज्ञाकारी हैं, बहू भी अच्छे घर की आयी है। परन्तु क्या है प्रभु तुझे? आहाहा! इन्द्रिय के सुख, वे दुःखरूप हैं। प्रवचनसार में कहा है। है?

इसका तात्पर्य ऐसा है कि जो इन्द्रियों से सुख प्राप्त होता है, वह (सुख) दुःखरूप ही है... आहाहा! कोई प्रशंसा करेगा, तेरी महिमा करेगा, पैसे की, तेरी इज्जत की, तेरी स्त्री की, पुत्र की... आहाहा! वह वस्तु परवस्तु है। **क्योंकि वह सुख परवस्तु है, निजवस्तु नहीं है,...** आहाहा! वह कल्पना परवस्तु है, दुःख है। **निजवस्तु नहीं है,...** अनुकूलता में लोग प्रशंसा करे, वह सुख नहीं, वह दुःख है, भाई! तुझे खबर नहीं। प्रभु! तू समभाव में से हट गया है। इसलिए, तुझे इन्द्रियों के विषयों में अनुकूलता में ठीक लगता है, वह दुःख है।

मुमुक्षु : प्रवचनसार में सुखाभास कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुखाभास का अर्थ सुख नहीं। तो वह तो यह का यह हुआ न! सुख नहीं। माना हुआ अज्ञानी ने सुख, वह दुःख है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रशंसा में कहाँ दुःख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रशंसा में वह प्रसन्न होता है, वह दुःख है। राग हुआ न। आहाहा! महिमा की, तुम ऐसे, तुम ऐसे, तुम कर्मी जगी, तुम होशियार जगे, तुम्हारी दस पेढ़ी में इतने पैसे नहीं थे, उतने तुम्हारे हुए। तुम्हारे इज्जत दस पेढ़ी में ऐसी नहीं थी, ऐसी तो तुम्हारी इज्जत जम गयी है। परन्तु उसमें तुझे क्या? आहाहा!

बाधासहित है... इन्द्रिय की अनुकूलता के बाहर के सुख विघ्नवाले हैं। किस क्षण विघ्न आवे... आहाहा! वहाँ नहीं हुआ था? बिहार में। बड़ा करोड़पति। थोड़े पैसे होंगे। दस हजार या बीस हजार। घूमने गये थे। जहाँ भूकम्प आवे, वहाँ सब समाप्त हो गया। बिहार में। एकदम वह हुआ। मकान, स्त्री, पुत्र सब जमीन में घुस गये। समाप्त हो गया। स्वयं घूमने गया था। फिर वहाँ जामनगर आया था। वहाँ भी भाषण करते-करते मर गया। उसका एक विनय का धर्म है न? सबको चरणवन्दन करे, ऐसा वहाँ एक धर्म है। जामनगर में सबको चरण छूए, कुत्ते को, गधे को सबको। ऐसा एक (धर्म) जामनगर में है। वहाँ आया था। .... आता है। करोड़ों रुपये समाप्त हो गये। पाँच, दस हजार रुपये उसके पास साथ में होंगे। कुछ चाँदी का रह गया। बाकी सब परिवार, स्त्री, पुत्र सब... क्या कहलाता है यह? भूकम्प। सब समा गया। हो गया। आहाहा! यह विघ्नवाले (सुख हैं), बापू! ऐसा कहते हैं। करोड़पति, हों! क्षण में भिखारी... भिखारी... भिखारी... आहाहा! यह बाधासहित है, ऐसा कहते हैं।

निराबाध नहीं है,... उसे विघ्न नहीं आवे, ऐसी चीज़ नहीं है, वह तो विघ्नवाली चीज़ है। आहाहा! **नाश के लिये हुए हैं,...** आहाहा! यह बाहर के साधन, सुख की कल्पना, सब नाश के लिये है। **जिसका नाश हो जाता है, बन्ध का कारण है,...** आहाहा! अनुकूलता की प्रसन्नता जो सुख है, वह बन्ध का कारण है, नये पाप बँधते हैं। आहाहा! **और विषम है।** है न? विषम अर्थात् राग है। वहाँ समभाव नहीं है, विषमता है। **इसलिए इन्द्रिय सुख दुःखरूप ही है, ऐसा इस गाथा में जिसका लक्षण कहा गया है, ऐसे**

देहजनित सुख को... देहजनित सुख को, मन, वचन, काय,... सब इन्होंने नहीं डाला। अन्दर में तो यह डाला है। **'द्दष्टश्रुतानुभूतं यद्देहजनितसुखं'** ऐसा है न? अन्दर है। **'द्दष्टश्रुतानुभूतं यद्देहजनितसुखं तज्जगत्रये कालत्रयेऽपि'** ऐसा लिया है। इतना अन्दर नहीं डाला। तीन काल और तीन लोक में से हट जाना। आहाहा!

मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदन से छोड़े। ऐसी सुख की कल्पना तीन काल, तीन लोक में से छोड़ दे। आहाहा! यहाँ नहीं परन्तु भविष्य में स्वर्ग में जाऊँगा, वहाँ तो ठीक मिलेगा न! धूल भी नहीं वहाँ, सुन न! वहाँ भी दुःख का सरदार है। आहाहा! **वीतरागनिर्विकल्पसमाधि के बल से।** लो! है यह अन्दर। आहाहा! अन्तर में रागरहित वीतरागीदशा प्रगट करके, निर्विकल्प समाधि शान्ति निर्विकल्प शान्ति। आहाहा! उसके बल से **आकुलतारहित परमसुख निज परमात्मा में स्थित होकर... निज परमात्मा में स्थित होकर जो महामुनि देह से भिन्न अपने शुद्धात्मा को जानता है,...** भाषा देखो! देह से भिन्न है, देह से भिन्न है—ऐसा नहीं। निज परमात्मा में स्थित होकर। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में स्थिर होकर, अन्दर जाकर। आहाहा! **महामुनि देह से भिन्न अपने शुद्धात्मा को जानता है,...** वह देह से भिन्न अपने आत्मा को जानता है। आहाहा! समझ में आया?

वही देह के ऊपर राग-द्वेष नहीं करता। जो सब तरह देह से निर्ममत्व होकर देह से सुख को नहीं अनुभवता, उसी के लिये यह व्याख्यान शोभा देता है,... आहाहा! परमात्मस्वरूप में रहकर देह की ममता छोड़ता है, उसकी स्थिरता करके, उसे यह व्याख्यान शोभता है। देह की ममतावाले को नहीं। है न? **और देहात्मबुद्धिवालों को नहीं शोभता,...** देह की जिसे बुद्धि है, यह देह, यह देह मेरी... आहाहा! उसे यह व्याख्यान शोभा नहीं देता। उसे यह व्याख्यान समझ में नहीं आयेगा और व्याख्यान का सार उसे शोभा नहीं देगा। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५२

अथ -

१७६) वित्ति-णिवित्तिहिं परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
बंधहँ हेउ वियाणियउ एयहँ जेण सहाउ।।५२।।

वृत्तिनिवृत्त्योः परममुनिः द्वेषमपि करोति न रागम्।
बन्धस्य हेतुः विज्ञातः एतयोः येन स्वभावः।।५२।।

वित्तिणिवित्तिहिं इत्यादि। वित्ति-णिवित्तिहिं वृत्तिनिवृत्तिविषये व्रताव्रतविषये परम-मुणि परममुनिः देसु वि करइ ण राउ द्वेषमपि न करोति न च रागम्। येन किं कृतम्। बंधहं हेउ वियाणियउ बन्धस्य हेतुर्विज्ञातः। कोऽसौ। एयहं जेण सहाउ एतयोर्व्रताव्रतयोः स्वभावो येन विज्ञात इति। अथवा पाठान्तरम्। 'भिण्णउ जेण वियाणियउ एयहं अप्पसहाउ' भिन्नो येन विज्ञानः। कोऽसौ। आत्मस्वभावः। काभ्याम्। एताभ्यां व्रताव्रतविकल्पाभ्यां सकाशदिति। तथाहि। येन व्रताव्रतविकल्पौ पुण्यपापबन्धकारणभूतौ विज्ञातौ स शुद्धात्मनि स्थितः सन् व्रतविषये रागं न करोति तथा चाव्रतविषये द्वेषं न करोतीति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। हे भगवन् यदि व्रतस्योपरि रागतात्पर्यं नास्ति तर्हि व्रतं निषिद्धमिति। भगवानाह। व्रतं कोऽर्थः। सर्वनिवृत्तिपरिणामः। तथा चोक्तम् - 'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यः विरतिर्व्रतम्' अथवा। 'रागद्वेषौ प्रवृत्तिः स्यान्निवृत्तिस्तन्निषेधनम्। तौ च बाह्यार्थसंबन्धौ तस्मात्तांस्तु परित्यजेत्।।' प्रसिद्धं पुनरहिंसादिव्रतं एकदेशेन व्यवहारेणेति। कथमेकदेशव्रतमिति चेत्। तथाहि। जीवघाते निवृत्तिर्जीवदयाविषये प्रवृत्तिः, असत्यवचनविषये निवृत्तिः सत्यवचनविषये प्रवृत्तिः, अदत्तादानविषये निवृत्तिः दत्तादानविषये प्रवृत्तिरित्यादिरूपेणैकदेशं व्रतम्। रागद्वेषरूपसंकल्प-विकल्पकल्लोलमालारहिते त्रिगुप्तिगुप्तपरमसमाधौ पुनः शुभाशुभत्यागात्परिपूर्णं व्रतं भवतीति। कश्चिदाह। व्रतेन किं प्रयोजनमात्मभावनया मोक्षो भविष्यति। भरतेश्वरेण किं व्रतं कृतम्, घटिकाद्वयेन मोक्षं गतः इति। अथ परिहारमाह। भरतेश्वरऽपि पूर्वं जिनदीक्षाप्रस्तावे लोचानन्तरं हिंसादिनिवृत्तिरूपं महाव्रतविकल्पं कृत्वान्तर्मुहूर्ते गते सति दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदान-बन्धादिविकल्परहिते मनोवचनकायनिरोधलक्षणे निजशुद्धात्मध्याने स्थित्वा पश्चान्निर्विकल्पो जातः। परं किंतु तस्य स्तोककालत्वान्महाव्रतप्रसिद्धिर्नास्ति। अथेदं मतं वयमपि तथा कुर्मोऽवसानकाले। नैवं वक्तव्यम्। यद्येकस्यान्धस्य कथंचिन्निधानलाभो जातस्तर्हि किं सर्वेषां भवतीति भावार्थः। तथा चोक्तम् - 'पुव्वमभाविदयोगो मरणे आराहओ जदि वि कोई। खन्नगनिधिदिट्ठंतं तं खु पमाणं ण सव्वत्थ ।।'।।५२।।

एवं मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गप्रतिपादकमहाधिकारमध्ये परमोपशमभावव्याख्यानोपलक्षणत्वेन चतुर्दशसूत्रैः [१]स्थलं समाप्तम्।

आगे प्रवृत्ति और निवृत्ति में भी महामुनि राग-द्वेष नहीं करता, ऐसा कहते हैं -

जिसने दोनों के स्वभाव को बन्धन-कारण जान लिया।
वह प्रवृत्ति अरु निवृत्ति में राग-द्वेष नहीं करता।।५२।।

अन्वयार्थ :- [परममुनि] महामुनि [वृत्तिनिवृत्त्योः] प्रवृत्ति और निवृत्ति में [रागम् अपि द्वेषम्] राग और द्वेष को [न करोति] नहीं करता, [येन] जिसने [एतयोः] इन दोनों का [स्वभावः] स्वभाव [बंधस्य हेतुः] कर्मबंध का कारण [विज्ञातः] जान लिया है।

भावार्थ :- व्रत-अव्रत में परममुनि राग-द्वेष नहीं करता जिसने इन दोनों का स्वभाव बंध का कारण जान लिया है। अथवा पाठांतर होने से ऐसा अर्थ होता है, कि जिसने आत्मा का स्वभाव भिन्न जान लिया है। अपना स्वभाव प्रवृत्ति-निवृत्ति से रहित है। जहाँ व्रत-अव्रत का विकल्प नहीं है। ये व्रत, अव्रत, पुण्य, पापरूप बंध के कारण हैं। ऐसा जिसने जान लिया, वह आत्मा में तल्लीन हुआ व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता। ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट ने पूछा, हे भगवन्, जो व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे? ऐसे कथन में व्रत का निषेध होता है। तब योगीन्द्राचार्य कहते हैं, कि व्रत का अर्थ यह है, कि सब शुभ-अशुभ भावों से निवृत्ति परिणाम होना। ऐसा ही अन्य ग्रंथों में भी 'रागद्वेषौ' इत्यादि से कहा है। अर्थ यह है कि राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, तथा इनका निषेध वह निवृत्ति है। ये दोनों अपने नहीं हैं, अन्य पदार्थ के संबंध से हैं। इसलिये इन दोनों को छोड़े। अथवा 'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं' ऐसा कहा गया है। इसका अर्थ यह है, कि प्राणियों को पीड़ा देना, झूठ वचन बोलना, परधन हरना, कुशील का सेवन और परिग्रह इनसे जो विरक्त होना, वही व्रत है। ये अहिंसादि व्रत प्रसिद्ध हैं, वे व्यवहारनयकर एकदेशरूप व्रत हैं। यही दिखलाते हैं- जीवघात में निवृत्ति, जीवदया में प्रवृत्ति, असत्य वचन में निवृत्ति, सत्य वचन में प्रवृत्ति, अदत्तादान (चोरी) से निवृत्ति, अचौर्य में प्रवृत्ति इत्यादि स्वरूप से एकदेशव्रत कहा जाता है, और राग-द्वेषरूप संकल्प विकल्पों की कल्लोलों से रहित तीन गुप्ति से गुप्त समाधि में शुभाशुभ के त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है। अर्थात् अशुभ की निवृत्ति और शुभ की प्रवृत्तिरूप एकदेशव्रत और शुभ, अशुभ दोनों का ही त्याग होना वह पूर्ण

१. पाठान्तर : स्थलं = पंचमं स्थलं

व्रत है। इसलिये प्रथम अवस्था में व्रत का निषेध नहीं है एकदेश व्रत है, और पूर्ण अवस्था में सर्वदेश व्रत है। यहाँ पर कोई यदि प्रश्न करे, कि व्रत से क्या प्रयोजन? आत्मभावना से ही मोक्ष होता है। भरतजी महाराज ने क्या व्रत धारण किया था? वे तो दो घड़ी में ही केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये। इसका समाधान ऐसा है, कि भरतेश्वर ने पहले जिनदीक्षा धारण की, शिर के केशलुञ्चन किये, हिंसादि पापों की निवृत्तिरूप पाँच महाव्रत आदरे। फिर एक अंतर्मुहूर्त में समस्त विकल्प रहित मन, वचन, काय रोकनेरूप निज शुद्धात्मध्यान उसमें ठहरकर निर्विकल्प हुए। वे शुद्धात्मा का ध्यान, देखे, सुने और भोगे हुए भोगों की वाँछारूप निदान बन्धादि विकल्पों से रहित ऐसे ध्यान में तल्लीन होकर केवली हुए। जब राज छोड़ा, और मुनि हुए तभी केवली हुए, तब भरतेश्वर ने अंतर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त किया। इसलिये महाव्रत की प्रसिद्धि नहीं हुई। इस पर कोई मूर्ख ऐसा विचार लेवे, कि जैसा उनको हुआ वैसे हमको भी होवेगा। ऐसा विचार ठीक नहीं है। यदि किसी एक अंधे को किसी तरह से निधि का लाभ हुआ, तो क्या सभी को ऐसा हो सकता है? सबको नहीं होता। भरत सरीखे भरत ही हुए। इसलिये अन्य भव्यजीवों को यही योग्य है, कि तप संयम का साधन करना ही श्रेष्ठ है। ऐसा ही 'पुव्वं' इत्यादि गाथा से दूसरी जगह भी कहा है। अर्थ ऐसा है, कि जिसने पहले तो योग का अभ्यास नहीं किया, और मरण के समय भी जो कभी आराधक हो जावे, तो यह बात ऐसी जानना, कि जैसे किसी अंधे पुरुष को निधि का लाभ हुआ हो। ऐसी बात सब जगह प्रमाण नहीं हो सकती। कभी कहीं पर होवे तो होवे।।५२।।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष का फल, और मोक्ष के मार्ग के कहनेवाले दूसरे महाधिकार में परम उपशांतभाव के व्याख्यान की मुख्यता से अंतरस्थल में चौदह दोहे पूर्ण हुए।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ७, रविवार
दिनांक-१४-११-१९७६, गाथा-५२, प्रवचन-१३३

परमात्मप्रकाश। ५२ गाथा, ५२।

आगे प्रवृत्ति और निवृत्ति में भी महामुनि राग-द्वेष नहीं करता,... अव्रत की प्रवृत्ति में द्वेष नहीं करता, व्यवहार की व्रत की प्रवृत्ति में राग नहीं करता। व्रत-अव्रत दोनों विकल्प हैं, राग है। व्रत भी राग है और अव्रत भी राग है। अर्थात् प्रवृत्ति, शुभप्रवृत्ति

शुभराग की, निवृत्ति अशुभ की, दोनों में **महामुनि राग-द्वेष नहीं करता, ऐसा कहते हैं**— ५२ (गाथा)

१७६) वित्ति-णिवित्तिहिँ परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ।
बंधहँ हेउ वियाणियउ एयहँ जेण सहाउ।।५२।।

अन्वयार्थः—आहाहा! **महामुनि प्रवृत्ति और निवृत्ति में राग और द्वेष को नहीं करता,...** व्रत और अव्रत दोनों में राग-द्वेष नहीं करते। आहाहा! यह लोग कहते हैं, व्रत है वह साधन है। शुभराग साधन है, ऐसा। यह वस्तु अन्दर में बैठती नहीं तो क्या करे? भगवान आत्मा तो वीतराग ज्ञातास्वरूप है। उसमें व्रत के, अव्रत के दोनों विकल्प, उनसे निवृत्ति होकर अन्दर में स्थिर हो, इसका नाम निश्चय से तो व्रत कहा जाता है।

इन दोनों का स्वभाव... यहाँ क्या कहते हैं? व्रत और अव्रत का दोनों विकल्प बन्ध का कारण है। आहाहा! है? परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव स्वयं कहते हैं। '**बंधहँ हेउ वियाणियउ**' यह व्रत का भाव और अव्रत का भाव, दोनों बन्ध का कारण है—ऐसा जान। तब वहाँ और ऐसा कहे कि बन्ध का कारण है परन्तु वही मोक्ष का कारण है। ऐसा अर्थ करते हैं। पुरुषार्थसिद्धि उपाय का। यहाँ तो **कर्मबन्ध का कारण जान लिया है।** आहाहा! **जिसने इन दोनों का स्वभाव...** दोनों का स्वभाव, व्रत-अव्रत दोनों विकल्प है, राग है, दोनों का स्वभाव बन्ध का ही कारण है। आहाहा!

भावार्थ :- व्रत-अव्रत में परम मुनि राग-द्वेष नहीं करता... सम्यग्दर्शनसहित व्रत का विकल्प पाँचवें-छठवें में होता है और उसे अन्दर स्थिरता भी होती है। व्रत के कारण नहीं। आत्मा का आश्रय लेकर जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया है, उसने आत्मा का विशेष आश्रय लेकर शान्ति प्रगट की है, उसे यह व्रत का विकल्प होता है। उसे भी वह छोड़नेयोग्य है। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का लोगों को सूक्ष्म पड़ता है। फिर विरोध-विरोध (करते हैं)। आहाहा!

मुमुक्षु : ....तीनों काल में विरोध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल में विरोध ही है। ऐसा जगत को कहते हैं। आहाहा! ज्ञानी के अभिप्राय के साथ जगत का अभिप्राय मिलान खाये तो वह अभिप्राय

ही सच्चा नहीं। आनन्दघनजी कहते हैं। आनन्दघनजी (ने) चौबीसी बनायी है न? पहले प्रस्तावना में। क्योंकि दुनिया का अभिप्राय और ज्ञानी का अभिप्राय एकदम अलग है। यदि दोनों का मिलान खाये तो वह ज्ञानी का अभिप्राय ही सच्चा नहीं है। आहाहा! दूसरे के साथ मिलान कैसे खाये? आहाहा! देवीलालजी! आहाहा!

भावार्थ :- व्रत-अव्रत में परम मुनि राग-द्वेष नहीं करता... आहाहा! सम्यग्दृष्टिसहित को व्रत का विकल्प होता है। और चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शनसहित अव्रतभाव होता है। पाँचवें गुणस्थान में शान्ति की वृद्धि थोड़ी होकर बारह व्रत का विकल्प पाँचवें में होता है। विशेष शान्ति की वृद्धि होकर स्वद्रव्य के आश्रय से उसे छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत का विकल्प होता है परन्तु दोनों बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसा **जान लिया है।** है न? **जिसने इन दोनों का स्वभाव कर्मबन्ध का कारण...** पाठ में है। '**बंधहँ हेउ वियाणियउ एयहँ जेण सहाउ**' यह उसका स्वभाव ही ऐसा है। आहाहा! राग का विकल्प है, उसका स्वभाव ही बन्ध का कारण है।

अब यहाँ लोगों को विवाद उठता है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय का अर्थ ऐसा कर डालते हैं कि जो बन्ध है, वह मोक्ष का उपाय है। कहो, अब ऐसा डालते हैं, अर्थ करते हैं। टोडरमलजी ने अर्थ किया हो, वह मान्य न हो। टोडरमलजी को माने नहीं। टोडरमलजी ने तो वहाँ स्पष्ट अर्थ किया है। जो बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का उपाय है ही नहीं। ऐसा इस गाथा का अर्थ किया है। टीका है। यहाँ नहीं है। टोडरमलजी का है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय। अरे! परन्तु लोगों को अपनी दृष्टि से शास्त्रों के अर्थ खतौनी करके करना है, अरे! भगवान! बापू! यह तो वीतराग का मार्ग है न, प्रभु!

मुमुक्षु : शुभ के भाव में धर्म होता है, ऐसा मानते हैं। वे शास्त्र का अर्थ ऐसा ही करे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : मानते हैं। फिर मानते हैं, इसलिए अर्थ ऐसा करते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि दोनों... बनारसीदास को और उन्हें—टोडरमलजी को वे लोग नहीं मानते। यह कलशटीकाकार राजमलजी को (नहीं मानते)। क्योंकि राजमलजी की टीका में से समयसार नाटक बनाया है। और उन्होंने तो यहाँ तक लिखा है कि छठवें

गुणस्थान में जो प्रमाद है, उसमें विकल्प उठता है। वह जगपंथ है। आहाहा! स्वभाव से विरुद्ध विकल्प उठा, वह तो संसारपंथ है, जगपंथ है। वह जगपंथ वापस आत्मा के मोक्ष का कारण होगा? क्या हो?

अथवा पाठान्तर होने से ऐसा अर्थ होता है कि जिसने आत्मा का स्वभाव भिन्न जान लिया है। यह चला आता है न बहुत गाथाओं में? इसलिए अर्थ यह किया। जिसने आत्मा का स्वभाव वह पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है, ऐसा जाना है। व्रत का विकल्प और अव्रत का विकल्प, दोनों से भगवान आत्मा का स्वभाव भिन्न है। आहाहा! **जिसने आत्मा का स्वभाव भिन्न जान लिया है। अपना स्वभाव प्रवृत्ति-निवृत्ति से रहित है।** भगवान आत्मा का स्वभाव विकल्प की प्रवृत्ति और अशुभ की निवृत्ति से भिन्न है। आहाहा! उसका स्वभाव तो निर्विकल्प वीतरागस्वरूप है। ऐसा जिसने जान लिया है, वह पुण्य-पाप के विकल्प में नहीं रहता, अटकता नहीं। उसे वह मोक्ष का कारण नहीं मानता। आहाहा! ऐसा है।

जहाँ व्रत-अव्रत का विकल्प नहीं है। आहाहा! ऐसी निर्विकल्पदशा, वह मोक्ष का कारण है। व्रत, अव्रत का जहाँ विकल्प नहीं। आहाहा! है? सब गाथायें अच्छी आयी हैं। वे लोग रविवार को आते हैं न भावनगर से। आहाहा! भाव...नगर में जाना हो तो उसे व्रत के विकल्प छोड़ देना, ऐसा कहते हैं। आनन्दकन्द प्रभु अनन्त शान्ति और स्वभाव का सागर आत्मा, वह 'भाव...नगर' है। जिसके सिर पर कोई न-कर, कर नहीं। लो! यह भावनगर का आया। आहाहा! अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, अनन्त प्रभुता, ऐसे भाव से भरपूर, सिर पर अन्दर कोई कर नहीं। नगर-नकर। ऐसा जो भगवान आत्मा, वह तो पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न जान लिया है। आहाहा! क्योंकि उस व्रत के विकल्प में पर का आश्रय है और निर्विकल्प में स्व का आश्रय है। आहाहा! ऐसा स्वरूप। यह चलता नहीं था न, इसलिए परम्परा भी ऐसी (हो गयी कि) यह व्रत और तप करना, यह अपना धर्म है, यह छोड़ना नहीं, ऐसा। छोड़ना नहीं ऐसा। अर्थात् हो, परन्तु दृष्टि में से उसे छोड़ना पड़ेगा। आहाहा!

जिसे आत्मदर्शन करना है, अर्थात् कि जैसा आत्मा है, वैसा उसे प्रतीति-देखना

है तो उसे तो इस विकल्प से रहित हो तो देख सकेगा। क्योंकि वस्तु में यह विकल्प है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें! एक तो पूरे दिन पाप में पड़े हों, उसे ऐसा कहते हैं। भाई! तुम पाप में (भले पड़े हो) परन्तु वह प्रभु ऐसा नहीं है। पाप में रहे, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। और पुण्य में रहे, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। वह तो वीतरागभाव में रहे, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : मोक्ष का उपाय क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है यह?

मुमुक्षु : मोक्ष का उपाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय यह। व्रत—अव्रत के विकल्परहित निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि, ज्ञान और रमणता।

मुमुक्षु : इसके अतिरिक्त?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके अतिरिक्त दूसरा भटकने का मार्ग। बन्ध का मार्ग है। नहीं कहा अभी? व्रत और अव्रत, वह बन्ध का मार्ग है। कहा न अन्दर? आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

अपना स्वभाव प्रवृत्ति-निवृत्ति से रहित है। कहा न? **जहाँ व्रत-अव्रत का विकल्प नहीं है।** जहाँ व्रत और अव्रत का विकल्प-राग ही नहीं, ऐसा ध्यान। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित व्रत-अव्रत का विकल्प नहीं, वहाँ अन्दर में स्थिरता जमी है। यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अब उसमें शास्त्र स्वयं पाठ कहता है, टीका कहती है। पाठ कहता है, देखो! **'वित्ति-णिवित्तिहिँ परम-मुणि देसु वि करइ ण राउ'** व्रत में राग न करे, अव्रत में द्वेष न करे अर्थात् विकल्प न हो, ऐसा। **'बंधहँ हेउ वियाणियउ'** यह बन्ध का हेतु जानकर **'एयहँ जेण सहाउ'** यह बन्ध का स्वभाव अथवा बन्ध के स्वभाव से भगवान का स्वभाव भिन्न है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। इसे अभी उसका पक्ष करना रुचता नहीं। आहाहा! यही वस्तु है और यह मार्ग है। उसका पक्ष करना भी रुचता नहीं और राग का पक्ष करना रुचता है। आहाहा! बापू! वहाँ कोई सिफारिश काम आवे, ऐसा नहीं। वहाँ भगवान के मार्ग में। वीतराग मार्ग वहाँ है। आहाहा! अनन्त तीर्थंकर ऐसा

कहते हैं कि **'बंधहँ हेउ वियाणियउ'** पुण्य-पाप दोनों को बन्धरूप जान और उससे आत्मस्वभाव भिन्न जान। आहाहा! यह तो सत् है, बापू! ऐसी बात है। आहाहा!

व्रत, अव्रत, पुण्य, पापरूप बन्ध के कारण हैं। है इसमें? व्रत और अव्रत दोनों बन्ध का कारण है। अब बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का कारण होगा? कल आया था, मक्खनलालजी में। कल आया था। बन्ध का उपाय है, वही मोक्ष का भी उपाय है। अरे! प्रभु! ऐसा अर्थ किया है। उन्होंने स्वयं पुरुषार्थसिद्धि उपाय छपाया है न? मक्खनलालजी ने पुरुषार्थसिद्धि उपाय छपाया है। (संवत्) १९८२ के वर्ष में पूरा वाँचा है, १९८२। वढवाण में चातुर्मास था। आहाहा! उन्होंने छपाया है। पूरा इतना बड़ा है। यहाँ है। १९८२ के वर्ष वढवाण चातुर्मास (था)। कितने वर्ष हुए? ५१। तब पूरा वाँचा था। बाद में भी वाँचा है।

अरे! जीव क्या करता है? अपना बचाव अपनी दृष्टि से करके शास्त्रों के अर्थ भी ऐसे करता है। क्या करता है? आहाहा! जिसकी दृष्टि विपरीत है, वह पुण्य के विकल्प को साधन मानकर, वह भी मोक्ष का कारण है—ऐसा मानता है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि दोनों भाव से रहित आत्मस्वभाव है। और यह दो भाव हैं, वे बन्ध का कारण हैं। आहाहा! **पुण्य, पापरूप बन्ध के कारण हैं। ऐसा जिसने जान लिया, वह आत्मा में तल्लीन हुआ व्रत-अव्रत में राग-द्वेष नहीं करता।** आहाहा! ऐसा स्वरूप है, ऐसी पहले प्रतीति तो करे। वस्तु का स्वभाव ही ऐसा है कि व्रत-अव्रत के विकल्परहित स्वरूप में तल्लीन हो, वही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट ने पूछा,... प्रभाकर भट्ट शिष्य ने प्रश्न किया। **भगवन्, जो व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे?** मुनि को छठवें गुणस्थान में व्रत तो धारण करने पड़ते हैं, पाँच महाव्रत। समझ में आया? **व्रत पर राग नहीं करे, तो व्रत क्यों धारण करे? ऐसे कथन में व्रत का निषेध होता है।** आपके कथन में तो व्रत का निषेध होता है। ऐसा कथन हो तो व्रत धारण करे कौन? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। आहाहा! व्रत का निषेध करते हो तथा एक ओर व्रत को धारण करना, ऐसा शास्त्र में है। यह तो विरोध आया। ऐसा शिष्य का प्रश्न है।

तब योगीन्द्राचार्य कहते हैं... मुनि—योगीन्द्र मुनि हैं, इस ग्रन्थ के कर्ता। **कि व्रत का अर्थ यह है,...** अब सुनो! वास्तव में व्रत का अर्थ यह है... आहाहा! **कि सब शुभ-अशुभ भावों से निवृत्ति परिणाम होना।** आहाहा! ठीक! व्रत तो निश्चय से उसे कहते हैं कि शुभ और अशुभ परिणाम से निवृत्ति, उसका नाम व्रत है। आहाहा! शुभ-अशुभ बन्ध के कारण और शुभ-अशुभ आस्रव, उनसे रहित वीतरागभाव, वह व्रत का स्वरूप है। निश्चय से सर्वदेश व्रत वह है। समझ में आया? **शुभ-अशुभभावों से निवृत्ति परिणाम होना।** आहाहा!

जयधवल में तो यहाँ तक कहा है। अरे! मैंने तो निवृत्ति का प्रत्याख्यान किया था और यह महाव्रत के विकल्प आये तो मेरा प्रत्याख्यान तो टूट गया, ऐसा कहते हैं। यह जयधवल पहले भाग में आता है। आहाहा! मैंने तो निवृत्ति परिणाम का आदर लिया था, उसमें यह व्रत के परिणाम विकल्प है, यह तो निवृत्ति के परिणाम का नाश हुआ। आहाहा! इसलिए अन्त में संथारा के समय पुनः प्रत्याख्यान करते हैं। वह पहले किये थे, उसमें मुझे अन्तर पड़ा। आहाहा! इसलिए पुनः करते हैं। वीतरागपने का भाव, वह वस्तु की स्थिति है। आहाहा! व्रत का विकल्प आया, वह मेरी निवृत्ति के प्रत्याख्यान में भंग पड़ा। ऐसा वहाँ कहा है। आहाहा! वाणी तो देखो! दिगम्बर सन्तों की तीव्र वाणी।

मैंने मुनिपना लिया, तब तो मैंने निवृत्ति के परिणाम के ही प्रत्याख्यान किये थे। प्रत्याख्यान अर्थात् मुझे उसमें रहना। परन्तु यह विकल्प उठा महाव्रत का, वह तो मेरा प्रत्याख्यान भंग पड़ा। यह जयधवल में पाठ है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? मैंने तो वीतराग परिणाम में रहना, यह मैंने प्रत्याख्यान किया था। मुनि कहते हैं। सल्लेखना के समय। अन्त में सल्लेखना करते हैं न? समाधिमरण। वहाँ मैंने तो यह नियम लिया था और मुझे विकल्प आये, वह तो भंग हो गया। आहाहा! तो फिर मैं वीतरागपने का आदर करता हूँ। उसे लेकर मैं समाधिमरण करता हूँ। आहाहा! समाधिमरण है अन्तिम स्थिति। जयधवल में पाठ है।

यह व्याख्यान वाँचा था वहाँ, वीछिया। (संवत्) २००० के वर्ष। १९९९ का चातुर्मास हुआ था न, यहाँ राजकोट। वहाँ से वापस मुड़े २००० के वर्ष में। ३२ वर्ष

हुए। ३३ वर्ष। वीछिया में वह पुस्तक पहले-पहले हाथ में आयी। वीछिया में हाथ में आयी थी। वहाँ वाँचा था। इसका यह अर्थ। यह अर्थ वहाँ वाँचा था। ३२ वर्ष पहले वींछिया में यह अर्थ किया था। देखा! भाई! कहा, यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि मेरे प्रत्याख्यान तो वीतरागता में रहना, यह था। राग में आना, वह मेरा स्वरूप नहीं। अभी तक पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि विकल्प आये, वह मेरी वीतरागता में भंग पड़ा, मेरे प्रत्याख्यान में भंग पड़ा, ऐसा वहाँ कहते हैं। आहाहा! ऐसी वाणी तो देखो! आहाहा!

अब यह व्रत के परिणाम को—बन्ध के कारण को मोक्ष का कारण कहो तो तुम्हारा अनेकान्तवाद सच्चा, ऐसा (अज्ञानी) कहते हैं। बापू! यह तो वीतरागमार्ग है। वह वीतरागपना (सधता है)।

मुमुक्षु : देवसेनाचार्य ने कहा है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : गत कल वाँचने में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह मोक्ष का कारण नहीं (कहा), वह तो निमित्त का कथन है। निमित्त का ज्ञान (कराया)। कहीं होता नहीं। वीतरागी सन्तों में कहीं यह बात होती नहीं। उसे निमित्तरूप से गिनकर कहा हो। तो निमित्त है, वह कर्ता नहीं। आहाहा! क्या हो परन्तु अब?

यहाँ तो आचार्य यहाँ तक कहते हैं कि व्रत और अव्रत दोनों बन्ध के कारण हैं। वे बन्ध के कारण वे फिर मोक्ष के कारण होंगे?

मुमुक्षु : एक आचार्य ने ऐसा कहा, एक आचार्य ने ऐसा कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरे आचार्य कहते हैं, उनके आशय में अन्तर है। न्याय से विरुद्ध नहीं कहते। निमित्त से बात करते हैं। वह तो जैसे आप्तमीमांसा में नहीं? कि मोक्ष तो स्वयं से होता है परन्तु उसमें पुण्य निमित्त है। निमित्त है इसका अर्थ? संहनन होता है, मनुष्यपना होता है। यह निमित्त है इतना। परन्तु इससे यह होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आप्तमीमांसा में है। आहाहा! पुण्य है, उसे निमित्त कहा जाता है।

क्योंकि मनुष्यपना, संहनन, वीतराग की वाणी मिलना, वह सब पुण्य है। वह निमित्त है। परन्तु वह निमित्त किसे? जिसने अपने उपादान में कार्य किया है, उसे वह निमित्त कहा जाता है। निमित्त से कार्य होता है, वहाँ ऐसा नहीं है। वे सब व्यवहारनय के कथन हैं। आहाहा!

टोडरमलजी ने कहा है न कि व्यवहार क्या? कि जो वस्तु नहीं, अन्यथा है, उसे निमित्तादि की अपेक्षा से कारण कहा जाता है। आहाहा! वे टोडरमलजी को मानते नहीं अब तो। टोडरमल, बनारसीदास को माने नहीं। वे तो कहते थे न वहाँ? ललितपुर में। बनारसीदास, टोडरमल तो अध्यात्म की भाँग पीकर नाचे हैं। अध्यात्म की भाँग पी थी। अरे! भगवान! प्रभु! इसमें तुझे लाभ नहीं होगा नाथ। अरे! भगवान! तू यह क्या करता है?

मुमुक्षु : अध्यात्म की भाँग पी हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भी ऐसा कैसे माने? स्वयं, मानो हम सच्चे मार्ग में हैं, ऐसा मानते हैं। आत्मा है न! जिसमें जिसने माना उसरूप वह माने न? उसरूप आत्मा हो गया वह तो। इसलिए दूसरा कैसे माने? उस बेचारे को सुख की अभिलाषा तो है न? परन्तु उस रास्ते की खबर नहीं। आहाहा! अरे! जगत के पंथ। वीतरागमार्ग, जिस पंथ से शान्ति मिले, उसमें से हट जाना और उससे (राग से) लाभ मानना, प्रभु! नुकसान है, भाई! तेरे आत्मा को नुकसान है, बापू! आहाहा!

टोडरमलजी ने तो कहा है कि राग आता है, राग होता है, परन्तु श्रद्धा में, छोड़नेयोग्य है—ऐसा मानना। मोक्षमार्गप्रकाशक में है। आहाहा! व्रत का विकल्प भी छोड़नेयोग्य है। आहाहा! आयेगा, होता है, परन्तु वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा! उसके कारण अन्दर में जा सकता है, ऐसा नहीं। वह तो विकल्प है, राग है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। प्रभु है, भगवान है आत्मा। आत्मारूप से तो प्रभु है, वीतरागमूर्ति है, प्रत्येक (जीव) द्रव्यस्वभाव से तो साधर्मी है। पर्याय में भूल है, वह तो एक क्षणिक की है। आहाहा! उसे टालने में समर्थ है। आहाहा! उस भूल को टालेगा, तब एक क्षण में टालेगा। आहाहा! ऐसा उसका सामर्थ्य है न, प्रभु! आहाहा!

शुभ-अशुभभाव से निवृत्ति, इसका नाम व्रत के परिणाम कहा जाता है। है? आहाहा! **ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में भी इत्यादि से कहा है। अर्थ यह है कि राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियाँ हैं,...** देखो! यह व्रत और भक्ति के परिणाम, यह सब राग की प्रवृत्ति है। आहाहा! **तथा इनका निषेध, वह निवृत्ति है। राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियाँ हैं, तथा इनका निषेध, वह निवृत्ति है। ये दोनों अपने नहीं है,...** आहाहा! निषेध करना कि यह नहीं। वह भी आत्मा का नहीं। आहाहा! अथवा वह पुण्य और पाप दोनों अपने नहीं। प्रवृत्ति और निवृत्तिरहित। **अन्य पदार्थ के सम्बन्ध से हैं।** आहाहा! यह व्रत और अव्रत का विकल्प स्वपदार्थ के आश्रय से नहीं। आहाहा! व्रत का विकल्प भी परपदार्थ के आश्रय से है, सम्बन्ध से है। निश्चय से तो उसे पुद्गलपरिणाम कहा है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! इसके माननेवाले थोड़े ही होते हैं। इसे सुननेवाले थोड़े होते हैं। यह आया है न 'विरला जाने (तत्त्व को विरला) सुने कोई' सुननेवाले थोड़े होते हैं। यह तो पुण्य साथ में थोड़ा है, इसलिए जरा लोग सुनते हैं। अब जरा खलबलाहट हो गयी। होता है-होता है। जहाँ बात अन्दर बैठे नहीं, (वहाँ होता है)।

भगवान का मार्ग तो पुण्य-पाप के विकल्प से रहित है। यह कहा न? **अन्य पदार्थ के सम्बन्ध से हैं।** व्रत का विकल्प भी पर के लक्ष्य से हुआ है। आहाहा! यह कहेंगे, हों! **इसलिए इन दोनों को छोड़े।** व्रत और अव्रत दोनों विकल्प छोड़े। आहाहा! तब आत्मा की वीतरागता हो, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! **अथवा...** अब दूसरा स्पष्टीकरण करते हैं। **'हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्' इसका अर्थ यह है कि प्राणियों को पीड़ा देना, झूठ वचन बोलना, परधन हरना,...** चोरी, **कुशील का सेवन...** विषय। **और परिग्रह इनसे जो विरक्त होना, वही व्रत है।** इन पाँच से विरक्त होना, वह व्रत है। वह व्रत कैसा? **ये अहिंसादि व्रत प्रसिद्ध हैं,...** परन्तु **वे व्यवहारनयकर एकदेशरूप व्रत है।** आहाहा! समझ में आया? हिंसा से निवृत्ति और अहिंसा में प्रवृत्ति; झूठ में से निवृत्ति और सत्य में प्रवृत्ति; चोरी से निवृत्ति और अचौर्य में प्रवृत्ति; विषय से निवृत्ति और ब्रह्मचर्य में प्रवृत्ति, वह सब विकल्प है।

एकदेशरूप... व्रत कहे। उन्हें व्यवहारनय से एकदेशव्रत कहे। एकदेश—आंशिक।

जितना अन्दर में अव्रतभाव छूट गया है और स्थिरता हुई है, समझ में आया? उसे जो यह विकल्प उठा है, उसे एकदेश व्रत कहा जाता है। महाव्रतधारी के महाव्रत के परिणाम को भी एकदेशव्रत कहा जाता है। अणुव्रत। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें अब! लोगों को सूक्ष्म पड़े, लोगों को कठिन पड़े। आहाहा! कठिन पड़े, यह हमारे कहते हैं न अमृतलालजी।

मुमुक्षु : क्योंकि उनकी मान्यता से विरुद्ध लगे, इसलिए कठिन हो जाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वे तो ऐसा कहते हैं, कठिन पड़ता है। इतना विरुद्ध नहीं। कठिन पड़ता है। स्व के आश्रय में धर्म करना, वह कठिन पड़ता है। उस विकल्प में रहना, वह ठीक सरल लगता है।

मुमुक्षु : यह तो प्रवृत्ति हुई कुछ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा? निवृत्ति में से निकलकर कुछ प्रवृत्ति हुई। राग हुआ। आहाहा!

जीवघात में निवृत्ति,... (परन्तु) **जीवदया में प्रवृत्ति,...** देखा! **व्यवहारनयकर एकदेशरूप व्रत...** क्या कहा? व्यवहारनय से देशव्रत, पंच महाव्रत के परिणाम को क्यों कहा? यह बात करते हैं। आहाहा! कि **जीवघात में निवृत्ति,...** (परन्तु) **जीवदया में प्रवृत्ति, असत्य वचन में निवृत्ति, सत्य वचन में प्रवृत्ति...** आहाहा! **अदत्तादान (चोरी) से निवृत्ति, अचौर्य में प्रवृत्ति...** ऐसे विषय की उससे निवृत्ति परन्तु उसे ब्रह्मचर्य का शुभभाव, वह प्रवृत्ति है। आहाहा! मैं ब्रह्मचर्य पालूँ, वह शुभभाव है। **इत्यादि स्वरूप से एकदेशव्रत कहा जाता है,...** देखा! एकदेशव्रत इसे कहते हैं। किसे? छठे गुणस्थान में महाव्रत का शुभविकल्प आता है, उसे एकदेश व्रत कहा जाता है।

मुमुक्षु : निर्विल्पता को ही सच्चा व्रत कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्पता, वह निश्चयव्रत है।

ऐसा मार्ग वीतराग का, भाई! यह नहीं था न, इसलिए (कठिन लगता है)। शास्त्र में तो पड़ा है। समयसार पुकारता है, प्रवचनसार पुकारता है। प्रवचनसार में तो पुकार

है कि पुण्य-पाप में अन्तर माने, वह घोर संसार में भटकेगा। ऐसा पाठ है। ७७ गाथा। समझ में आया? 'हिंडति घोर संसार'। आहाहा! पुण्य और पाप दोनों एक ही समान बन्ध के कारण हैं। व्रत और अव्रत दोनों बन्ध के ही कारण हैं। उसमें अन्तर माने, विशेष माने, सामान्य बन्ध का कारण दोनों हैं, ऐसा न मानकर, दोनों में अन्तर माने, अविशेष न माने और विशेष माने, (वह) घोर संसार (में भटकेगा)। आहाहा! ऐसा है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन तो यह है। हिंडति। समझ में आया?

एकदेशव्रत कहा जाता है, और राग-द्वेषरूप संकल्प-विकल्पों की कल्लोलों से रहित... आहाहा! यह विकल्प के शुभ-अशुभ से रहित **तीन गुप्ति से गुप्त...** गुप्त अन्दर में। आहाहा! **समाधि में शुभाशुभ त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है।** उस आनन्द की समाधि में लीन, उसे **शुभाशुभ त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है।** आहाहा! छठवें गुणस्थान में भी महाव्रत के विकल्प हैं, उसे एकदेश कहा। अशुभ से छूटा है न? एकदेश व्रत है और शुभ से छूटे और निर्विकल्प, वह सर्वदेशव्रत, वह निश्चयव्रत है। आहाहा! ऐसी वाणी और... अरे! चौरासी के अवतार में, बापू!

यह भव है, वह अनन्त भव के अभाव करने के लिये भव है। आहाहा! यह भव कहीं कमाना, विषय और भोग और स्त्री-पुत्र के लिये यह भव नहीं है। अनन्त भव का एक भव में अभाव करना है। श्रीमद् में वचन है। उसका कितना पुरुषार्थ हो, भाई! आहाहा! अनन्त भव की राशि। भवसिन्धु, महा समुद्र भवसिन्धु, ओहोहो! निगोद के एकेन्द्रिय के भव। एक श्वास में अठारह (भव)। ऐसा भवसिन्धु—समुद्र। अनन्त भव। बापू! उसे पार करने के लिये ये भव है। उसका रास्ता निकाल लेने के लिये यह भव है। आहाहा! इनहोंने तो पुण्य-पाप दोनों को बन्ध का कारण जानकर अबन्धस्वरूपी भगवान... ऐसा कहा न? १४वीं-१५वीं गाथा। समयसार १४-१५।

'जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं' आहाहा! उसने जैनशासन देखा। जिसने भगवान आत्मा को राग के सम्बन्ध से भिन्न और विशेष के भाव से भिन्न सामान्य... आहाहा! उसे जिसने जाना, अनुभव किया, उसने जैनशासन देखा। आहाहा! ऐसी तो बात है। वह जैनशासन है। रागरहित भगवान को—प्रभु को अबन्ध देखना... आहाहा! निश्चय से

देखना, विशेषरहित सामान्य से देखना... आहाहा! गति आदि के भेद से रहित एकरूप देखना और पुण्य-पाप के क्लेश की अग्नि से भिन्न एकरूप शान्ति से देखना। आहाहा! यह '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं।**' ऐसा कहा है। उसने सर्व जैनशासन देखा। कहो, देवानुप्रिया! ऐसा है। आहाहा! इसमें तो कहीं व्यवहार देखा तो जैनशासन देखा, ऐसा नहीं आया।

मुमुक्षु : बीच में आता है सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे भले। आवे, वह वस्तु नहीं। बीच में आवे तो ज्ञानी को सब आता है। छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत का विकल्प आवे, चौथे गुणस्थान में रौद्रध्यान के भाव आवें, पाँचवें में रौद्रध्यान के भाव आवें तो क्या? वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा की शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्तरस का कन्द प्रभु, उपशमरस के स्वभाव से भरपूर अकषायस्वरूप, उसकी पर्याय में समाधि में रहना... आहाहा! उसकी शान्ति में रहना, इसका नाम व्रत है। है? यह व्रत है। **परिपूर्ण व्रत होता है।** है न? **शुभाशुभ के त्याग से परिपूर्ण व्रत होता है।** आहाहा! शुभभाव में समकितसहित है, शान्ति-स्थिरतासहित है परन्तु शुभविकल्प है, उसे एकदेश व्रत कहने में आया है। आहाहा! दिगम्बर वाणी तो देखो! श्रीमद् कहते हैं, दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। उन्हें वीतरागता का वर्णन करना है। आहाहा! कठिन काम है, बापू! किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं है। वह भगवान है। द्रव्य से तो उसका आत्मा उपादेय है। इस जीव को भी उसका द्रव्य जो शुद्ध है, वह तो उपादेय है। पर्याय, पर्याय में रही। उसकी भूल एक ओर (रही)। आहाहा!

मुमुक्षु : एकदेईं व्रत में कषाय का अभाव हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत में कषाय का आंशिक अभाव हुआ है, इसलिए एकदेशव्रत कहा और सर्वथा अभाव हो, उसे सर्व (देश) व्रत कहा। शुभविकल्प छूटकर शुद्धोपयोग में स्थिर हो, वह परिपूर्ण व्रत। परिपूर्ण व्रत। ऐसा कि वह शुभविकल्प है, वह परम्परा शुद्ध का कारण है या नहीं? उसका अभाव करे, वहाँ होता है। वह कारण नहीं। आहाहा!

महाप्रभु अनन्त आनन्द से भरपूर प्रभु है। अनन्त शक्ति का सागर प्रभु है। जिसमें अनन्त गुण जिसके गोदाम में पड़े हैं, ऐसा महा गोदाम है। सेठ के गोदाम में तो अमुक तम्बाकू, पाँच-पच्चीस (बोरियों में)। इसमें (आत्मा में) तो अनन्त गोदाम हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : वह गोदाम कहाँ रखा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ रखा है। आहाहा! नजर करे तो निधान नजर पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : नौ का डंका।

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ का वापस। आहाहा!

महाप्रभु विराजता है न, प्रभु! तू स्वयं महाप्रभु ही है। तुझे पर्याय के—अवस्था के आश्रय में तुझे उसकी कीमत आयी नहीं। आहाहा! उसकी तुझे कीमत आंकना आयी नहीं। पर्याय में देखनेवालों को और पर्याय में होनेवाले राग और पुण्य को देखनेवाले को इस पुण्य और पर्याय के पीछे भगवान परमानन्द प्रभु है, वस्तु है। वस्तु है, उसमें अनन्त शक्ति-गुण बसे हुए हैं। पर्याय में अनन्त गुण कहाँ हैं? वह तो एक अंश है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसी बातें! एक तो बेचारे को निवृत्ति नहीं मिलती। बीस-बाईस घण्टे (पाप में) बितावे, उसमें मुश्किल से एकाध घण्टे सुनने का समय मिले। उसमें लड़के हुए हों छोटे, उसमें दो-दो वर्ष में लड़का हो। सोलह वर्ष में आठ लड़के हों। अब उसे बेचारे को सम्हालना किसे और क्या करना इन सबका? उसके पिता को वापस उनका विवाह करना, उनके मकान अलग रखना। आहाहा! अरे रे! भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। वह विकल्प को भी करे कैसे? उसका भी कर्ता नहीं प्रभु तो। आहाहा! ऐसी बात है।

अर्थात् अशुभ की निवृत्ति और शुभ की प्रवृत्तिरूप एकदेशव्रत... देखो! परन्तु किसे? समकिती की बात है, हों! जिसे सम्यग्दर्शन नहीं और व्रत ले, उसे तो यह बात ही है नहीं। वह व्रत है ही कहाँ उसे? एकदेश भी कहाँ है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दर्शन में आत्मा का पूर्ण स्वरूप अनुभव में आया है और तदुपरान्त भी स्थिरता, शान्ति स्वआश्रय से थोड़ी हुई है, उसे जो विकल्प उठता है, वह एकदेशव्रत है। आहाहा! अशुभ की निवृत्ति और शुभ की प्रवृत्ति सम्यग्दृष्टि की भूमिका में अथवा पाँचवें गुणस्थान की

भूमिका में अथवा छठवें गुणस्थान की भूमिका में (होती है)। है न? **अशुभ की निवृत्ति और शुभ की प्रवृत्तिरूप एकदेशव्रत...** है। आहाहा!

शुभ, अशुभ दोनों का ही त्याग होना, वह पूर्ण व्रत है। आहाहा! है? स्पष्टीकरण तो बहुत सरस किया है। टीकाकार ने स्पष्टीकरण किया है। लो! **इसलिए प्रथम अवस्था में व्रत का निषेध नहीं है...** प्रथम अवस्था छठवें गुणस्थानादि हैं, उसमें व्रतभाव होता है। नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा। **एकदेशव्रत है,...** प्रथम अवस्था में, छठवीं भूमिका में, प्रथम अवस्था उसे कहा जाता है, देखा!

मुमुक्षु : होता है, ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह करे, क्या करे? आवे। उसे व्यवहारनय से करे, ऐसा कहने में आता है। व्यवहारनय से ऐसा आता है, व्रत करो। परन्तु वह व्रत होते किसे हैं? जिसे शान्ति प्रगट हुई है और शान्ति की वृद्धि हुई है, उसे व्रत का विकल्प होता है। उसकी यहाँ बात है। जिसे अभी शान्ति प्रगट नहीं हुई, स्वरूप का भान हुआ नहीं, उसे व्रत के विकल्प की व्याख्या कहाँ है? आहाहा! वह तो समाधिशतक में नहीं आता? छाया और धूप। धूप में गर्मी है, छाया में गर्मी नहीं। शुद्धोपयोग न आवे, तब तक इसे शुभभाव में आना। इतना। अशुभ में नहीं रहना। अशुभ में है, वह धूप में है। शुभ में है, वह छाया में है। परन्तु करना है शुद्धोपयोग। ऐसा कहना है। परन्तु शुद्धोपयोग नहीं, वहाँ आगे छठवें गुणस्थान में ऐसा विकल्प होता है। यह छठवें की बात चलती है, हों! प्रथम अर्थात् मिथ्यात्व को प्रथम, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें अब।

अब यह छोटे बालक बेचारों ने सुना न हो। मार्ग तो प्रभु ऐसा है। आँख मींचकर चला जाता है, देखो न! चिमनभाई ऐसे सुनते थे यहाँ। डॉक्टर यहाँ बैठते थे। आहाहा! प्रेमचन्दभाई। और कितने प्रेम से सुनते थे, हों! बहुत-बहुत हर्ष से सुनते थे। आहाहा! प्रमाण... प्रमाण... ऐसा करते थे। वे चले जाये, बापू! यह नाशवान, क्षणवान है। आहाहा! उसमें किसके सामने देखना इसे? ऐसा कि हमारा शरीर तो अच्छा है अभी। परन्तु अच्छा अर्थात् क्या? भगवान! पड़ने का (नष्ट होने का) समय आयेगा तो फू... ऐसा हो जायेगा। कुछ नहीं होगा। फू... ऐसा हो जायेगा। आहाहा!

अट्ठाईस वर्ष का जवान लड़का नहीं था? मलकापुर। मलकापुर के दो मित्र थे। छोटी उम्र के होंगे। यों ही बैठे थे। कोई रोग कुछ नहीं। ऐसे बैठे थे उसमें ऐसे जहाँ देखे, वहाँ फू इतना किया, बस। फू किया वहाँ तो देह छूट गयी। दूसरा कुछ नहीं होता। देह की स्थिति पूरी होती है, भगवान! उस समय तो कोई बदलता नहीं। आहाहा! और वह समय कब पूरा होनेवाला है, यह तो इसे खबर नहीं। परन्तु इतनी तो खबर है न कि यह समय आयेगा। आहाहा! अरे! उस समय चैतन्य की शरण नहीं ली होगी तो प्रभु! प्रभु—इसे कहाँ जाना? आहाहा! अन्तर्मुख का शरण जिसने नहीं लिया, अन्तर्मुख का जिसने आश्रय नहीं किया... आहाहा! उसे कहाँ जाना? किस शरण में जाना? आहाहा!

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी का शरण....

पूज्य गुरुदेवश्री : पंच परमेष्ठी का शरण, वह तो विकल्प है। आहाहा!

वर्णीजी जैसे अन्त में बेचारे ऐसा बोलते थे। बहुत वह आया न? परीषह। अरे! आत्मा का शरण है ऐसे समय में। दूसरा कुछ शरण नहीं। इतना कहा था। आत्मा की शरण बिना... आत्मा भी कभी इसने जाना न हो, निर्णय किया न हो तो आवे कहाँ से शरण? आहाहा! चारों ओर घिर जाये, तृषा लगी हो, गला सूखता हो, बाहर में नियम लिया हो कि अब पानी चलता नहीं। और पानी चले तो उसे वापस उसके प्रमाण में चले न? क्षुल्लक या साधु हो उसे। खड़े-खड़े कुछ होता है। सोते-सोते कुछ पिलाये, ऐसा तो होता नहीं। आहाहा! उस समय उसमें आया था। बेचारा कहे, अरे! यहाँ शरण चाहिए वह कहाँ है? आत्मा शरण है, इसके अतिरिक्त कोई नहीं। बाहर में तो कहीं शरण है नहीं। आहाहा!

यहाँ पर कोई यदि प्रश्न करे कि व्रत से क्या प्रयोजन? और प्रश्न किया। पहला प्रश्न ऐसा था कि व्रत तो आते हैं और उसका तुम निषेध करते हो। भाई! आते हैं अवश्य, परन्तु वह आस्रव है। उसे छोड़कर स्थिर हो तो वह निश्चयव्रत कहने में आते हैं। तब शिष्य ने दूसरा प्रश्न उठाया। **प्रथम अवस्था में व्रत का निषेध नहीं है। एकदेशव्रत है, और पूर्ण अवस्था में सर्वदेशव्रत है। यहाँ पर कोई यदि प्रश्न करे कि व्रत से क्या प्रयोजन है? आत्मभाावना से ही मोक्ष होता है।** 'आत्मभावना भावता लहीये केवलज्ञान'

नहीं आता? श्रीमद् में आता है। परन्तु इसका अर्थ (खबर न हो)। रटे 'आत्मभावना भावता लहीये केवलज्ञान रे' परन्तु आत्मा अर्थात् अभी क्या चीज़ है? अखण्डानन्द प्रभु जिसने अभी दृष्टि में देखा नहीं, दृष्टि में जाना नहीं। आहाहा! वह उसकी भावना किस प्रकार करे? भावना अर्थात् एकाग्रता। जो वस्तु ही अन्दर है चिदानन्द प्रभु, वह दृष्टि में और ज्ञान के ज्ञेय में वह ज्ञेय आया नहीं। ज्ञात होनेयोग्य ऐसा भगवान ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ नहीं, वह किसकी शरण ले? वह किसकी भावना करे? आतमभावना भावता, यह आत्मा जिसने जाना है, वह उसकी एकाग्रता करे, उसे 'आतमभावना भावता लहीये केवलज्ञान।' समझ में आया? आहाहा! यह रटे 'आतमभावना भावता लहीये...' वह तो विकल्प है। आहाहा!

यहाँ तो समकितसहित और चारित्रसहित है, उसे भी पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह बन्ध का कारण है, ऐसा कहा। आहाहा! ऐसा कहा या नहीं यहाँ? वह भी विकल्प छोड़कर अन्दर वीतरागरूप से स्थिर हो, तब उसकी मुक्ति होगी। जब तक बन्ध के विकल्प में रहे, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग है। जिनवरदेव केवली परमात्मा ने, जिनवरदेव ने ऐसा वीतरागभाव वर्णन किया है। उसे पर की कोई अपेक्षा है नहीं। स्व का आश्रय करनेवाले को पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा! ऐसा जो मार्ग....

तब कहा कि महाराज! (व्रतादि भाव) आस्रव है तो उसे इस व्रत का क्या काम है? आत्मभावना भाने से मोक्ष हो जायेगा। **भरतजी महाराज ने क्या व्रत धारण किया था?** शिष्य ने प्रश्न किया। करे तो सही। स्वयं ने स्पष्टीकरण करने के लिये प्रश्न निकाला है। **वे तो दो घड़ी में ही केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये।** आहाहा! छियानवें हजार रानियों का साहेबा, छह लाख पूर्व तो चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। आहाहा! छह लाख पूर्व! एक पूर्व में सत्तर लाख, छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे छह लाख पूर्व चक्रवर्ती पद, छियानवें हजार स्त्रियों का भोग, छियानावें करोड़ सैनिक, छियानावें करोड़ गाँव का साहेबा। आहाहा! महाराज! वे तो अन्तर्मुहूर्त में अन्दर गये और केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। उन्हें कहाँ व्रत थे? ऐसा कहता है। शिष्य का यह प्रश्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : काँच भुवन में केवलज्ञान हो गया अब।

पूज्य गुरुदेवश्री : हँ! वह काँच भुवन तो निमित्त है। अन्दर में पाया था वह। आहाहा! वह भी पहले पंच महाव्रत लिये थे। पंच महाव्रत लिये थे, वह बाहर प्रसिद्ध नहीं है। क्योंकि वहाँ एकदम अन्दर बैठे और ध्यान में केवलज्ञान पाया। पंच महाव्रत तो अन्दर दीक्षा ली थी। नौ-नौ कोटि से त्याग करके पंच महाव्रत का विकल्प पहले आया था। फिर (उससे) छूटकर, स्थिर होकर अन्दर केवल (ज्ञान) को प्राप्त हुए हैं। यह कहेंगे।

भरतेश्वर ने पहले जिनदीक्षा धारण की,... है? अरे! उन्होंने पहले जिनदीक्षा धारण की थी। अन्तर्मुहूर्त में लोगों को ख्याल नहीं। ऐसे एकदम दीक्षा पंच महाव्रत के विकल्प दीक्षा धारण की। अन्दर चारित्र। आहाहा! **सिर के केशलुंचन किये,...** परन्तु वह अन्तर में थोड़े काल में और काल में एकदम दीक्षा और एकदम लोंच। **हिंसादि पापों की निवृत्तिरूप पाँच महाव्रत आदरे।** पहले पाँच महाव्रत के विकल्प आये थे। आहाहा! **फिर एक अन्तर्मुहूर्त में समस्त विकल्परहित मन, वचन, काय रोकनेरूप निज शुद्धात्मध्यान उसमें ठहरकर निर्विकल्प हुए।** लो! पंच महाव्रत की दीक्षा थी। आहाहा! उस पंच महाव्रत की दीक्षा बिना एकदम केवलज्ञान पा गये हैं, ऐसा नहीं है। बीच में वह तो आता है। फिर उसे छोड़कर **निर्विकल्प हुए।** आहाहा! उसमें निर्विकल्प में देखे। है?

शुद्धात्मा का ध्यान,... शुद्धात्मा का ध्यान। **देखे, सुने और भोगे हुए...** आँख से देखे हुए, कान से सुने हुए, मन से भोगे हुए उन **भोगों की वांछारूप निदान बन्धादि विकल्पों से रहित...** निदान भी नहीं जिन्हें। **ऐसे ध्यान में तल्लीन होकर केवली हुए।** ऐसे ध्यान में तल्लीन हुए और केवल(ज्ञान) हुआ है। परन्तु केवल (ज्ञान) हुए पहले उन्होंने पंच महाव्रत ग्रहण किये थे। समझ में आया?

मुमुक्षु : काँच भुवन में....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें और उसमें हुआ। मकान। काँचभुवन मकान बड़ा है। उसी में और उसी में पंच महाव्रत लेकर, दीक्षित होकर, स्थिर होकर केवल(ज्ञान) पाये। विशेष कहेंगे, लों..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १०, मंगलवार
दिनांक-१६-११-१९७६, गाथा-५२, ५३, प्रवचन-१३४

परमात्मप्रकाश, ५२ गाथा का अन्तिम भाग है। ऐसा कि भरतजी अन्तर्मुहूर्त में काँचभुवन में, दीक्षित हुए, महाव्रत लिये (और) अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान पाये। तो कोई कहता है कि उन्हें महाव्रत नहीं आये थे। ऐसा कहा था पहले। कहते हैं, आये तो थे। पहले नौ कोटि से त्याग किया, तब महाव्रत थे। परन्तु क्षणमात्र रहे और अन्तर्मुहूर्त में ध्यान में केवलज्ञान को प्राप्त हुए, इसलिए महाव्रत की बाहर प्रसिद्धि आयी नहीं।

इस पर कोई मूर्ख ऐसा विचार लेवे,... इससे कोई मूर्ख ऐसा विचारे **कि जैसा उनको हुआ, वैसे हमको भी होवेगा।** उन्हें एकदम अन्तर्मुहूर्त में हो गया तो हमारे भी किसी समय हो जायेगा। ऐसा कोई मूर्ख विचार करे तो वह झूठा है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ५२ गाथा का अन्तिम भाग है न? **जैसा उनको हुआ, वैसे हमको भी होवेगा। ऐसा विचार ठीक नहीं है। यदि किसी एक अन्धे को किसी तरह से निधि का लाभ हुआ,...** अन्धे को। **तो क्या सभी को ऐसा हो सकता है? सबको नहीं होता। भरत सरीखे तो भरत ही हुए। इसलिए अन्य भव्य जीवों को यही योग्य है कि तप संयम का साधन करना ही श्रेष्ठ है।** मुनिव्रत लेना और तप साधन करना, वह श्रेष्ठ है। एकदम ऐसे का ऐसा केवलज्ञान हो जायेगा, ऐसा माननेवाले मूर्ख हैं।

मुमुक्षु : यह अर्थ करते हो वह संस्कृत में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न? देखो! संस्कृत पाठ है न! **'भरतेश्वरेण किं व्रतं कृतम्, घटिकाद्वयेन मोक्षं गतः इति। अथ परिहारमाह। भरतेश्वरऽपि पूर्वं जिनदीक्षाप्रस्तावे लोचानन्तरं हिंसादिनिवृत्तिरूपं महाव्रतविकल्पं कृत्वान्तर्मुहूर्ते गत'** इसलिए दूसरे को **'दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबन्धादिविकल्परहिते मनोवचनकायनिरोधलक्षणे निजशुद्धात्मध्याने स्थित्वा पश्चातिर्विकल्पो जातः'** ऐसा। **'परं किंतु तस्य स्तोक-कालत्वान्महाव्रत-प्रसिद्धिर्नास्ति। अथेदं मतं वयमपि तथा कुर्मोऽवसानकाले। नैवं**

वक्तव्यम्।' इस प्रकार दूसरे को ऐसा नहीं कहना, नहीं मानना, ऐसा कहा। है न, पाठ है। है? '**यद्येकस्यान्धस्य कथंचितिधानलाभो जातस्तर्हि किं सर्वेषां भवतीति भावार्थः**' टीका में है। '**मतं वयमपि तथा कुर्मोऽवसानकाले**' मरण होगा, तब हमारे हो जायेगा अन्त में, ऐसा कोई कहे तो वह मूर्ख है, कहते हैं। अभ्यास करता नहीं अन्दर राग से भिन्न पड़ने का।

मुमुक्षु : गृहस्थ के लिये नियम अलग और दूसरों के लिये नियम अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम ही नहीं। नियम नहीं। यह तो उनका पुरुषार्थ इतना उग्र था और इतनी तैयारी होकर आये थे कि छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद में रहे। छह लाख पूर्व! एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। उन्होंने एक अन्तर्मुहूर्त में महाव्रत लेकर अन्तर्मुहूर्त में सबको खिपा दिया। आहाहा! छह लाख पूर्व छियानवें हजार स्त्रियों का विषय, छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें करोड़ गाँव का साहेबा, इतना छह लाख पूर्व तक चक्रवर्ती पद में रहे, तथापि अन्तर्मुहूर्त में समाप्त कर डाला। ध्यान में। समझमें आया? सीधे खिंचता है, ऐसे लक्ष्य। सुनने के समय... छोड़कर। एक-एक न्याय में अन्दर क्या भरा है, उस तत्त्व का... सर्वज्ञ के मुख से निकली हुई वाणी, वह सन्त कहते हैं। आहाहा! लोटिया वोरा में तो ऐसा रिवाज है वहाँ (कि) ऐसे बैठकर सुने नहीं। दो पैर ऐसे आड़े रखकर, नीचे रखकर। ऐसा रिवाज उनके विनय का है। यहाँ तो पैर पर पैर चढ़ाकर बैठकर सुने और या दो ऐसे घुटने मोड़कर सुने। वह सब अविनय है।

मुमुक्षु : सिक्ख लोगों में बहुत शान्ति...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत। सिक्ख लोगों में तो... और वे लोग लोटिया वोरा भी सुने, तब पैर ऐसे एकदम नीचे रखे और बैठे। ऐसी बात है। अपने भी रिवाज ऐसा है कि सामने पलोथी मोड़कर बैठना नहीं, पैर पर पैर चढ़ाकर बैठना नहीं, दो पैर ऐसे इकट्ठे करके बैठना नहीं। इतनी बातें व्यवहार, वह सब कहने जाये (तो पार न आवे)। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, कोई भरत चक्रवर्ती का बहाना लेकर बातें करे (कि) उन्हें हो

गया, वैसे हमारे हो जायेगा। तो कहते हैं, वह तो मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह कहते हैं, देखो! किसी अन्धे को (निधान) मिला तो क्या सबको (उस प्रकार से) मिल जायेगा? **इसलिए अन्य भव्य जीवों को यही योग्य है कि तप संयम का साधन करना...** अर्थात् कि उसमें मुनिपना लेकर तप साधन करना, ऐसा। एकदम मुनिपना आ जायेगा और फिर केवल(ज्ञान) हो जायेगा, ऐसा नहीं लेना। ऐसा इसका अर्थ है। फिर प्रश्न किया है। गाथा है।

जिसने पहले तो योग का अभ्यास नहीं किया,... देखो! यह आया। पहले तो अन्दर शान्ति, समाधि का अभ्यास किया नहीं। राग से भिन्न पड़कर स्थिरता का अभ्यास योग-साधन किया नहीं। समकित सहित भी ऐसा साधन नहीं किया। बात तो सम्यग्दर्शनसहित है। परन्तु जिसने अन्दर में राग से भिन्न पड़कर स्थिरता का योग अभ्यास किया नहीं। आहाहा!

मरण के समय भी जो कभी आराधक हो जावे,... किसी समय मरण के समय भी आराधक हो जाये, इससे उसका बहाना लेकर हमारे मरण के समय आराधक होयेंगे, ऐसा बहाना नहीं लेना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! **मरण के समय भी जो कभी आराधक हो जावे, तो यह बात ऐसी जानना कि जैसे किसी अन्धे पुरुष को निधि का लाभ हुआ हो। ऐसी बात सब जगह प्रमाण नहीं हो सकती। कभी कहीं पर होवे तो होवे।** परन्तु सबको लागू नहीं पड़ता। आहाहा! उसने प्रथम से सम्यग्दर्शन पाकर और राग से भिन्न पड़ने का समाधि का, शान्ति का प्रयोग अभ्यास करना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! यह ५२ गाथा हुई।

गाथा - ५३

अथानन्तरं निश्चयनयेन पुण्यपापे द्वे समाने इत्याद्युपलक्षणत्वेन चतुर्दशसूत्रपर्यन्तं व्याख्यानं क्रियते। तद्यथा-योऽसौ विभावस्वभावपरिणामौ निश्चयनयेन बन्धमोक्षहेतुभूतौ न जानाति स एव पुण्यपापद्वयं करोति न चान्य इति मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं प्रतिपादयति -

१७७) बंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ जो णवि जाणइ कोइ।
सो पर मोहिं करइ जिय पुण्णु वि पाउ वि दोइ।।५३।।

बन्धस्य मोक्षस्य हेतुः निजः यः नैव जानाति कश्चित्।
स परं मोहेन करोति जीव पुण्यमपि पापमपि द्वे अपि।।५३।।

बंधहं इत्यादि। बंधहं बन्धस्य मोक्खहं मोक्षस्य हेउ हेतुः कारणम्। कथंभूतम्। णिउ निजविभावस्वभावहेतुस्वरूपम्। जो णवि जाणइ कोइ यो नैव जानाति कश्चित्। सो पर स एव मोहिं मोहेन करइ करोति जिय हे जीव पुण्णु वि पाउ वि पुण्यमपि पापमपि। कतिसंख्योपेते अपि। दो द्वे अपीति। तथाहि। निजशुद्धात्मानुभूतिरुचिविपरीतं मिथ्यादर्शनं स्वशुद्धात्मप्रतीति-विपरीतं मिथ्याज्ञानं निजशुद्धात्मद्रव्यनिश्चलस्थितिविपरीतं मिथ्याचारित्रमित्येतत्त्रयं कारणं, तस्मात् त्रयाद्विपरीतं भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूपम् मोक्षस्य कारणमिति योऽसौ न जानाति स एव पुण्यपापद्वयं निश्चयनयेन हेयमपि मोहवशात्पुण्यमुपादेयं करोति पापं हेयं करोतीति भावार्थः।।५३।।

आगे निश्चयनयकर पुण्य-पाप दोनों ही समान हैं, ऐसा चौदह दोहों में कहते हैं। जो कोई स्वभावपरिणाम को मोक्ष का कारण और विभावपरिणाम को बंध का कारण निश्चय से ऐसा भेद नहीं जानता है, वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है, अन्य नहीं, ऐसा मन में धारणकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं -

निज विभाव एवं स्वभाव परिणाम बन्ध अरु मुक्ति के।
निश्चय से कारण नहिं जाने, वही पुण्य अरु पाप करे।।५३।।

अन्वयार्थ :- [यः कश्चित्] जो कोई जीव [बंधस्य मोक्षस्य हेतुः] बंध और मोक्ष का कारण [निजः] अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है, ऐसा भेद [नैव जानाति] नहीं जानता है, [स एव] वही [पुण्यमपि पापमपि] पुण्य और पाप [द्वे अपि] दोनों को ही [मोहेन] मोह से [करोति] करता है।

भावार्थ :– निज शुद्धात्मा की अनुभूति की रुचि से विपरीत जो मिथ्यादर्शन, निज शुद्धात्मा के ज्ञान से विपरीत मिथ्याज्ञान, और निज शुद्धात्मद्रव्य में निश्चल स्थिरता से उल्टा जो मिथ्याचारित्र इन तीनों को बंध का कारण और इन तीनों से रहित भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का कारण ऐसा जो नहीं जानता है, वही मोह के वश से पुण्य–पाप का कर्ता होता है। पुण्य को उपादेय जानके करता है, पाप को हेय समझता है।।५३।।

गाथा-५३ पर प्रवचन

५२। **इस तरह मोक्ष, मोक्ष का फल और मोक्ष के मार्ग के कहनेवाले दूसरे महा अधिकार में परम उपशान्तभाव के व्याख्यान की मुख्यता से अन्तरस्थल में चौदह दोहे पूर्ण हुए।** लो! उपशान्तभाव... उपशान्तभाव। सम्यग्दर्शनसहित अकषायभाव का उपशान्तभाव का वर्णन किया।

आगे निश्चयनयकर... अब आया वापस पुण्य–पाप का। जो अधिकार वहाँ है न, वह। ५५ गाथा से यह आयेगा ७७ गाथा तक। यह तो अभी ५३ है। ७७वीं आयी थी न प्रवचनसार में? पुण्य–पाप में भेद मानता है, वह घोर संसार में भटकेगा। यह ५५ में आयेगा। **निश्चयनयकर पुण्य-पाप दोनों ही समान हैं...** आहाहा! **और चौदह दोहों में कहते हैं। जो कोई स्वभावपरिणाम को मोक्ष का कारण और विभावपरिणाम को बन्ध का कारण निश्चय से ऐसा भेद नहीं जानता है, वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? आत्मा का स्वभाव जो शुद्ध चैतन्य, उसका जो स्वभाव प्रगट होता है, वह शुद्ध स्वभाव मोक्ष का कारण है। पर्याय की बात है, हों! यह। शुद्ध स्वभाव तो त्रिकाल है, परन्तु उसके अभ्यास से, एकाग्रता से जो शुद्ध स्वभाव प्रगट हुआ, पुण्य–पाप के भावरहित (मोक्षमार्ग), वह शुद्धस्वभावभाव मोक्ष का कारण है और पुण्य–पाप के भाव बन्ध का कारण है। ऐसा दोनों का भेद जानता नहीं। है? **वही पुण्य-पाप का कर्ता होता है,...** वह पुण्य–पाप का कर्ता, राग का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

रागभाव से बन्ध है। चाहे तो पुण्य हो या पाप के भाव हों। लो, अब इसमें यह

आया। वे कहते हैं, नहीं। **'पुण्यफला अरहंता'।** पुण्य फल में अरिहन्तपद पाये। (प्रवचनसार) ४५ गाथा। वहाँ ऐसा कहा नहीं है। अरिहन्तपद तो पुरुषार्थ से, वीतरागभाव से पाये हैं। उन्हें अभी उदयभाव है, हिलने का, चलने का, बोलने का उदयभाव है, वह पुण्य का फल है। वह उदय की क्रिया है, उसे पुण्य का फल कहा है। और वह क्रिया समय-समय में नष्ट होती जाती है, इसलिए उसे क्षायिकी कहा है। उस उदयभाव को... क्षायिकभाव केवलज्ञान हुआ है, उसकी बात वहाँ नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उदय की क्रिया तो क्षायिकी क्यों न माना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय की क्रिया बस। उदय की क्रिया को क्षायिकी क्यों न माने? क्षायिकभाव है, उसकी यहाँ बात नहीं है। वह तो अपने वीतरागभाव से पाये हैं। आहाहा! लोगों ने अपने पक्ष के लिये तोड़-मरोड़कर वीतरागमार्ग को (नोंच डाला है)। अनादि वीतरास्वभाव है। पुण्य-पाप का भाव विभाव है और उससे भिन्न पड़कर स्वभाव का साधन किया है, उसका स्वभाव शुद्ध है। आहाहा! वह शुद्धस्वभाव, वह मोक्ष का कारण है। और यह विभाव पुण्य-पाप दोनों बन्ध का कारण है। ऐसा जो भेद नहीं जानते, वे पुण्य-पाप के कर्ता होते हैं। आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का वह कर्ता होता है। ज्ञानी उसे बन्ध का कारण (मानता) है, उसका कर्ता नहीं होता। आहाहा! होता है, उसे जानता है। समझ में आया? धर्मी को पुण्यभाव होता है, परन्तु उसका कर्ता नहीं होता; मात्र जाननेवाला रहता है। अज्ञानी अपने स्वभाव से मुक्त है, ऐसा न मानकर, उस पुण्य से मुक्ति है, वह पुण्य का कर्ता, राग का कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग! आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू!

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्धस्वरूप प्रभु, उसकी एकाग्रता, ऐसा शुद्धभाव वह ही मोक्ष का कारण है। पुण्य-पाप के भाव, उनकी एकाग्रता, वह बन्ध का कारण है। ऐसे बन्ध के भाव का विभाव कारण; मोक्ष का स्वभावपरिणाम कारण— ऐसा भेद जो जानता नहीं, वह पुण्य-पाप दोनों का कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया?

अन्य नहीं, ऐसा मन में धारणकर यह गाथा-सूत्र कहते हैं— ५३।

१७७) **बंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ जो णवि जाणइ कोइ।**
सो पर मोहिं करइ जिय पुण्णु वि पाउ वि दोइ।।५३।।

'**णिउ**' अर्थात् निज। निज विभाव बन्ध का कारण, निज स्वभाव मोक्ष का कारण, ऐसा।

१७७) **बंधहँ मोक्खहँ हेउ णिउ जो णवि जाणइ कोइ।**
सो पर मोहिं करइ जिय पुण्णु वि पाउ वि दोइ।।५३।।

है न? संस्कृत में है। '**बन्धस्य मोक्खहं मोक्षस्य हेउ हेतुः कारणम्**' अपना विभाव है, वह बन्ध का कारण है और अपना स्वभाव है, वह मोक्ष का कारण है। ऐसा निज शब्द लिया है। आहाहा! कर्म के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। स्वयं निज विभावभाव करता है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! और निज स्वभावभाव जो परिणति करता है, निज स्वभावभाव की परिणति करता है, वह मोक्ष का कारण है। ऐसी तो स्पष्ट बात है। आहाहा! आहाहा!

अन्वयार्थ :- जो कोई जीव बन्ध और मोक्ष का कारण... शब्दार्थ है। '**निजः**' अर्थात् **अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है,...** देखो! आहाहा! शरीर की क्रिया और कर्म का उदय, वह कुछ नहीं, वह परचीज़ है। भगवान आत्मा निज विभावभाव, निज स्व के विभावभाव। यह पुण्य-पाप का भाव, वह स्व का विभावभाव है। वह बन्ध का कारण है और स्व का निज भाव, वह भी निज भाव है, परन्तु यह स्वभावभाव निज भाव यह मोक्ष का कारण है। आहाहा! समझ में आया? अनादि का अनभ्यास, महँगा लगे; इसलिए फिर सस्ते रास्ते चढ़ गये।

मुमुक्षु : सस्ते या उल्टे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसने सस्ता माना है।

बनिये का दृष्टान्त नहीं दिया था? मण सब्जी लेकर आया हुआ। गाँव में से मण सब्जी लेकर आया हुआ हो। सब्जी उठाकर लाता है। उसमें से एक पौन मण (तीस किलो) बिक गयी हो। दस सेर रह गयी हो दागवाली। टुवा-टुवा समझे? डंक। सड़ी हुई, दाग रह गया हो। उसमें एक लोभी बनिया आया। वह कहे, भाई देखो! हमने चार

आना सेर बेचा है पौन मण। परन्तु यह जरा एक दाग है थोड़ा। परन्तु अब हमारे जाना है तो उठाकर कहाँ ले जाना गाँव में। इसलिए दो आना सेर देते हैं। लोभी बनिया। दो आना (सेर) मिलती है यह तो। घर में जाये वहाँ पूरे भिण्डी में दाग, सब सड़ा हुआ। एक टुकड़ा भी सब्जी के लिये काम नहीं आया। सस्ता करने गया तो महँगा हुआ।

इसी प्रकार यह सस्ता अर्थात् शुद्ध स्वभाव से मोक्ष नहीं परन्तु पुण्य, दया, दान, व्रत से भी मोक्ष होगा, ऐसा सस्ता करने गया, वहाँ मिथ्यात्व की विपरीतता घुस गयी अन्दर। आहाहा! देवीलालजी!

ऐसा है, भगवान! तू परमानन्द है न, नाथ! प्रभु! तू पूर्ण स्वरूप है न! आहाहा! वीतरागस्वभाव से परिपूर्ण भरपूर पड़ा है, प्रभु! तुझमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता, एक-एक गुण की ईश्वरता ऐसी अनन्त गुण की ईश्वरता का परिपूर्ण भगवान तू है। भगवान! तू अधूरा नहीं, अपूर्ण नहीं, विकारी नहीं। आहाहा! ऐसा जो परमात्मा का निज स्वभाव... आहाहा! जिसने निज स्वभाव का निज स्वभावरूपी शुद्ध उपयोगरूप साधन किया है, वह निज शुद्ध स्वभाव, वह मोक्ष का कारण है। और निज अर्थात् विभाव, पुण्य-पाप के भाव निज हैं, अपनी पर्याय में अपने हैं... आहाहा! उस निज विभावभाव से बन्ध को पाता है। आहाहा! अर्थात् कोई शरीर की क्रिया से या कर्म का उदय आया, इसलिए (बन्ध को पाता है), ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। निज विभाव। आहाहा! कितनी सरस शैली है!

यह स्वभाव भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसका तू अनादर करके विभावभाव को निज तूने उत्पन्न किया है और वह तेरे हैं, ऐसा कहते हैं। तत्त्व का अनादर (करके) पुण्य की रुचि की। भगवान पवित्र नाथ का अनादर किया। अनादर हो गया। रुचि, पुण्य की रुचि हुई, वह तो स्वभाव के प्रति क्रोध आया। द्वेष अरोचक भाव। द्वेष अरोचक भाव। भगवान रुचे नहीं परमानन्दस्वरूप प्रभु, वह रुचा नहीं और राग रुचे, उसे तो आत्मा के प्रति द्वेष आया। आहाहा! अरे! ऐसी बातें, बापू! यह तो किसी समय कहीं मिले ऐसी है। आहाहा!

पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ तू है न! पूर्ण निर्विकल्प अभेदस्वरूप तेरा

है न! आहाहा! उससे विरुद्ध जो विभावभाव तूने किये हैं। आहाहा! उस निज स्वभाव की शरण न लेकर, अनादर करके पुण्य परिणाम के प्रेम में फँसकर तूने पुण्य का आदर किया, तब वहाँ स्वभाव का अनादर हुआ है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहिचान नहीं की। अनादर कहाँ किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो पहिचान नहीं की, इसका अर्थ ही अज्ञान हुआ। अज्ञान हुआ अर्थात् उसकी कीमत हुई नहीं उसे। स्वरूप का अज्ञान रहा अर्थात् स्वरूप कैसा है, उसका ख्याल नहीं रहा। आहाहा!

मुमुक्षु : चारित्र का दोष है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र की यहाँ अभी बात नहीं है। यहाँ तो मिथ्यात्व की बात है। कल नहीं आया था? मिथ्यात्व, वह संसार है। समयसार में आया था। मुख्य वस्तु वह है। फिर चारित्रदोष है, वह तो साधारण है। यह तो कहा न? छह लाख पूर्व चक्रवर्ती पद भोगा। अर्थात् उन्हें आसक्ति का (उतना) राग आया। वह कहाँ भोगा है? छह लाख पूर्व। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ पूर्व वर्ष (जाते हैं)। अरबों के अरबों वर्ष तो एक पूर्व में जाते हैं। ऐसे-ऐसे छह लाख पूर्व। चारित्रदोष था। आहाहा! छह लाख पूर्व। ७७ लाख पूर्व में चक्रवर्ती हुए। वहाँ तक कुँवर पद में थे। छह लाख पूर्व चक्रवर्ती। अन्त में एक लाख पूर्व मुनि हो गये, केवलज्ञान में रहे। चौरासी लाख। आहाहा!

मुमुक्षु : तथापि राग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह राग था। परन्तु वह राग कैसा? आहाहा! दर्शनदोष है, वही महापाप है। चारित्रदोष है, वह तो अल्प है। जिसने छियानवें करोड़ सैनिक और छियानवें हजार स्त्रियों का विषय लिया राग, वह आसक्ति का राग था। वह छह लाख पूर्व तक हुआ, उसे अन्तर्मुहूर्त में खिपा दिया, एकदम। ऐसे नजर जहाँ अन्दर की, वहाँ सब उड़ गया। समझ में आया? और श्रद्धा का दोष है, वह तो मूल दोष है, बापू! यह क्या हो? आहाहा! कीमत नहीं। जिसे स्वरूप की कीमत नहीं, उसे श्रद्धा का दोष उत्पन्न होता है। जिसे स्वरूप की कीमत है, उसे सम्यग्दर्शन होता है। सम्यक्—सत्य

दर्शन। जैसा स्वरूप है वैसा प्रतीति का देखना और प्रतीति में श्रद्धा करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : आप जैसे बतलानेवाले मिले नहीं इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका पुरुषार्थ ही नहीं था, इसलिए नहीं मिले।

मुमुक्षु : इसमें योग्यता ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता। यह हमारे सेठ कहते हैं, भगवानदास सेठ। भाईसाहेब कहते हैं कि हमको मिले नहीं थे, सुनने का मिला नहीं। सर्वज्ञ के समवसरण में अनन्त बार गया है। उसमें आ गया है। भवे भवे पूजियो। तीन लोक के नाथ को समवसरण में मणिरत्न के दीपक, हीरा के थाल और कल्पवृक्ष के फूल (द्वारा पूजे)। जय नारायण, जय प्रभु! एक बार नहीं परन्तु अनन्त बार। आहाहा! तो क्या हुआ? वह तो शुभराग है। शुभराग के प्रेम में भगवान का अनादर हो गया है। महा कीमती चीज हीरा, अनन्त आनन्द का नाथ प्रभु, अनन्त ज्ञान का सागर... आहाहा! उसकी तो कोई कीमत ही नहीं और इस काँच के टुकड़े की कीमत। हीरा की कीमत नहीं, काँच का टुकड़ा सफेद दिखे, उसकी कीमत।

मुमुक्षु : पहिचान हुई नहीं। अनादर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहिचान नहीं। बस, यही अज्ञान हुआ। अ—ज्ञान अर्थात् वस्तु का भान नहीं। आहाहा! आहाहा! अज्ञान जैसा पाप नहीं और ज्ञान जैसा कोई धर्म नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : इसमें देव-गुरु-शास्त्र का अविनय हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अविनय है। देव-गुरु-शास्त्र ने भी ऐसा कहा है। इसलिए कहते हैं उसे कि हमारे प्रति प्रेम रखेगा और रुचि जायेगी तो स्वभाव का अनादर होगा। ऐसा देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं। केवली ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखने से प्रभु! तुझे राग होगा, भाई! आहाहा! हमारी आज्ञा तो वीतरागता की है। वह वीतरागता कब प्रगट हो? कि तेरे सन्मुख देखेगा तो प्रगट होगी। हमारे सामाने देखने से प्रभु! तुझे राग उत्पन्न होगा, परसमय होगा। आहाहा!

वहाँ पंचास्तिकाय में भक्ति ली है। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह पुण्यबन्ध का कारण है, इसे उससे मुक्ति नहीं है। आहाहा! वह परसमय है। इतना अनात्मभाव है। आहाहा! वीतरागमार्ग के अतिरिक्त बापू! ऐसी बात कहीं नहीं होती, भाई! आहाहा! एकदम स्वरूप निर्विकल्प वीतराग का प्रेम छोड़कर अर्थात् कि उसका आदर छोड़कर अर्थात् कि उसका सहज जैसी है उस चीज़ की कीमत, उसका स्वीकार छोड़कर। आहाहा! एक हल्की चीज़ साधारण पुण्य, दया, दान, व्रत के परिणाम क्षणिक... क्षणिक... क्षणिक... बन्धन। उसके प्रेम में गया... आहाहा! वह पुण्य का कर्ता हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठ! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! प्रभु! सब भगवान है, हों! आहाहा! अरे! इसकी खबर नहीं होती इसे। वह यहाँ आचार्य पुकारते हैं। आहाहा! ५५ में तो लेंगे। आहाहा!

अपना विभाव और स्वभाव... भाषा कितनी है? **अपना विभाव और स्वभाव...** आहाहा! एक ओर कहे कि विभाव पुद्गल के परिणाम हैं, आत्मा के नहीं। एक ओर कहे कि वह विभाव निज परिणाम है। किस अपेक्षा से? आहाहा! है अर्थ? **बन्ध और मोक्ष का कारण अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है,...** विभाव स्वभाव परिणाम है। आहाहा! यह पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति, तप के ये पुण्य परिणाम विभावस्वभाव जिन का भाव है। विभावभाव है। आहाहा! ऐसा कहकर पर के साथ क्या सम्बन्ध है तुझे? ऐसा कहते हैं। यह विभावभाव भी तेरे किये हुए, तेरे किये हुए, तुझमें तुझसे है। आहाहा! ऐसी बात सन्त (करते हैं)। दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है। मार्ग को सरल करके बतलाया है। आहाहा! उन्होंने हथेली में भगवान बतलाया है। आहाहा!

मुमुक्षु : मौन हो जाये तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मौन हो जाये तो मौन ही है। आत्मा कहाँ बोलता था? मौन करता हूँ, यह मिथ्यात्व है। मैं बोल सकता हूँ, यह मिथ्यात्वभाव है। मौन कर दूँ, वाणी को बन्द कर दूँ जड़ को, वह भी मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! मौन तो उसे कहते हैं कि जो विकल्परहित दृष्टि और स्थिरता करे, उसे मौनपना कहते हैं।

मुमुक्षु : मुनिपना, वही मौनपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही मौनपना है। आहाहा!

भगवान मुनि है। मुन्यते इति मुनि। वह अपने ज्ञायकभावरूप से परिणमता है, तब वह मौन है। उसे विकल्प का अभाव है, उसे मौनपना कहते हैं। आहाहा! बातें, बापू! यह तो जगत से दूसरी प्रकार की है, भाई! देश की सेवा करें, देश को सुखी करे और यह सब भाव भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि, है भ्रमणा, परन्तु निज विभावभाव है इसका। आहाहा! वह कोई कर्म का नहीं, कर्म से हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ओहो! आचार्य ने तो परमात्मप्रकाश योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले (हुए)। कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले (हुए)। सब छाप समयसार की सबमें आयी है। आहाहा! वस्तुस्थिति यह है वहाँ। भगवान आत्मा एक समय की वर्तमान पर्याय प्रगट दशा, इसके अतिरिक्त का पूरा तत्त्व है या नहीं? वस्तु है या नहीं? तो वस्तु है, वह कायम रहनेवाली है या नहीं? तो वस्तु है, वह कायम रहनेवाली तो उस वस्तु का स्वभाव है, वह कायम रहनेवाला है। आहाहा! ऐसा आनन्द का नाथ भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु, वीतरागस्वरूप से विराजमान जिनस्वरूप प्रभु आतमा है। आहाहा! उसका आदर छोड़कर राग का आदर (करे, वह तो मिथ्यात्व है)। जिनस्वरूप है यह तो। वीतरागस्वरूप है। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। शान्तिभाई तो कहते हैं न अभूतपूर्व और अश्रुतपूर्व। पहले कहा था इन्होंने। बात तो ऐसी है, बापू, हों! आहाहा!

अरे! प्रभु! भाई! यह मनुष्यपना मिला, बापू! ऐसा थोड़ा शरीर ठीक मिला और यह मिला, वह मिला कहाँ है? वह तो जड़ है। तुझे मिला नहीं, तुझमें आया नहीं। वह तो उसका होकर रहा है। जड़ जड़ होकर रहा है, वाणी वाणी होकर रही है। यह सामग्री साथ में है, वह तो जड़ होकर उसके कारण से आकर रही है। तुझे और उसे घेराव कहाँ है उसमें? आहाहा! ऐसे घेराव में घिर गया। आहाहा! ऐई! देवानुप्रिया! किराया मिल और खाने का मिले और थोड़ा बहुत वाँचे और फिर हो गया। ओहोहो! सहज होगा। अमृतचन्द्राचार्य ने (शब्द) प्रयोग किया है न? परन्तु सहज का अर्थ क्या? स्वाभाविक पुरुषार्थ से होगा, ऐसा। देवानुप्रिया! ऐसा है, भगवान! आहाहा!

सहज आतमस्वरूप प्रभु, सहजात्मस्वरूप, सहज आत्मस्वरूप—नहीं किया हुआ, नहीं कराया हुआ, ऐसा तत्त्व जो ध्रुव तत्त्व भगवान आत्मा, उसकी पर्याय में सहज स्वभाव प्रगट होना। जैसा स्वरूप है, वैसा। शुद्धता, पवित्रता, आनन्ददशा प्रगट होना, वह उसका स्वभाव है और वह उसका साधन है, वह मोक्ष का कारण है। वह निज परिणाम है। विभाव को जहाँ निज कहा तो यह भी निज है। कहा न? **अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है,...** आहाहा! भगवान आत्मा के स्वभाव को—त्रिकाली को भूलकर बाहर के पदार्थ के उत्साह के जोश में दौड़ गया। आहाहा! उसे आनन्द के नाथ से दूसरी चीज़ का आकर्षण हुआ, आकर्षण हुआ उसे। उसे दूसरा अधिक लगा। आहाहा! उसने भगवान को हीन कर दिया। हीन माना, हों! है तो है वह। आहाहा! एक शरीर की सुन्दरता देखकर भी ऐसे अन्दर से गलगलिया हो जाये। एक पैसा सुनकर (गलगलिया हो जाये कि) पचास लाख हुए, करोड़ हुए। क्या हुआ प्रभु तुझे यह? एक लड़का पका कुछ दो-पाँच-दस लाख पैदा करनेवाला और होशियार (हुआ तो)... आहाहा! यह मेरा पुत्र है। यह भी उसे मानता है वापस वहाँ। किसका पुत्र? बापू! वह तो उसका है। उसका आत्मा उसका है, शरीर उसका है। तेरा कहाँ से आया? आहाहा!

यह तो निज विभाव जो उत्पन्न किये हैं, वह पर के कारण नहीं। कर्म के कारण नहीं और वह संयोग में आकर्षित हुआ, वह पर के कारण नहीं। वह स्वयं आकर्षित हुआ और विभाव उत्पन्न किया है। आहाहा! समझ में आया? कोई मान दे, दूसरे की अपेक्षा अधिक करके अभिनन्दन (दे) और बस, प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। अन्दर गलगलिया (होते) हों और बाहर से ऐसा कहे, तुमने मुझे मेरी योग्यता प्रमाण से अधिक मान दिया है। मैं ऐसी योग्यता विकसित करूँगा। मैं योग्य नहीं हूँ, ऐसा कहे। अन्दर गलगलिया हो। आहाहा! अरे! भगवान! बापू! क्या करता है तू यह? भाई! यह तो प्रकृति के नियम का काम है। यह तेरे घर के उठाईगीर हो, वह वहाँ काम नहीं आते। आहाहा!

मुमुक्षु : पूरा जाने तब तो चारित्र आवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसे एक मिथ्यात्व है। आहाहा! अपने स्वभाव से उसे अधिक, भिन्न और विशेष जाना।

यहाँ तो प्रभु (समयसार) ३१ गाथा में ऐसा कहते हैं, **'णाणसहावाधियं मुणदि आदं'** राग से और एक समय की पर्याय से अधिक—भिन्न भगवान आत्मा है। आहाहा! ३१ (गाथा) में आता है न? **'णाणसहावाधियं'** संयोग की चीज़ से तो अधिक अर्थात् भिन्न पूर्ण है, परन्तु राग से भिन्न—अधिक है पूर्ण, परन्तु एक समय की पर्याय से अधिक है, पूर्ण भिन्न। आहाहा! ऐसा जो आत्मा, उसका आदर अन्दर सम्मान, उसका सत्कार सम्यग्दर्शन द्वारा होना चाहिए। ऐसा न करके बाहर की चीज़ के आकर्षण में आकर्षित हो गया। आहाहा! यह विभाव तूने उत्पन्न किया है। उस चीज़ से नहीं। वह चीज़ विभाव के लिए अकिंचित्कर है। समझ में आया? यह प्रवचनसार में आता है। विषय राग-द्वेष उत्पन्न करने में अकिंचित्कर है। आहाहा!

मुमुक्षु : कल स्वाध्याय में आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था न। अकिंचित्कर है। देह और देह के विषय राग-द्वेष उत्पन्न करने के लिये अकिंचित्कर है। निमित्त अकिंचित्कर है, ऐसा कहा। वह लोगों को नहीं सुहाता। निमित्त हो, परन्तु वह अकिंचित्कर है। तुझे कोई राग उत्पन्न करने में या धर्म उत्पन्न करने के लिये निमित्त अकिंचित्कर है।

मुमुक्षु : उपादान की बहुत योग्यताओं में निमित्त हो वैसा उपादान का स्वरूप है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्वयं के कारण से परिणमन है। निमित्त के कारण नहीं। समझ में आया? यही है न? इस बार भाई ने यही लिखा है जरा। भाई कैलाशचन्दजी ने जैनसंदेश में (लिखा है)। सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध नहीं करते। भले उन्हें क्या बैठा, परन्तु भाषा ऐसी है। परन्तु निमित्त से कर्ता नहीं मानते। बात सच्ची है। धन्नालालजी! निमित्त नहीं है, ऐसा नहीं है। प्रत्येक समय निमित्त है। परन्तु निमित्त कर्ता नहीं है। पर का कुछ करे, रचे, यह नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त का यथार्थ स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु। निमित्त है नहीं? धर्मास्तिकाय आदि निमित्त नहीं? परन्तु वह धर्मास्तिकाय सामनेवाले को गति करने के लिये प्रेरित करता है? कर्ता है? इसी प्रकार देव-गुरु-शास्त्र निमित्त हैं।

मुमुक्षु : प्रेरक निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेरक निमित्त है नहीं, सब उदासीन निमित्त है। इष्टोपदेश की ३५वीं गाथा में नहीं कहा? सब निमित्त धर्मास्तिकायवत् जानना। आहाहा! सन्तों की शैली दिगम्बर मुनियों की बातें जगत से पार की बातें हैं, बापू! यह तो समझे उसे निमित्त कहलाये। निमित्त कुछ करता नहीं? आहाहा! ऐसी बातें हैं, भाई!

उनको तो ऐसा है कि हमारी पण्डिताई से तुमको लाभ होता है, तब उसे मान मिले। हमारे से लाभ नहीं होता तो मान दे कौन? अरे! भाई! क्या काम है तुझे? समझ में आया? हमारे से तुमको लाभ होगा, देखो! तुमको सुनने का मिलता है। ऐसा कहकर निमित्त से लाभ होता है, यह मनवाना है उसे। अर्थात् निमित्त कुछ कर नहीं सकता, यह उसे खटकता है। तो कोई मान नहीं दे पण्डिताई को, पण्डित पढ़े हुए को। हमारे से कुछ नहीं होता तुझमें? कुछ नहीं होता। वस्तु है।

मुमुक्षु : हर वर्ष ३०-४० हजार रुपये....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें? शिक्षण शिविर। वे भाई कहते हैं न। वे कैलाशचन्दजी कहते हैं कि तुम निमित्त का निषेध करने के लिये बहुत निमित्त इकट्ठे करके बात करते हो। अरे! भगवान! ऐसे मकान छब्बीस लाख के (बनाये)। कौन बनावे? भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु! उसके कारण से हुआ है। भाई! इन रामजीभाई ने किया नहीं और वजुभाई ने किया नहीं। आहाहा! लोग ऐसा कहते हैं, महाराज कितने होशियार हैं और पुण्यवन्त हैं, वह ऐसे २६-२६ लाख के मकान (परमागममन्दिर) बनावे। परन्तु बापू! नहीं बनाया जा सकता, भाई! तुझे खबर नहीं। उसके काल में, उसके कारण से वह पर्याय वहाँ हुई है। दूसरे कोई कारीगर ने या मजदूरी ने यह मकान बनाया, इस बात में कुछ दम नहीं है। कुम्हार ने घड़ा बनाया, इस बात में कुछ दम नहीं है। घड़ा मिट्टी से हुआ है।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में आपकी आज्ञा बिना पत्ता नहीं हिलता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कितनी ही खबर नहीं, यहाँ तो क्या चलता है और क्या छपता है। यहाँ तो बात करे तब सुनते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : सर्वथा अकिंचित्कर है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा पर निमित्त अकिंचित्कर है। वरना निमित्त, निमित्त नहीं कहलाता। वरना तो वह उपादान हो जाता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपना विभाव और स्वभाव परिणाम है, ऐसा भेद नहीं जानता है,...** देखो! क्या कहते हैं ? विभाव से बन्ध और स्वभाव से मुक्ति, ऐसा नहीं जानता, **वही पुण्य और पाप दोनों को ही मोह से करता है।** देखो! इस मिथ्यात्व से राग का कर्ता हो। आहाहा! राग का कर्ता दया, दान के विकल्प का कर्ता, वह भी मिथ्यात्व है। भगवान तो ज्ञानस्वरूप प्रज्ञाब्रह्म है। आहाहा! चिद्घन है। राग तो विकार है, अचेतन है, इसे कैसे करे वह ? आहाहा! समझ में आया ? यहाँ तो भाई! भगवान के परमसत्य की बातें हैं, बापू! यह कोई वाडा नहीं, यह कोई पक्ष नहीं। यह तो वस्तु की स्थिति है यह है। पश्चात् तो बहुतों को न बैठे तो ऐसा हो—एकान्त है रे, एकान्त है। बात तो सच्ची, भाई! सम्यक् एकान्त तो यह ही है। न बैठे। यह बात विरले जीव को कान में पड़ती है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है कि 'विरला सुने कोई, विरला धारे कोई' यह बात ऐसी है, उसे विरला धारण करे। 'विरला श्रद्धा जोई।' आहाहा! यह श्रद्धा और श्रद्धा का विषय भगवान पूर्णानन्द, वह विरले ने श्रद्धा देखी। भाई! यह कोई पक्ष की बात नहीं है, बापू!

अनन्त जन्म-मरण करके, बापू! कचूमर निकल गया है, भाई! आहाहा! नरक के दुःख, निगोद के दुःख, वे सुने, परन्तु इसने विचार किया हो तो खबर पड़े। आहाहा! जीवित सूकर को... एक बात करते थे नारणभाई। मैं पारसी को मिलने गया, वहाँ जीवित सूकर था, भुंड। भुंड कहते हैं न ? सूकर। उसके पैर में लोहे के सरिया बाँधे। जीवित! बाँधकर भट्टी में जीवित डाल दिया। भट्टी में डाल दिया। नाराणभाई थे न ? हमारे पास दीक्षा ली थी। वे वहाँ पोस्टमास्टर थे। इसलिए कहीं मिलने गये थे पारसी से। तो पारसी के घर में भुंड को—सूकर को पैर में लोहे के सरिया बाँधकर अग्नि की भट्टी थी, बड़ी भट्टी, उसमें जीवित डाला। सेंकने के लिये। जैसे शकरकन्द सेंकते हैं न ? वह शकरकन्द नहीं ? शकरकन्द को बाफते हैं, वैसे बाफने के लिये। बापू! भाई!

तूने ऐसे अनन्त दुःख सहन किये हैं, हों! आहाहा! यह भूल गया। पच्चीस वर्ष का राजकुमार हो, पाँच-दस लाख की महीने की आमदनी हो, जवान हो, अच्छी कन्या से विवाह करके आया हो। वह पहली रात्रि होने से पहले उसे जीवित जमशेदपुर की भट्टी में डाले। जमशेदपुर की भट्टी है न? यह लोहे की नहीं? जमशेदपुर। वहाँ हम गये थे न। टाटा कहते हैं। भट्टी। उसे जीवित डाले और जो दुःख हो, उससे अनन्तगुणा (दुःख) नारकी को पहले पासड़े में है। आहाहा! प्रभु! तू भूल गया, भाई! तुझे खबर नहीं। दुनिया में प्रभावित हो गया तू। आहाहा!

जो कोई प्राणी विभाव से बन्ध और स्वभाव से मुक्ति निज परिणाम से (होती है), ऐसा जो मानता नहीं, वह मोह से पुण्य के परिणाम का कर्ता होता है। अर्थात् कि उसकी सावधानी स्व में नहीं और पुण्य के परिणाम में सावधान होकर, उसे करता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : नारकी को ३३ सागरोपम का दुःख है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ३३ सागर।

मुमुक्षु : दुःख सहन करने की आदत पड़ जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके पश्चात् तो क्या करे वहाँ? आहाहा! पारा की भाँति शरीर (पिघल जाये)। पारा होता है न पारा? क्या कहते हैं? पारा की भाँति यह शरीर पिघल जाये। परन्तु आयुष्य है, वहाँ तक वापस इकट्ठा हो जाये। और वह हो जाये। ऐसे ३३ सागर हो। आहाहा! बापू! यह भाई इसने सुना नहीं। उसमें जरा जवान शरीर हो, शरीर ठीक हो, उसमें पैसा-बैसा, स्त्री, पुत्र ठीक हो वहाँ हो गया मानो। ओहो! अरे! बापू! तेरे दुःख की बातें कठिन, भाई! इसलिए धर्म समझ ले, ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! बाह्य की किन्हीं चीज़ों पर प्रसन्न होने योग्य नहीं है। अरे! प्रभु! पुण्य के परिणाम का कर्ता होनापना नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं।

जिसे निज स्वभाव से मुक्ति और निज विभाव से बन्ध है, ऐसी जिसे खबर नहीं, वह पुण्य परिणाम का कर्ता मोह अर्थात् (पर में) सावधानी से होता है। आहाहा! समझ में आया? वाद-विवाद करे, पण्डित इकट्ठे होकर चाहे जो करो। वस्तु यह है। यह कोई

वाद-विवाद की वस्तु नहीं। यह तो समझने की (वस्तु है)। 'खोजी जीवे वादी मरे, साची कहवत है' खोजी जीवे। सत्य का शोधक हो, वह जीवे। वाद करने जाये तो मर जायेगा। ऐसा कहा है और अमुक में ऐसा कहा है, अरे! सुन न, भाई! इस व्यवहाररत्नत्रय को वापस आराधक कहा। भेदाभेद दो रत्नत्रय को आराधना। अभी आयेगा, गाथा में आयेगा। भेद रत्नत्रय आयेगा। ५६ गाथा में आयेगा। '**भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं श्रीधर्मं लभते**' वहाँ भेद है, वह पुण्य है, परन्तु जिसे निश्चय का आराधक है, उसे ऐसा व्यवहार होता है, इसलिए उसे व्यवहार से आराधक कहने में आया है। अकेला नहीं। अभेद-भेद दोनों इकट्ठे लेने हैं।

निश्चयस्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र प्रगट हुए हैं, वहाँ आगे साथ में व्यवहार का विकल्प ऐसी जाति का होता है, इसलिए यह बतलाने के लिये दोनों का आराधक, दोनों को सेवन करना, ऐसा कहा जाता है। उस निश्चयसहित है न राग इसलिए उसे। आहाहा! परन्तु जहाँ आगे कुछ भान ही नहीं कि विभाव और स्वभाव, मेरे परिणाम से बन्ध और मेरे परिणाम से मुक्ति। वह भान बिना का दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, अपवास के परिणाम शुभ हैं, उनका वह कर्ता होता है। आहाहा! यह दुनिया के उत्साहवाले तो यह सब पागल जैसा लगे। नहीं? आहाहा! ऐसा कर दिया काम, देश की सेवायें की, गरीबों के आँसू पोंछे, भूखे को अनाज दिया, प्यासे को पानी दिया, रोगी को औषधि दी, चबूतरे बिना के थे उन्हें चबूतरा और मकान बनाकर दिया। अब क्या किया? बापू! तूने किया (नहीं)। मुफ्त का क्या मर जाता है। कुछ किया नहीं, प्रभु! तुझे मिथ्यात्व (हुआ)। दूसरे का एक रजकण भी कर नहीं सकता और तूने क्या किया? किसका अभिमान तू करता है? आहाहा!

यहाँ तो निज शब्द कहकर तो गजब कर दिया है। अर्थात् कि पुरुषार्थ से अपना स्वभावभाव प्रगट होता है और उल्टे पुरुषार्थ से विभावभाव प्रगट होता है। यह सिद्धान्त सिद्ध किया है। समझ में आया? वह पर के कारण नहीं। आहाहा! स्वभावभाव प्रगट होता है, वह भी कहीं व्यवहार की अपेक्षा से नहीं, ऐसा कहते हैं। भले आवे व्यवहार। यह कहेंगे। **मोह से करता है।**

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की अनुभूति की रुचि से विपरीत... देखो! भगवान

आत्मा शाश्वत् चीज़ जो आनन्द का नाथ प्रभु, शुद्धात्मस्वरूप, निज शुद्धात्मा की अनुभूति। ऐसा भगवान आत्मा का अनुभव करना परिणति–पर्याय में, आनन्द के वेदन से आत्मा को जानना। आहाहा! उसकी रुचि से विपरीत **जो मिथ्यादर्शन,...** आहाहा! भगवान परमानन्द का नाथ प्रभु, परन्तु बात ऐसी है कि वर्तमान प्रगट दशा के अतिरिक्त इसने कभी कुछ देखा नहीं। प्रगट दशा में जो उघाड़ है, राग है बस, वहाँ ही उसकी समाप्ति हो जाती है। परन्तु उस प्रगट दशा का अंश है और राग है, उसके पीछे प्रभु चैतन्यतत्त्व है या नहीं? पूरा पदार्थ है या नहीं? ऐसा जो शुद्धात्मा भगवान पूर्णानन्द, उसकी अनुभूति की रुचि से विपरीत... आहाहा! मिथ्यादर्शन। उसकी अनुभूति से विपरीत, ऐसा कहा। देखी भाषा! उसकी रुचि से विपरीत मिथ्यादर्शन, झूठी श्रद्धा। आहाहा!

निज शुद्धात्मा के ज्ञान से विपरीत मिथ्याज्ञान... निज शुद्धात्मा का ज्ञान, स्वस्वरूप का ज्ञान, ऐसा जो शुद्धात्मा का ज्ञान, उससे विपरीत वह मिथ्याज्ञान। आहाहा! यह वकालत का ज्ञान, यह डॉक्टर का ज्ञान, यह व्यापार की होशियारी का ज्ञान, वह सब मिथ्याज्ञान है। आहाहा! **निज शुद्धात्मा के ज्ञान से विपरीत मिथ्याज्ञान...** है। आहाहा!

मुमुक्षु : जगत के सब व्यापार कुज्ञान में आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुज्ञान ही है। रामजीभाई जैसे को पूछा वहाँ तो कहे... मैंने कहा, तुम तो बड़े होशियार कहलाते थे। उस समय वकालत में तो पहला नम्बर था। वकील पानी भरते थे। तुम होशियार थे न? तो कहे, कुज्ञान था, ऐसा स्वयं कहते थे। दो सौ रुपये लेते थे पाँच घण्टे के। कोर्ट में जाये। ३० वर्ष पहले। कोर्ट में जाये तो दो सौ रुपये लेते थे पाँच घण्टे के। वह सब कुज्ञान था। सेठ! आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग, बापू! बहुत अलग प्रकार का है।

मुमुक्षु : आगम ज्ञान....

पूज्य गुरुदेवश्री : आगम ज्ञान, वह पर का ज्ञान है, स्व का नहीं वहाँ। आहाहा!

निज शुद्धात्मद्रव्य में निश्चल स्थिरता से उल्टा... आहाहा! निज शुद्धात्मा। देखा! सबमें निज–निज डाला है। निज शुद्धात्मद्रव्य जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, उसमें जो स्थिरता—रमणता होना चाहिए, वह चारित्र। उससे उल्टा मिथ्याचारित्र है। यह पुण्य

और पाप में रमणता, वह मिथ्याचारित्र है। दया, दान, व्रत, भक्ति, तपस्या के परिणाम विकल्पादि में रमणता, वह मिथ्याचारित्र है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन पड़े लोगों को। क्या हो? भाई! तू अनन्त काल भटका है। आहाहा! 'अनन्त काल से भटक रहा बिना भान भगवान, सेये नहीं गुरु सन्त को छोड़ा नहीं अभिमान।' आहाहा! बापू! यह कोई विद्वान की वस्तु नहीं। आहाहा! यह भी कहा था न? विद्वान निश्चय तज व्यवहार में वर्तन करे, वे विद्वान नहीं हैं। आहाहा! आया थान? आहाहा!

अपना भगवान आत्मा, उसका वर्तन अन्दर में छोड़कर व्यवहार अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में वर्ते, वह विद्वान नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है, कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी बातें अब। किसी के साथ कुछ मिलान खाये, ऐसी बात नहीं होती। भगवान आत्मा के साथ मिलान खाये, ऐसी बात है। अभी दुनिया के बड़े लोग यह क्या कहलाते हैं? कार्यकर्ता। सबको पूछो तो यह ऐसा लगे... अपने आते थे न? क्या कहलाते थे।

मुमुक्षु : गिरधरभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिरधरभाई नहीं। अपने भाई ढेबरभाई। ढेबरभाई। ढेबरभाई राजकोट। ढेबरभाई बहुत व्याख्यान में आवे। कुछ हम निमित्त तो होते हैं न किसी को? क्या निमित्त हो? उसके समय में उसकी पर्याय हो, उसमें निमित्त वहाँ होती होगी? यह दुनिया के कार्यकर्ता सब बड़े-बड़े। समझ में आया? पर का कार्य हो, वहाँ हम निमित्त तो होवें न, ऐसा कहते थे। यहाँ आते थे। वहाँ राजकोट व्याख्यान में आते थे। बापू! मार्ग अलग है, नाथ! निमित्त होना अर्थात् क्या? जो उसकी पर्याय उस काल में वहाँ हो, तब उसे निमित्त कहा जाता है। उसमें निमित्त होऊँ तो वहाँ होता है, ऐसा है? आहाहा! बहुत (कठिन) काम।

इन तीनों को बन्ध का कारण... जान। देखा! आहाहा! मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र **तीनों को बन्ध का कारण और इन तीनों से रहित भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का कारण...** देखो! आया वापस। इसमें ही आया। है न? ५३। ऊपर है, देखो! '**भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूपम् मोक्षस्य कारण**' वरना भेदरत्नत्रय है तो विकल्प, शुभभाव है

परन्तु वह निश्चय है, उसके कारण यहाँ आरोप करके भेदाभेदरत्नत्रय कहा है। आहाहा! समझ में आया? एक ओर तो पुण्य-पाप... सावधानरूप से वह कर्ता होता नहीं भेदरत्नत्रयवाला। अभेदरत्नत्रय की दृष्टिसहित में राग आता है, उसका कर्ता नहीं होता। वह जाननेवाला (रहता है)। इस अपेक्षा से भेदाभेदरत्नत्रय को कहा गया है। आहाहा! उसे होता है, ऐसा भाव। उसका कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी बातें। कहाँ थोड़ा अन्तर पड़ता है, वहाँ पूरा अन्तर पड़ जाता है, (उसकी) खबर नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार का लक्षण सर्वत्र उपचार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपचार है। वह बन्ध का कारण है, उसे निश्चयसहितवाले का राग भेदाभेदरत्नत्रय का इकट्ठा मिलाया। क्योंकि वहाँ वह उसका कर्ता नहीं। परन्तु होता है, होता है इतना बतलाने के लिये भेदाभेदरत्नत्रय कहा है। आहाहा! समझ में आया? विशेष कहेंगे। समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण ११, बुधवार
दिनांक-१७-११-१९७६, गाथा-५३ से ५५, प्रवचन-१३५

परमात्मप्रकाश। ५३ गाथा की अन्तिम एक लाईन थोड़ी बाकी हे।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र **इन तीनों से रहित...** है न अन्तिम लाईन? **भेदाभेद रत्नत्रयस्वरूप...** निश्चय अभेद शुद्ध चैतन्य आनन्द की अन्तर की रुचि-दृष्टि, उसका अन्तर का ज्ञान और अन्तर में रमणता, वह अभेदरत्नत्रय है। साथ में भेदरत्नत्रय का विकल्प आता है, इसलिए उसे कहा। कर्तारूप से नहीं। भेदरत्नत्रय का विकल्प समकिती को, ज्ञानी को आता है, परन्तु कर्तारूप से नहीं। जाननेरूप से आवे, ऐसा भाव है, इसलिए उसे मोक्ष का कारण (कहा है)। **ऐसा जो नहीं जानता है,...** निश्चय स्वभाव भगवान आत्मा, उसकी अन्तर में रुचि का परिणमन, उस स्वभाव के ज्ञान का परिणमन और स्वभाव के ज्ञान में रमणता, ऐसे जो तीन रत्नत्रय अभेद, उसके साथ विकल्प आता है। उन दो को मोक्ष का कारण नहीं मानता, नहीं जानता **वही मोह के वश से पुण्य-पाप का कर्ता होता है।** वजन तो यहाँ है। वह पुण्य और पाप के भाव का कर्ता होता है। ज्ञानी को भेदरत्नत्रय में पुण्य का भाव होता है, परन्तु वह उसका कर्ता नहीं होता। यह अन्तर है। समझ में आया?

मोह के वश से पुण्य-पाप का... मिथ्यात्व के वश होकर (कर्ता होता है)। ऐसा कहते हैं। पुण्य परिणाम का कर्ता होता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! देखो! यह मार्ग। **पुण्य को उपादेय जानके...** ऐसा कहते हैं। वह शुभभाव को आदरणीय मानकर मोह से कर्ता बनता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! **जानके करता है, पाप को हेय समझता है।** पाप के परिणमन को छोड़नेयोग्य / हेय समझता है, परन्तु पुण्य के परिणाम को कर्ताबुद्धि से उपादेय मानता है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया से बहुत अलग प्रकार है, भाई! आहाहा!

वह **मोह के वश से...** मिथ्या भ्रान्ति के वश होकर **पुण्य-पाप का कर्ता होता है।** आहाहा! ज्ञातापना जिसका स्वभाव है, उसे पुण्य परिणाम आता है, परन्तु उसका वह

कर्ता नहीं है। आहाहा! ७३ गाथा में आया था न? सम्यग्दृष्टि प्रथम से ऐसा निर्णय करता है कि मैं सदा ही विकार के स्वामीपने नहीं परिणमता, ऐसा मैं हूँ। समझ में आया? ७३ गाथा। सदा मैं पुण्य के परिणामरूप विकार, उसके स्वामीपने नहीं परिणमनेवाला वह मैं हूँ। आहाहा! विकार होगा सही, ऐसा तो कहा। परन्तु स्वामीपने परिणमूँ, वह मैं नहीं। आहाहा! यह राग मेरा है और मैं इसका स्वामी हूँ, इसरूप मैं परिणमनेवाला नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा मार्ग!

इसलिए यहाँ कहते हैं, ऐसा जो भेदाभेदरत्नत्रय का स्वरूप, उसे नहीं जानकर; मोह के वश होकर रागरूप परिणमता हूँ, वह मेरा कर्तापना है, ऐसा अज्ञानी मानता है। आहाहा! समझ में आया? **पुण्य को उपादेय जानके करता है, पाप को हेय समझता है।** कर्ता तो दोनों का है। परन्तु पुण्य को उपादेय करके कर्ता होता है। पाप को हेय समझकर भी कर्ता होता है। समझ में आया? आहाहा! यह ५३ हुई।

गाथा - ५४

अथ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणतमात्मानं योऽसौ मुक्तिकारणं न जानाति स पुण्यपापद्वयं करोतीति दर्शयति -

१७८) दंसण-णाण-चरित्तमउ जो णवि अप्पु मुणेइ।
मोक्खहँ कारणु भणिवि जिय सो पर ताइँ करेइ।।५४।।

दर्शनज्ञानचारित्रमयं यः नैवात्मानं मनुते।
मोक्षस्य कारणं भणित्वा जीव स परं ते करोति।।५४।।

दंसणणाणचरित्त इत्यादि। दंसण-णाण-चरित्तमउ सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयं जो णवि अप्पु मुणेइ यः कर्ता नैवात्मानं मनुते जानाति। किं कृत्वा न जानाति। मोक्खहं कारणु भणिवि मोक्षस्य कारणं भणित्वा मत्वा जिय हे जीव सो पर ताइं करेइ स एव पुरुषस्ते पुण्यपापे द्वे करोतीति। तथाहि - निजशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागसहजानन्दैकरूपं सुखरसास्वादरुचिरूपं सम्यग्दर्शनं, तत्रैव स्वशुद्धात्मनि वीतरागसहजानन्दैकस्वसंवेदनपरिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं, वीतरागसहजानन्दैकसमरसी भावेन तत्रैव निश्चलस्थिरत्वं सम्यक्चारित्रं, इत्येतैस्त्रिभिः परिणतमात्मानं योऽसौ मोक्षकारणं न जानाति स एव पुण्यमुपादेयं करोति पापं हेयं च करोतीति। यस्तु पूर्वोक्तरत्नत्रयपरिणतमात्मानमेव मोक्षमार्ग जानाति तस्य तु सम्यग्दृष्टेर्यद्यपि संसारस्थितिच्छेदकारणेन सम्यक्त्वादिगुणेन परंपरया मुक्तिकारणं तीर्थंकरनामकर्म-प्रकृत्यादिकमनीहितवृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति तथाप्यसौ तदुपादेयं न करोतीति भावार्थः।।५४।।

आगे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप परिणमता जो आत्मा वह ही मुक्ति का कारण है, जो ऐसा भेद नहीं जानता है, वही पुण्य-पाप दोनों का कर्ता है, ऐसा दिखलाते हैं -

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो निज आत्मा को नहिं जाने।
पुण्य-पाप मुक्ति के कारण मान उन्हें ही सदा करे।।५४।।

अन्वयार्थ :- [यः] जो [दर्शनज्ञानचारित्रमयं] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी [आत्मानं] आत्मा को [नैव मनुते] नहीं जानता, [स एव] वही [जीव] हे जीव; [ते] उन पुण्य-पाप दोनों को [मोक्षस्य कारणं] मोक्ष के कारण [भणित्वा] जानकर [करोति] करता है।

भावार्थ :– निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग सहजानंद एकरूप सुखरस का आस्वाद उसकी रुचिरूप सम्यग्दर्शन, उसी शुद्धात्मा में वीतराग नित्यानंद स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान और वीतरागपरमानंद परम समरसीभावकर उसी में निश्चय स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र–इन तीनों स्वरूप परिणत हुआ जो आत्मा उसको जो जीव मोक्ष का कारण नहीं जानता, वह ही पुण्य को आदरने योग्य जानता है, और पाप को त्यागने योग्य जानता है। तथा जो सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है, उसके यद्यपि संसार की स्थिति के छेदन का कारण, और सम्यक्त्वादि गुण से परम्पराय मुक्ति का कारण ऐसी तीर्थंकरनामप्रकृति आदि शुभ (पुण्य) प्रकृतियों को (कर्मों को) अवाँछित वृत्ति से ग्रहण करता है, तो भी उपादेय नहीं मानता है। कर्मप्रकृतियों को त्यागने योग्य ही समझता है।।५४।।

गाथा–५४ पर प्रवचन

५४। **आगे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप परिणमता जो आत्मा वह ही मुक्ति का कारण है,...** अब सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र को मुक्ति का कारण कहा था तो अब कहते हैं कि वह सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूप **परिणमता जो आत्मा वह ही मुक्ति का कारण है,...** आहाहा! समझ में आया? पहले ऐसा कहा था कि सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र (मुक्ति का कारण है)। कहा था न ऊपर? **शुद्धात्मा की अनुभूति की रुचि से विपरीत...** रुचि, वह सम्यक् यथार्थ। ऐसा उसका ज्ञान, वह यथार्थ और उसमें स्थिरता, वह यथार्थ। वह मोक्ष का मार्ग। अब यहाँ कहते हैं कि वह सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्ररूप परिणमनेवाला। **आत्मा वह ही मुक्ति का कारण है,...** आहाहा! अभेद लिया। समयसार की १६वीं गाथा में लिया है न वह? **'दंसणणाण–चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं'** १६वीं गाथा। दर्शन–ज्ञान–चारित्र निश्चय, उसे साधु को सेवन करना चाहिए। **'ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥'** उसमें तीन वह स्वयं आत्मा है। १६वीं गाथा में है। वह सब शैली ऐसी शैली आचार्य ने (की है)। कुन्दकुन्दाचार्य के सब बीज सर्वत्र पहुँचे हैं। आहाहा! पर्याय से जानता है, इसलिए पर्याय से बात की कि दर्शन–ज्ञान–चारित्र निश्चय, हों!

वह मोक्ष का मार्ग है। परन्तु उसमें इन तीन में वह आत्मा वह मोक्ष का कारण है। **'तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो॥'** आहाहा! समझ में आया इसमें?

यह यहाँ कहते हैं। सम्यग्दर्शन—स्वरूप का अनुभव होकर प्रतीति होना, सम्यग्ज्ञान —आत्मा के अनुभव का ज्ञान और आत्मा में स्वरूप की स्थिरतारूपी चारित्र, इन तीनरूप से परिणमनेवाला आत्मा **वह ही मुक्ति का कारण है, जो ऐसा भेद नहीं जानता है,...** आहाहा! ऐसा भेद नहीं जानता। **वही पुण्य-पाप दोनों का कर्ता है, ऐसा दिखलाते हैं—** आहाहा! पुण्य और पाप का कर्ता होता है। दया, दान, व्रत, तप के भाव होते हैं, उनका वह कर्ता होता है। समझ में आया?

आत्मा, तीनरूप से परिणमनेवाला आत्मा मुक्ति का कारण है, ऐसा जो जानता नहीं, वह व्यवहार के व्रत का कर्ता होता है। आहाहा! समझ में आया? ५४।

१७८) **दंसण-णाण-चरित्तमउ जो णवि अप्पु मुणेइ।**
मोक्खहँ कारणु भणिवि जिय सो पर ताइँ करेइ।।५४।।

आहाहा! **अन्वयार्थ :- जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी... 'चारित्रमयी' आत्मा को नहीं जानता,...** देखा! अभेद किया। 'मयी' कहा न? सम्यग्दर्शन... आहाहा! भगवान हीरा चैतन्य प्रभु, अनन्त गुण की शान्ति और आनन्द का धाम। 'स्वयं ज्योति सुखधाम' आहाहा! वह इन बाहर के पदार्थों में आकर्षित होकर, मोहीरूप होकर पाप का कर्ता होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! और अपने स्वभाव का परिणमन, वह आत्मा, ऐसा नहीं जानता, वह दया, दान, व्रत, पूजा और तप का जो भाव (होता है), उसका वह कर्ता होता है। आहाहा! धन्नालालजी! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! अरे! चौरासी के अवतार में दुःखी-दुःखी है। कुछ शरीर जवान मिले, ठीक मिले, फिर उसमें इसे ऐसा हो जाता है कि अपने कुछ ठीक है। जड़ के घेराव में भगवान उलझन में आ गया। आहाहा!

मुमुक्षु : भ्रमणा में।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भ्रमणा में। शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, खाने-पीने की सुविधा, स्त्री, पुत्र, पुत्रों की सुविधा। आहाहा! यह सब जड़ का, पर का घेराव है। इसे मोह की

दृष्टि से देखने पर 'यह मुझे ठीक है' ऐसा करके घेराव में घिर गया है।

भगवान आत्मा अन्तर सम्यग्दर्शन स्व का, स्व का ज्ञान और स्व का चारित्र, इन तीनरूप से परिणमता प्रभु, मोक्ष का कारण है। उसे भूलकर, उसे नहीं जानकर... आहाहा! **वही हे जीव! उन पुण्य-पाप दोनों को मोक्ष के कारण...** है भाषा? आहाहा! यह पुण्य के भाव हैं, उसे मोक्ष का कारण जानकर वह करता है। आहाहा! **मोक्ष के कारण जानकर करता है।** मिथ्यात्व क्यों लिया साथ में? मिथ्यात्व परिणाम है न? पुण्य को धर्म मानना, वही मिथ्यात्व है। आहाहा! पुण्य को मोक्ष का कारण मानना, वह मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व और पुण्य के परिणाम का वह कर्ता होता है। आहाहा! परमात्मप्रकाश में बहुत संक्षिप्त बात में बहुत मर्म समाहित कर दिया है। आहाहा! भाई! तेरा छूटने का मार्ग तो छूटी हुई चीज़ अन्दर मुक्त है, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता, वह कारण है। उसरूप परिणमित भगवान आत्मा मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं जानता... आहाहा! वह पुण्य और पाप का भाव मोक्ष का कारण जानकर, **जानकर...** ऐसी भाषा है। वह मुझे मोक्ष करायेगा, ऐसा जानकर (उसे करता है)। आहाहा! **करता है।** यहाँ कर्ता का वहाँ वजन है। आहाहा! ज्ञानी को पुण्यभाव भेदरत्नत्रय आता है, आस्रव भी होता है। समझ में आया? परन्तु उसे वह कर्ताबुद्धि से (कर्ता) नहीं। निर्बलता के कारण आता है, उसे आस्रव होता है। परन्तु वह कर्तारूप से नहीं। आहाहा! यह बात है। समझ में आया?

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... आहाहा! भगवान निज शुद्धात्मा, ऐसी भाषा है। तीर्थंकर या केवली या वीतराग भी नहीं। आहाहा! निज शुद्धात्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, निज शुद्धात्मा की भावना अर्थात् एकाग्रता। आहाहा! उससे **उत्पन्न जो वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस का आस्वाद...** आहाहा! रुचि किसकी? अभी कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शनरूपी रुचि किसकी? कि **वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस का आस्वाद...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का आस्वाद **उसकी रुचिरूप सम्यग्दर्शन...** आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन। आहाहा! वास्तव में तो स्वयं वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस है, उसका आस्वाद, उसके आनन्द की पर्याय का

आस्वाद। आहाहा! इन्द्र के वैभव भी जिसके समक्ष सड़ी हुई बिल्ली और सड़े हुए श्वान जैसे लगें उसे। आहाहा!

जिसका वीतराग सहजानन्द एकरूप (स्वभाव)। वापस भाषा है। त्रिकाली। ऐसा जो सुखरस का आस्वाद, उसका जो अनुभव। **उसकी रुचिरूप...** आहाहा! आनन्द की रुचि हुई उसे। पूर्णानन्द की रुचि हुई, पर्याय में आनन्द आया। आहाहा! ऐसी रुचिरूप सम्यग्दर्शन। अब यह व्याख्या नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा, बस, जाओ सम्यग्दर्शन है। यहाँ तो परमात्मा वीतरागमूर्ति प्रभु सहजानन्द एक स्वभाव का रसस्वरूप प्रभु, उसका आस्वाद होना। आहाहा! उसका पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होना, उस सहित की रुचि को सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? अब इस सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता, कैसे हो इसकी खबर नहीं होती और व्रत, तप और चारित्र हो गया अन्दर से। अरे प्रभु! नुकसान तो इसे है न, बापू! आहाहा!

उसी शुद्धात्मा में... अब सम्यग्ज्ञान वर्णन करते हैं। **वीतराग नित्यानन्द...** नित्य आनन्द त्रिकाली स्वयं। **एक।** इसमें एक (शब्द) रह गया है। एक शब्द चाहिए यहाँ बीच में। **शुद्धात्मा में वीतराग नित्यानन्द एक स्वसंवेदनरूप...** आहाहा! भगवान आत्मा का एक ही संवेदनरूप... आहाहा! ऐसा जो सम्यग्ज्ञान। व्याख्या तो देखो! शास्त्रज्ञान और पढ़े हुए का ज्ञान, यह बात कहीं ली नहीं। आहाहा! भगवान! तू पूर्णानन्द प्रभु **वीतराग नित्यानन्द एक स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान...** उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! जिसे अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के साथ जो ज्ञान है, उसे ज्ञान कहते हैं। आहाहा! अरे! ऐसी सत्य बात कान में पड़े नहीं। गोते खाये बाहर से, यह यात्रा की और यह प्रसन्न... सवेरे कोई आये थे न अहमदाबादवाले? अहमदाबादवाले आये थे कोई। मोटर खराब हो गयी थी और रात रहे थे यहाँ समिति में। आये थे बेचारे। आहाहा! परन्तु यह मानो हम यात्रा कर आये, इसलिए कितने पाप धूल गये होंगे मानो। धर्म हो जायेगा।

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसे नहीं जाननेवाले वह मोह से पुण्य के कर्ता उपादेयबुद्धि से होते हैं। आहाहा! यह सम्यग्ज्ञान की व्याख्या की। सम्यग्ज्ञान की व्याख्या समझ में आती है? शास्त्र इतना पढ़ा और शास्त्र इतने आये,

इसलिए सम्यग्ज्ञान है, यह नहीं। आहाहा! **शुद्धात्मा में वीतराग नित्यानन्द एक स्वसंवेदनरूप...** स्व अर्थात् अपना प्रत्यक्ष वेदन। ऐसा जो **सम्यग्ज्ञान...** आहाहा! भाषा बहुत संक्षिप्त और भाव बहुत गम्भीर।

तीसरा। चारित्र किसे कहना? यहाँ तो ऐसा कहना है कि ऐसा स्वरूप जो है, उसे जानता नहीं, ऐसा कहकर पुण्य का कर्ता होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और ऐसा स्वरूप जो जाने, उसे पुण्यभाव आवे सही। कर्ता नहीं होता। जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? महा भवसिन्धु, आहाहा! समुद्र है बड़ा चौरासी का अवतार। आहाहा! एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। वह कोई पूछता था कुत्ते-कौवे के अवतार किये होंगे? यहाँ कल भाई था। शिक्षक था। शिक्षक आया था। आत्मधर्म वाँचता है। लेता होगा कहीं से। ब्राह्मण है। कमळेज। कमळेज-कमळेज यह कैसा? कमळेज है न यहाँ गाँव? कमळेज बोटाद से तीन कोस भावनगर से। कमळेज है न! है न, हम गये थे। (संवत्) १९७७ में कमळेज में गये थे। १९७७ में पहले भावनगर आये थे। उसे ५६ वर्ष हो गये। तब भावनगर से कमळेज गये थे। वहाँ कोई हीरालाल था। कोई गृहस्थ का घर है, वहाँ उतरे थे।

मुमुक्षु : पटेल-पटेल।

पूज्य गुरुदेवश्री : पटेल। हीरालाल पटेल। उनकी वाडी है। खबर है। यह तो ५६ वर्ष हो गये। ७७। २३ और ३३। वे कल आये थे। कमळेज का छोटा लड़का ब्राह्मण है परन्तु... आहाहा! यह तो आपने उद्धार का मार्ग बहुत किया। शिक्षक है यहाँ। आत्मा का संसार से उद्धार करने का मार्ग बहुत सरस निकाला। कहीं है नहीं। सर्वत्र बातें। पुण्य और पाप की बातें। बहुत तो पाप से बचने को पुण्य करे तो हो गया। जाओ। आहाहा!

तीन लोक का नाथ तो पुण्य-पापरहित चीज़ है। जो चीज़ जिससे रहित है, उससे ही प्राप्त होगी? आहाहा! यह भगवान तो ज्ञान और आनन्द के स्वभाववाला तत्त्व है। तो ज्ञान और आनन्द और वीतरागस्वभाव से वह प्राप्त हो ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : साहेब! मन्दिर में जायें तो हमारे क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर में जाकर इस आत्ममन्दिर में जाना। वह तो शुभभाव है, होता है परन्तु जिसे आत्मदर्शन है, वह उस शुभभाव का कर्ता नहीं है और जिसे वह नहीं, यहाँ यह कहना है। जिसे वह नहीं, उसका वह कर्ता होता है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! तुम्हारे कहाँ वहाँ... अब जहाँ मन्दिर नहीं, वहाँ तुमने पड़ाव डाला है।

मुमुक्षु : आज सवेरे निश्चित कर लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : पूछा था मैंने। महीने में दो बार जाता हूँ। पार्श्वनाथ। सम्मेदशिखरजी नजदीक आया उसे। परन्तु प्रतिदिन के भाव हैं, वह तो मन्दिर तो है नहीं और वहाँ मजा करते हैं हम। देवानुप्रिया! यह पूछा था सवेरे। मैंने कहा, तुम्हारे क्या गाँव कहलाता है?

मुमुक्षु : झरिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : झरिया और धनबाद में दिगम्बर मन्दिर तो है नहीं। हमेशा दर्शन करने का (योग कैसे हो)? फिर बचाव किया था। महीने में दो बार सम्मेदशिखर जाता हूँ। नजदीक है न, इसलिए (जाता हूँ)। आहाहा

अरे! कठिन बात, बापू! प्रभु! तू तो वीतराग है न! इस राग से कैसे लाभ हो? वीतरागस्वभावी भगवान को राग से लाभ कैसे हो? आहाहा! वीतरागस्वभावी प्रभु को वीतरागस्वभाव की परिणति से लाभ होता है। आहाहा! कठिन तो है परन्तु मार्ग तो यह है, प्रभु! आहाहा! अरेरे! दु:खी होकर मर गया है अनन्त काल में। ऐसे देखे। ऐसे दु:ख से (मरे), मरते हुए ऐसी तड़पड़ाहट करे। आहाहा! यही कहते थे रात्रि में। नहीं? उस हार्ट का। हार्ट का हो तो ऐसा हो गया था शरीर। क्या होता था? पीड़ा।

मुमुक्षु : पाटियाभींस।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाटियाभींस ऐसा अपने कहते थे पहले। अब यह हार्ट कहलाता है। श्वास न ले सके। पानी निकले न पसीना? इसलिए रक्त है, वह ऐसे दब जाये। गाढ़ हो जाये, इसलिए श्वास न ले सके। आहाहा! ऐसे हार्टफेल के मरण के भाव अनन्त किये है, भाई!

जीवित विवाह किया, २५ वर्ष की उम्र। जिस दिन विवाह किया और उस दिन

ही शत्रु ने आकर अग्नि में डाला पूरा जीवित। भाई! ऐसे भव भी तूने अनन्त किये हैं। प्रभु वीतरागमूर्ति आत्मा के दर्शन वीतराग परिणति से होते हैं। समझ में आया? मन्दिर के भगवान के दर्शन तो शुभभाव से होते हैं। यह भगवान के दर्शन वीतरागभाव से होते हैं। आहाहा! श्रद्धा में तो यह बात ले। आहाहा! अब चारित्र लेते हैं।

वीतराग परमानन्द एक परम समरसीभावकर... वहाँ 'एक' चाहिए। चारित्र की व्याख्या करते हैं। चारित्र किसे कहना? आहाहा! 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'— तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र है। इसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान की व्याख्या की। अब सम्यक्चारित्र की (बात है)। **वीतराग परमानन्द एक परम समरसीभाव...** समता के पिण्डरूप भगवान आत्मा... आहाहा! वीतरागस्वभाव से सराबोर प्रभु... आहाहा! ऐसा तू **वीतराग परमानन्द एक परम समरसीभाव...** परम समरसीभाव। एकरूप परम समरसीभाव। आहाहा!

उसी में निश्चय स्थिरतारूप... भाषा देखो! आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा परमवीतराग एक परमसमरसी। समरसी वीतरागरस। आहाहा! उसमें स्थिरता। **उसी में निश्चय स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र...** देखो! यह चारित्र की व्याख्या। आहाहा! यह तो अभी सम्यक्त्व का ठिकाना नहीं और यह व्रत और तप लेकर बैठे, वह हो गया चारित्र। अरे! क्या हो? बापू! उसमें कहीं तेरी निन्दा की बात नहीं, नाथ! तेरे हित की बात है, प्रभु! आहाहा! अहित किस प्रकार कर रहा है, उसकी इसे खबर नहीं। आहाहा! ऐसा जो चारित्र... आहाहा! अब यहाँ तो कहीं सम्यक्त्व का ठिकाना नहीं, सम्यग्ज्ञान का ठिकाना नहीं। पंच महाव्रत के अट्ठाईस मूलगुण हैं, उसके व्यवहार का ठिकाना नहीं और हम सम्यक्चारित्र में आ गये, लो! यह स्त्री, पुत्र छोड़े, दुकान छोड़ी, धन्धा छोड़ा, हिंसा छोड़ी, यह हमारे चलता नहीं, यह हमारे चलता नहीं। परन्तु यह चलता नहीं— चलता नहीं, यह भाव ही शुभभाव है। चाण्डालीनी का पुत्र ब्राह्मण के यहाँ रहे (और कहे) यह हमारे चलता नहीं, यह हमारे चलता नहीं। परन्तु तू चाण्डालीनी का पुत्र स्वयं है। इसी प्रकार शुभभाववाला ऐसा कहे कि यह हमारे चलता नहीं। शुभभाव स्वयं विकार है। वह वृत्ति का उत्थान है। आहाहा! ऐसी बात है, भगवान! तेरी बलिहारी है, नाथ! तू कौन है? आहाहा!

ऐसा जो वीतरागी समरसीभाव **उसी में निश्चय स्थिरतारूप... उसी में निश्चय**

स्थिरतारूप... समरसी, परमसमरसी, एक परमसमरसीभाव ऐसा जो स्व-स्व-स्वरूप... आहाहा! उसमें स्थिरता। स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र। इन तीन की व्याख्या (की)। आहाहा! समझ में आया? **इन तीनों स्वरूप परिणत हुआ...** इन तीन स्वरूप परिणति हुआ, पर्याय में उसका वीतरागपने परिणमित होना। आहाहा! **जो आत्मा... तीनों स्वरूप परिणत हुआ जो आत्मा उसको जो जीव मोक्ष का कारण नहीं जानता,...** आहाहा! **वीतराग सहजानन्द एकरूप सुखरस का आस्वाद...** ऐसा जो भगवान, उसकी रुचि, उसे नहीं जानता। **शुद्धात्मा में वीतराग नित्यानन्द स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान...** उसे नहीं जानता। **वीतराग परमानन्द एक परम समरसीभावकर उसी में निश्चय स्थिरतारूप सम्यक्चारित्र...** इस प्रमाण नहीं जानता। आहाहा! **वह ही पुण्य को आदरनेयोग्य जानता है,...** आहाहा! ऐसी बात स्पष्ट पड़ी है अब इसे... शान्तिभाई! कैसी है, देखो न! आहाहा!

प्रभु! तेरा आनन्द तुझमें है। वीतरागी परम आनन्दस्वरूप तू है। आहाहा! ऐसा वीतरागी एकरूप समरसीभाव, उसमें स्थिर होना, वह चारित्र है। आहाहा! ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणामरूप से परिणमता आत्मा, वह मोक्ष का कारण है, ऐसा नहीं जानता, वह पुण्य को मोक्ष का कारण मानकर कर्ता होता है। ऐसा है। आहाहा! आचार्य तो निधान छोड़ गये हैं। आहाहा! जंगल में रहते थे, विकल्प आया, उसके भी कर्ता तो नहीं थे। शास्त्र रच गये हैं। उन्हें देखने का, सुनने का समय न मिले। जिस प्रकार से कहा है, उस प्रकार से देखने का, सुनने का समय नहीं मिलता। अरे! इसके दु:ख का अन्त कब आवे? भाई! आहाहा!

पुण्य को आदरनेयोग्य जानता है,... आहाहा! अब वे कहें कि नहीं, सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण है। यह आयेगा अभी। **और पाप को त्यागनेयोग्य जानता है।** दो भाषा कही। पुण्य को—शुभभाव को आदरनेयोग्य मानता है और अशुभ को छोड़नेयोग्य मानता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमता आत्मा को नहीं जानता, पुण्य को आदनेयोग्य मानता है और पाप को छोड़नेयोग्य मानता है। आहाहा! ऐसा होकर दोनों का कर्ता होता है, ऐसा कहना है। ज्ञातास्वभाव को छोड़कर इनका कर्ता होता है। आहाहा! यह तो धीर का काम है, बापू! 'निभ्रत' आया था न? 'निभ्रत' शब्द (था)।

निश्चिन्त। आहाहा! निभ्रत पुरुषों का काम है। चिन्ता के, विकल्प के जालरहित ऐसे पुरुषों का यह काम है। समझ में आया? विकल्प के जाल में उलझ रहे हैं, उन्हें यह पता नहीं लगता। आहाहा!

तथा जो सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है,... देखो! अब वापस थोड़ा वह पुण्य डालना है। **सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है, उसके यद्यपि संसार की स्थिति के छेदन का कारण और सम्यक्त्वादि गुण से...** देखो! भाषा यह है। परम्परा-परम्परा किसे होती है? समझ में आया? संसार की लम्बी स्थिति छेदने में शुभभाव स्थिति कम करता है। इतना। **और सम्यक्त्वादि गुण से...** सम्यग्दर्शन आदि **गुण से परम्पराय मुक्ति का कारण ऐसी तीर्थंकरनामप्रकृति आदि शुभ (पुण्य),...** आहाहा! **प्रकृतियों को (कर्मों को) अवांछितवृत्ति से ग्रहण करता है,...** आस्रव आता है, ऐसा चाहिए यहाँ। ग्रहण का अर्थ अग्रहण नहीं चाहिए। वहाँ ऐसा चाहिए। है? **'अनीहित' 'वृत्त्या विशिष्टपुण्यमास्रवति'** ऐसा है संस्कृत, भाई! पुण्य आता है, इतनी बात है। समझ में आया?

क्या कहा यह? **सम्यग्दृष्टि जीव रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है,...** यह बात तो पहली। अब इसे **संसार की स्थिति के छेदन का कारण, और सम्यक्त्वादि गुण से...** परन्तु सम्यक्त्व आदि गुण है उसे। (वह पुण्य प्रकृति) **परम्पराय मुक्ति का कारण ऐसी तीर्थंकरनामप्रकृति आदि शुभ (पुण्य) प्रकृतियों को (कर्मों को) अवांछितवृत्ति से आस्रव आता है...** आस्रव आता है। आहाहा! कैसी शैली है! उस पुण्यभाव का कर्ता नहीं, तथापि पुण्यभाव है, उसका उसे आस्रव आता है। उस सम्यग्दृष्टि जीव को वह परम्परा मुक्ति का कारण कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वर्तमान में वह भाव छूटा नहीं, बाद में छोड़ेगा, इसलिए उसे परम्परा कारण कहने में आता है। उस सम्यग्दृष्टि जीव को, ऐसी भाषा है। देखो! वे ऐसा कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि हो परन्तु शुभ करे तो वह करते-करते निश्चय होगा। ऐसी बात है। बड़ा अन्तर। अब उसे तोड़ना कब? यह वाद और विवाद चढ़ेगा, बापू! मार्ग (हाथ) नहीं आयेगा, बापू! आहाहा! जिसकी अभी दृष्टि मिथ्यात्व है और

वह शुभक्रिया व्रतादि, तपादि करता है, उसकी तो यहाँ बात ही नहीं है। वह तो अनन्त बार किये ऐसे। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' तो उससे कुछ आत्मज्ञान नहीं हुआ।

मुमुक्षु : वह तो तीर्थंकर प्रकृतिवाला ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो तीर्थंकर प्रकृति समकिती है, उसे होती है। तीर्थंकर प्रकृति बाँधे कौन? समकिती। और उस प्रकृति की... इसमें कहेंगे अभी। अवांछितवृत्ति से आस्रव होता है उसे। भावना नहीं परन्तु वह बन्धन का भाव आया है, इसलिए उसे आस्रव होगा। आहाहा! तथापि **तो भी उपादेय नहीं मानता है।** देखा! शुभभाव है, आस्रव आयेगा परन्तु उपादेय नहीं मानता। परम्परा मुक्ति का कारण सम्यग्दृष्टि जीव को (होने) पर भी उसे उपादेय मानता नहीं। आहाहा! है? देखो न, कथन कितना स्पष्ट है! आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू!

एक तो आत्मा **परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है,...** एक बात। **उसके यद्यपि संसार की स्थिति के छेदन का कारण, और सम्यक्त्वादि गुण से परम्पराय मुक्ति का कारण ऐसी तीर्थंकरनामप्रकृति आदि शुभ (पुण्य) प्रकृतियों को (कर्मों को) अवांछितवृत्ति से आस्रव आता है...** आस्रव आता है। **तो भी उपादेय नहीं मानता।** आहाहा! भाव आता है। परम्परा मुक्ति का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित है, इसलिए कहा जाता है, तथापि उसे उपादेय नहीं मानता। आहाहा! कितना स्पष्ट है!

मुमुक्षु : जगत में तो पुण्यशाली कहे जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यशाली सब भाग्यशाली भटकनेवाले हैं। पुण्यशाली अर्थात् क्या? पुण्य में बढ़-चढ़ गये। आहाहा! धूल भी पुण्यशाली नहीं। पुण्यशाली किसे कहना? पुण्यशाली तो आत्मगुण प्रगट हुए, उसे पुण्यशाली कहा जाता है। पुण्य शब्द से पवित्र है। पुण्य का अर्थ पवित्र होता है। आहाहा! इसका अर्थ तो ऐसा है। पुण्यशाली तो उसे कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वह पुण्यशाली है। आहाहा! बाकी सब भाग्यहीन हैं। आहाहा! और इसीलिए यहाँ समकिती लिया और इससे तीर्थंकरप्रकृति समकिती को होती है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव को परम्परा कारण, ऐसी

जो तीर्थंकरप्रकृति आदि, ऐसा होने पर भी उसका आस्रव आवे सही, परन्तु उसे वह उपादेय नहीं मानता। आहाहा!

मुमुक्षु : चाहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाहे नहीं। आता है। आता है, निर्बलता है न इतनी, इसलिए आता है। आहाहा! सौ कलशी अनाज पाके उसमें सौ गाड़ा घास साथ में होती है। सौ गाड़ा। परन्तु वह वास्तविक कृषिकार घास के लिए (बीज) नहीं बोता। अनाज के लिए (बोता है)। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव शुभभाव को आदरता नहीं परन्तु साथ में घास होती है। आहाहा! और उस प्रकृति से उसे आस्रव आता है। आस्रव आता है इतना, हों! ग्रहण करता है, ऐसा नहीं। **तो भी उपादेय नहीं मानता।** आहाहा!

ओहो! सन्तों की शैली तो देखो! श्रीमद् कहते हैं न कि दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। आहाहा! क्या उन्हें कहना है। अकेला वीतरागभाव वर्णन करना है उसमें। श्वेताम्बर में रस शिथिल होता गया। शिथिलता... ऐसा पाठ है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण। शिथिलता का अर्थ विपरीतता है। रस शिथिल होता गया। वीतरागता आगे चली गयी। आहाहा!

यह वीतरागस्वरूप भगवान, उसे वीतराग की परिणति, वह धर्म। उसकी जाति की स्वभाव की परिणति, वह धर्म है। उसके बदले राग जो विपरीत भाव, वह धर्म का कारण है, ऐसा मानकर मोह से उस पुण्य को आदरकर कर्ता मानता है। आहाहा! पाप को हेय मानकर कर्ता मानता है।

मुमुक्षु : पाप को हेय माना, इतना आधा सत्य आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ सत्य है? एक भी सच्चा नहीं। उन दो के बीच की अपेक्षा कहते हैं। पुण्य को उपादेय माने और पाप को हेय माने। ऐसा।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप दोनों को हेय गिनना है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हेय है। दोनों हेय है।

मुमुक्षु : पहले पाप को तो गिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। पाप को हेय गिना नहीं। उसने तो पुण्य को

आदरणीय मानकर, पाप को हेय मानकर स्वभाव को छोड़ दिया है, ऐसा कहना है। आत्मा को... नहीं कहा?

रत्नत्रयस्वरूप परिणत हुए आत्मा को ही मोक्ष का मार्ग जानता है,... आता है न? **मोक्ष का कारण नहीं जानता है।** आया था ऊपर। ऊपर है, देखो! **तीनों स्वरूप परिणत हुआ जो आत्मा उसको जो जीव मोक्ष का कारण नहीं जानता...** यह नहीं जानता वह पुण्य को आदरणीय और पाप को हेय मानता है। इसलिए वस्तु तो यहाँ निषेध हो गयी। समझ में आया? है न, ऊपर है। **उसको जो जीव मोक्ष का कारण नहीं जानता, वह ही...** इसकी बात है। **पुण्य को आदरनेयोग्य जानता है, और पाप को त्यागनेयोग्य जानता है।** देखो! वह। दोनों आदरनेयोग्य नहीं, उसके बदले सम्यग्दर्शन बिना का जीव-आत्मा के शुद्ध परिणमन बिना का जीव अथवा उसे नहीं जानता जीव पुण्य को आदरणीय और पाप को हेय मानता है, ऐसा कहना है। पाप हेय है, पुण्य... आहाहा!

उस चाण्डलिनी के पुत्र में जवाब ऐसा दिया है। चाण्डालिनी का पुत्र ब्राह्मण के यहाँ गया। ब्राह्मण कहे, हमारे यह चलता नहीं... हमारे यह चलता नहीं... हमारे यह चलता नहीं... परन्तु नहीं चलता, नहीं चलता (ऐसा कहता है परन्तु) तू स्वयं चाण्डालिनी का पुत्र है न! इसी प्रकार शुभभाववाला कहता है हमारे यह नहीं चलता... हमारे यह नहीं चलता। परन्तु वह स्वयं अधर्म है न! नहीं चलता-नहीं चलता, ऐसा भाव ही अधर्म है। आहाहा! ऐई! देवानुप्रिया! ऐसी बातें हैं। वहाँ धनबाद में मिले, ऐसा नहीं है। धनबाद क्या झरिया। भगवान के दर्शन नहीं मिले कभी। सुनने का नहीं मिले। रोटियाँ खाने का मिले ठीक से।

मुमुक्षु : रोटियाँ तो मिले ही न जहाँ जाये वहाँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई को रखा है न वापस। कुछ देंगे न इन्हें? भाई को देंगे इसलिए यह सम्हालते हैं इन्हें, ऐसा। आहाहा! यह संसार की स्थिति ऐसी है, बापू! यह तो जानने के लिये बात है। आहाहा!

ऐसा जीव जो है, वह इस प्रकार से मानता है, ऐसा कहना है। पुण्य भी हेय है

और पाप भी हेय है, ऐसे दो न मानकर, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से परिणत आत्मा मोक्ष का कारण है, उसे न जानकर, हेय जो पुण्य है, उसे उपादेयरूप से कर्तारूप से मानता है, पाप का कर्ता होकर हेय मानता है। आहाहा! वास्तव में तो दोनों एकरूप पाप है। दोनों एकरूप अधर्म है। उसका अज्ञानी दो भाग करता है, ऐसा कहना है। समझ में आया? आहाहा! ओहो! आचार्यों ने कैसा काम (किया है)! दुनिया की दरकार छोड़ दी और ऐसा कहने से समाज तुलना करेगी या नहीं, समाज खड़ी रहेगी या नहीं जैन धर्म में? उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। मार्ग यह है। आहा!

दो बात हुई। एक तो स्वरूप का जाननेवाला नहीं, वह पुण्य को आदरणीय और पाप को हेय मानता है। दूसरी बात। समकित आदि गुणवाले जीव को तीर्थंकरप्रकृति आदि का शुभभाव होता है, वह परम्परा मुक्ति का कारण कहा जाता है। उसे अवांछित वृत्ति से पुण्यास्रव आता है तथापि उपादेय नहीं जानता। आहाहा! वजन यहाँ है। परम्परा मुक्ति का कारण होने पर भी उसे उपादेय नहीं मानता। आहाहा! फिर छोड़ना पड़ेगा न? छोड़नेयोग्य तो अभी मानता है। परन्तु अभी छोड़ सका नहीं। बाद में छोड़ेगा इसलिए पहले से उसे उपादेय नहीं मानता। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! यह तो परमात्मा वीतराग के घर की बात है, भाई! और वह तेरे हित की बात है, प्रभु! आहाहा! जन्म-मरण के... देव में दुःख, स्वर्ग में दुःख, सेठाई में दुःख। सब दुःख से पिल गये हैं बेचारे। जैसे घाणी में तिल पिल जाते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी दुःख में पिल रहे हैं। भाई! इसे खबर नहीं। समझ में आया?

सन्निपातिया दाँत निकाले (खिलखिलाकर हँसे तो क्या वह) सुखी है? सन्निपात इतना हो उसे। ऐसे खिलखिलाकर दाँत निकाले। साथवाला विचार करे कि अब घड़ी दो घड़ी है। अभी शान्त हो जायेगा। ऐसा देखा है हमने नजरों से, हों! नजरों से नहीं परन्तु साथ में बैठे सुना है। लींबडा में पहले की बात है। लींबडा गाँव है न? बाहर कमरा खाली था वहाँ रहते थे। वहाँ एक भाई मरने की तैयारी और रात्रि में दाँत निकाले। आहाहा! विवाहित युवक। आठ-आठ लोग पकड़े तो पकड़ा रहे नहीं। वह बल होगा? आहाहा! वह अब अभी शान्त हो जायेगा। हाय... हाय... दिन उगने से पहले समाप्त हो गया।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, बाहर से जो माने, पुण्य के परिणाम और पुण्य के फल... आहाहा! वे सब सन्निपातिया हैं। वे सब दाँत निकालते हैं कि हम सुखी हैं। वे सन्निपातिया जैसे हैं। दो-पाँच-दस करोड़ पैसे हों, स्त्री-पुत्र ठीक हो, कमानेवाले लड़के पके हों। बारह-बारह लड़के हों। एक-एक लड़का कमायी में चढ़ गया हो दो-दो लाख रुपये, पाँच लाख (कमाता हो)... आहाहा! उस दुःख के घेरे में तू घिर गया है, प्रभु! आहाहा! उसमें कहीं सुख की गन्ध नहीं। दुःख का वेदन है। आहाहा! यहाँ तो पुण्य परिणाम, वह भी दुःख का वेदन है, ऐसा कहते हैं। उसके फलरूप से धूल और बाहर में मिले, वह तो और (कहीं रह गये)। आहाहा! ऐसी व्याख्या। ऐसा व्याख्यान। आहाहा!

उपादेय नहीं मानता है। कर्मप्रकृतियों को त्यागनेयोग्य ही समझता है। लो! तीर्थंकरप्रकृति भी त्यागनेयोग्य मानता है। १४८ प्रकृति कही नहीं? जहर का वृक्ष है वह तो। आहाहा! भगवान तो अमृत का वृक्ष है। उसमें तो अमृत पके। वीतरागी अमृत पके, ऐसा वह वीतरागी वृक्ष है। वीतरागी कल्पवृक्ष है। आहाहा! वीतरागी चिन्तामणि रत्न है। आहाहा! उसे वीतरागी परिणति पके। वह उसका फल कहलाता है। यह पुण्य के फल पके, वह तो सब जहर के फल हैं। आहाहा! यह ५४ कही।

गाथा – ५५

अथ योऽसौ निश्चयेन पुण्यपापद्वयं समानं न मन्यते स मोहेन मोहितः सन् संसारं परिभ्रमतीति कथयति –

१७९) जो णवि मण्णइ जीउ समु पुण्णु वि पाउ वि दोइ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय मोहिं हिंडइ लोइ।।५५।।

यः नैव मन्यते जीवः समाने पुण्यमपि पापमपि द्वे।
स चिरं दुःखं सहमानः जीव मोहेन हिण्डते लोके।।५५।।

जो इत्यादि। जो णवि मण्णइ यः कर्ता नैव मन्यते जीउ जीवः। किं न मन्यते। समु समाने। के। पुण्णु वि पाउ वि दोइ पुण्यमपि पापमपि द्वे सो स जीवः चिरु दुक्खु सहंतु चिरं बहुतरं कालं दुःखं सहमानः सन् जिय हे जीव मोहिं हिंडइ लोइ मोहेन मोहितः सन् हिण्डते भ्रमति। क्व। लोके संसारे इति। तथा च। यद्यप्यसद्भूतव्यवहारेण द्रव्यपुण्यपापे परस्परभिन्ने भवतस्तथैवाशुद्ध–निश्चयेन भावपुण्यपापे भिन्ने भवतस्तथापि शुद्धनिश्चयनयेन पुण्यपापरहित–शुद्धात्मनः सकाशाद्विलक्षणे सुवर्णलोहनिगलवद्बन्धं प्रति समाने एव भवतः। एवं नयविभागेन योऽसौ पुण्यपापद्वयं समानं न मन्यते स निर्मोहशुद्धात्मनो विपरीतेन मोहेन मोहितः सन् संसारे परिभ्रमति इति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। तर्हि ये केचन पुण्यपापद्वयं समानं कृत्वा तिष्ठन्ति तेषां किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति। भगवानाह। यदि शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं त्रिगुप्तिगुप्तवीतराग–निर्विकल्पपरम–समाधिं लब्ध्वा तिष्ठन्ति तदा संमतमेव। यदि पुनस्तथाविधामवस्थामलभमाना अपि सन्तो गृहस्थावस्थायां दानपूजादिकं त्यजन्ति तपोधनावस्थायां षडावश्यकादिकं च त्यक्त्वोभयभ्रष्टाः सन्तः तिष्ठन्ति तदा दूषणमेवेति तात्पर्यम्।।५५।।

आगे जो निश्चयनय से पुण्य–पाप दोनों को समान नहीं मानता, वह मोह से मोहित हुआ संसार में भटकता है, ऐसा कहते हैं –

पुण्य–पाप दोनों समान हैं–ऐसा नहिं माने जो जीव।
वह मोही चिरकाल दुःख सहता चहुँगति में भ्रमण करे।।५५।।

अन्वयार्थ :– [यः] जो [जीवः] जीव [पुण्यमपि पापमयि द्वे] पुण्य और पाप दोनों को [समाने] समान [नैव मन्यते] नहीं मानता, [सः] वह जीव [मोहेन] मोह से

मोहित हुआ [चिरं] बहुत काल तक [दुःखं सहमानः] दुःख सहता हुआ [लोके] संसार में [हिंडते] भटकता है।

भावार्थ :- यद्यपि असद्भूत (असत्य) व्यवहारनय से द्रव्यपुण्य और द्रव्यपाप ये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं, और अशुद्धनिश्चयन से भावपुण्य और भावपाप ये दोनों भी आपस में भिन्न हैं, तो भी शुद्ध निश्चयनयकर पुण्य-पाप रहित शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए बंधरूप होने से दोनों समान ही हैं। जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी ये दोनों ही बंध का कारण हैं - इससे समान हैं। इस तरह नयविभाग से जो पुण्य-पाप को समान नहीं मानता, वह निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत जो मोहकर्म उससे मोहित हुआ संसार में भ्रमण करता है। ऐसा कथन सुनकर प्रभाकरभट्ट बोले, यदि ऐसा ही है, तो कितने ही परमतवादी पुण्य-पाप को समान मानकर स्वच्छंद हुए रहते हैं, उनको तुम दोष क्यों देते हो? तब योगीन्द्रदेव ने कहा-जब शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप तीन गुप्ति से गुप्त वीतरागनिर्विकल्पसमाधि को पाकर ध्यान में मग्न हुए पुण्य-पाप को समान जानते हैं, तब तो जानना योग्य है। परन्तु जो मूढ़ परमसमाधि को न पाकर भी गृहस्थ-अवस्था में दान, पूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं, और मुनि पद में छह आवश्यक कर्मों को छोड़ते हैं, वे दोनों बातों से भ्रष्ट हैं। न तो यती हैं, न श्रावक हैं। वे निंदा योग्य ही हैं। तब उनको दोष ही है, ऐसा जानना ।।५५।।

गाथा-५५ पर प्रवचन

अब प्रवचनसार की ही ७७ गाथा है, ऐसी यह ५५वीं है। ७७ की कही थी न? पुण्य-पाप में विशेष-अन्तर मानता है, अविशेष है—दोनों एक सरीखे बन्ध के कारण हैं। तथापि दोनों में विशेष माने (तो) घोर हिडंति—संसार में भटकेगा। आहाहा! यह लोग तो कहते हैं कि नहीं। पुण्य शुभभाव तो परम्परा से मुक्ति देगा। अरे! भगवान! भाई! तुझे क्या हुआ यह? ऐसी कुबुद्धि, भाई! जीव को नुकसानकारक है। आहाहा! उसकी शान्ति को बहुत दूर कर डालती है। आहाहा!

आगे जो निश्चयनय से पुण्य-पाप दोनों को समान नहीं मानता,... देखो, देखा! शुभ और अशुभभाव दोनों। जिसे समान नहीं मानता, दोनों समान नहीं मानता। आहाहा!

वह मोह से मोहित हुआ... वह मिथ्यात्व से मोहित हुआ, भ्रमणा में पड़ गया हुआ **संसार में भटकता है,...** आहाहा! चौरासी के अवतार में भटकेगा वह तो। भवसिन्धु में भटकेगा। पुण्य और पाप दोनों समान हैं, ऐसा जो नहीं मानता... आहाहा! **वह मोह से मोहित हुआ...** भ्रमणा में, भगवान भ्रमणा में भूला, वह भटकेगा। आहाहा! नरक और निगोद में (भटकेगा)।

१७९) जो णवि मण्णइ जीउ समु पुण्णु वि पाउ वि दोइ।
सो चिरु दुक्खु सहंतु जिय मोहिं हिंडइ लोइ।।५५।।

आहाहा! '**चिरु**' अर्थात् दीर्घ काल। वह मोही जीव '**हिंडइ**' मोही। चौरासी में भटकेगा, रुलेगा। आहाहा! इसकी विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १२, गुरुवार
दिनांक-१८-११-१९७६, गाथा-५५, ५६, प्रवचन-१३६

परमात्मप्रकाश, ५५ गाथा।

आगे जो निश्चयनय से पुण्य-पाप दोनों को समान नहीं मानता,... आहाहा! जो ७७ गाथा प्रवचनसार की है, वह शैली है। वहाँ ऐसा कहा है ७६ गाथा में कहा है न? पुण्य है, वह तृष्णा का उत्पादक और दुःख का कारण है। पुण्य है, उसके फलरूप से (संयोग) आवे तो वहाँ तृष्णा उत्पन्न करते हैं और वह दुःख का कारण है। इसलिए पुण्य और पाप में दोनों में इसलिए कुछ विशेष है नहीं। आहाहा! यह बात। इतना तो स्पष्ट कथन है। व्यवहार क्रियाकाण्ड का जो शुभभाव, कहते हैं कि वह पुण्य और पाप दोनों समान है। बन्ध के कारणरूप से है।

मुमुक्षु : निश्चय से पाप ही है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कहते हैं। निश्चयनय की दृष्टि से तो दोनों समान हैं। व्यवहार में अन्तर हो, ऐसा असत्यनय से कहेंगे।

यहाँ तो कहना है कि पुण्य और पाप दोनों भाव सरीखे-समान बन्ध के कारण हैं। उनमें कोई अन्तर माने कि पुण्य ठीक है, वह प्रश्न आया था कि पुण्य को उपादेय माने और पाप को हेय माने तो इतना तो अंश ठीक है या नहीं? परन्तु वह आत्मा की अपेक्षा से पाप हेय है, ऐसा कहाँ मानता है? वह तो पुण्य की अपेक्षा से पाप हेय है, ऐसा मानता है। समझ में आया? यह प्रश्न हुआ था कि पुण्य को उपादेय माने और पाप को हेय माने, इतना तो अंश सत्य है या नहीं? नहीं। वह तो पुण्य को उपादेयरूप से मानता है, इस अपेक्षा से पाप को हेय मानता है। आत्मा के भान और स्वभाव द्वारा दोनों समान हैं, ऐसा वह नहीं मानता। आहाहा! ऐसी बात स्पष्ट है। भगवान शुद्ध चैतन्यघन का शुद्धोपयोग है, वह तो मोक्ष का कारण है और यह दोनों अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध व्यापार है। आहाहा! इन दोनों को समान नहीं मानता **मोह से मोहित...** अर्थात्? पुण्य के भाव में मूर्छित हो जाता है कि ओहोहो! यह तो ठीक है। आहाहा! वह मिथ्यात्व के कारण मोह से पुण्य में अन्तर मानता है।

मोहित हुआ संसार में भटकता है,... आहाहा! यह पहले कहा था न उसमें, नहीं? ६०वीं गाथा। अब आयेगी न? ६०वीं। '**पुण्णेण होइ विहवो**' यह ६०वीं आयेगी। '**पुण्णेण होइ विहवो**' इस पुण्य से वैभव मिलता है। यह धूल, पैसा, स्त्री, पुत्र, परिवार सब अनुकूलता जानो। आहाहा! इस पुण्य के कारण वैभव मिले, वैभव के कारण मद हो। मद चढ़े अन्दर से (कि) हम पैसेवाले, हमारे पैसे हैं। यह गरीब व्यक्ति साधारण को कमाना नहीं आता और हम तो व्यवस्थापूर्वक बराबर पैदा करते हैं। पुण्य के कारण से, ऐसा नहीं। हम पैदा करते हैं। आहाहा! ऐसा जो मद '**मएण मइ-मोहो**' फिर मति भ्रष्ट हो जाती है। आहाहा! पुण्य के फल में देखो तो अरबों रुपये, करोड़ों की आमदनी हो वर्ष की, अरबों रुपये हों। ओहोहो!

है न अभी? अपने बनियों में दो तो अरबपति हैं। एक यहाँ जयपुर। छेलशंकर, दुर्लभजी झबेरी का पुत्र। उसके पास ६० करोड़ है। बड़े के लड़के के पास है। इसलिए दोनों होकर एक अरब रुपये हैं। जयपुर-जयपुर। और वह गुजर गया, नहीं भाई? गोवावाला। उसके पास दो अरब चालीस करोड़। दो अरब और चालीस करोड़। दोनों दशाश्रीमाली बनिया। दोनों स्थानकवासी। परन्तु वह गोवावाला अम्बाजी को माननेवाला। आहाहा! पुण्य के कारण वैभव मिले, वैभव से मद चढ़े और मद से मति भ्रष्ट हो जाये। आहाहा! है? '**मइ-मोहेण य पावं तो पुण्णं अम्ह मा होउ**' आचार्य महाराज कहते हैं कि ऐसे पाप और पुण्य हमको न हो। समझ में आया? आहाहा! मुनि स्वर्ग में जानेवाले हैं परन्तु पहले से निषेध करते जाते हैं। हमको पुण्य और पाप के फल न हो। आहाहा! यह '**मा होउ**'।

भगवाकन निर्लोभी चैतन्यमूर्ति को छोड़कर जो यह पुण्य का लोभ है, वह भवभ्रमण का कारण है, ऐसा कहते हैं। है न? '**हिंडते**'। उसमें था फिर पुण्य। उसमें—७७ में। **जो जीव पुण्य और पाप दोनों को समान नहीं मानता,...** आहाहा! शुभ और अशुभ दो भाव और पुण्य-पाप के रजकण बन्धन पड़े, वह जड़, इन दोनों में जो समानता **दोनों को समान नहीं मानता,...** आहाहा! **वह जीव मोह से मोहित हुआ...** वह पुण्यभाव में मिथ्यादृष्टिरूप से मोहित हो गया। आहाहा! स्वरूप की सावधानी छोड़कर पुण्य-पाप में सावधानी (की), वह मूर्छित हो गया। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, उसकी सावधानी मोहरहित होकर होना चाहिए, उसे छोड़कर पुण्य के भाव में मोहित होकर सावधान हुआ। आहाहा! इतना तो स्पष्ट है। अब यह लोग कहते हैं कि नहीं, शुभभाव पुण्य का कारण तो निमित्त है। साधन है, वह तो और कहते हैं। वह तो पुण्य के कारण से संहनन और मनुष्यदेह आदि मिलते हैं, उसे निमित्त कहा है, निमित्त। परन्तु इससे वहाँ आत्मा में कार्य होता है उससे, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? कि भाई! मनुष्यपना मिला, संहनन मजबूत मिला, निरोग शरीर मिला, लम्बा आयुष्य मिला, वह निमित्त कहने में आता है परन्तु निमित्त से कार्य होता है आत्मा में, ऐसा नहीं है। निमित्त एक दूसरी वस्तु है। कुम्हार घड़ा बनाता नहीं परन्तु कुम्हार निमित्त है, तथापि वह करता नहीं। करनेवाला नहीं घड़े का। आहाहा! ऐसी बात है। यह तो आप्तमीमांसा में भी कहा है। पुण्य को निमित्त कहा है। आप्तमीमांसा में पुण्य को निमित्त कहा है। परन्तु इसका अर्थ क्या ? संहनन और मनुष्यदेह आदि मिले हैं, वे निमित्त कहने में आते हैं परन्तु इससे आत्मा को उस निमित्त के कारण धर्म का कार्य होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा!

वह जीव मोह से मोहित हुआ... आहाहा! शुभ पुण्य के भाव में मिथ्यात्व से मूर्छित हुए जीव... ओहोहो! **बहुत काल तक दुःख सहता हुआ...** आहाहा! अनन्त काल। आहाहा! पुण्यभाव को अपना मानकर उसमें सावधान होकर मोहित हो गया, प्रभु को भूल गया। अपना वीतरागी स्वभाव सच्चिदानन्द आत्मा, उस शुद्धता का अनादर करके शुभभाव का आदर करके उसमें मोहित हो गया। आहाहा! वह अनन्त काल संसार के दुःख भोगेगा। आहाहा! अब कितना कहे इसमें ? आहाहा! **बहुत काल तक दुःख सहता हुआ संसार में भटकता है।** आहाहा! चौरासी (लाख) योनि में भटकेगा।

भावार्थ :- यद्यपि असद्भूत (असत्य) व्यवहारनय से द्रव्यपुण्य और द्रव्यपाप ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं,... असद्भूतव्यवहारनय अर्थात् झूठी नय दृष्टि से। आहाहा! द्रव्यपुण्य अर्थात् परमाणु, द्रव्यपाप अर्थात् असाता के परमाणु। **दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं,...** क्या कहा, समझ में आया ? सातावेदनीय के परमाणु और असातावेदनीय के परमाणु असद्भूतव्यवहारनय से दोनों भिन्न हैं। **एक-दूसरे से...** इस अपेक्षा से **भिन्न हैं....**

और अशुद्धनिश्चयनय से भावपुण्य और भावपाप ये दोनों भी आपस में भिन्न हैं... आहाहा! अशुद्धनिश्चयनय से। क्योंकि वह तो अपने परिणाम में होता है। और द्रव्य पुण्य, जो द्रव्यपुण्य और पाप कहे, वे तो जड़ हैं। व्यवहारनय से जो द्रव्य पुण्य-पाप वे तो जड़ हैं। वह व्यवहार-असत्यनय से दोनों में अन्तर-भिन्न है। और अशुद्धनय से, आत्मा की पर्याय में होते हैं, इस अपेक्षा से अशुद्धनय से पुण्य-पापभाव है न? **भावपुण्य और भावपाप ये दोनों भी आपस में भिन्न हैं,...** आहाहा! **तो भी शुद्ध निश्चयनयकर...** आहाहा! भगवान को, शुद्ध चैतन्य को देखने की दृष्टि से देखे तो **पुण्य-पाप रहित शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए...** शुद्धनिश्चयनयकर पुण्य-पापरहित भगवान आत्मा तो है। आहाहा!

शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं। आहाहा! कथंचित् लाभदायक है, कथंचित् अलाभ, ऐसा स्याद्वाद इसमें नहीं रखा। ऐसा कथंचित् रखा कि असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्य-पुण्य और द्रव्य-पाप जो जड़ हैं, उनमें भेद है। साता और असाता, यशकीर्ति और अपयशकीर्ति ऐसा परमाणु में बन्ध में अन्तर है। अशुद्धनिश्चयनय से पुण्य और पाप के भाव में अन्तर है। यह शुभ है, वे अशुभ हैं। अशुद्धनिश्चयनय से। जो नय आदरणीय नहीं हैं, उस नय से। आहाहा!

परन्तु निश्चयनय से—सत्यदृष्टि से देखें तो... आहाहा! अशुद्धनिश्चय कहो या व्यवहार कहो। उस व्यवहारनय से देखें तो भावपुण्य और भावपाप में अन्तर है। परन्तु निश्चयनय से देखो... आहाहा! सत्यदृष्टि से भगवान आत्मा... है? **शुद्धात्मा।** ऐसी भाषा ली है। भगवान तो पुण्य-पाप के भावरहित शुद्ध आत्मा है। आहाहा! यह निश्चय है। आहाहा! **शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए...** दोनों भिन्न हैं। आहाहा! **बन्धरूप होने से...** दोनों बन्धरूप है। पुण्य और पाप के दोनों भाव... आहाहा! धार रखा हो न? धार रखा हो, इसलिए इसे ऐसास होता है कि यह सुनते हैं, उसमें नया कुछ नहीं है। समझ में आया? परन्तु प्रत्येक पर्याय में नया होता है, यह इसे महिमा की खबर नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

शुद्धात्मा से दोनों ही... वहाँ कहा है। उसमें कथंचित् नहीं। **शुद्धात्मा से दोनों**

ही... पुण्य और पाप के दोनों भाव भिन्न... भगवान आत्मा से **भिन्न हुए बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं।** आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश में यह, प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य में यह (गाथा है)। अब ऐसी स्पष्ट बात है। इसे वे ऐसा कहते हैं कि शुभभाव करते-करते निश्चय होगा। शुभभाव को यदि व्यवहार क्रियाकाण्ड जो चरणानुयोग के अनुसार है, उससे लाभ होगा, ऐसा न मानो तो एकान्त है, ऐसा (वे) कहते हैं। यहाँ तो भगवान कहते हैं कि एकान्त ऐसा है। पुण्य के भाव से लाभ हो, ऐसा माने वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : पंचास्तिकाय में उसे साधन कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन कहा न यह। बाह्य निमित्त होता है। होता है इतना। परन्तु उससे साधन होता है, ऐसा नहीं कहा।

मुमुक्षु : निश्चय का बीज है, ऐसा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात कही है। पंचास्तिकाय में। वह तो निश्चय बीज है। सद्भूतव्यवहार की पर्याय है, वह निश्चय का बीज है। सद्भूतव्यवहारनय अर्थात् निर्मल परिणति जो है वह। वह व्यवहार है। उसका निश्चय का वह बीज है। निश्चय पूर्णानन्द हो, उसका वह बीज है, कारण है। पंचास्तिकाय में है। है न, खबर है न! आहाहा! यह तो इस प्रकार से है वहाँ। सद्भूतव्यवहार ऐसी जो निर्मल पर्याय, वह निश्चय का बीज है। पूर्णानन्द की प्राप्ति का वह बीज है।

मुमुक्षु : ज्ञानचेतनाप्रधान चारित्र को बीज कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बीज कहा न! ज्ञानचेतना। अन्तर एकाग्रता, वह केवलज्ञान का बीज है। ज्ञानचेतना, द्रव्य की अपेक्षा से व्यवहार है। आहाहा! त्रिकाली भगवान आत्मा, इस अपेक्षा से तो निश्चयमोक्षमार्ग, वह व्यवहार है। वह व्यवहार, निश्चय केवलज्ञान का बीज है।

मुमुक्षु : ज्ञानचेतनाप्रधान तो निश्चय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निश्चय है कहा न!

मुमुक्षु : तो फिर व्यवहार.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पर्याय व्यवहार है वह। द्रव्य की अपेक्षा से निर्मल पर्याय मोक्षमार्ग भी व्यवहार है। परमार्थ प्रतिक्रमण में नहीं आया? निश्चय आत्मा भगवान अक्रिय है और मोक्षमार्ग निश्चय है, वह व्यवहार है। मोक्षमार्ग साधना, वही व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार है। आहाहा!

मुमुक्षु : अध्यात्म व्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ है। वह और दूसरा। यह तो इस शब्द में है। आगमपद्धति का व्यवहार सरल है, इसलिए लोग करते हैं। अध्यात्म का व्यवहार जो शुद्धपरिणति को जानते भी नहीं। वह अलग बात है। परन्तु यहाँ है। क्या कहलाता है यह? मोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार और शुद्ध द्रव्य अक्रियरूप, वह निश्चय। त्रिकाली शुद्ध है, वह अक्रिय है, वह निश्चय और निश्चयमोक्षमार्ग साधना, वह व्यवहार। परमार्थवचनिका में (लिखा है)। सम्यग्दृष्टि के विचार सुनो, ऐसा करके (लिखा है)। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे तो साहेब, नयातिक्रान्त होना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नयातिक्रान्त, यह किसे कहा? वह तो विकल्प की अपेक्षा से नयतिक्रान्त (कहा)। बाकी निश्चयनय तो यथार्थ है, विकल्परहित है, उसमें नयातीत नहीं चलता। निश्चयनय का आश्रय करने से मुक्ति होती है, वह नयातीत नहीं। वह तो विकल्प का नया है, उससे नयातीत है। ऐई! देवानुप्रिया! इसमें यह विपरीतता नहीं चलती वहाँ।

मुमुक्षु : नयों की लक्ष्मी, साहेब! उदय ही नहीं पाती।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। बिल्कुल झूठी बात है। वह तो विकल्प के नय की बात है। बाकी '**निश्चयनयाश्रित मुनिवरो प्राप्ति करे निर्वाण की।**' वह विकल्प नहीं है। वह निर्विकल्पनय का विषय, उसे वहाँ निर्विकल्प कहा है। उससे मुक्ति पाते हैं। नयातीत का अर्थ तो (समयसार) १४२ (गाथा में) जो नय का विषय विकल्प है कि मैं बद्ध हूँ, व्यवहार का विकल्प है, निश्चय से अबन्ध हूँ, व्यवहार से बन्ध है, उसे

विकल्पातीत कहा है। समझ में आया? वीतरागमार्ग में पूर्वापर विरोधरहित बात होती है। कहीं विरोध न हो, इस प्रकार इसे निर्णय करना पड़ेगा। और इस प्रकार है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो! **शुद्धात्मा से दोनों ही भिन्न हुए बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं।** आहाहा! निश्चयनय के स्वभाव के आश्रय से देखें तो यह पुण्य और पाप दोनों समान से हेय हैं। और स्वरूप है, वह उपादेय है। निश्चयनय है वह। यह विकल्प नहीं। शुद्ध आत्मा उपादेय है, ऐसा जो नय, वह तो निर्विकल्प नय है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सब प्रकार अब। एक निर्विकल्प निश्चयनय और एक सविकल्प निश्चयनय। प्रमाण भी सविकल्प और निर्विकल्प दो है। प्रमाण के दो भेद हैं। आहाहा! भाई! यह तो वीतरागमार्ग है, बापू! गम्भीर है, गहरा तत्त्व है। यह वीतराग के अतिरिक्त यह बात सर्वज्ञ से सिद्ध हुई बात, यह कहीं अन्यत्र है नहीं। सर्वज्ञ के वाड़ा में जन्मे, उन्हें भी खबर नहीं। आहाहा!

बन्धरूप होने से दोनों समान ही हैं। अर्थात्? निश्चयनय और व्यवहारनय दोनों समान हैं, ऐसा यहाँ नहीं। यहाँ तो पुण्य और पाप के दोनों भाव समान हैं, ऐसा कहना है और वहाँ जो कहना है कि निश्चयनय का विकल्प और व्यवहारनय का विकल्प दोनों छोड़नेयोग्य हैं। वह तो विकल्प छोड़नेयोग्य है। निश्चय का विषय है और निश्चय, वह छोड़नेयोग्य नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....पुण्य को विषय कौन करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर वस्तु है, वह निश्चयनय है। यह यहाँ कहेंगे अभी। अन्दर समाधि में स्थिर होता है, वह निश्चय है और उसमें स्थिर हुआ पुण्य-पाप को छोड़ता है, वह यथार्थ है, ऐसा कहेंगे। क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ समझ में नहीं आता? ठीक! ऐसा कहते हैं कि पुण्य और पाप दो भाव शुभ-अशुभ छोड़नेयोग्य है, वह कब यथार्थ हो? कि अन्तर्दृष्टि में स्थिरता हो समाधि से, तब उसे पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य है, ऐसा हुआ। समझ में आया? ऐसे पुण्य और पाप दृष्टि में छोड़नेयोग्य है, इतना किया भले। परन्तु यहाँ तो दृष्टि में अन्दर

स्थिर हो। आहाहा! यह उसकी समाधि में स्थिर हो, उसे पुण्य-पाप छूट गये हैं। इसलिए उसे छोड़नेयोग्य यथार्थ हुए हैं। यह कहेंगे अभी। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! इसमें तो कुछ चले ऐसा नहीं। वीतरागमार्ग है, भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर केवलियों के कथन हैं। सन्त कथन करते हैं। आहाहा!

जैसे सोने की बेड़ी... पुण्यभाव, वह सोने की बेड़ी है। **और पापभाव लोहे की बेड़ी ये दोनों ही बन्ध का कारण हैं—इससे समान हैं।** इसलिए सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी समान है। **इस तरह नयविभाग से जो पुण्य-पाप को समान नहीं मानता,...** निश्चयनय की दृष्टि से पुण्य-पाप को समान नहीं मानते, ऐसा कहते हैं। नयविभाग। निश्चयनय के भाव से स्वभाव का आश्रय करके जो पुण्य-पाप को समान नहीं मानते... आहाहा! **वह निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत...** यह क्या कहते हैं? जो पुण्य का भाव है, वह **निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत...** है। आहाहा! वह **मोहकर्म उससे मोहित हुआ...** आहाहा! यह पुण्यभाव, वह मोहकर्म है। उसमें **मोहित हुआ संसार में भ्रमण करता है।** आहाहा!

एक ओर ऐसा कहे और फिर दूसरी ओर ऐसा कहे कि वह साधन है। किस अपेक्षा से कहा है वह? वहाँ है इतना ज्ञान कराने के लिये उसे साधन कहा है। समझ में आया? साधन के कथन—निरूपण दो प्रकार से है, साधन तो एक ही है। जैसे मोक्षमार्ग का... मार्ग कहो या कारण कहो। मोक्षमार्ग का कारण तो एक ही है। निश्चय। परन्तु उसका निरूपण दो प्रकार से है। मोक्षमार्ग है, वह स्वभाव के आश्रय से होता है, वह एक ही मोक्षमार्ग है। परन्तु उसके साथ राग की मन्दता, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि होते हैं, उसमें यह साधन का अर्थात् कारण का आरोप दिया है कि वह व्यवहारमोक्षमार्ग है। वह मोक्षमार्ग है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब। यह और टोडरमलजी को उड़ावे, बनारसीदासजी को उड़ावे। आहाहा! यह वर्णीजी को तो मोक्षमार्गप्रकाशक के प्रति प्रेम था। बहुत वाँचते थे। वर्णीजी का नाम लेकर उल्टा करे कि वे ऐसा कह गये हैं। वे वापस टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक का विरोध करे। आहाहा!

ऐसा कथन सुनकर... कैसा कथन ? कि पुण्य और पाप दोनों बन्ध के कारण हैं, शुद्धात्मा से भिन्न हैं, इस अपेक्षा से वे छोड़नेयोग्य हैं। वरना पुण्यभाव में दृष्टि वहाँ रहती है और उसमें सावधान रहता है, वह **मोह से मोहित हुआ...** वह पुण्य-पाप में मोहित हुआ, मिथ्यात्व से मूर्च्छित हो गया। **संसार में भ्रमण करता है।** ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। कितना पुण्य मिला था, लो! छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, एक स्त्री की हजार देव सेवा करे। यह पुण्यफल। उसके फल में सातवें नरक में गया। आहाहा! क्या है ?

मुमुक्षु : वह तो साहेब! लिखाकर ही आया था सातवें नरक में जानेवाला था।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखाकर आया तो इसका अर्थ क्या ? उसने किया है काम, इसलिए लिखाकर आया था।

मुमुक्षु : ऐसा ही काम करने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : करने का। उसने किया है। कर्ता होकर किया है। लिखाकर आया, इसलिए किया, ऐसा नहीं। आहाहा! कर्ता होकर (किया है)। रत्न के पलंग पर सोता था। हीरा-हीरा का पलंग। ढोलीया को क्या कहते हैं ? पलंग-पलंग। आहाहा! सोलह हजार देव सेवा करे। कुरुमति रानी (थी) उसकी हजार देव सेवा करे। वह विषय की लोलुपता में, भोग की लोलुपता में... आहाहा! वह यहाँ पलंग में से सातवें नरक में पोढ़ गया। बापू! प्रकृति के नियम में कुछ अन्तर नहीं होता। एक ओर सोलह हजार देव खड़े रहे। छियानवें हजार स्त्रियाँ चोटियाँ खींचती खड़ी रहीं। चला गया ऐसे। पोढ़ा सातवें नरक में ३३ सागर (की आयु) में। बापू! सागर किसे कहना ? आहाहा! और उसके दुःख क्या कहना ?

मुमुक्षु : साहेब! आप क्रमबद्धपर्याय कहते हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस क्रमबद्धपर्याय का निर्णय कौन करे ? निर्णय करनेवाले की दृष्टि कहाँ होती है ? उसकी दृष्टि ज्ञायक पर होती है। उसकी दृष्टि क्रमबद्धपर्याय के ऊपर नहीं होती। उसमें तो कुछ चले, ऐसा नहीं कुछ वहाँ। आहाहा! सत्य के पंथ में कोई आड़ा-टेढ़ा नहीं चलता। आहाहा!

पर्याय में क्रमबद्ध ही है। छहों द्रव्यों को। परन्तु वह क्रमबद्ध, पर्याय में है। उस

पर्याय का निर्णय कहाँ करे ? पर्याय में पर्याय के आश्रय से निर्णय होता है ? आहाहा! यह चारों शास्त्र का (अनुयोगों का) तात्पर्य वीतरागता है। तो क्रमबद्धपर्याय का तात्पर्य वीतरागता बतलाना है। आहाहा! क्रमबद्ध एक शास्त्र है न—सिद्धान्त ? तो उसका सार वीतरागता है। तो क्रमबद्ध का सार वीतरागता हो कब ? कि उस क्रमबद्ध के ऊपर का लक्ष्य छोड़कर द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाये, तब उसे क्रमबद्ध का यथार्थ निर्णय होता है। ऐसी बातें करे ऐसे के ऐसे कि क्रमबद्ध होता है, ऐसा नहीं चलता। समझ में आया ? आहाहा!

यह कहा था न! हमारे (संवत्) १९७२ के वर्ष में सम्प्रदाय में यही बड़ी चर्चा चली थी। १९७२ के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ६१। बड़ी चर्चा चली थी। केवलज्ञानी ने देखा, तत्प्रमाण होगा। यह हमारे मूलचन्दजी थे, गुरुभाई। बहुत बातें करे, पूरे दिन-रात। केवली ने देखा वह होगा। हम पुरुषार्थ अभी नहीं कर सकते। कहा, यह कौन बोलता है ? कहाँ बोलता है ? किसमें है यह बात ? केवली ने देखा वह होगा। तो केवली जगत में है, उसकी प्रतीति हुई है उसे ? फिर देखा, वह होगा। आहाहा! भाई! तुम ऐसी बातें करने लगो, ऐसा नहीं चलता, कहा। सर्वज्ञ जगत में हैं और सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होगा, यह प्रश्न बाद में। परन्तु जगत में सर्वज्ञ है (कि) जिनकी एक पर्याय में तीन काल—तीन लोक अनन्त केवली ज्ञात होते हैं। समय एक है, समय नाशवान है, तथापि एक समय की पर्याय में तीन काल—तीन लोक जाने, ऐसी पर्याय की सत्ता जगत में है। ऐसी सत्ता का स्वीकार करनेवाला, फिर देखा वैसा होगा उसे ख्याल में आयेगा। समझ में आया ? उस सत्ता का स्वीकार करनेवाला ज्ञान में अन्दर घुस जाता है। तब इतना था। द्रव्य का आश्रय और इतना सब नहीं था तब। यह तो (संवत्) १९७२ की बात है न! जिसके ज्ञान में, केवलज्ञान की पर्याय जगत में है, यह बात जिसे बैठी, उसके भव भगवान ने देखे नहीं, कहा। ऐई! देवानुप्रिया! कितने वर्ष हुए ? तुम्हारे तो ७४ हुए। परन्तु यह ६१ (वर्ष) हुए। तुम्हारी तेरह वर्ष की उम्र में। तब तो भान भी नहीं होगा, अभी यह सुना भी नहीं होगा, पढ़ने की लोलुपता में। आहाहा! भाई! ऐसा नहीं चलता, कहा।

केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा, उसमें पहले केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार

किया है या नहीं इसने ? फिर देखा, वह होगा। उसका स्वीकार करने जाये वहाँ तो इसे ज्ञान में दृष्टि पड़ जाये। ज्ञान में केवलज्ञान का निर्णय हो जाये। आहाहा ! केवलज्ञानी का जिसे ज्ञान में निर्णय हुआ, उसके भव भगवान ने देखे नहीं, कहा। समझ में आया ? आहाहा ! बड़ी चर्चा चली थी।

हमारे गुरु थे, वे बेचारे भद्रिक थे। ऐसी बहुत छाप, बहुत छाप। भद्रिक अर्थात् साधारण नहीं, परन्तु सरल और भद्रिक। व्याख्यान वांचे वहाँ हजारों लोग, पाँच-पाँच हजार लोग। नजर—आँखें ऊँची न करे, ऐसी कषाय की मन्दता। सम्प्रदाय की क्रिया अपेक्षा से क्रिया भी बहुत सख्त क्रिया, आहार की, भिक्षा (इत्यादि की)। परन्तु यह वस्तु नहीं। उन्हें यह बात कहने पर बैठी कि यह कानजी कहते हैं, वह बात सच्ची लगती है। परन्तु वापस उन्हें दूसरे दिन यह चर्चा उठी। यह बींछिया में रात्रि में हुई थी। वह दूसरे दिन पाळियाद गये। वहाँ से तीन कोस है पाळियाद। वह शाम को उन्हें विचार आया। बेचारे सरल भद्रिक बहुत न ? और व्याख्यान में वे वांचे, तो लोग तो आफ़रीन हो जाये। ऐसी शान्त प्रकृति। हीराजी महाराज को तुमने नहीं देखा होगा। जादवजीभाई !

मुमुक्षु : नहीं, नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं देखा होगा। (संवत्) १९७४ में गुजर गये थे। १९७४ में गुजर गये। ५८ वर्ष हुए।

फिर दोपहर को जरा ऐसा प्रश्न उठा उन्हें। पडिलेहण करते थे। पडिलेहण करे शाम और सवेरे ? करते-करते, उस रात्रि की चर्चा हो गयी। इसलिए कहे कि मूलचन्दजी ! तू कहता है, ऐसा हो तो पाँच समवाय सिद्ध हो जाये। वे पाँच समवाय को माने नहीं। तू कहता है कि जो होनेवाला हो वह होता है, होनेवाला हो वह होता है। तो यह तो पाँच समवाय नियतवाद हो जाये और उसके साथ पाँच समवाय सिद्ध हों। ऐसा नहीं है। यह बड़ा विवाद उठा। अन्दर-अन्दर। दूसरा साधु था, वह कहे कि नहीं। भगवान ने पन्द्रह भव देखे सुबाहुकुमार के। ऐसा आता है न ? विपाक। उसमें दस आते हैं न ? मिथ्यादृष्टि है, वह गृहस्थ है और साधु को आहार-पानी देकर परित संसार करता है, ऐसा पाठ है। खोटा है, वह सब कथन खोटा है। आहार-पानी देकर फिर परित संसार (हो वह) हो

सकता ही नहीं। परद्रव्य को आहार दे, वीतराग को आहार दे तो भी कभी संसार नहीं घटता। पुण्य होता है। धन्नालालजी! आहाहा!

इसलिए कहा कि इस अनुसार होता है। तू कहता है, ऐसा हो जाये। तो दूसरा साधु कहे, परन्तु वह पन्द्रह भव भगवान ने देखे, वे क्या कम भव होंगे? ऐई... चले। बड़ी चर्चा... चर्चा... कहा, ऐसा नहीं है। भगवान ने देखा, (वैसा होता है), ऐसी मान्यता जिसे हो, उसे तो भगवान की श्रद्धा है। भगवान की श्रद्धा है तो अल्पज्ञ श्रद्धा निकलकर सर्वज्ञ श्रद्धा हुई है। ऐई! जिसके भगवान ने भव देखे ही न हों। एक, दो, चार, भव हो। हो, समझ में आया? यह (संवत्) १९७२ के फाल्गुन महीने की बात है। फाल्गुन-फाल्गुन। आहाहा!

मुमुक्षु : इतना सब जवाब दिया था?

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय दिया था। गुरु को दिया था। सबको दिया था। वह अन्दर का था न। यहाँ का तो कहाँ था? परन्तु वे अन्दर के संस्कार पड़े थे न अन्दर? एकदम बड़बड़िया बोलते थे अन्दर से।

जो यह गाथा है न? ८०-८१-८२ प्रवचनसार की। '**जो जाणदि अरहंत दवत्त-गुणत्तपज्जयत्तेहिं**' यही ध्वनि अन्दर से आयी थी। वांचा नहीं था। (संवत्) १९७८ में वांचा प्रवचनसार। यह १९७२ की बात है। परन्तु अन्दर से यही ध्वनि आयी थी। भगवान का ज्ञान जिसने जाना और जँचा, उसे भव नहीं हो सकते। समझ में आया? ८०वीं गाथा में है न? '**जो जाणदि अरहंत दवत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय। पर्याय में केवलज्ञान आया। '**सो जाणदि अप्पाणं**' वह आत्मा को जानता है, ऐसा ही आत्मा वहाँ लिया है। अकेला जानकर अन्दर खड़ा रहे, ऐसा नहीं। जिसने अरिहन्त के गुण-पर्याय जाने, वह आत्मा के साथ मिलान करने पर आत्मा को जानता है। और उसे '**मोहो खलु जादि तस्स लयं॥**' मोह का नाश होता है, मिथ्यात्व का उसे नाश हो जाता है। '**मोहो खलु जादि तस्स लयं॥**' ऐसा पाठ है न? ८० गाथा है।

यहाँ यह कहा है। ७७वीं गाथा जो प्रवचनसार की है, वहाँ ऐसा कहा '**हिंडदी घोरमपारं संसारं**' शुभ-अशुभभाव में समानता न मानकर विशेष मानता है, दोनों में

अन्तर मानता है, वह फेर-फुदड़ी में भटक मरनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो बापू! यह वीतराग का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : हेय-उपादेय का अन्तर न माने और तीव्र-मन्द का अन्तर माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीव्र-मन्द, वह तो सब व्यवहार है। बन्ध में वे समान हैं। तीव्र-मन्द वह तो व्यवहारनय हो गया। यह तो पहले कहा। व्यवहारनय से पुण्य-पाप बन्ध में अन्तर है। परन्तु बन्धन में अन्तर है? कि एक बन्धनरूप है और एक थोड़ा अबन्धरूप है? ऐसी बात है। आहाहा!

नयविभाग से जो पुण्य-पाप को समान नहीं मानता, वह निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत... भाषा देखो! आहाहा! शुभभाव, वह मोहभाव है। उसमें जो स्वयं ठीक मानता है... आहाहा! वह **निर्मोही शुद्धात्मा से विपरीत जो मोहकर्म (शुभभाव) उससे मोहित हुआ...** शुभभाव में मोहित-मूर्छित हो गया। **संसार में भ्रमण करता है।** आहाहा! कितनी सरस बात आयी! लो! आहाहा!

ऐसा कथन सुनकर प्रभाकर भट्ट बोले,... शिष्य ने प्रश्न किया। **यदि ऐसा ही है, तो कितने ही परमतवादी पुण्य-पाप को समान मानकर स्वच्छन्द हुए रहते हैं,...** पुण्य हो या पाप हो, स्वच्छन्द में रहता है फिर। तो वह भी तुम कहते हो, वैसा कहलाये उसे। कहते हैं, ऐसा नहीं है, सुन! **पुण्य-पाप को समान मानकर स्वच्छन्द हुए रहते हैं, उनको तुम दोष क्यों देते हो? तब योगीन्द्रदेव ने कहा—जब शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप...** शुद्धात्मा... (विभाव) छोड़नेयोग्य है, ऐसी दृष्टि और स्थिरता हुई, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पुण्य का भाव छोड़नेयोग्य है, वह भाव धारणा में नहीं रहा, (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! अनुभव में आया अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : योगीन्द्रदेव को तुम कैसे कहाँ शिष्य ने? आप नहीं कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उनको तुम दोष क्यों देते हो? यह तो भाषा है। उसमें क्या है? तुम अर्थात् तमे। तुम एकवचन नहीं कहीं। तुम दोष (क्यों देते हो), ऐसा कहते हैं। आप कहो या तुम कहो, एक ही है। **तुम दोष क्यों देते हो?** यह तो विशेष स्पष्टीकरण के लिये शिष्य पूछता है। शिष्य यह प्रभाकर भट्ट है।

तब योगीन्द्रदेव ने कहा—जब शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप... आहाहा! शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूतिस्वरूप **तीन गुप्ति से गुप्त...** मन-वचन-काया से रहित होकर... आहाहा! स्वरूप में दृष्टि लगाकर स्थिर हुआ। आहाहा! **वीतराग निर्विकल्पसमाधि को पाकर...** आहाहा! अभेददृष्टि और शान्ति को **पाकर ध्यान में मग्न हुए...** आहाहा! उस काल में **पुण्य-पाप को समान जानते हैं,...** आहाहा! देखा! आहाहा! स्वभाव में वीतरागभाव से शान्ति-समाधि में लीन (हुआ), उस काल में पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य है, ऐसा जाना। आहाहा! सम्यग्दर्शन में स्थिर हुआ, तब उसने पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य जाना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

शुद्धात्मानुभूतिस्वरूप... है न? पहले आ गया था। **शुद्धात्मा की अनुभूति रुचि से विपरीत...** मिथ्यादर्शन था। तो शुद्धात्मा की अनुभूति और रुचि, वह सम्यग्दर्शन है। इसलिए उस सम्यग्दर्शन की प्रतीति में आया, उस काल में उसने पुण्य-पाप छोड़ना, ऐसा जाना। वास्तव में तो ऐसा है, कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? कि शुभ और अशुभभाव समान है। यह कब? किसे? कि स्वयं सम्यग्दर्शन में निर्विकल्प शान्ति और समाधि की दृष्टि में आया है, तब उसे पुण्य-पाप दोनों भाव समान हैं, ऐसा जाना कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : साहेब! शुभ और शुद्ध की मैत्री हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैत्री नहीं। मित्रता कहाँ थी यहाँ? विरोध है। यह मैत्री कही है, वह तो दूसरी अपेक्षा से (कही है)। साथ में होता है, इस अपेक्षा से। समझ में आया? यह समयसार में आता है न? है न, खबर है। पण्डित जयचन्द्रजी ने उसे मैत्री कहा है। अर्थात् साथ में है। और कलश टीकाकार ने विरोध किया है कि शुभभाव उसे होता नहीं, वह तो शुद्धभाव हुआ है। उसके साथ उसे मैत्री शुद्धभाव के साथ है। आहाहा! पण्डित जयचन्द्रजी ने जरा यह रखा है। उस समय साथ में होता है। जैसे ज्ञानधारा, आ गयी न बात अपने? ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों साथ रहने में विरोध नहीं है। जैसे सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन के साथ रहने में विरोध है, वैसे ज्ञानधारा सम्यग्दर्शन, ज्ञान की धारा और रागधारा, कर्मधारा दोनों साथ में रहने में विरोध नहीं है।

विरोध नहीं है, इतनी मैत्री कही गयी है। साथ में है। बाकी दोनों एक हैं, (ऐसा कहो) तब तो दो नहीं रहे। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो यह कहा है कि जिसे अन्दर ज्ञायकभाव में शुद्धात्मा में दृष्टि पड़कर निर्विकल्प समाधि अर्थात् कि निर्विकल्प शान्ति प्रगट हुई है, उस काल में उसे पुण्य-पाप समान हैं, ऐसा यथार्थ जाना कहा जाता है। आहाहा! देखो तो मार्ग वीतराग का! पुण्य का प्रेम रखकर पुण्य को हेय माने, यह बात कभी बनती नहीं। आहाहा! वह पुण्य का प्रेम कब छूटे? कि जब स्वरूप शुद्ध चैतन्य की दृष्टि करके, उस शान्ति में हो, तब छूटे। आहाहा! पुण्य और पाप दोनों अशान्ति है। दोनों समान बन्ध का कारण है। कब? किसे? आहाहा! यह पुण्य-पाप की रुचि से हटकर शुद्ध आत्मा परमानन्द प्रभु की रुचि में आया है, तब उसे समाधि अर्थात् शान्ति भी आयी है। तब मन-वचन-काया की गुप्ति हुई है। आहाहा! और उस काल में पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य है, ऐसा जाना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब। समझ में आया?

तुम पाँच हजार माँगते हो तो तुमको दूँगा। ऐसा नहीं। दे, तब खरा कहा जाता है। उसी प्रकार पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य है, ऐसा कब? कि उसकी रुचि छोड़कर दृष्टि करे तब। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? ऐई! शान्तिभाई! शान्तिभाई ही कहते, हों! परसों। अभी तक जिन्दगी गँवायी। दयाबेन को तो प्रेम था, परन्तु इनको जरा... अर र! मैंने कहा, जगे तब सवेरा। उसका कुछ नहीं। गया वह गया। मार्ग ऐसा है, बापू, हों! वस्तु ऐसी है, भाई! आहाहा! यह बात अभी बहुत लुप्त हो गयी। अरे! यह तो सत्य है। परमसत्य टंकोत्कीर्ण रणकार मारे। जिसकी दृष्टि होने पर आनन्द का स्वाद आता है। आहाहा! उसे पुण्य-पाप झूठे हेय हैं, ऐसे समान जाने कहलाते हैं, ऐसा कहते हैं। पुण्य-पाप का स्वाद है, वह मलिन है। उस मलिन को हेयरूप से कब जाना कहलाये? आहाहा! कि भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप है प्रभु... आहाहा! उसका आनन्द का स्वाद आकर दृष्टि में निर्विकल्पता हो, तब वह पुण्य-पाप को हेयरूप से जाना कहा जाता है। आहाहा! 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग।' आहाहा!

ध्यान में मग्न हुए पुण्य-पाप को समान जानते हैं,... आहाहा! **तब तो जानना**

योग्य है। आहाहा! है? पुण्य-पाप के भाव से पृथक् पड़ गया है और ज्ञायकभाव के साथ एकमेक हुआ है। आहाहा! तब उसने पुण्य-पाप छोड़नेयोग्य है, ऐसा यथार्थ जाना। आहाहा! **तब तो जानना योग्य है। परन्तु जो मूढ़ परमसमाधि को न पाकर...** दृष्टि-सम्यग्दर्शन तो हुआ नहीं। आत्मा के आनन्द की ओर झुकाव तो हुआ नहीं। और **गृहस्थ-अवस्था में दान, पूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं,...** वे स्वच्छन्दी हैं। समझ में आया? आहाहा!

मूढ़ परमसमाधि.... शान्ति। समाधि अर्थात् शान्ति। अनन्तानुबन्धी का अभाव इतनी शान्ति और मिथ्यात्व का अभाव इतनी सम्यग्दर्शन की शान्ति। आहाहा! मिथ्यात्व भी अशान्ति है, राग-द्वेष वह अशान्ति है, पुण्य-पाप भाव भी अशान्ति है। उन्हें समरूप-समान जाना, तब कहा जाता है कि उनसे हटकर स्वभाव की दृष्टि में अनुभव में आया, तब उन्हें (समाना जाना कहलाता है)। तब उसने कहा कि तो अन्यमति भी ऐसा कहते हैं, पुण्य-पाप (में भेद नहीं है)। अन्तर्दृष्ट में नहीं आया। परन्तु पुण्य-पाप छोड़ना... पुण्य-पापभाव छोड़ना... स्वच्छन्दी बनकर जैसे-तैसे इन्द्रिय के विषय जैसे भोगे और खाये पीवे, उसे तुम दोष क्यों देते हो? कहते हैं। भाई! वह तो स्वयं दृष्टि में आया नहीं और स्वच्छन्दी होकर पुण्य-पाप को छोड़कर फिर स्वच्छन्द में वर्तता है। पुण्य छोड़कर पाप के भाव में स्वच्छन्द से वर्तता है। इन्द्रिय-इन्द्रिय का काम करे, हमारे क्या? अरे! मेर जायेगा...। समझ में आया? उस समय निश्चय क्रमबद्ध में भोग आनेवाला था तो आया है मेरे। मर जायेगा, भोग में एकाकार होगा वहाँ। क्रमबद्धवाले की दृष्टि भोग के ऊपर नहीं होती। आहाहा! उसकी दृष्टि अभोग ऐसा आनन्दस्वरूप भगवान है, वहाँ दृष्टि होती है। आहाहा! निर्बलता का राग आवे, तथापि वह जानता है कि यह दु:ख है। भोग का, वासना का विकल्प तो ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह दु:ख उसे जानता है। आहाहा! आत्मा के आनन्द का भोग, वह सुख है। आहाहा! ऐसी बात है। यह वाद-विवाद से कुछ पार पड़े, ऐसा नहीं है। आहाहा!

दान, पूजा आदि शुभ क्रियाओं को छोड़ देते हैं,... नहीं समाधि में आया, नहीं दृष्टि में आया और पुण्य-पाप छोड़कर स्वच्छन्द करे पाप। **मुनि पद में छह आवश्यककर्मों**

को छोड़ते हैं,... सम्यग्दर्शन है नहीं, समाधि है नहीं और व्यवहार में छह आवश्यक है, उन्हें छोड़ते हैं। आहाहा! **वे दोनों बातों से भ्रष्ट हैं।** निश्चय से भी भ्रष्ट हैं और व्यवहार से भी भ्रष्ट हैं। ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया? **न तो यति हैं, न श्रावक हैं।** आहाहा! वे यति भी नहीं, मुनि भी नहीं और श्रावक भी नहीं। आहाहा! **वे निन्दा योग्य ही हैं।** लो। है? '**तिष्ठन्ति तदा दूषणमेवेति तात्पर्यम्॥**' वहाँ दूषण है, ऐसा। उसे दूषण योग्य है वह तो। यह निन्दायोग्य कहा, उसका अर्थ। दूषण कहो या निन्दा कहो।

तब उनको दोष ही है, ऐसा जानना। समाधि, शान्ति, दृष्टि की जो सम्यग्दर्शन चाहिए वह तो हुआ नहीं और पुण्य सब छोड़नेयोग्य है, ऐसा करके पाप का स्वच्छन्द सेवन करता है। समझ में आया? वह तो इतो भ्रष्ट, ततो भ्रष्ट, सर्वत्र से भ्रष्ट है। लो! **तब उनको दोष ही है, ऐसा जानना।** लो! आहाहा!

गाथा – ५६

अथ येन पापफलेन जीवो दुःखं प्राप्य दुःखविनाशार्थं धर्माभिमुखो भवति तत्पापमपि समीचीनमिति दर्शयति –

१८०) वर जिय पावइँ सुंदरइँ णाणिय ताइँ भणंति।
जीवहँ दुक्खइँ जणिवि लहु सिवमइँ जाइँ कुणंति।।५६।।

वरं जीव पापानि सुन्दराणि ज्ञानिनः तानि भणन्ति।
जीवानां दुःखानि जनित्वा लघु शिवमतिं यानि कुर्वन्ति।।५६।।

वर जिय इत्यादि। वर जिय वरं किंतु हे जीव पावइं सुंदरइं पापानि सुन्दराणि समीचीनानि भणंति कथयन्ति। के। णाणिय ज्ञानिनः तत्त्ववेदिनः। कानि। ताइं तानि पूर्वोक्तानि पापानि। कथंभूतानि। जीवहं दुक्खइं जणिवि लहु सिवमइं जाइं कुणंति जीवानां दुःखानि जनित्वा लघु शीघ्रं शीवमतिं मुक्तियोग्यमतिं यानि कुर्वन्ति। अयमत्राभिप्रायः। अत्र भेदाभेदरत्नत्रयात्मकं श्रीधर्मं लभते जीवस्तत्पापजनितदुःखमपि श्रेष्ठमिति कस्मादिति चेत्। 'आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति' इति वचनात्।।५६।।

आगे जिस पाप के फल से यह जीव नरकादि में दुःख पाकर उस दुःख के दूर करने के लिये धर्म के सम्मुख होता है, वह पाप का फल भी श्रेष्ठ (प्रशंसा योग्य) है, ऐसा दिखलाते हैं –

जो जीवों को बहु दुख देकर शिव सन्मुख बुद्धि करते।
उन पापों को भी सुन्दर अरु श्रेष्ठरूप ज्ञानी कहते।।५६।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [यानि] जो पाप के उदय [जीवानां] जीवों को [दुःखानि जनित्वा] दुःख देकर [लघु] शीघ्र ही [शिवमतिं] मोक्ष के जाने योग्य उपायों में बुद्धि [कुर्वन्ति] कर देवे, तो [तानि पापानि] वे पाप भी [वरं सुंदराणि] बहुत अच्छे हैं, ऐसा [ज्ञानिनः] ज्ञानी [भणंति] कहते हैं।

भावार्थ :– कोई जीव पाप करके नरक में गया, वहाँ पर महान दुःख भोगे, उससे कोई समय किसी जीव के सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है। क्योंकि उस जगह सम्यक्त्व की प्राप्ति के तीन कारण हैं। पहला तो यह है, कि तीसरे नरक तक देवता उसे

संबोधने को (चेतावने को) जाते हैं, सो कभी कोई जीव के धर्म सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे, दूसरा कारण-पूर्वभव का स्मरण और तीसरा नरक की पीड़ाकरि दुःखी हुआ, नरक को महान् दुःख का स्थान जान नरक के कारण जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और आरंभादिक हैं, उनको खराब जानके पाप से उदास होवे। तीसरे नरक तक ये तीन कारण हैं। आगे के चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें नरक में देवों का गमन न होने से धर्म-श्रवण तो है नहीं, लेकिन जातिस्मरण है, तथा वेदनाकर दुःखी होके पाप से भयभीत होना-ये दो ही कारण हैं। इन कारणों को पाकर किसी जीव के सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। इस नय से कोई भव्यजीव पाप के उदय से खोटी गति में गया, और वहाँ जाकर यदि सुलट जावे, तथा सम्यक्त्व पावे, तो वह कुगति भी बहुत श्रेष्ठ है। यही श्रीयोगिन्द्राचार्य ने मूल में कहा है-जो पाप जीवों को दुःख प्राप्त कराके फिर शीघ्र ही मोक्षमार्ग में बुद्धि को लगावे, तो वे अशुभ भी अच्छे हैं। तथा जो अज्ञानी जीव किसी समय अज्ञान तप से देव भी हुआ और देव से मरके एकेन्द्री हुआ तो वह देव-पर्याय पाना किस काम का। अज्ञानी के देव-पद पाना भी वृथा है। जो कभी ज्ञान के प्रसाद से उत्कृष्ट देव होके बहुत काल तक सुख भोग के देव से मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके मोक्ष को पावे, तो उसके समान दूसरा क्या होगा। जो नरक से भी निकलकर कोई भव्यजीव मनुष्य होके महाव्रत धारण करके मुक्ति पावे, तो वह भी अच्छा है। ज्ञानी पुरुष उन पापियों को भी श्रेष्ठ कहते हैं, जो पाप के प्रभाव से दुःख भोगकर उस दुःख से डरके दुःख के मूलकारण पाप को जानके उस पाप से उदास होवें, वे प्रशंसा करने योग्य हैं, और पापी जीव प्रशंसा के योग्य नहीं हैं, क्योंकि पापक्रिया हमेशा निंदनीय है। भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूप श्रीवीतरागदेव के धर्म को जो धारण करते हैं वे श्रेष्ठ हैं। यदि सुखी धारण करे तो भी ठीक, और दुःखी धारण करे तब भी ठीक। क्योंकि शास्त्र का वचन है, कि कोई महाभाग दुःखी हुए ही धर्म में लवलीन होते हैं।।५६।।

गाथा-५६ पर प्रवचन

अब आचार्य जरा थोड़ी दूसरी बात लेना चाहते हैं।

आगे जिस पाप के फल से यह जीव नरकादि में दुःख पाकर... आहाहा! पाप किया, परन्तु पाप के फलरूप से नरक में महादुःख में गया। **उस दुःख के दूर करने के लिये धर्म के सन्मुख होता है,...** यह भी कहते हैं कि पाप के फल में नरक में गया, परन्तु इस पाप के फलरूप से जानकर स्वसन्मुख हो तो वह पाप भी अच्छा है। **वह पाप का फल भी श्रेष्ठ (प्रशंसा योग्य) है,...** नरक में गया महावेदना... वेदना... अर र! यह क्या है ? उस वेदना के प्रति लक्ष्य छोड़कर जब यह वेदना सही न जाये, बापू! एक क्षण में सही न जाये, ऐसे सागरोपम में रहे। सिद्धान्त में है न, कोई वेदना से समकित पाता है। कोई श्रवण से पाता है, कोई जातिस्मरण से पाता है। अर्थात् वह पाता है वह, कहते हैं कि पाप के फलरूप से भले आया यह। परन्तु उसमें से लक्ष्य छोड़कर जब समकित पाया तो वह पाप का फल भी श्रेष्ठ है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १३, शुक्रवार
दिनांक-१९-११-१९७६, गाथा-५६, प्रवचन-१३७

परमात्मप्रकाश, ५६ गाथा। **आगे जिस पाप के फल से यह जीव नरकादि में दुःख पाकर उस दुःख के दूर करने के लिये धर्म के सन्मुख होता है, वह पाप का फल भी श्रेष्ठ (प्रशंसा योग्य) है, ऐसा दिखलाते हैं—**

१८०) **वर जिय पावइँ सुंदरइँ णाणिय ताइँ भणंति।**
जीवहँ दुक्खइँ जणिवि लहु सिवमइँ जाइँ कुणंति।।५६।।

अन्वयार्थ :- हे जीव! जो पाप के उदय... बहुत कठोर पाप किये हो और नरकादि में गया। **जीवों को दुःख देकर...** वह दुःख का निमित्त है। **शीघ्र ही मोक्ष के जाने योग्य उपायों में बुद्धि कर देवे,...** उस नरक में जाकर या दुःख में जाकर का भी अपने स्वरूप की दृष्टि करे तो वह दुःख भी ठीक है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **दुःख देकर शीघ्र ही मोक्ष के जाने योग्य उपायों में...** ऊपर कहा था न? **ये दूर करने के लिये धर्म के सन्मुख होता है।** दुःख दूर करने के लिये धर्म (के) सन्मुख, आत्मसन्मुख होता है तो वह दुःख भी ठीक है, कहते हैं। सुन्दर है दुःख।

अन्यमति में भी ऐसा कहा है, 'सुख के माथे शिला पड़ो हरि हृदय से जाये, बलिहारी दुःख की जिसमें पल-पल प्रभु समराय।' कहो, सेठ! ऐसा कहते (हैं कि) उस पुण्य के फल की अपेक्षा पाप के फल में भी यदि दुःख दूर करने के लिये धर्म की मति सूझे तो वह पाप भी ठीक है, कहते हैं। आहाहा! धर्म सन्मुख बुद्धि सूझे तो, ऐसा। उसका विचार करते... आता है न, तीन प्रकार आयेंगे। वेदना देखकर कोई भी समकित पावे, कोई धर्म श्रवण करके पावे नरक में और कोई वेदना देखकर पावे। जातिस्मरण होकर कोई पावे। ऐसे तीन प्रकार हैं। आयेंगे अभी। आहाहा! **मोक्ष के जाने योग्य उपायों में बुद्धि कर देवे, तो वे पाप भी... 'वरं सुंदराणि' बहुत अच्छे हैं, ऐसा ज्ञानी कहते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- कोई जीव पाप करके नरक में गया, वहाँ पर महान दुःख भोगे,... यह तो अनन्त बार दुःख भोगे हैं। नरक में जाकर अनन्त बार (भोगे हैं)। परन्तु जिसे

दु:ख भोगने का लक्ष्य हुआ। अरे रे! यह दु:ख इतने! सहे जाये नहीं, सहे जाये नहीं। एक क्षण में सोलह रोग और अनन्त... अनन्त... अनन्त... दु:ख की पीड़ा शीत और उष्ण की। आहाहा! वहाँ के शीत का एक कण का टुकड़ा यदि यहाँ शीत... लावे तो दस हजार योजन के लोग गल जाये, ठण्ड में मर जाये। ऐसी तो वहाँ सर्दी है। आहाहा! उष्ण का एक कण यहाँ लावे तो दस योजन के मनुष्य उष्णता से मर जाये, ऐसी वहाँ उष्णता है। आहाहा! वह अनन्त-अनन्त दु:ख है। दु:ख की अतिशयता का क्या कहना? आहाहा!

जैसा भगवान को अनन्त आनन्द है। आहाहा! वैसा अज्ञानी को अनन्त दु:ख है। आहाहा! उस दु:ख की पराकाष्ठा सुने तो त्रास हो, ऐसी चीज़ है। वह अनन्त बार भोगी है। सम्यग्दर्शन बिना—आत्मदृष्टि और आत्मदर्शन बिना ऐसे मिथ्यात्व के किये हुए पाप इस नरकयोनि में अनन्त बार भोगे हैं। आहाहा! जिसमें एक क्षण भी साता का उदय नहीं। आहाहा! एक आहार का कण मिले नहीं, पानी की बूँद मिले नहीं और जन्म से सोलह रोग। और यह शीत-उष्ण की पीड़ा... आहाहा! उसमें उत्पन्न हुआ, कहते हैं।

कोई समय किसी जीव के... उसमें। उसमें भी किसी जीव को। क्योंकि सब तो अनन्त बार गये। हुआ नहीं उन्हें कुछ। ऐसी वेदना में अनन्त जीव अनन्त बार गये हैं, तथापि कुछ हुआ नहीं। परन्तु किसी जीव को किसी समय... आहाहा! **कोई समय किसी जीव के...** किसी काल में किसी जीव को **सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।** आहाहा! इस नरक की वेदना में भी उसका जो लक्ष्य छूट जाये कि अरे रे! यह दु:ख! इस दु:ख से मुक्त होने के लिये आत्मा की दृष्टि करता है, वहाँ समकित प्राप्त कर जाता है। आहाहा! कहो, इतने दु:ख! जिसे आहार-पानी का कण भी नहीं। और यहाँ मनुष्य कहे कि हमको भी कुछ सुविधा हो तो धर्म करे न! आजीविका हो, पुत्र कुछ कमाता हो। हमारे निवृत्ति लेनी हो तो ऐसा कुछ हो तो लें। परन्तु वहाँ नरक के दु:ख का पार नहीं, कहते हैं। उसका माप विचार किया होता, तब तो त्रास हो, ऐसा है। इतनी पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... शरीर के, जैसे पारा के भिन्न-भिन्न टुकड़े हो जायें, उसी प्रकार शरीर के टुकड़े हों जायें। आहाहा! और वापस मिल (इकट्ठे हो) जायें। क्योंकि आयुष्य है, तब तक तो छूटता नहीं। आहाहा! उसकी एक क्षण की पीड़ा अनन्त-अनन्त दु:ख को

देती है। ऐसे सागरोपम दु:ख इसने भोगे हैं, भाई! परन्तु भूल गया है। यहाँ कुछ ठीक मिला... आहाहा!

मुमुक्षु : तीर्थंकर के जन्म समय में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साता का उदय क्षण (मात्र का है)। क्षणिक वह तो साता का उदय (आता है)। ऐसा साता का उदय, हों! सुख नहीं। साता का उदय जरा। आत्मा का सुख नहीं। परन्तु वह तो क्षणिक है। उसमें क्या हुआ? साता का उदय ऐसा जरा मैल है। भगवान का जन्म हो, भगवान को केवलज्ञान हो, (तब) नारकी में भी जरा क्षण साता दिखती है। एक क्षण। आहाहा! परन्तु उसकी पीड़ा... आहाहा! लाख मण का लोहे का गोला हो और लुहार का लड़का जवान बत्तीस वर्ष का हो, उसने उस गोले को छह महीने तक अग्नि में तपाकर टीपकर मजबूत किया हो। टीप-टीप कर। वह गोला वहाँ छोड़े तो दो घड़ी में पानी हो जाये। इतनी तो उसकी उष्णता और शीत की वेदना है। आहाहा!

जैसा भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका भान होकर जिसे पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगटे परमात्मा को, ऐसा जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द से उल्टा इन्द्रिय दु:ख है। आहाहा!

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय सुख....

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे इन्द्रिय दु:ख इतना अनन्तगुणा है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय सुख है, यह इन्द्रिय का दु:ख है। आहाहा! श्वास लेने को चैन नहीं वहाँ। श्वास ले वहाँ पीड़ा, त्रास। क्या कहलाता है वह? शूल चढ़े, शूल। ऐसी पीड़ा से अनन्तगुणी। बापू! यह तो कहने की भाषा होती है। परन्तु उसका माप विचार में आवे तो अनन्त-अनन्त दु:ख है। आहाहा! लो!

समय किसी जीव के... किसी काल में और किसी जीव को **सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।** दु:ख का लक्ष्य (होता है) कि अर र र! यह दु:ख सहा नहीं जाता। आयुष्य पूरा होता नहीं। आयुष्य तो जो होता है (वह भोगना पड़ता है)। आहाहा! यहाँ जरा अग्नि में पैर पड़े, वहाँ चिल्लाहट मचा जाता है। आहाहा! गर्म पानी धगधगता शरीर पर

पड़े तो फफोला पड़े और चिल्लाहट मचा जाये। यह तो अनन्तवें भाग की बात है। आहाहा! कहते हैं कि ऐसे जीव में किसी जीव को किसी समय में। अर्थात् प्रत्येक समय में नहीं और प्रत्येक जीव को नहीं। आहाहा! इस दुःख का वेदन लक्ष्य में लेता है। अर र र! आहाहा! प्रभु! कोई इसका निस्तार? सहा जाये नहीं, आयुष्य पूरा हो नहीं। आहाहा! और सागरोपम असंख्य अरब वर्ष। असंख्य अरब वर्ष। उसमें से गुलांट खा जाता है अन्दर से। आहाहा! अरे! इस दुःख से छूटने का कोई पंथ—रास्ता? तब अन्तर में दृष्टि पड़ती है। इस दुःख से मुक्त होने का उपाय यह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? आहाहा!

क्योंकि उस जगह सम्यक्त्व की प्राप्ति के तीन कारण हैं। नरक में समकित प्राप्त करने के तीन कारण हैं। निमित्त कारण की बात है। **पहला तो यह है कि तीसरे नरक तक देवता उसे संबोधने को (चेतावने को) जाते हैं,...** देवता उसे सुनाने जाते हैं। आहाहा! **सो कभी कोई जीव के धर्म सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे,...** तीसरे नरक तक, हों! अरे जीव! तूने क्या किया था यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन नरक तक। तीन नरक तक। नीचे चार नहीं। देवता सुनावे जरा। कोई पूर्व का प्रेमी हो। अर र..! मित्र कहाँ गया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह तो किसी की बात है। किसी जीव को किसी काल में। सभी जीवों को नहीं। आहाहा! उसे सुनाने जाये देव। है न?

धर्म सुनने से... नारकी में। सातवें नरक में भी। यह बाद में लेंगे। यहाँ तो अभी तीन नरक तक। वहाँ फिर श्रवण का नहीं है। तीन नरक के बाद श्रवण का (योग) नहीं है। वेदना और जातिस्मरण दो हैं। और यहाँ तीन नरक तक वेदना, जातिस्मरण और श्रवण तीन कारण से कोई जीव प्राप्त करता है। आहाहा! नरक में पड़ा, उसे कहे—हे जीव! अरे! यह तूने क्या किया? यह राज के अभिमान, भोग के अभिमान। मर गया तू वहाँ। उसमें तुझे नरकपना आया। आहाहा! अरे! तेरा आत्मा आनन्द का नाथ है, उसे

भूलकर तूने इस भोग में आसक्ति करके मर गया तू। देखो! यह पीड़ा। आहा! ऐसा करते हुए सुनता है और दृष्टि आत्मा में अन्दर उतर जाती है। गुलांट खा जाता है। अरे! यह आत्मा तो आनन्दस्वरूप है। जिसमें दुःख नहीं, ऐसे आनन्दस्वरूप का आश्रय लेने से दुःख दूर होता है। आहाहा! समझ में आया?

सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे, दूसरा कारण पूर्वभव का स्मरण... जातिस्मरण। नरक में कोई पूर्व का स्मरण आ जाये। अरे रे! सन्तों ने मुझे कहा था कि तू यह दुःख करेगा (तो) मरकर नरक में जायेगा। यह कहा था परन्तु मैंने कुछ किया नहीं। कहा था, सुना था परन्तु मैंने किया नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उसे स्मरण आ जाता है। लो! है? **पूर्वभव का स्मरण और तीसरा नरक की पीड़ाकरि दुःखी हुआ...** यह तीनों प्रकार हैं। आहाहा! **नरक को महान दुःख का स्थान जान...** देखो! नरक को महान दुःख का स्थान जान... आहाहा! बीस वर्ष का जवान राजकुमार हो और जिसने करोड़ों रुपये खर्च करके विवाह किया हो, जिसे करोड़ों की आमदनी हो, वह विवाह के दिन में जहाँ बराबर आया। उसे जीवित का जीवित कोई जमशेदपुर की (भट्टी में) उसमें डाल दे। जमशेदपुर की भट्टी में। आहाहा! वह जो पीड़ा है, उससे अनन्त गुणी पीड़ा नरक के पहले पासड़े में है। भाई! उसने विचार किया नहीं। ऐसा का ऐसा बिना भान के चला जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : साहेब! नरक का दुःख है वह संज्ञीपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संज्ञीपना, वह दुःख है, यह संयोग की अपेक्षा से दुःख कहा जाता है। है तो उसे राग-द्वेष का दुःख। दुःख संयोग का नहीं। राग और द्वेष का दुःख है। और निगोद को दुःख है, वह पर्याय की हीनता कर डाली है, इसका उसे दुःख है। निगोद में नरक की अपेक्षा भी बहुत दुःख है, परन्तु वह पर्याय की हीनता परिणम गयी है। आहाहा! अक्षर के अनन्तवें भागमात्र विकास रह गया है। इससे ऐसे अनन्त गुणों का विकास अल्प हो गया है। वह उसे दुःख है। आहाहा! उसे संयोग से कहा जाता है। बाकी उसे उसके राग-द्वेष का दुःख है। समझ में आया? लोगों को ख्याल आवे कि यह शीत की वेदना से दुःखी है, उष्ण की वेदना से दुःखी है। शीत और उष्ण वेदना करता

नहीं। उसकी ओर लक्ष्य जाने पर उसे राग और द्वेष होता है, उसका वह वेदन करता है। आहाहा! समझ में आया?

यह नरक का क्षेत्र ही ऐसा है कि पीड़ा का कारण हो। निमित्तरूप से। स्वर्ग का क्षेत्र ऐसा है कि बाह्य के सुख का निमित्त हो। यह चिद्विलास में आता है। भाई ने डाला है—दीपचन्दजी ने। नरक का क्षेत्र ही ऐसा है। यह दृष्टान्त किसके ऊपर दिया है? कि यह असंख्य प्रदेशी भगवान आत्मा है न? असंख्य प्रदेश, स्वक्षेत्र। वह स्वक्षेत्र आनन्द का कारण है। समझ में आया? आहाहा! जैसे नरक का क्षेत्र दुःख का कारण है। निमित्तरूप से है। और यह तो उपादानरूप से है। आहाहा! असंख्य प्रदेश में अनन्त आनन्द से विराजमान भगवान है। आहाहा! वह आत्मा का क्षेत्र तो प्रदेश जो है, वह तो दुःख का कारण नहीं, सुख का कारण है। समझ में आया? नरक का क्षेत्र और स्वर्ग का क्षेत्र कहा, यह तो निमित्त से कहा कि नरक का क्षेत्र दुःखरूप है, स्वर्ग का क्षेत्र सुखरूप है। यह तो निमित्त से कथन किया। यह तो भगवान आत्मा... आहाहा! उसका क्षेत्र—प्रदेश का स्वरूप ही ऐसा है कि अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान से भरपूर प्रदेश है। एक-एक प्रदेश में अनन्त गुण पड़े हैं। एक गुण का असंख्य प्रदेश में व्यापना है। क्षेत्र-क्षेत्र। आहाहा!

एक प्रदेश में अनन्त गुण हैं। ऐसा एक-एक गुण असंख्य प्रदेश में व्याप्त है। ऐसे अनन्त गुण व्याप्त हैं। आहाहा! ऐसा जिसका स्वक्षेत्र है। वह स्वक्षेत्र का वीर्य है। ऐसा वहाँ कहा है, भाई! समझ में आया? क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, भाववीर्य—ऐसे बहुत भेद किये हैं न? चिद्विलास में। उसमें भी है। आहाहा! उस क्षेत्र का सामर्थ्य ही ऐसा है भगवान आत्मा का। आहाहा! वह क्षेत्रवीर्य ऐसा है कि उसे आनन्द ही दे। आहाहा! स्वक्षेत्र का आश्रय करने जाये और स्वक्षेत्र में बसे, उसे आनन्द मिले। समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वकाल....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वकाल, यह पुरुषार्थ करे, तब स्वकाल आ जाये, ऐसा है। स्वकाल भाषा नहीं वहाँ। वह अपना पुरुषार्थ है, वहाँ स्वकाल पक जाता है वहाँ।

मुमुक्षु : ऐसा कहे कि काल आवे, तब पुरुषार्थ हो न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पुरुषार्थ पके, तब काल पक जाता है। यहाँ बात कही न सुलटी। आहाहा! वह तो बात करके यहाँ। 'भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं पुरुषार्थ' आत्मार्थ छेदना नहीं। काल में होगा, यह होगा और वह होगा। यह तो बात की थी न कल बहुत?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ अभेद है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ अपना स्वरूप ही है। अनन्त पुरुषार्थ। अनन्त पुरुषार्थ उसका स्वरूप है। असंख्य प्रदेश में अनन्त पुरुषार्थ—वीर्य व्याप्त हो गया है। आहाहा! ऐसा स्वक्षेत्र वह आनन्ददायक है। समझ में आया? इस प्रदेश में जिसने वास किया, जिसने स्वप्रदेश में निवास किया, वह जगत का साक्षी परमात्मा हो जाता है। आहाहा! यह बाहर के बँगले में हजारों में और बड़े करोड़ के बँगले और अरबों के बँगले में निवास करे, वह तो पाप का निमित्त है। दुःख का निमित्त है। आहाहा! अच्छा मकान और अच्छा पलंग और सच्छे गद्दे, तकिया और ऐई, ऐसे सो रहा हो मानो। आहाहा! वह तो दुःख का कारण है।

मुमुक्षु : तकिया दुःख का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख का कारण है। ऐ... सेठ! इस सेठ के तीन बड़े बँगले हैं। एक लड़के के ऊपर लिख दिया है। दो दूसरे हैं। क्या करेगा उन्हें? दो-दो लाख के तीन बड़े बँगले हैं। किराया बहुत उपजता है। वह सुख का कारण होगा? इसके किराया उपजता है। नहीं? यह प्रश्न नारद को। तब वहाँ पड़ा है न।

मुमुक्षु : रोटियाँ मिलने का कारण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रोटियाँ भी आनेवाली हों तो आती हैं। पैसे से नहीं आती। आहाहा! वह तो नहीं लिखा? कि दाने दाने पर नाम लिखा नहीं? 'खानेवाले का दाने-दाने पर नाम है।' इसका अर्थ क्या हुआ? वे रजकण वहाँ आनेवाले, वे आनेवाले हैं। नहीं आनेवाले, वे नहीं आनेवाले। वह पुण्य के कारण नहीं। पुण्य तो निमित्त है। आहाहा!

यहाँ तो नरक का क्षेत्र दुःखरूप कहा, वैसे आत्मा का क्षेत्र आनन्दरूप है।

आहाहा! जिसने स्वक्षेत्र में निवास किया। नि—विशेष, वास—अन्दर बसा। आहाहा! असंख्य प्रदेशी स्वक्षेत्र में जिसने वास किया, जिसने उसमें वास्तु लिया। आहाहा! परक्षेत्र में वास्तु पाँच लाख का बँगला बनाया, दस लाख का बनाया। वह वास्तु सब दु:ख के कारण हैं। आहाहा! समझ में आया? उसके पास बहुत है लड़के को। चिमनभाई को वहाँ तीन-तीन लाख के तीन बँगले हैं। पैसे बहुत हैं। धूल भी नहीं वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : होवे तो मेहमान को उतरने....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मेहमान कहाँ है? उतरे हैं न हम, वहाँ उतरे थे न। दो बार उतरे थे।

मुमुक्षु : आपको प्रार्थना की....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रार्थना की थी। आहाहा!

वहाँ तो ऐसा कहा है। क्षेत्र बतलाकर प्रदेश। जीव के प्रदेश स्वक्षेत्र है, वह स्वक्षेत्र ही सुख का—आनन्द का कारण है। उसके क्षेत्र में बसना, वह आनन्द का कारण है। क्षेत्र में से हटकर रागादि में बसना, वह दु:ख का कारण है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! चैतन्य भगवान असंख्य प्रदेशी। उस प्रदेश में जिसने प्र—देश। परदेश नहीं। प्र—विशेष, देश—अंश है। प्रदेश। ऐसे असंख्य प्रदेशी वस्तु भगवान है। वह चैतन्यघन है। उसमें जिसका वास (हुआ)। वह क्षेत्र ही आनन्द का कारण है। आहाहा! नरक का क्षेत्र दु:ख का निमित्त। निमित्त है वह तो। और यह स्वर्ग का क्षेत्र सुख का, कल्पना के सुख का (निमित्त)। है तो वह दु:ख। भगवान का क्षेत्र आनन्द का कारण है। उपादान उसका है। इसमें तो निमित्त है। समझ में आया? आहाहा!

स्वप्रदेश, स्वक्षेत्र में इसने कभी वास किया नहीं। आहाहा! असंख्य प्रदेशी चैतन्यधाम 'स्वयं ज्योति सुखधाम' वह सुख का क्षेत्र है। अतीन्द्रिय आनन्द का ही वह प्रदेश-क्षेत्र है। आहाहा! जो आनन्ददायक है और आनन्द दे। आहाहा! उसका किसी को दु:ख के कारण से अथवा सुनकर या पूर्वभव का स्मरण, ऐसे **नरक को महान दु:ख का स्थान जान नरक के कारण जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और आरम्भादिक हैं, उनको खराब जान के पाप से उदास होवे।** आहाहा!

मुमुक्षु : पाप को छोड़कर पुण्य में जाये तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर जाये उसकी बात है यहाँ तो। उदास का अर्थ यह। वहाँ से उदास होकर आत्मा में जाये, उसे उदास कहते हैं। पाप में उदास आवे और पुण्य का रस आवे, वह नहीं। उनसे उदास होने पर आत्मा में जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह कारण लेंगे। आहाहा!

तीसरे नरक तक ये तीन कारण हैं। निमित्त। **आगे के चौथे, पाँचवें, छठे, सातवें नरक में देवों का गमन न होने से...** चौथे नरक से सातवें में देव नहीं जाते। देव का गमन वहाँ नहीं है। आहाहा! **धर्म-श्रवण तो है नहीं,...** चौथे नरक में, पाँचवें, छठवें, सातवें—चार नरक। आहाहा! इनकी अस्ति है, हों! कितने ही ऐसा कहते हैं कि यह सब भयसूत्र है। भय बतलाने का साधन, ऐसा नहीं है, बापू! वस्तु का स्वरूप है। आहाहा! एक व्यक्ति एक मनुष्य का खून करे और बाहर गवाही आवे तो एक बार फाँसी दे। परन्तु उस व्यक्ति ने सैकड़ों मनुष्यों का संहार किया हो... देखो न, हिटलर ने नहीं ? कितने ही लोगों को, कितने ही राजाओं को मार डाला हो। अब उसका दण्ड क्या है यहाँ ? मनुष्यक्षेत्र में उसका दण्ड क्या ? एक बार फाँसी दे। एक को मारे तो एक बार फाँसी, हजार को मारे तो एक बार फाँसी! यह प्रकृति के नियम में उसका यह क्षेत्र। जैसी प्रतिकूलता अनन्त देने का भाव किया था, वैसी जहाँ अनन्त प्रतिकूलता है, उसका नाम नरक है। आहाहा! उत्साह का एक अंश ठिकाना नहीं, ऐसी पीड़ा, बापू! आहाहा! ऐसी पीड़ा का विचार करके अन्दर में उतरता है। है तो वह निमित्त। क्योंकि ऐसी पीड़ा तो अनन्त बार अनन्त जीवों ने की और पाये नहीं। परन्तु किसी को इसका विचार आने पर अन्दर में जाता है। दुःख को टालने के लिये। आहाहा! अरे रे! इस दुःख को किस प्रकार (टालना) ? सागरोपम। ३३-३३ सागरोपम। आहाहा! दस हजार वर्ष की स्थिति का नारकी। जीवित राजकुमार को जलावे, ऐसे विवाह की तैयारी हो। तैयारी की, विवाह किया और उस दिन जलावे। आहाहा! उसकी पीड़ा से पहले नरक में दस हजार वर्ष की स्थिति में अनन्त गुणी पीड़ा है। आहाहा!

मुमुक्षु : तन्दुल मच्छ वहाँ जाता है तो वह तो एकदम मुफ्त में कूटा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुफ्त में कुटता नहीं। परिणाम उल्टे हैं इसलिए। क्या किया इसने? नहीं समझे? मच्छ होता है न मच्छ छोटा? ऐसा कि वह तो कुछ करता नहीं और जाता है मरकर नरक में। इसलिए मुफ्त में कूटा। मुफ्त में जाता है, ऐसा। यह काठियावाड़ी भाषा है। मुफ्त में नहीं कूटा। उसने महा विपरीत भाग किये थे। बहुत भाव उल्टे। और क्रियावाले ऐसा कहे कि, एक साधु आया था स्थानकवासी। ऐसा कि नरक में क्यों गया? कि जीव को मारने के लिये यह मुख इतना किया। यह क्रिया की इसलिए (गया)। अरे! उसके कारण क्या है? उसको क्रिया स्थापित करनी है न? एक साधु आया था स्थानकवासी। नहीं? क्या नाम? गटुलालजी। यहाँ आया था। ऐसा कि इस नरक में जाता है वह क्रिया द्वारा जाता है। उसे क्रिया का स्थापन करना है न, यह बाहर की क्रिया। तब कौन सी क्रिया? मुख ऐसा किया (वह क्रिया)। अब वह तो अंगुल के असंख्य भाग में मच्छ है। अंगुल का असंख्यवाँ भाग। वज्रनाराच-संहनन। आहाहा! मात्र परिणाम की क्लिष्टता और क्रूरता। उसमें घिर गया और उसमें से मरकर सातवें नरक में जाता है। आहाहा!

यहाँ तो (यह) बतलाकर आनन्द के नाथ में जा अब, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? तुझे दुःख से डर लगा हो। भवभ्रमण का भय लगा हो। भगवान! भवभ्रमण का भय। आहाहा! अन्तर में असंख्य प्रदेशी आनन्दघन भगवान, वह तेरा स्वक्षेत्र है। और स्वक्षेत्र में तो आनन्द के अंकुर पके, ऐसा तेरा क्षेत्र है। आहाहा! जैसे वे चावल नहीं कहते? क्या कहलाते हैं वे? ऊँचे। हमारे समय में कुलफा चावल आते थे। अभी वासावड के कहते हैं। वासावड के चावल कहते हैं न? चावल नहीं समझते? बासमती चावल। अभी यह कहते हैं। हमारे समय में वे कुलफा के चावल थे। ६० वर्ष पहले। बहुत बारीक ऊँचे। दुकान में, वहाँ घर में रसोई में वे प्रयोग करते थे। कुलफा के चावल। कुलफा। बारीक मोती के दाने जैसे। ऊँची चीज़ चावल की। ६० वर्ष ऊपर वहाँ रसोई में अन्दर वे पकाते थे। कुलफा-कुलफा। सुना था? नहीं सुना। वहाँ वासावड चावल से भी वे चावल बहुत ऊँचे थे। वहाँ तो हमारे दुकान चलती थी न, इसलिए रसोई में सब ऊँची चीज़ें लेते। कोई हल्की चीज़ ही नहीं। उस कुलफा को पकाने का क्षेत्र होता है, मेरा ऐसा कहना है। यह तुम्हारी इस जीथरी की जमीन या इस जमीन में

कुलफा वहाँ नहीं पकता। वासावड के चावल उसमें नहीं पकते। यह कलथी पके यहाँ तो। कलथी नहीं होती? समझे? कलथी। धान-धान होता है। चपटी। लाल कलथी कहते हैं। वह कलथी यहाँ खेत में पके। चावल पकने का (खेत) अलग होता है।

मुमुक्षु : यह तो दृष्टान्त हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त हुआ। इसी प्रकार आत्मा का आनन्द पकने का रास्ता असंख्य प्रदेशी क्षेत्र स्व है। आहाहा! वहाँ दुःख पकता है, वह तो पर्याय में परलक्ष्य में पड़ता है। स्वक्षेत्र में दुःख है ही नहीं। आहाहा! अरे! स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव। ऐसा जो चतुष्टय अपना स्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी प्रतिकूलता में फायदा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रतिकूल में सब पर्याय चली गयी। आहाहा! और या अनुकूलता थोड़ी मिले, वहाँ फँस जाता है वापस। आहाहा! हाथी हो और घोड़ा हो और बड़ा राज हो। यह कहेंगे अभी।

चौथे, पाँचवें, छठें, सातवें नरक में देवों का गमन न होने से धर्म-श्रवण तो है नहीं, लेकिन जातिस्मरण है,... आहाहा! सातवें नरक में भी पूर्व का स्मरण हो जाता है अन्दर। अरे रे! हमको सन्तों ने कहा था कि आत्मज्ञान में जा, आत्मा में उतर। हमने नहीं सुना, कुछ नहीं किया। ऐसा स्मरण आया। स्मरण आकर अन्दर में गये। आहाहा! पूर्व भव में देशना तो सुनी थी। यहाँ स्मरण आया उसमें... ओहो! महात्मा ने तो ऐसा कहा था। महा आत्मा तू पूर्ण आनन्द का नाथ महत्स्वरूप है। आहाहा! उसमें नजर कर, तुझे आनन्द आयेगा। अरे! हमने कुछ किया नहीं। आहाहा! ऐसा स्मरण आने पर अन्दर उतर जाता है।

तथा वेदनाकर दुःखी होके पाप से भयभीत होना— दो (कारण)। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें में जातिस्मरण और वेदना। **वेदनाकर दुःखी होके पाप से भयभीत होना—ये दो ही कारण हैं। इन कारणों को पाकर किसी जीव के सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है।** लो! किसी जीव को, उसका पुरुषार्थ स्वसन्मुख ढलता है, उसे यह निमित्त कहने में आता है। **इस नय से कोई भव्य जीव पाप के उदय से खोटी गति में गया, और**

वहाँ जाकर यदि सुलट जावे,... वहाँ जाकर सुलट जाये। वह सुलट जाये तो यह कारण है। समझ में आया? दु:ख और वह तो सब निमित्त है। परन्तु सुलट जाये उसमें। आहाहा! गुलांट खा जाये। राग और पर्यायबुद्धि है, उसे छोड़कर द्रव्यबुद्धि करे... आहाहा! स्वभावबुद्धि करे, स्वक्षेत्र बुद्धि करे। स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव... अपरिमित आनन्द और ज्ञान से भरपूर भगवान।

एक-एक शक्ति प्रभुत्वशक्ति से भरपूर है। प्रभुत्वशक्ति है, परन्तु एक-एक शक्ति ज्ञानशक्ति प्रभुत्वशक्ति से भरपूर है। ऐसे ज्ञानशक्ति, कर्मशक्ति से, करणशक्ति से, सम्प्रदानशक्ति से... आहाहा! ऐसा एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप उसमें है। आहाहा! ऐसे अनन्त गुणों का एक-एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप, ऐसे अनन्त गुण हैं। तो ऐसा कोई कहे कि एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप है तो एक गुण स्वयं पूरा द्रव्य हो गया। समझ में आया? द्रव्य तो, एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप, ऐसे अनन्त गुण, उसमें अनन्त गुण का स्वरूप पूरा पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। एक गुण में अनन्त गुण का स्वरूप आया, इसलिए एक गुणमय आत्मा, अनन्त स्वरूपमय एक गुणमय आत्मा, ऐसा नहीं। समझ में आया?

जब अनन्त गुणस्वरूप प्रभु है, तो अनन्त गुण तो एक-एक गुण के स्वरूप में है। अनन्त गुण। समझ में आया इसमें? अनन्त गुण का पिण्ड वह प्रभु। तो एक गुण में अनन्त का रूप है। तो एक गुण का धारक वह द्रव्य हो गया। ऐसा नहीं। एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप है, ऐसे अनन्त गुण का रूप। एक-एक गुण में ऐसे अनन्त-अनन्त गुण और असंख्य प्रदेशी क्षेत्र। आहाहा! प्रदेश असंख्य और गुण अनन्त। और एक गुण में अनन्त गुण का रूप। आहाहा! राज व्यवस्था बड़ी पड़ी है इसमें। राज अर्थात् शोभा। समझ में आया? आता है न? राजते इति... शोभायमान है। १७वीं-१८वीं गाथा में। आहाहा! राज्यते शोभते इति राजा। आहाहा!

असंख्य प्रदेश में क्षेत्र असंख्य और गुण अनन्त। और एक-एक गुण में अनन्त गुण का रूप। ओहोहो! ऐसी बात इसने सुनी और कोई पावे और न सुनी और वेदना से कोई पावे और कोई स्मरण से पावे—जातिस्मरण से। चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें नरक

में सुनने का (योग) नहीं है। आहाहा! उसे अपने आप स्मरण हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : तब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ था? सातवें नरक में। उसे कहाँ स्मरण-फमरण है? वह तो महापाप किया है यहाँ। यह तो किसी जीव को किसी समय की बात है। यह तो बात पहले कही। ऐसे तो अनन्त जीव अनन्त बार वहाँ जा आये हैं। किसी को कुछ हुआ नहीं, वेदना (सहन) की तो भी। परन्तु उसे सुलटा होने का काल है पुरुषार्थ में। आहाहा! उसे वह वेदन और स्मरण निमित्त होता है। अथवा श्रवण का निमित्त होता है। तीन तक। चार, पाँच, छह, सात में दो (निमित्त हैं)। आहाहा! स्मरण और वेदना—दो। ऐसा भगवान ने कहा है। परमेश्वर वीतरागदेव ने ऐसा कहा है। उनके ज्ञान में ऐसा भासित हुआ है, ऐसा कहा है। आहाहा!

यहाँ तो थोड़ी सुविधा करने जाये, वहाँ सब छोड़ दे। सुविधा के प्रेम में धर्म का श्रवण का अवसर हो तो उसे भूल जाये उसमें भी वह, आहाहा! वेदना का काल आया तो उसमें यह भूल जाये अन्दर में वापस। वहाँ अनुकूल हो जाये। उसका यह हुआ, उसकी दवा यह हुई, उसका यह हुआ, उसका यह हुआ। आहाहा! वहाँ रुक जाये। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे काल में भी ऐसे अन्दर में जा सकता है सुलटा। सुलटा करे तो। सुलटी दशा करे तो। आहाहा!

इस नय से कोई भव्य जीव पाप के उदय से खोटी गति में गया, और वहाँ जाकर यदि सुलट जावे, तथा सम्यक्त्व पावे, तो वह कुगति भी बहुत श्रेष्ठ है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह कुगति भी श्रेष्ठ है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : धर्म प्राप्त करे उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य बदले उसे। दिशा बदले उसे। सुलटा करे उसे। ऐसा कहा न? आहाहा!

यही श्री योगीन्द्राचार्य ने मूल में कहा है—यह गाथा। **जो पाप जीवों को दुःख प्राप्त कराके... पाप जीवों को दुःख प्राप्त कराके फिर शीघ्र ही मोक्षमार्ग में बुद्धि को लगावे, तो वे अशुभ भी अच्छे हैं।** पाठ हो गया। ५६। '**वर जिय पावइँ सुंदरइँ णाणिय**

ताइँ भणंति।' वह पाप सुन्दर है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं। किसे? '**जीवहँ दुक्खइँ जणिवि'** दुःख को प्राप्त करके। '**लहु सिवमइँ जाइँ कुणंति॥'** यदि शीघ्र शिवमति करे तो। आहाहा! यह अन्यमत में भी कहा है न? अभी नहीं कहा था? अन्यमत में ऐसा श्लोक है। 'सुख के माथे शिला पड़ो।' उस सुख के ऊपर पत्थर पड़ो—बड़ी शिला। 'हरि हृदय से जाये।' भगवान हृदय में से जाते हैं। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह मकान, यह पैसा और हीरा, माणेक और... आहाहा! दस करोड़ रुपये के हीरा और माणेक। सेठिया के मामा। दीपचन्द सेठिया के मामा हैं न? दस करोड़ के हीरा और माणेक हैं। पहले के हैं। अब तो उनकी कीमत कितनी बढ़ गयी होगी। हीरा और माणेक सोने का पाटला सब पड़ा (रहा)। सम्हाले। आहाहा! अब तो भाव बढ़ गया, इसलिए बहुत पैसे हुए। गिनना है न परन्तु वह तो वहीं का वहीं जीव रुक जाता है। आहाहा! इतने पैसे का ऐसा करो, इतने पैसे का ऐसा करो। बहुत पैसा है तो लड़का इतना सब धन्धा नहीं कर सकता। उसे करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ का धन्धा है और अपने पास तो दो अरब रुपये हैं। तो इस व्यक्ति को दो दस लाख। टके का ब्याज और महीने में हम देखने आयेंगे और आधा। आधा मुनाफा। महीने-महीने में जाँच करेंगे और पैदा करे, उसमें आधा भाग हमारा और टके का ब्याज। रुक गया वहीं का वहीं। जाधवजीभाई! यह जादवजीभाई को टके का ब्याज है इनका। इन्हें ब्याज बटाव का धन्धा है लड़कों को। ब्याज बटाव करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पैसादार हो वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसादार कहना किसे? आहाहा!

फिर शीघ्र ही मोक्षमार्ग में बुद्धि को लगावे, तो वे अशुभ भी अच्छे हैं। तथा जो अज्ञानी जीव किसी समय अज्ञान तप से देव भी हुआ... देखो! अज्ञानी जीव किसी समय अज्ञान तप से (अर्थात्) यह दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव से देव हुआ। **और देव से मरके एकेन्द्रिय हुआ...** आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, सम्यग्दर्शन बिना, आत्मज्ञान बिना करे, उससे स्वर्ग में जाये और वहाँ से एकेन्द्रिय में जाये। आहाहा! पहले देवलोक का देव, दो सागर की स्थिति। आहाहा! वह मरकर वनस्पति (में

अवतरित हो)। आहाहा! यह वह कुत्ती वहाँ प्रसूत हुई है न अभी। पाँच-छह बच्चे हैं। कहीं से आये होंगे बनिया-सेठिया मरकर। इतने-इतने बच्चे हैं न वहाँ अपने भोजनशाल के पास, नहीं? भोजनशाला में एक कुतिया। आहाहा! वह परस्पर में लड़े। आहाहा! अरे रे! यह सूझ पड़ने का अवसर था, वहाँ सूझ की नहीं, अन्दर सुलटा हुआ नहीं। और आवे उस रास्ते। अब उसे मनुष्य होना मुश्किल। आहाहा! कब मनुष्य हो वह? गडुलिया (को) क्या कहते हैं? पिल्ला। कुत्ती का पिल्ला। आहाहा! वहाँ अभी हुए है नये। अरे! कहा, कोई सेठिया बनिया-बनिया मरकर आया होगा यहाँ। क्योंकि पाप किया हो न नरक का। धर्म किया न हो तथा पुण्य किया न हो। नरक के पाप नहीं, पुण्य नहीं, धर्म नहीं। अब बीच की स्थिति, इसलिए मरकर ऐसे हुए बेचारे। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्य हो तो देव हो नहीं तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य भी न हो। शास्त्र श्रवण, सत्समागम, वाँचन करना दो-चार घण्टे। तो वह पुण्य है, वह कुछ धर्म नहीं। आहाहा! वह भी किया न हो। आहाहा! और धर्म तो है नहीं। तथा नरक के पाप नहीं। माँस और मदिरा ऐसे बनिया को कुछ होते नहीं। आहाहा! एक तो वह सीढ़ियों में एक ओर बैठा था ऐसे। मेरी नजर गयी, कहा, यह यहाँ क्यों बैठा है? वहाँ चढ़ते हैं सीढ़ियों में... स्वाध्याय मन्दिर की। आहाहा! हो गया। दिन हार गया। मनुष्यभव हार गया हो। अब वहाँ से बड़ा हो फिर ऐसे मारामारी, मारामारी। और वह स्वयं माँस खाये वापस। चूहे निकले तो मारे, गिलहरी को मारे। खिसकोली समझते हो? क्या कहते हैं? खिसकोली नहीं होती?

मुमुक्षु : गिलहरी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। लम्बी पूँछ और ऐसे... ऐसे (हो)। पूँछ लम्बी हो और शरीर दोनों सरीखे हों।

मुमुक्षु : छिपकली।

पूज्य गुरुदेवश्री : छिपकली नहीं, गिलहरी कहते हैं। ढेढगरोली (छिपकली) नहीं। उसे पूँछ होती है छिपकली को? यह तो गिलहरी। आहाहा! एक पर्दा बन्द हुआ वहाँ दूसरा पर्दा आया वापस। आहाहा!

अरे रे! जिसने आत्मा का सम्यग्दर्शन (अर्थात् कि जो) भव के नाश करने का उपाय, जिसने खोजा नहीं, उसे ऐसे भवभ्रमण हैं, बापू! आहाहा! कुदरत के नियम में वहाँ किसी की सिफारिश नहीं है कि हमने इतने-इतने काम किये थे और इसके काम किये थे। क्या किये थे? अभिमान किया था। आहाहा! देशसेवा की। उसे ऐसा दिया। क्या किया बापू तूने? मिथ्यात्वभाव सेवन किया था। आहाहा!

अज्ञानी **तप से देव भी हुआ और देव से मरके एकेन्द्री हुआ...** आहाहा! **वह देव-पर्याय पाना किस काम का?** यह देवपना प्राप्त करना किस काम का? आहाहा! अज्ञानभाव से तपस्यायें कीं, व्रत किये, बालव्रत, बालतप। आहाहा! उससे देव हुआ, ऐसा कहते हैं। वह देव मरकर एकेन्द्रिय में जाये, बापू! वह किस काम का? कहते हैं। आहाहा! **अज्ञानी के देव-पद पाना भी वृथा है।** है? अज्ञानी को तो देवपद प्राप्त करना वृथा है। आहाहा! **जो कभी ज्ञान के प्रसाद से उत्कृष्ट देव होके...** अब आया। आत्मज्ञानसहित कोई देव हो। आत्मज्ञान के भानसहित में कोई शुभ पुण्यभाव हुए और आत्मज्ञानसहित पुण्य होकर स्वर्ग में गया। आहाहा! **बहुत काल तक सुख भोगके देव से मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके मोक्ष को पावे...** लो! आहाहा! आत्मज्ञानसहित कोई ऐसा पुण्य हुआ और स्वर्ग में गया तो वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके मोक्ष में जायेगा। आहाहा! वह ज्ञान की बलिहारी है, कहते हैं। स्वरूप का ज्ञान। ऐसे ज्ञान की भूमिका में (पुण्य बँध गया हो)। वह अज्ञान की भूमिका में तप की बात थी। वह देव हुआ और देव मरकर एकेन्द्रिय हुआ।

अब यहाँ ज्ञान की भूमिका में... आहाहा! मैं तो चैतन्यस्वरूप हूँ, वीतरागमूर्ति हूँ। अकलंक, अविकारी मेरी चीज़ है। ऐसा जहाँ अन्तर में ज्ञान हुआ, उस ज्ञानी को जो कुछ शुभभाव हो, पूर्णता वीतराग की न हो, उसे शुभभाव हो, वह शुभ से मरकर स्वर्ग में जाये। वहाँ से मरकर मनुष्य होकर मोक्ष जाये। ऐसा कहते हैं। वह दूसरा देवलोक में जाकर एकेन्द्रिय में जाये। आहाहा! भिन्न-भिन्न प्रकार का वर्णन है। समयसार से परमात्मप्रकाश में दूसरे प्रकार का वर्णन है। आहाहा!

मुनिव्रत धारण करके मोक्ष को पावे,... सम्यग्दृष्टि है न? सम्यग्ज्ञानी है। आहाहा!

इसलिए उसे पूर्णता प्राप्त नहीं हुई और उसमें शुभभाव आया। उस शुभभाव से वह स्वर्ग में गया, परन्तु वहाँ वह आसक्ति नहीं पाता। क्योंकि सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! उसके फलरूप से मनुष्यपना पाकर, केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेगा। वह (अज्ञानी) एकेन्द्रिय में जायेगा तो यह (सम्यग्ज्ञानी) मोक्ष में जायेगा। आहाहा! वह देवलोक में से एकेन्द्रिय में जायेगा, तब यह देवलोक में से मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके केवल(ज्ञान) प्राप्त करेगा। आहाहा! देखो! यह सम्यग्ज्ञान की बलिहारी। आहाहा! समझ में आया?

तो उसके समान दूसरा क्या होगा। विशेष ऐसा कहते हैं। **जो नरक से भी निकलकर कोई भव्यजीव मनुष्य होके महाव्रत धारण करके मुक्ति पावे, तो वह भी अच्छा है।** नरक में से निकलकर भी कोई भव्यजीव मनुष्य होकर महाव्रत सम्यग्दर्शनसहित, हों! उसकी बात है। उसे महाव्रत कहा, इसलिए कहा न, मुक्ति पावे। ऐसा कहा है न? नरक में से निकलकर भी कोई भव्य जीव समकित पाकर, चारित्र धारण करके, महाव्रत धारण करके मुक्ति पावे। **तो वह भी अच्छा है। ज्ञानी पुरुष उन पापियों को भी श्रेष्ठ कहते हैं,...** आहाहा! **ज्ञानी पुरुष उन पापियों को भी श्रेष्ठ कहते हैं, जो पाप के प्रभाव से दुःख भोगकर उस दुःख से डरके...** देखो! दुःख से डरे हैं। ऐसा। **दुःख के मूलकारण पाप को जानके...** आहाहा! **उस पाप से उदास होवें, वे प्रशंसा करने योग्य हैं, और पापी जीव प्रशंसा के योग्य नहीं है,...** पाप से उदास हो, वह प्रशंसा करनेयोग्य है। समझ में आया? **और पापी जीव प्रशंसा के योग्य नहीं है, क्योंकि पाप क्रिया हमेशा निन्दनीय है।** आहाहा!

भेदाभेदरत्नत्रयस्वरूप श्री वीतरागदेव के धर्म को जो धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। आहाहा! भेदाभेदरत्नत्रय—निश्चयरत्नत्रय और व्यवहाररत्नत्रय। व्यवहाररत्नत्रयवाले को व्यवहाररत्नत्रय के राग का कर्तापना नहीं है; इसलिए उसकी सम्यग्दर्शन की भूमिका में ऐसा भेदरत्नत्रय व्यवहार आता है। आहाहा! ऐसे धर्म को **जो धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ हैं।** आहाहा! **यदि सुखी धारण करे तो भी ठीक, और दुःखी धारण करे तब भी ठीक।** उसमें कुछ... पुण्यरूप से सुख, बाहर की सामग्री मिली होने पर भी उसमें से धर्म धारण करे तो वह ठीक, और पापी नरक में गया पाप के कारण, वहाँ से धर्म धारण करे तो वह ठीक। धर्म धारण करना, वह ठीक है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह साहेब! चौथे के बात है या पाँचवें की?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई काल बिना की। कोई काल लागू नहीं पड़ता इसे। ऐसा (कहते हैं) कि चौथे काल में ऐसा होता है और पाँचवें काल में नहीं। पाँचवें काल में एकावतारी होता है और चौथे काल में अनन्त बार भगवान के पास गया और अनन्त संसारी रहा। काल का क्या है? चौथे काल में भगवान की विद्यमानता में अनन्त बार परमात्मा के पास गया। आहाहा! पाँचवें काल में आत्मा के पास जाये तो वह भी मुक्ति जाये अल्पकाल में। भगवान के पास अनन्त बार गया, परन्तु आत्मा के पास जाये, वह पाँचवें कालवाला भी मुक्ति में जाता है। आहाहा!

परमानन्द के नाथ का स्वभाव में स्वीकार करना, सत्कार करना, बहुमान करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! जहाँ-जहाँ ज्ञान, वहाँ-वहाँ आत्मा; आत्मा वहाँ-वहाँ ज्ञान। राग, वहाँ आत्मा नहीं और आत्मा, वहाँ राग नहीं। आहाहा! उसमें लिखा है। ऐसा जो अन्तर में दृढ़ निश्चय, उसे समकित कहते हैं। आत्मावलोकन। दीपचन्दजी (कृत)। जहाँ-जहाँ ज्ञान, जानपना... जानपना... जानपना... वहाँ-वहाँ आत्मा और जहाँ-जहाँ आत्मा, वहाँ-वहाँ ज्ञान। जहाँ-जहाँ राग, वहाँ आत्मा नहीं और आत्मा, वहाँ राग नहीं। समझ में आया?

क्योंकि शास्त्र का वचन है कि कोई महाभाग दुःखी हुए ही धर्म में लवलीन होते हैं। है? '**आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति**' संस्कृत में है। '**आर्ता नरा**' अर्थात् कि दुःखी। दुःखी प्राणी। '**आर्ता**' बहुत दुःखी हो, दुःखी हो। खाने को मिले नहीं, पीने को मिले नहीं, मकान मिले नहीं, स्त्री हो नहीं, पुत्र हो नहीं, कपड़े हो नहीं। आहाहा! अकेला महा आर्ता। '**आर्ता नरा धर्मपरा भवन्ति**' वह प्राणी धर्म को परायण हो तो वह बराबर ठीक है, कहते हैं। आहाहा! है? **शास्त्र का वचन है कि कोई महाभाग...** आहाहा! **दुःखी हुए ही धर्म में लवलीन होते हैं।** तो भी अच्छा है, कहते हैं। यह गाथा पूरी हुई।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५७

अथ निदानबन्धोपार्जितानि पुण्यानि जीवस्य राज्यादिविभूतिं दत्त्वा नारकादिदुःखं जनयन्तीति हेतोः समीचीनानि न भवन्तीति कथयति –

१८१) मं पुणु पुण्णइं भल्लाइँ णाणिय ताइँ भणंति।
जीवहँ रज्जइँ देवि लहु दुक्खहँ जाइँ जणंति।।५७।।

मा पुनः पुण्यानि भद्राणि ज्ञानिनः तानि भणन्ति।
जीवस्य राज्यानि दत्त्वा लघु दुःखानि यानि जनयन्ति।।५७।।

मं पुणु इत्यादि। मं पुणु मा पुनः न पुनः पुण्णइं भल्लाइं पुण्यानि भद्राणि भवन्तीति णाणिय ताइं भणंति ज्ञानिनः पुरुषास्तानि पुण्यानि कर्मतापन्नानि भणन्ति। यानि किं कुर्वन्ति। जीवहं रज्जइं देवि लहु दुक्खइं जाइं जणंति यानि पुण्यकर्माणि जीवस्य राज्यानि दत्त्वा लघु शीघ्रं दुःखानि जनयन्ति। तद्यथा। निजशुद्धात्मभावनोत्थवीतरागपरमानन्दैकरूपसुखानुभव-विपरीतेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबन्धपूर्वकज्ञानतपदानादिना यान्युपार्जितानि पुण्यकर्माणि तानि हेयानि। कस्मादिति चेत्। निदानबन्धोपार्जितपुण्येन भवान्तरे राज्यादिविभूतौ लब्धायां तु भोगान् त्युक्तुं न शक्नोति तेन पुण्येन नरकादिदुःखं लभते। रावणादिवत्। तेन कारणेन पुण्यानि हेयानीति। ये पुनर्निदानरहितपुण्यसहिताः पुरुषास्ते भवान्तरे राज्यादिभोगे लब्धेऽपि भोगांस्त्यक्त्वा जिनदीक्षां गृहीत्वा चोर्ध्वगतिगामिनो भवन्ति बलदेवादिवादिति भावार्थः। तथा चोक्तम् – 'ऊर्ध्वगा बलदेवाः स्युर्निर्निदाना भवान्तरे।' इत्यादिवचनात्।।५७।।

आगे निदानबंध से उपार्जन किये हुए पुण्यकर्म जीव को राज्यादि विभूति देकर नरकादि दुःख उत्पन्न कराते हैं, इसलिये अच्छे नहीं हैं –

जीवों को जो राजपाट देकर फिर दुख उत्पन्न करें।
उन पुण्यों को भी ज्ञानी जन किञ्चित् उत्तम नहीं कहें।।५७।।

अन्वयार्थ :– [पुनः] फिर [तानि पुण्यानि] वे पुण्य भी [मा भद्राणि] अच्छे नहीं हैं, [यानि] जो [जीवस्य] जीव को [राज्यानि दत्त्वा] राज देकर [लघु] शीघ्र ही [दुःखानि] नरकादि दुःखों को [जनयंति] उपजाते हैं, [ज्ञानिनः] ऐसा ज्ञानीपुरुष [भणंति] कहते हैं।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परमानंद अतीन्द्रियसुख का अनुभव उससे विपरीत जो देखे, सुने, भोगे इन्द्रियों के भोग उनकी वाँछारूप निदानबंधपूर्वक (ज्ञान) दान तप आदिक से उपार्जन किये जो पुण्यकर्म हैं, वे हेय हैं। क्योंकि वे निदानबंध से उपार्जन किये पुण्यकर्म जीव को दूसरे भव में राजसम्पदा देते हैं। उस राज्यविभूति को अज्ञानी जीव पाकर विषय भोगों को छोड़ नहीं सकता, उससे नरकादिक के दुःख पाता है, रावण की तरह, इसलिये अज्ञानियों के पुण्य-कर्म भी होता है, और जो निदानबंध रहित ज्ञानी पुरुष हैं, वे दूसरे भव में राज्यादि भोगों को पाते हैं, तो भी भोगों को छोड़कर जिनराज की दीक्षा धारण करते हैं। धर्म को सेवनकर ऊर्ध्वगतिगामी बलदेव आदिक की तरह होते हैं। ऐसा दूसरी जगह भी कहा है, कि भवान्तर में निदानबंध नहीं करते हुए जो महामुनि हैं, वे महान् तपकर स्वर्गलोक जाते हैं। वहाँ से चयकर बलभद्र होते हैं। वे देवों से अधिक सुख भोगकर राज्य का त्याग करके मुनिव्रत को धारणकर या तो केवलज्ञान पाके मोक्ष को ही पधारते हैं, या बड़ी ऋद्धि के धारी देव होते हैं, फिर मनुष्य होकर मोक्ष को पाते हैं।।५७।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १४, शनिवार
दिनांक-२०-११-१९७६, गाथा-५७, प्रवचन-१३८

परमात्मप्रकाश ५७ गाथा। **आगे निदानबन्ध से उपार्जन किये हुए पुण्यकर्म...** मिथ्यात्वसहित है, वहाँ निदान है, ऐसा कहते हैं। इच्छा है न, इच्छा? पर की वांछा। **निदानबन्ध से उपार्जन किये हुए पुण्यकर्म जीव को राज्यादि विभूति देकर...** राज्यादि अर्थात् सेठाई। राज फिर कोई ... **नरकादि दुःख उत्पन्न कराते हैं,...** आहाहा! निदानबन्ध से हुआ पुण्यबन्ध। पाँच इन्द्रियों की विषय की इच्छापूर्वक जो परलक्ष्यी ज्ञान हो, तप हो, दान हो, उससे उपार्जित कर्म, वह राज्यादि, सेठाई आदि को पाकर, नरक और निगोद में जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं।

१८१) **मं पुणु पुण्णइं भल्लाइँ णाणिय ताइँ भणंति।**
जीवहँ रज्जइँ देवि लहु दुक्खहँ जाइँ जणंति।।५७।।

अन्वयार्थ :- फिर वे पुण्य भी अच्छे नहीं हैं, जो जीव को राज देकर... राज्य

आदि शब्द है। **शीघ्र ही नरकादि दुःखों को उपजाते हैं, ऐसा ज्ञानीपुरुष कहते हैं।** आहाहा!

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा, उसकी एकाग्रता से उत्पन्न **वीतराग परमानन्द अतीन्द्रिय सुख का अनुभव...** पहले अस्ति सिद्ध की। शुद्धात्मा परमानन्दमूर्ति। २१वीं गाथा में ऐसा कहा है। प्रवचनसार २१वीं (गाथा)। यह अधिकार चलता है न कि केवलज्ञानी तो क्रम है, उसे जाने। उन्हें अक्रम नहीं होता। केवलज्ञान में क्रम(रूप) जो है, वह सब जाने। सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। वह केवलज्ञान उत्पन्न कैसे हो? तब वहाँ कहा है न २१में? अनादि-अनन्त असाधारण ज्ञान को कारणरूप से ग्रहण करके। यह पहली बात हुई थी बहुत बार। आहाहा!

यहाँ तो केवलज्ञानी जानते हैं, वैसा होता है। अर्थात् क्रमसर है, उसे जाने और जानते हैं, वह क्रम उसमें है, उसे जानते हैं। ऐसा केवलज्ञान, उसकी जिसे प्रतीति हो, उसे केवलज्ञान उत्पन्न करने का कारण असाधारण ज्ञानस्वभाव, त्रिकाली असाधारण सर्वज्ञस्वभाव, उसे कारणरूप से ग्रहण कर और केवलज्ञान का परिणमन हो, उन केवलज्ञानी को सब द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव प्रत्यक्ष है। समझ में आया? वहाँ तो ऐसा लिया कि परिणमन में... पाठ है न २१वीं गाथा? केवलज्ञानरूप से परिणमनेवाले को। केवली जगत में है, इसकी श्रद्धा करनेवाला यह श्रद्धा करता है कि असाधारण जो ज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उसे कारणरूप से ग्रहण करके प्रतीति करता है। सम्यग्दर्शन। समझ में आया? वहाँ तो एक ज्ञानस्वभाव लिया है। एकरूप जो ज्ञानस्वरूप भगवान, उसे जिसने कारणरूप से ग्रहण किया, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने से केवलज्ञान का परिणमन उसे होता है। आहाहा! समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसा रखा है। अनादि-अनन्त अहेतुक असाधारण ज्ञानस्वभाव को कारणरूप से ग्रहण करके। जयसेनाचार्य ने शुद्धात्मा को उपादेय करके, ऐसा लिखा है। परन्तु वह तो कारणपने ज्ञान को पकड़ा, उसमें त्रिकाली पूरा शुद्धात्मा ही आदरणीय आ गया। परन्तु ज्ञान का परिणमना है न? इससे उसे असाधारण ज्ञान कारणरूप से डाला है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....योग्यता अनुसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : योग्यता अनुसार होता है, परन्तु पुरुषार्थ से होता है न? मुफ्त में होता है वहाँ? ऐसा यहाँ कहते हैं। पुरुषार्थ से होता है वहाँ। इसलिए तो यह बात चलती है।

क्रमबद्ध होता है, उसकी योग्यता से उसकी पर्याय, उस समय में होती है, उस समय निमित्त भी हो। वह निमित्त न हो और हो, ऐसा भी नहीं और होती है, इसलिए निमित्त न हो, ऐसा भी नहीं है, होता है सब। परन्तु उस योग्यता की—लायकात की प्रतीति किसे होती है? समझ में आया? समय-समय की पर्याय अपने काल में होती है, क्रमसर होती है, उसका निर्णय किसे है? यह बात चलती है दो दिन से तो। उसका निर्णय केवलज्ञानस्वभाव त्रिकाल है, उसका आश्रय ले, तब उसका क्रमबद्ध का निर्णय और होनेयोग्य होता है, उसका निर्णय सच्चा कहलाता है। समझ में आया? भाई ने डाला है न, याद आया है। लो! सोगानी। क्रमबद्ध और होनेवाला होगा, वह होगा, यह किसे? जिसकी दृष्टि ज्ञायक पर गयी है, उसे। ऐसा शब्द आता है। आहाहा!

ज्ञान परिणमनेवाला और केवली, उन्होंने देखा सब तीन काल-तीन लोक एक समय में। उन्होंने कोई भविष्य में पर्याय तो होनेवाली जिस समय में, उसे पहले से जान ली है। समझ में आया? तब कोई कहे कि हमारे पर्याय तो होनेवाली होगी, तब होगी। परन्तु वह होनेवाली होगी, वह होगी, यह किसे प्रतीति है? समझ में आया? जिसे ज्ञानस्वभाव केवलज्ञानरूप से परिणमता है, ऐसा जो त्रिकाली ज्ञानस्वभाव, उसकी जिसे दृष्टि है, उसे क्रमबद्ध और जो होनेवाला होगा, वह होगा, उसके लिये बात है। ऐई! देवानुप्रिया! होनेवाला होगा, ऐसा करके निकाल डाले और पुरुषार्थ करे नहीं, यह नहीं।

मुमुक्षु : उसमें निःशंक होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निःशंक नहीं है। वह निःशंक नहीं है। अन्दर में मुफ्त का हठग्राही है। देवानुप्रिया! यहाँ चले ऐसा नहीं कुछ। आहाहा! वह तो हठग्राही है।

जिसे भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु और उस ज्ञानस्वरूप में से केवलज्ञान का परिणमन (हुआ है), केवलज्ञान। ज्ञानस्वभाव जो असाधारण स्वभाव, उसे जिसने

कारणरूप से ग्रहण किया है, उसका परिणमन पूर्ण केवलज्ञानरूप से होता है। समझ में आया? यह आज सवेरे यह आया था। रात्रि का। फिर सवेरे पहले यह देखा था। बात पहले तो बहुत बार कही जा चुकी है। असाधारण ज्ञान को ग्रहण कर। यह तो सवेरे पहले से ऐसा आया था। यहाँ तो यही चलता हो न! फिर उठने के बाद तुरन्त ही देखा नहीं पहले? सूर्योदय से पहले। थे तुम? यह पुस्तक। २१वीं गाथा। परन्तु बात यह है कि अमृतचन्द्राचार्य ने असाधारण ज्ञान को, ज्ञान परिणमता है न केवलज्ञानरूप से? इसलिए वह ज्ञान है, उसे कारणरूप से ग्रहण कर परिणमता है, ऐसा कहा है। और जयसेनाचार्य ने शुद्धात्मा उपादेय करके ज्ञान परिणमता है, ऐसा कहा है। यह तो सब एक ही वस्तु है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जो ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा सर्वज्ञ की प्रतीति करने जाता है, वहाँ सर्वज्ञ का परिणमन जो ज्ञान का है, वैसा ज्ञान का परिणमन कहाँ से हुआ? ज्ञानस्वभाव में से हुआ। समझ में आया? ऐसा जो ज्ञानस्वभाव में से परिणमन, ज्ञान का परिणमन पूर्ण, केवलज्ञान का परिणमन पूर्ण (हुआ), वह कहाँ से परिणमा? वह हुआ कहाँ से? वह त्रिकाली ज्ञानस्वभाव है, उसके आश्रय से वह हुआ है। आहाहा! कहो, चेतनजी! आहाहा! इसलिए उसे करने का यह है कि त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसका आश्रय करना, उसे कारणरूप से बनाना। है तो सही परन्तु बनाना पर्याय में।

यह प्रश्न हुआ था न? ऐसा कि आत्मा कारणपरमात्मा तो है। तो फिर कारण है तो कार्य क्यों नहीं होता? समझ में आया? क्या प्रश्न है? कारणपरमात्मा है तो कार्य क्यों नहीं होता? परन्तु कारणपरमात्मा है, वह किसे? जिसने माना है उसे। समझ में आया? आहाहा! कारणपरमात्मा है, अस्तिपने है। यह प्रश्न किया था न? त्रिभुवनभाई ने किया था न? वारिया—वीरजीभाई का पुत्र है न? उसने प्रश्न किया था कि कारणपरमात्मा है तो कार्य तो आना चाहिए और यह कारणपरमात्मा है तो कार्य आता नहीं। परन्तु है, वह किसे? समझ में आया? जिसने त्रिकाली कारणपरमात्मा का 'है' ऐसा स्वीकार दृष्टि में किया, उसे सम्यग्दर्शन कार्य आये बिना नहीं रहता। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू! आहाहा!

भगवान स्वयं कारणपरमात्मा ही है। आत्मा सब भगवान कारणपरमात्मा है। तो फिर प्रश्न हुआ वह वारियाजी का कि कारणपरमात्मा हो तो कार्य तो आना चाहिए। किसने इनकार किया? परन्तु कारणपरमात्मा है अर्थात्? जिसे अनुभव में आया कि कारणपरमात्मा है, दृष्टि में, सम्यग्दर्शन में आया कि यह कारणपरमात्मा है। आहाहा! जिसे सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे कारणपरमात्मा की आस्था हुई है। है तो है अनादि का, अभव्य को भी है। आहाहा! समझ में आया?

जिसने यह भगवान आत्मा... केवलज्ञानी ने देखा, वैसा होगा। बात ऐसी ही है। परन्तु वे केवलज्ञानी जगत में हैं। ज्ञान के परिणमन की पूर्ण दशा है, ऐसा जो स्वीकार करने जाता है उसका, तब उनका ज्ञान परिणमन पूरा कहाँ से हुआ, आया? कि अपने त्रिकाली ज्ञानस्वभाव में से पूर्ण आया है। समझ में आया? आहाहा! क्या वीतराग की शैली! चारों ओर से अविरोध सत्य (खड़ा) होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : केवलज्ञानी है, ऐसा जिनवाणी कहती है, आप कहते हो, फिर....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा माने, वह माना कहलाये?

केवलज्ञान एक समय में तीन काल—तीन लोक देखे और उस प्रकार से सामने हो। अब उसमें ऐसा कहा है, स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। कल आया है उसमें, कि जो कोई, तीन काल—तीन लोक में भगवान ने देखा, उस समय में वह पर्याय वहाँ होगी, ऐसा जो मानता है, वह सम्यग्दृष्टि है और ऐसा जो न माने, शंका करे, वह मिथ्यादृष्टि, निःसन्देह मिथ्यादृष्टि है। नवलचन्दभाई! आया था न? यह तो पहले भी अपने कहा। बहुत समय से कहते हैं। यह तो वह कैलाशचन्द का आया, इसलिए और (स्पष्ट करते हैं)। यह तो ठेठ से (आता) है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा शुद्ध वस्तु है। ध्रुव-ध्रुव। परन्तु है किसे? जिसने उसका स्वीकार किया है, उसके सन्मुख होकर, भगवान शुद्धात्मा के सन्मुख होकर जिसने स्वीकार किया है, सम्यग्दर्शन किया है, उसे कारणपरमात्मा है। और उसने कारणरूप से ज्ञान जो ग्रहण किया कि त्रिकाली ज्ञान है, उसे कारणरूप से ग्रहण कर (परिणमित हुआ) उसे केवलज्ञान कार्य होता है। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें भाई यह! यह

कोई दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा करने से हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं।

ज्ञान का परिणमना जो है, वह ज्ञान के कारण से परिणमता है। आहाहा! उसे कोई यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप और अपवास करे और व्रत पालन करे और भक्ति करे, यात्रा करे, उससे हो, तीन काल में नहीं होता। यह सब क्रियायें राग की हैं। यह ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का परिणमना जो केवलज्ञान का है, वह परिणमने का कारण तो त्रिकाली ज्ञायकभाव है, वह कारण है। आहाहा! उसे व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम दया करे, व्रत पाले, अपवास किये, संथारा किया, यह उपधान किये महीने, डेढ़ महीने, पाँच महीने, धूल के ऐसे अनन्त बार किये, सुन न! वह कहाँ ज्ञान है? वह कहाँ ज्ञान है या ज्ञान का परिणमन है कि ज्ञान के कारण से वह परिणमन आया है? वह तो राग का परिणमन है।

मुमुक्षु : थोड़ा बहुत अन्तर पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा बहुत अन्तर पड़े अज्ञान में। अज्ञानी ऐसा मानता है कि ऐसी क्रिया करूँगा तो उससे धर्म होगा और मोक्ष होगा। ऐसा अन्तर अज्ञानी को पड़ता है।

मुमुक्षु : साहेब! मेरे ज्ञान पर मैं शंका किसलिए करूँ?

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब परन्तु मेरा ज्ञान? इसे प्रतीति में कहाँ आया है? किसे कहना मेरा ज्ञान? ऐसा नहीं चलता यहाँ। मेरा ज्ञान अर्थात् त्रिकाली ज्ञान, उसे प्रतीति में, विश्वास में, अनुभव में आया है, तब यह मेरा ज्ञान कहलाता है। नहीं तो मेरा ज्ञान कहाँ था वहाँ उसे? उसे तो मेरी राग और पर्याय थी। देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : आत्मा दिखता नहीं, विश्वास कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा 'दिखता नहीं', यही दिखता है। 'दिखता नहीं', यह निर्णय किसने किया? परमात्मा मेरा स्वरूप मुझे दिखता नहीं। 'दिखता नहीं', यह निर्णय किसने किया? यह निर्णय करनेवाला ही आत्मा है। भाई! यह तो अन्तर की बातें हैं। बाहर का तो करके मर गया अनन्त बार। आहाहा! 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' मुनिव्रत धारण (किया)। दिगम्बर मुनि, हों! ऐसा अनन्त बार पंच महाव्रतधारी

हुआ, परन्तु उसे आत्मज्ञान नहीं, इसलिए जरा भी मोक्ष का कारण हुआ नहीं उसे। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू!

यहाँ तो प्रश्न उठा था क्या? '**परिणममान्यस्य**' ऐसा है २१वीं गाथा में। '**परिणममान्यस्य**' '**पच्चक्खा**' प्रत्यक्ष होता है उसे। परिणमन किसका? कि ज्ञान का। तो ज्ञान का परिणमन वह केवलज्ञान। तो वह परिणमन केवलज्ञान वह हुआ किस कारण में से? आहाहा! समझ में आया? वह मोक्ष का मार्ग था, उससे नहीं हुआ। मोक्ष का मार्ग तो व्यय हो गया। समझ में आया? आहाहा! उसे तो त्रिकाली भगवान ज्ञान की मूर्ति प्रभु, ज्ञानस्वभाव का स्वरूप ही उसका है, ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। उसे जिसने श्रद्धा-ज्ञान में ग्रहण किया, उसका परिणमन केवलज्ञानरूप से हुआ। आहाहा! उस ज्ञान के कारण में से ज्ञान का कार्य आया। आहाहा! वस्तु तो देखो!

मुमुक्षु : साहेब! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि बालगोपाल सबको यह प्रत्यक्ष है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, परन्तु दृष्टि कहाँ है उसकी? उसकी दृष्टि राग के ऊपर है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? पर्याय के ऊपर दृष्टि है। पर्याय—ज्ञान की पर्याय है, उसका स्वभाव स्वपरप्रकाशक है, इसलिए वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय में ज्ञायक ही आता है। परन्तु उसकी दृष्टि कहाँ है वहाँ? १७-१८ गाथा (समयसार)। यह तो बहुत बार कहा जा चुका है यहाँ। बारह महीने में आवे और आठ दिन आवे और वापस भागे।

मुमुक्षु : उसमें कुछ पिष्टपिंजण नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पिष्टपिंजण नहीं। यह तो बारम्बार सत्य का उद्घाटन है। सत्य का उद्घाटन है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि यह मेरा ज्ञान। परन्तु 'मेरा ज्ञान' अर्थात् क्या? कहाँ है वह? कितना है वह? कैसे माना जाता है वह? समझ में आया? यहाँ घर की रोटियाँ खाने की सुविधा और पड़े रहे वहाँ। फिर मारे गप्प ऐसे। ऐई! देवानुप्रिया! यह वस्तु ऐसी है न, बापू! आहाहा! यह मेरा... यह मेरा... अभी यह मेरा कहाँ है? वस्तु में यह मेरी वस्तु है। तो उसकी जब दृष्टि हो, तब 'यह मेरा' उसे होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सन्मुख होकर नजर से देखे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नजर (करे) तब होती है। आहाहा! ऐसा है, बापू!

यह तो वीतरागमार्ग। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव का मार्ग, बापू! बहुत सूक्ष्म है। आहाहा! और परमसत्य का पुकार है। आहाहा! यह ज्ञान परिणमनेवाला... आहाहा! ऐसा जो केवली, वह ज्ञान का परिणमन केवल (ज्ञान) का है। या राग का है? या अल्पज्ञ का है? आहाहा! वह ज्ञान का परिणमन केवलज्ञान की पूर्णता का परिणमन, इस कारण ज्ञान में से आता है। उसका कारण त्रिकाली ज्ञान है। आहाहा! उसका कारण व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या पंच महाव्रत, वह भी नहीं है। वे तो सब राग हैं। आहाहा! उसका कारण वर्तमान क्षयोपशम पर्याय जो उघड़ी है, वह भी कारण नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो ज्ञान लेंगे। उसमें भूल हो गयी है जरा। टीका है न भाई उसमें? निदान -बन्धपूर्वक दान, तप ऐसा शब्द है। परन्तु वहाँ ज्ञान चाहिए। भावार्थ में। भावार्थ है न? **निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परमानन्द अतीन्द्रियसुख का अनुभव...** यह सम्यग्दर्शन। आहाहा! अभी तो चौथा गुणस्थान इसे कहते हैं। निज शुद्धात्मा भगवान पूर्णानन्द पवित्र का नाथ भगवान आत्मा, उसकी भावना से उत्पन्न। उसके अन्तर सन्मुख होकर एकाग्रता से उत्पन्न **वीतराग परमानन्द...** वीतरागी अतीन्द्रिय आनन्द आवे। आहाहा! **अतीन्द्रिय सुख का अनुभव...** अतीन्द्रिय सुख त्रिकाली, उसका अनुभव। आहाहा!

उससे विपरीत जो देखे, सुने, भोगे... आहाहा! **देखे,...** इन्द्रिय से। **सुने,...** कान से। **भोगे...** मन आदि। ऐसे **इन्द्रियों के भोग, उनकी वांछारूप...** उनकी इच्छा। आहाहा! **निदानबन्धपूर्वक...** हेतु वहाँ मिथ्यात्व का पड़ा है न, (इसलिए) वहाँ निदान ही है, वांछा है। आहाहा! **नदानबन्धपूर्वक ज्ञान, दान, तप...** ऐसा चाहिए। यह ज्ञान शब्द पड़ा है वहाँ। पाठ में ऐसा है। '**ज्ञानतपदानादिना**' संस्कृत ऐसी है। वह परलक्ष्यी क्षयोपशमज्ञान। समझ में आया? ऐसे मिथ्यादृष्टि, जिसे अभी आत्मा पूर्णानन्द कौन है, उसकी श्रद्धा की खबर नहीं। समझ में आया? और दया, दान, व्रत, तप के भाव, वह राग है, उस राग की इच्छा से वह करता है। आहाहा! क्योंकि भगवान कौन है, वह तो देखा नहीं, माना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

निदानबन्धपूर्वक ज्ञान, दान, तप आदिक... संस्कृत ऐसी है। ज्ञान, तप और दान, ऐसा। दान करे, अपवास करे, संस्थारा करे दो-दो महीने का, दो-दो महीने, छह-छह महीने के अपवास करे। उन **आदिक से उपार्जन किये जो पुण्यकर्म हैं,...** उनसे तो पुण्य उपार्जन होता है, धर्म नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! वीतरागमार्ग जिनेन्द्रदेव, जिनवर केवली परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग कोई अलौकिक है। अभी तो यह लोगों को सुनने को मिलता नहीं। सब गुम हो गया। यह क्रिया करो, व्रत करो, उपधान करो, तप करो, पूजा करो, यात्रा करो, उसमें तुम्हें (धर्म) होगा। धूल भी नहीं होगा, सुन न! आहाहा! उससे यह होता है। मिथ्यात्व है, उससे धर्म होगा, ऐसा माना है, इसलिए मिथ्यात्व से ज्ञान का उघाड़, दान, तप आदि उपार्जन किये, उससे पुण्यकर्म होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पुण्यकर्म होकर महाविदेह में....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुण्यकर्म होकर नरक में जायेगा, ऐसा कहते हैं। देखो! वाँचों तो सही!

पुण्यकर्म हैं, वे हेय हैं। लो! **क्योंकि वे निदानबन्ध से उपार्जन किये पुण्यकर्म जीव को दूसरे भव में राजसम्पदा देते हैं।** राजा हो, बड़ा अरबोंपति सेठिया हो, ऐसे पुण्य में। मिथ्यादृष्टि में इच्छापूर्वक किये हुए सब तप और अपवास और सब क्रियायें, उनसे उपार्जित पुण्य। आहाहा! उसे **राजसम्पदा देते हैं। उस राज्यविभूति को अज्ञानी जीव पाकर विषय भोगों को छोड़ नहीं सकता,...** फिर तो इच्छा अन्दर मिथ्यात्वभाव है और मिथ्यात्व से बाँधे हुए पुण्य है, इसलिए पुण्य के फल में उसे छोड़ने का भाव उसको नहीं आता। **भोगों को छोड़ नहीं सकता,...** आहाहा! **उससे नरकादिक के दुःख पाता है,...** क्या कहा? महाविदेह जायेगा, ऐसा नहीं कहा। नरकादि के दुःख पायेगा। नरक आदि अर्थात्? तिर्यंच-ढोर होगा अथवा नरक में जायेगा। आहाहा! भाई! मार्ग प्रभु का। वीतरागीमार्ग वीतरागभाव से उत्पन्न हो, वह बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहा! ऐसा जिनवरमार्ग अन्यत्र कहीं है नहीं। उनके सम्प्रदाय को खबर नहीं तो अन्यत्र है कहाँ? आहाहा!

कहते हैं, जिसने आत्मज्ञान बिना पर का ज्ञान किया और व्रत, तप आदि किये, उससे उसे पुण्य बँधा। आहाहा! और उस पुण्यरूप से उसे राज आदि मिलेगा। स्वर्ग का देव होगा। तो वहाँ से वापस नीचे गिरेगा और पशु में जायेगा। आहाहा! अज्ञानी पुण्य उपार्जन करके दो सागर में पहले देवलोक में जाता है। सम्यक्त्व का भान नहीं। मैं चिदानन्द आत्मा हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ, राग की क्रिया भी मेरी नहीं, ऐसी खबर नहीं है। ऐसे राग के उपार्जन से पुण्य उपार्जित किया। उससे स्वर्ग में जाये, वहाँ से मरकर एकेन्द्रिय में जाता है। समझ में आया? यहाँ तो नरक और ढोर का कहा। वह सब ढोर में आवे, यह एकेन्द्रिय भी उसमें आते हैं। आहाहा! पहले—दूसरे देवलोक का देव, दो सागर की स्थिति। वह मरकर वनस्पति में और पृथ्वी, जल में जाता है। एकेन्द्रिय, एकेन्द्रिय होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वर्ग में जाने के बाद भाव पलट जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पलट जाये, उसका प्रश्न यहाँ है नहीं। वह के वह भाववाले की बात है न? पलट जाये वह तो दृष्टि बदल गयी। वह दृष्टि इससे बदले नहीं। पुण्य से बदले नहीं। पुण्य के फल मिले, उनसे बदले नहीं। समझ में आया? यह तो अनन्त बार स्वर्ग में गया नहीं? अनन्त बार स्वर्ग में गया। कुछ बदला नहीं। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। जैन साधु दिगम्बर मुनि होकर। पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पालन कर। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये नौवें ग्रैवेयक के। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाती है। आहाहा! ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन प्रत्येक जीव ने नौवीं ग्रैवेयक के किये। आहाहा! जैन साधु होकर, हों! दिगम्बर साधु। पंच महाव्रत (लिये)। हजारों रानियाँ छोड़ी, पंच महाव्रत पालन किये परन्तु वह तो राग है। आहाहा! उससे पुण्य होगा, पुण्य के फल में स्वर्गादि में जाये। वहाँ से फिर नीचे नीचे जाये। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! कठिन बात है, भाई! परमेश्वर जिनवरदेव वीतरागस्वरूपी प्रभु का मार्ग तो वीतरागदशा से उत्पन्न होता है। ऐसी राग की क्रिया से उत्पन्न हो, ऐसा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि पुण्य उपार्जित करे। अपवास किये हों, व्रतादि हो। मरकर स्वर्ग में जाये। वहाँ से राजादि होकर नरक में जाये। आहाहा! सनसनाहट हो जाये ऐसा है। ऐसा मार्ग है, बापू!

जिसे आत्मा... यह दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति का विकल्प राग है, वह तो। उससे प्रभु भिन्न है। आहाहा! ऐसे आत्मा को जिसने पकड़ा नहीं सम्यग्दर्शन में, उस बिना का जो क्रियाकाण्ड अकेला... आहाहा! वह मिथ्यात्वसहित राग की मन्दता से उपार्जित पुण्य स्वर्गादि, राजादि (में) जाकर फिर नरक में जायेगा। या स्वर्ग में जाकर एकेन्द्रिय में जायेगा। आहाहा! **उससे नरकादिक के दुःख पाता है, रावण की तरह,...** यह रावण-रावण। पुण्या उपार्जित किया तो ऐसे प्रतिवासुदेव हुआ न? आहाहा! मरकर नरक में गया। रावण। कितनी विभूति! पूर्व के पुण्य के कारण। आहाहा! जिसने रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, लक्ष्मणजी ने जिसे मारा। वह प्रतिवासुदेव था और लक्ष्मण वासुदेव थे। रामचन्द्र बलदेव थे। आहाहा! रावण की विभूति, हजारों देव उसके पास। और वैभव मात्र संगमरमर बिछाया हुआ। संगमरमर नहीं। वह क्या सफेद? संगमरमर लो। संगमरमर तो रहे परन्तु अकेला सफेद काँच ऐसा संगमरमर। बँगले में।

मुमुक्षु : स्फटिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्फटिक-स्फटिक लो। यह भूल जाते हैं तुम्हारे। स्फटिक बँगले में बिछाया हुआ। इसलिए चलनेवाले को शंका पड़ जाये कि मेरा पैर ऐसा कैसे जाता है। स्फटिक बिछाया हुआ नीचे। स्फटिक की... क्या कहलाती है वह तुम्हारे? निसरणी-सीढ़ियाँ। स्फटिक की सीढ़ियाँ और करोड़ों-अरबों पत्थर। ऐसा बड़ा राज। आहाहा! वह लक्ष्मणजी के बाण से मरा और मरकर नरक में गया अभी। आहाहा! पूर्व के उपार्जित निदान के पुण्य। आहाहा!

मुमुक्षु : .... भावि तीर्थंकर होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह होगा, वह इससे होगा? यह भाव किये, इनसे होगा? वह तो यह भाव छोड़कर आत्मा का अनुभव करेगा, आत्मज्ञान आनन्द का नाथ भगवान का जिसे अनुभव होगा, तब उसे सम्यग्दर्शन होगा और फिर स्वरूप में रमणता करेगा, तब चारित्र होगा। स्वरूप में रमणता। तब वह तीर्थंकर होगा। आहाहा! समझ में आया? इससे ऐसे क्रियाकाण्ड से हुए वह? वह तो पुण्य हुआ, पुण्य से राज मिला, मरकर गया नीचे। आहाहा!

लक्ष्मण के बाण से मरा। और एक बार तो रावण की विद्या से लक्ष्मण असाध्य हो गये थे। रावण इतनी विद्या सीखा हुआ था। बहुत विद्या। बाण मारा तो वह (लक्ष्मण) असाध्य... असाध्य... रामचन्द्रजी पुरुष, महापुरुष। समकिती, ज्ञानी, धर्मात्मा, पुरुषोत्तम पुरुष... आहाहा! उन्हें भी जरा विकल्प ने हिला दिया। राग आया। अरे रे रे! यह लक्ष्मणजी को यह क्या हुआ? भाई मर जायेगा? आहाहा! महापुरुष, आत्मा के आनन्द के अनुभवी पुरुषोत्तम पुरुष। आत्मराम में रमनेवाले राम। आहाहा! उन्हें ऐसा हो गया कि हाय... हाय... यह हुआ क्या? उसमें फिर किसी ने कहा। फिर तो उन्हें श्रद्धा में तो था कि वासुदेव कोई ऐसे मरता नहीं। प्रतिवासुदेव को मारने के बाद राज होने के बाद मरे। परन्तु अस्थिरता में जरा (विकल्प आ गया)।

(किसी ने कहा) एक बाई है, उसे लाओ। उसका पानी छिड़को तो साध्य में आयेंगे। आहाहा! कैसी? विशल्या। उस विशल्या ने पूर्व में पुण्य उपार्जित किया था। चक्रवर्ती की पुत्री थी। किसी ने जंगल में छोड़ दी थी। उसे अजगर निगल गया और इतना (शरीर) बाहर रहा। उसमें उसका पिता चक्रवर्ती आया। (वह कहे), अजगर को मारता हूँ। पिताजी! बन्द करना। मैंने अनशन किया है। बाहर निकालोगे परन्तु मैं अनाज तो लेनेवाली नहीं। इसलिए (अजगर को) मारना नहीं, यह करना नहीं। ऐसी की ऐसी वहाँ देह छूट गयी और राजा की पुत्री हुई। ऐसा पूर्व (पुण्य) उपार्जित किया था कि उसका पानी इन्हें छिड़के तो यह जागृत हो जाये। आहाहा! कहो, एकबार रामचन्द्रजी जैसे महापुरुष को भी...

यह सब हम दुकान पर गाते थे। (संवत्) १९६४-६५-६६ की बात है। १९६४-६५-६६। पालेज में दुकान थी न? पिताजी की दुकान, घर की दुकान थी। तब यह गाते थे। 'आये थे तब तीन जनें और जाऊँगा एकाएक। माताजी खबरें पूछेंगी उन्हें क्या क्या उत्तर दूँगा? लक्ष्मण जाग न हो जी।' फिर ऐसा आता है। 'बोल न एकबार जी।' एक बार बोल तो सही। यह जब अपवास किये हों, तब दुकान में वहाँ फुरसत में हो न। यह तो सब १७-१८ वर्ष की उम्र की बात है। ७० वर्ष पहले की। कुछ खबर-बबर भान नहीं होता। गाते हैं। बस, हमने धर्म किया। शाम को प्रतिक्रमण करें, अपवास करें, चतुर्विध आहार त्याग। और दुकान पर बैठें पूरे दिन। यह तो १६, १७, १८ वर्ष की उम्र

की बात है। यह तो (अभी) ८७ हुए। ७० (वर्ष) पहले की बात है। आहाहा! परन्तु सब अज्ञानपने। आहाहा! भगत को बहुत अच्छा गाना आता है। 'आये थे तब तीन जनें।' आये थे न? लक्ष्मणजी, राम और सीता। 'जाऊँगा एका एक।' सीताजी को रावण हरकर ले गया। लक्ष्मण ऐसे मरने पड़े। अरे रे! घर में जाऊँगा तो माता पूछेगी, भाई! क्या हुआ? 'माताजी खबरें पूछेंगीं उन्हें क्या-क्या उत्तर दूँगा।' ऐसा कवि ने जोड़ दिया था। आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग, भाई!

यह अन्तर आत्मा के आनन्द का नाथ भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूप है अन्दर। आहाहा! उसका राग से छूटकर, आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ का आश्रय लेकर जो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हो, तब उसे धर्मी कहा जाता है। आहाहा! बाकी तो अपवास करे, व्रत करे, तप करे और सब पुण्य उपार्जित करे, और मरकर राजादि हो और नरक में जायेगा। आहाहा! समझ में आया? कहो, सुजानमलजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! साधारण लोगों को तो बेचारों को ऐसा लगे कि यह क्या? हाय... हाय... यह तो हम सब यह मानते हैं। अभी यह करते हैं। परन्तु यह तो खबर ही है हमको। यहाँ अभी की खबर है।

यहाँ आचार्य यह कहते हैं, आहाहा! उस रावण की भाँति नरक में जायेगा। **इसलिए अज्ञानियों के पुण्य-कर्म भी होता है,...** क्या कहा यह? अज्ञानी को पुण्यकर्म होता है। है? परन्तु ऐसा। सम्यग्दर्शन नहीं, जिसे आत्मा आनन्द का नाथ, उसकी दृष्टि का अनुभव नहीं, उस बिना की ऐसी पुण्यक्रिया उत्पन्न हो, अज्ञानी को पुण्यकर्म होता है। धर्म नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....आत्मभाव की भावना हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य में भावना हो? पुण्य तो राग है। राग में भावना राग की होती है। रागरहित आत्मा की भावना, वह तो निर्मल सम्यग्दर्शन है। उस राग के कारण नहीं। सूक्ष्म बात, बापू! यह बहुत...। आहाहा!

और जो निदानबन्ध रहित ज्ञानी... अब लिये देखो! मिथ्यादर्शन रहित ज्ञानी भी पुण्य उपार्जित करे, उसका क्या? अब उसकी बात करते हैं। **निदानबन्ध रहित ज्ञानी...**

जिसे आत्मज्ञान है, आत्म अनुभव है, आत्मा के आनन्द का जिसे स्वाद आया है, उसे यहाँ ज्ञानी कहते हैं। आहाहा! उसे धर्मी कहते हैं। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का जिसे स्वाद आया है, वेदन आया है, उसका स्वाद—अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद (आया है), ऐसा जो समकिती... आहाहा! यहाँ तो समकिती अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो तो समकित, जाओ। हो गया। अरे! मर गया अब अनन्त बार कर-करके। सुन न! आहाहा!

निदानबन्ध रहित ज्ञानी पुरुष हैं,... पुरुष शब्द से आत्मा। **वे दूसरे भव में राज्यादि भोगों को पाते हैं,...** पुण्य उपार्जित किया है और समकितदर्शन आत्मा का भान है, परन्तु अभी पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिए उसे पूजा, भक्ति, दया, दान का भाव आये बिना रहता नहीं। उस शुभभाव से पुण्य होता है। सम्यग्दृष्टि है, जानता है कि यह मेरा धर्म नहीं। समझ में आया? आहाहा! **वे दूसरे भव में राज्यादि भोगों को पाते हैं, तो भी भोगों को छोड़कर जिनराज की दीक्षा धारण करते हैं।** आहाहा! देखा! आत्मज्ञानी है, धर्मी है, आत्मा का भान है। मैं तो आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप ही हूँ, ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन है। ऐसा जो ज्ञानी, उसे अपूर्णदशा के कारण ऐसे भाव तो आते हैं। परन्तु वे हेयबुद्धि से आते हैं। दया, दान, व्रत, अपवास, वह हेयबुद्धि से आवे। परन्तु उसका फल पुण्य है। आहाहा! है?

यह **भोगों को छोड़कर जिनराज की दीक्षा धारण करते हैं।** आहाहा! किसकी भाँति? दृष्टान्त देते हैं वापस। **धर्म को सेवनकर ऊर्ध्वगतिगामी बलदेव आदिक की तरह होते हैं।** रामचन्द्रजी। समझ में आया? श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलदेव। ये महापुरुष पूर्व में महा आत्मा का आराधन करके पुण्य बाँधा हुआ था, इसलिए बलदेव हुए। परन्तु बलदेव तो उस भव में मोक्ष ही जाते हैं। कोई स्वर्ग में जाते हैं आराधकरूप से। परन्तु वे तो स्वर्गगामी, मोक्षगामी। उन्हें दूसरी गति नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : त्रेसठ शलाका पुरुष सब ऐसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रेसठ शलाका पुरुष ऐसे होते हैं, वे सब ऐसे। सब मोक्षगामी। परन्तु करे तब, हों!

मुमुक्षु : शलाका पुरुष हुए वरना नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे शलाका पुरुष, परन्तु श्लाका पुरुष भी कब हुआ श्लाका ? श्लाका तब हुआ कि जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, तब वह श्लाका कहलाया। नहीं तो श्लाका तो भगवान ने कहा परन्तु उसे कहाँ हुआ ? ऐई ! आहाहा !

जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्दर आनन्द की रमणता (हुई)। अरे ! प्रभु ! मार्ग दूसरा, भाई ! आहाहा ! यह तो जड़ देह है, मिट्टी-धूल है। उसकी क्रियायें हैं, वे तो जड़ की हैं। और अन्दर में दया, दान, व्रत, तप के परिणाम आवे, वे तो शुभराग हैं। आहाहा ! वह समकिती को आवे सही ऐसा भाव, कहे हैं। सौ गाड़ी, सौ दाना, सौ खांडी, सौ खांडी अनाज पके, वहाँ सौ गाड़ी घास होती है। घास साथ में होती है। परन्तु अनाज अलग और घास अलग। उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान आत्मानुभव जिसने किया है, उसे तो अनाज पका है अर्थात् निर्जरा होती है और जितना भाग पुण्य का रहता है, वह घास है। आहाहा ! समझ में आया ? बात-बात में अन्तर। दुनिया से... आहाहा ! यह तो जिनवर वीतराग, जिनके सौ इन्द्र तलिया चाटे, एकावतारी इन्द्र सभा में सुनने आवे। एकभवतारी इन्द्र और गणधर जिसे सुने, वह कैसी बात होगी ! बापू ! साधारण कथा यह करो और यह करो (ऐसी होगी) ? समझ में आया ?

ऊर्ध्वगतिगामि बलदेव आदिक की तरह... लो, ठीक ! आहाहा ! बलदेव आदि। धर्मात्मा—आत्मा का ज्ञान और आनन्द का सेवन किया है उन्होंने। अतीन्द्रिय आनन्द का सेवन किया है। उन्हें पूर्ण आनन्द नहीं, इसलिए बीच में पुण्यभाव दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा ऐसा आता है। उसका पुण्य उपार्जन (होता है)। उसके कारण स्वर्ग में जाते हैं और फिर मनुष्य होकर जिनराज की दीक्षा ग्रहण कर चारित्र अन्दर (उपासित करते हैं)। दीक्षा अर्थात् आत्मा के आनन्द में रमणता। दीक्षा अर्थात् मुंडाकर, वस्त्र बदलकर बैठे, वह कोई दीक्षा नहीं। आहाहा ! इसलिए कहा न ? जिनराज की दीक्षा। ऐसा कहा न ? जिनराज की दीक्षा। आहाहा ! वीतरागभाव से जिसे दीक्षा प्रगट हुई है, अन्दर चारित्र। आहाहा ! जिसे बाह्य नग्नदशा होती है। अन्दर में पंच महाव्रत के विकल्प होते हैं, अपूर्ण हो इसलिए। परन्तु अन्दर में आनन्द की रमणता जो प्रगट हुई है, वह दीक्षा है। आहाहा ! ऐसी और दीक्षा।

बलदेव आदिक की तरह... दूसरे पुरुष भी होते हैं, ऐसा कहते हैं। श्रावक आत्मज्ञानी गृहस्थाश्रम में हो। छोड़ सके न हो। परन्तु अन्तर अनुभव-दृष्टि सम्यक् अनुभव का भान है, उस जीव को भी ऐसे पुण्य होते हैं। तो उस पुण्य से राज में जाये और राज्य में से निकलकर भोग छोड़कर वह भी मुनि होता है। आहाहा! क्योंकि पुण्य हुआ था, वह हेयबुद्धि से हुआ था। इसलिए उसके फल में भी हेयबुद्धि रहती है और फिर छोड़ देता है। और अज्ञानी को तो पहले से पुण्य के परिणाम उपादेय हैं, आदरणीय हैं। आहाहा! उसके कारण उसके फल में भी आदरणीय इच्छा रहा करती है। इसलिए छोड़ नहीं सकता। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : जो कर्ता होता है, वह उसके फल का भोक्ता होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्ता मिथ्यात्व है न? उसकी वांछा है न? उसकी—पुण्य की रुचि है। तो उसके फल में भी उसकी रुचि है। दो-पाँच-पचास लाख मिले, करोड़, दो करोड़ हो। उसकी उसे रुचि है। अज्ञानी को पैसे की रुचि है। वे सब मरकर नीचे जानेवाले हैं। समझ में आया? भले अरबपति हो। है न अभी अरबपति? है न? अपने बनिया में है। दो तो बड़े हम सुनते हैं। गोवा में शान्तिलाल खुशाल स्थानकवासी है। (उसके पास) दो अरब चालीस करोड़ हैं। एक अपने यहाँ मोरबी के। जयपुर, दुर्लभजी झबेरी के दो पुत्र। एक अरब। दोनों भाईयों के बीच एक अरब रुपये। वहाँ गये थे उनके घर में। ले गये थे। महाराज! पधारना। पूर्व में स्थानकवासी थे, इसलिए प्रेम तो हो न उस प्रकार का? एक अरब रुपये। यह सब डाले वहाँ रुपये थोड़े। राजगृही। वीरायतन बनाया है न? अमरचन्द। औषधालय, गरीबों को आहार और वह सब ऐसा करके... बहुत लेख आया था कल। आस-पास के लोग गरीबों को दवा मुफ्त देना, यह करना, यह करना। लो, ऐसा वीरायतन बनाया है। तीर्थंकर के नाम का आयतन—स्थान। पच्चीस सौ वर्ष में। पाँच-पच्चीस लाख डालेंगे। उसमें क्या? करोड़-अरब खर्च करे तो क्या हुआ उसमें? राग मन्द हो तो पुण्य होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार धर्म तो कब कहलाये कि निश्चय धर्म हो तो।

मुमुक्षु : व्यवहार धर्म, वह धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। आहाहा!

देखा! **ऐसा दूसरी जगह भी कहा है,... 'ऊर्ध्वगा बलदेवाः' भवान्तर में निदानबन्ध नहीं करते हुए जो महामुनि हैं, वे महान तपकर स्वर्गलोक जाते हैं।** आत्मज्ञानी आनन्द को अनुभव करनेवाले। उन्हें उपवासादि, व्रतादि का विकल्प होता है। उससे पुण्य बाँधते हैं और स्वर्ग में जाते हैं। **वहाँ से चयकर बलभद्र होते हैं। वे देवों से अधिक सुख भोगकर...** रामचन्द्रजी, बलदेव, श्रीकृष्ण महापुरुष थे। पूर्व में आत्मज्ञानी होकर पुण्य बाँधा था, इससे यह हुए और उस भव में मोक्ष गये हैं। रामचन्द्रजी तो उस भव में मोक्ष (गये)। महापुरुष परमात्मा हैं। णमो सिद्धाणं सिद्धपद को पाये हैं। वह बलदेव पूर्व में आत्मज्ञानी थे और आत्मज्ञानी में उपार्जित पुण्य थे, उसके कारण बलदेव की ऐसी महाविभूति मिली, कहते हैं। देव जिसकी सेवा करे। आहाहा! कहो, समझ में आया?

वे देवों से अधिक सुख भोगकर राज्य का त्याग करके मुनिव्रत को धारणकर... आहाहा! मुनिव्रत अर्थात् कि आत्मा की वीतरागदशा में रमणता। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा जिनस्वरूप वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। जिनस्वरूप आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' आहाहा! जिन वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा है। उसका आश्रय करके, एकाग्र होकर वीतरागता प्रगट की है। वह वीतरागता प्रगट की, उसका नाम मुनिपना है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : बलदेव होते हैं आत्मज्ञान लेकर ही जन्मते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन? बलदेव। नहीं, ऐसा कुछ नहीं। वे तो बाद में पाते हैं। सबको ऐसा होता नहीं।

यहाँ तो **मुनिव्रत को धारणकर या तो केवलज्ञान पाके मोक्ष को ही पधारते हैं,...** देखा! बलदेव आदि किसी समय स्वर्ग में भी जाते हैं। कोई बलदेव होते हैं, उस भव में आत्मज्ञान की उग्रता से वीतरागभाव से केवल(ज्ञान) पाते हैं। बलदेव के भव में। और कोई बलदेव स्वर्ग में भी जाते हैं, ऐसा है। **या बड़ी ऋद्धि के धारी देव होते**

हैं, फिर मनुष्य होकर मोक्ष को पाते हैं। पश्चात् मनुष्य होकर (मोक्ष में जाते हैं)। एकाध भव (बीच में करे)। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञानी है, वे तो मरकर स्वर्ग में ही जाते हैं अभी। कोई कहे, महाविदेहक्षेत्र में उपजें तो? महाविदेह में उपजे तो मिथ्यादृष्टि उपजे। मनुष्य मरकर मनुष्य हो, वह मिथ्यादृष्टि होता है। ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : उस भव में मोक्ष हो जाये तो कौन इनकार करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने इनकार किया? उससे होता है? महाविदेह में गया इसलिए होता है? वहाँ तो अनन्त बार गया है। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। महाविदेह में भगवान साक्षात् विराजते हैं। तीर्थंकरों की सभा में अनन्त बार गया है। वहाँ क्या भला हुआ उसमें? आहाहा! महाविदेह में तो नरक में जानेवाले (भी) हैं अभी। यहाँ अभी सातवें नरक में जानेवाले नहीं हैं। क्या कहा? यहाँ अभी सातवें नरक में जानेवाले नहीं हैं। महाविदेह में सातवें नरक में जानेवाले (भी) हैं। भगवान की मौजूदगी है। तीन लोक के नाथ सीमन्धर भगवान महाविदेह में मनुष्यरूप से विराजते हैं। पाँच सौ धनुष्य का देह, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। अरबों वर्ष से हैं और अभी अरबों वर्ष रहनेवाले हैं। साक्षात् भगवान समवसरण में महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ अनन्त बार गया है। समवसरण में अनन्त बार भगवान की पूजा की है। मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल, हीरा-माणेक के थल। जय भगवान... जय भगवान...! तो क्या हुआ? वह तो पुण्य हुआ, शुभ है।

मुमुक्षु : समवसरण में जाने के बाद तो मोक्ष हो जाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं मोक्ष। अनन्त बार भटका है वापस।

मुमुक्षु : बाद के दिनों में तो हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी दिन उसके कारण से होगा नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! इसमें आ गया है अपने पहले। भव-भव में पूजियो भगवान तीर्थंकर को। उसमें कुछ हुआ नहीं। वह तो परद्रव्य है। उनकी पूजा तो शुभभाव है, पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! ऐसी बातें कहाँ है? बेचारे को सुनने को मिलती नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सिद्धस्वरूपी अपना स्वरूप। उसका अनुभव और दृष्टि और स्थिरता करे, उसे धर्म होता है। भगवान की पूजा लाख करे और अरबों रुपये खर्च करे और लाखों मन्दिर बनावे तो भी धर्म नहीं होता। ऐसा है। शुभभाव हो, पुण्य हो। मिथ्यात्वसहित पुण्य से वापस ऐसा राज्य आदि मिलकर नरक में जाये। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

फिर मनुष्य होकर मोक्ष को पाते हैं। लो! सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मज्ञानी जीव, उस भव में केवल(ज्ञान) पा नहीं सके। इतना पुरुषार्थ नहीं, इसलिए उसे अन्दर में वीतरागभाव होने पर भी अभी पूर्ण वीतराग नहीं, इसलिए रागभाव दया, दान, पूजा, भक्ति का आवे। उससे पुण्य उपार्जित करे। उसके पुण्य से स्वर्ग में जाये। और कोई तो उस भव में मोक्ष जाये और वरना कोई स्वर्ग में जाकर मनुष्य होकर फिर मोक्ष जाये। आहाहा! परन्तु वह आत्मज्ञान और आत्मदर्शन है, उसकी बात है। आत्मज्ञान बिना के जितने पुण्य उपार्जित करे, वे सब नरक और निगोद में चार गति में रुलनेवाले हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५८

अथ निर्मलसम्यक्त्वाभिमुखानां मरणमपि भद्रं, तेन विना पुण्यमपि समीचीन न भवतीति प्रतिपादयति -

१८२) वर णिय-दंसण-अहिमुहउ मरणु वि जीव लहेसि।
मा णिय-दंसण-विम्मुहउ पुण्णु वि जीव करेसि।।५८।।

वरं निजदर्शनाभिमुखः मरणमपि जीव लभस्व।
मा निजदर्शनविमुखः पुण्यमपि जीव करिष्यसि।।५८।।

वर इत्यादि। वर णिय-दंसण-अहिमुहउ वरं किंतु निजदर्शनाभिमुखः सन् मरणु वि जीव लहेसि मरणमपि हे जीव। लभस्व भज। मा णिय-दंसण-विम्मुहउ मा पुनर्निजदर्शनविमुखः सन् पुण्णु वि जीव करेसि पुण्यमपि हे जीव करिष्यसि। तथा च स्वकीयनिर्दोषिपरमात्मानुभूति-रुचिरूपं त्रिगुप्तिगुप्तलक्षणनिश्चयचारित्राविनाभूतं वीतरागसंज्ञं निश्चयसम्यक्त्वं भण्यते तदभिमुखः सन् हे जीव मरणमपि लभस्व दोषो नास्ति तेन विना पुण्यं मा कार्षीरिति। अत्र सम्यक्त्वरहिता जीवाः पुण्यसहिता अपि पापजीवा भण्यन्ते। सम्यक्त्वसहिताः पुनः पूर्वभवान्तरोपार्जितपापफलं भुञ्जाना अपि पुण्यजीवा भण्यन्ते येन कारणेन, तेन कारणेन सम्यक्त्वसहितानां मरणमपि भद्रम्। सम्यक्त्वरहितानां च पुण्यमपि भद्रं न भवति। कस्मात्। तेन निदानबद्धपुण्येन भवान्तरे भोगान् लब्ध्वा पश्चान्नरकादिकं गच्छन्तीति भावार्थः। तथा चोक्तम् - 'वरं नरकवासोऽपि सम्यक्त्वेन हि संयुतः। न तु सम्यक्त्वहीनस्य निवासो दिवि राजते।।'।।५८।।

आगे ऐसा कहते हैं, कि निर्मल सम्यक्त्वधारी जीवों का मरण भी सुखकारी है, उनका मरना अच्छा है, और सम्यक्त्व के बिना पुण्य का उदय भी अच्छा नहीं है -

जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख उसे श्रेष्ठ है मृत्यु भी।
निज दर्शन से विमुख जीव का पुण्यभाव भी श्रेष्ठ नहीं।।५८।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [निजदर्शनाभिमुखः] जो अपने सम्यग्दर्शन के सन्मुख होकर [मरणमपि] मरण को भी [लभस्व वरं] पावे, तो अच्छा है, परन्तु [जीव] हे जीव, [निजदर्शनविमुखः] अपने सम्यग्दर्शन से विमुख हुआ [पुण्यमपि] पुण्य भी [करिष्यसि] करे [मा वरं] तो अच्छा नहीं।

भावार्थ :- निर्दोष निज परमात्मा की अनुभूति की रुचिरूप तीन गुप्तिमयी जो निश्चयचारित्र उससे अविनाभावी (तन्मयी) जो वीतरागनिश्चयसम्यक्त्व उसके सन्मुख हुआ। हे जीव, जो तू मरण भी पावे, तो; दोष नहीं, और उस सम्यक्त्व के बिना मिथ्यात्व अवस्था में पुण्य भी करे तो अच्छा नहीं है। जो सम्यक्त्व रहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य सहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं। तथा जो सम्यक्त्व सहित हैं, वे पहले भव में उपार्जन किये हुए पाप के फल से दुःख-दारिद्र भोगते हैं, तो भी पुण्याधिकारी ही कहे हैं। इसलिये जो सम्यक्त्व सहित हैं, उनका मरना भी अच्छा। मरकर ऊपर को जावेंगे और सम्यक्त्व रहित हैं, उनका पुण्य-कर्म भी प्रशंसा योग्य नहीं है। वे पुण्य के उदय से क्षुद्र (नीच) देव तथा क्षुद्र मनुष्य होके संसार-वन में भटकेंगे। यदि पूर्व के पुण्य को यहाँ भोगते हैं, तो तुच्छ फल भोग के नरक-निगोद में पड़ेंगे। इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है। निदानबंध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे। सम्यग्दृष्टि प्रथम मिथ्यात्व अवस्था में किये हुए पापों के फल से दुःख भोगते हैं, लेकिन अब सम्यक्त्व मिला है, इसलिये सदा सुखी ही होवेंगे। आयु के अंत में नरक से निकलके मनुष्य होकर ऊर्ध्वगति ही पावेंगे, और मिथ्यादृष्टि जो पुण्य के उदय से देव भी हुए हैं, तो भी देवलोक से आकर एकेन्द्री होवेंगे। ऐसा दूसरी जगह भी 'वरं' इत्यादि श्लोक से कहा है, कि सम्यक्त्व सहित नरक में रहना भी अच्छा, और सम्यक्त्व रहित का स्वर्ग में निवास भी शोभा नहीं देता।।५८।।

वीर संवत् २५०२, कार्तिक कृष्ण १५, रविवार
दिनांक-२१-११-१९७६, गाथा-५८, प्रवचन-१३९

परमात्मप्रकाश, ५८ गाथा। **आगे ऐसा कहते हैं कि निर्मल सम्यक्त्वधारी जीवों का मरण भी सुखकारी है,...** आहाहा! गाथा में लेंगे। गाथा में निज दर्शन अभिमुख लेंगे। इसका अर्थ कि समकित सहित है, ऐसा। जिस प्राणी को आत्मदर्शन है, आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वरूप सत् है, उसका अनुभव होकर—अनुभूति होकर जो रुचि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शनसहित मरण भी पावे, मर जाये, देह छूट जाये तो भी वह सुखकारी है। **उनका मरना अच्छा है, सम्यक्त्व के बिना पुण्य का**

उदय भी अच्छा नहीं है—आहाहा ! समकित बिना आत्मदर्शन शुद्ध चैतन्यघन की जिसे अनुभूति से प्रतीति नहीं, उस जीव के बड़ा पुण्य हो तो भी वह पुण्य उसे नरक में ले जायेगा। समझ में आया ? एक बार पुण्य से कदाचित् राजपद मिले, परन्तु फिर नरक-निगोद में जायेगा। इस प्रकार सम्यग्दर्शन का इतना माहात्म्य है। यह कहते हैं। ५८।

१८२) वर णिय-दंसण-अहिमुहउ मरणु वि जीव लहेसि।
मा णिय-दंसण-विम्मुहउ पुण्णु वि जीव करेसि।।५८।।

आहाहा ! बहुत मर्म की बात, जैनदर्शन का रहस्य है। आहा ! **हे जीव! जो अपने सम्यग्दर्शन के सन्मुख (-सहित) होकर...** सन्मुख का अर्थ यहाँ सहित है। सातवें अध्याय में समकित सन्मुख मिथ्यादृष्टि (कहा) है, वह नहीं। आहाहा ! जिसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान आत्मा जो वस्तु पूर्ण परमात्मस्वरूप है, उसके सन्मुख होकर जो अनुभव में प्रतीति हो, अनुभूति होकर, आत्मा की अनुभूति होकर... जैसा है, वैसा अनुभव होकर रुचि हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा ! उस सम्यग्दर्शनसहित मरण भी अच्छा है। (दर्शन) सहित देह छूट जाये तो भी अच्छा है।

परन्तु हे जीव! अपने सम्यग्दर्शन से विमुख... आहाहा ! जो अकेली पुण्य, दया, दान, व्रत की क्रिया में लवलीन है। भगवान आत्मा जिसे निज स्वरूप की अन्तर्मुख दृष्टि का अभाव है। आहाहा ! भगवान शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव अनन्त ज्ञानस्वभावभाव, पर्याय में अल्पज्ञता है, परन्तु वस्तु है, वह अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन आदि से भरपूर वस्तु है। आहाहा ! उसका इसे भावभासन होना चाहिए, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! वह चीज़ यह है, ऐसा इसे ज्ञान में भासन होना चाहिए। आहाहा ! इस सम्यग्दर्शनसहित देह छूट जाये, मरण हो तो भी वह अच्छा है। वह स्वर्ग में जायेगा और वहाँ से मनुष्यपना प्राप्त कर मोक्ष में जायेगा। आहाहा ! और उससे विमुख है, (अर्थात्) स्वरूप की दृष्टि का भान नहीं। अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, ईश्वरता, प्रभुता ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप द्रव्य वस्तु, उसकी दृष्टि का जिसे अभाव है, ऐसे सम्यग्दर्शन का जिसे अभाव है... आहाहा ! वह पुण्य भी करे—दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि पुण्य करे तो भी अच्छा नहीं। भभूतमलजी !

मुमुक्षु : क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करना क्या? अन्दर दृष्टि करना, यह करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परमात्मस्वरूप विराजता है अन्दर, तेरा स्वरूप ही परमात्मस्वरूप है। उसके सन्मुख होकर अनुभव करके दृष्टि करना, यह करने का है, बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : परन्तु यह तो बहुत कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन माना है। वस्तु तो अपना निजघर है, अन्दर पड़ी है। है, उसके पास जाना है। उसमें क्या कठिन है? कठिन मान लिया है और पुरुषार्थ किया नहीं। आहाहा! सहजात्मस्वरूप स्वाभाविक आत्मस्वरूप जो अनादि महासत्ता चैतन्य की, आनन्द की महासत्ता अस्तिरूप से भगवान है, उसका इसने सन्मुख होकर विश्वास किया नहीं। बाकी सब शास्त्र का जानपना किया, व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, दान करे! कहो, भभूतमलजी! इन्होंने आठ लाख दान किया था। मन्दिर, मन्दिर (बनाया)। बेंगलोर। उसमें क्या है? राग मन्द हो तो पुण्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का जहाँ स्वीकार नहीं, चैतन्य महाप्रभु अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द का कन्द है। आहाहा! कहा नहीं था एक बार हमने? शकरकन्द का। शकरकन्द, शक्करिया समझ में आता है? शकरकन्द, शकरकन्द नहीं होता? उसके ऊपर की लाल छाल है, उसके अतिरिक्त देखो तो पूरा शकरकन्द शक्कर की मिठास का पिण्ड है। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आत्मा की पर्याय में जो दया, दान, व्रत, भक्ति आदि होते हैं, वे छिलका-छाल है। छाल के पीछे जैसे शकरकन्द है, शक्कर, शक्कर अर्थात् चीनी, चीनी की मिठास का पिण्ड है। आहाहा! अरे! इसने कब प्रयत्न (किया है)? इसकी दरकार कहाँ (की है)?

भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। लो! सेठ का सागर आया। यह सागर है, कहते हैं। आहाहा! वह अतीन्द्रिय अनन्त आनन्द और अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान, उसका भान—अन्तर्दृष्टि होने से जो सम्यग्दर्शन होता है... आहाहा! यह कहते हैं कि भले देह छूट जाये, मरण (के समय) बाहर में कोई शरण न हो तो भी वह मरण अच्छा

है। समकिती का देह छूटना भी अच्छा है और सम्यग्दर्शनरहित, वह पुण्य करे अथवा पूर्व के पुण्य का बड़ा उदय (हो), अरबों पैदा करता हो, बाल-बच्चे (अच्छे हों), दुकानें चलती हों, दस-दस, बीस-बीस दुकानें (हों)... आहाहा! कहते हैं कि इस सम्यग्दर्शन बिना पुण्य भी करे तो भी अच्छा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ विराजता है, उसका जिसे स्वीकार नहीं, और एक समय की पर्याय और राग, पुण्य के भाव का स्वीकार है, वह मिथ्यादृष्टि भले पुण्य करे (तो भी) अच्छा नहीं। क्योंकि उस पुण्य के फल में कोई स्वर्ग आदि जायेगा या राजा (होगा), वहाँ से मरकर नरक में जायेगा। आहाहा! आचार्यों ने करुणा करके अज्ञानी को, उद्धार का रास्ता क्या है—यह कहा है। आहाहा! समझ में आया?

प्रथम में प्रथम इसे सम्यग्दर्शन करना।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ;
तोरि सकल जगदंद-फंद, निज आतम ध्याओ॥

द्वैतपना छोड़कर (अर्थात्) यह द्रव्य और यह पर्याय—दो हैं, यह भी लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! निज आतम उर ध्याओ। आहाहा! निज आतम (ध्याओ), भगवान (ध्याओ ऐसा) नहीं। निज आतम उर ध्याओ। आहाहा! ध्यान का विषय निज आत्मा को बना। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन, उससे रहित पुण्य भी करे, भले व्रत पाले, भक्ति करे, पूजा करे, लाखों, करोड़ों रुपये के दान करे, धर्मशालायें बनाये... लो! और सेठ का याद आया, सेठ ने वहाँ धर्मशाला बनायी है न सागर में? वहाँ थे न हम! उद्घाटन हुआ न? तुम्हारी धर्मशाला। तीन लाख की धर्मशाला बनायी है। यह कहते हैं कि सब पुण्य है, राग की मन्दता है। परन्तु वह पुण्य सम्यग्दर्शन बिना (परिभ्रमण का कारण है)। आहाहा! सम्यग्दर्शन नहीं तो उस पुण्य से तो स्वर्ग आदि, राज आदि मिलेगा। कहेंगे अभी। यह तो अभी ५८वीं (गाथा) चलती है न?

६० (गाथा में) कहेंगे। पुण्य से वैभव—यह बाहर की धूल मिलेगी। अरबों रुपये! प्रारब्ध तक। अब अरबों तक हो गया है, पहले तो प्रारब्ध था। सौ करोड़ का एक अरब और सौ अरब का खर्ब, खर्ब, निखर्ब, महापद्म,... प्रारब्ध हमारे समय में अठारह

बोल, प्रारब्ध तक था। सौ अरब का खर्ब, सौ खर्ब का निखर्ब, खर्ब, निखर्ब, महापद्म। प्रारब्ध १८वां बोल है। यह कहते हैं कि अरबों रुपये दिन के पैदा करता हो, तो भी क्या? इस सम्यग्दर्शन बिना पुण्य से इसे मद चढ़ेगा, अभिमान होगा। स्वभाव की दृष्टि की अधिकता भासित नहीं हुई, इसलिए उससे इसे पुण्य की अधिकता भासित होगी। आहाहा! उसे मद चढ़ेगा। ६०वीं गाथा में कहेंगे। है न ६० वीं? देखो! ६०वीं।

'**पुण्णेण होइ विहवो**' अपने यह चलती है ५८ इसके (बाद) ६०, है? ६०, ६०। '**पुण्णेण होइ विहवो**' अज्ञानी को पुण्य से तो वैभव—बाहर की धूल मिलेगी। आहाहा! और वैभव से '**मदो**' उस वैभव से इसे मद चढ़ेगा। यहाँ तो यह (बात है)। नागा बादशाह है दिगम्बर, उन्हें जगत की कुछ पड़ी नहीं है। बादशाह, नागा बादशाह, कहते हैं न बादशाह से आघा। आहाहा! कहते हैं कि पुण्य से वैभव और वैभव से मद और मद से '**मएण मइ-मोहो**' मति भ्रष्ट होगी। आहाहा! '**मइ-मोहेण य**' वह मति मोह से पाप करके '**ता पुण्णं अम्ह मा होउ पावं**' आचार्य कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमको न होओ। नीचे अर्थ में है। है भाई? भभूतभाई! नीचे।

पुण्य से घर में धन होता है,... नीचे अर्थ है। पुण्य से-पुण्य से धन (मिलता है), हों! तुम्हारे पुरुषार्थ से नहीं। आहाहा! है भाई? है? शोभालालजी! ६०वीं गाथा, है? **पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान...** होता है। हम अरबोंपति, हम करोड़ोंपति, हमारी दुकानें ऐसी चलती है, पाँच सौ, पाँच सौ लोग काम करे। आहाहा! हमारे पोपटभाई हैं न? इन पोपटभाई का साला था, (उसके पास) दो अरब चालीस करोड़ (थे)। यह पोपटभाई बैठे, इनका साला शान्तिलाल खुशाल, दो अरब चालीस करोड़। उनकी बहिन है इनके घर में। दो लड़कियाँ हैं न ब्रह्मचारिणी? फिर एक बार पोपटभाई ने इनके साला को कहा। पैसा बहुत, दो अरब चालीस करोड़। अब किसलिए तुम इतना सब करते हो? पैसे बहुत। यह पोपटभाई। उनकी दो लड़कियाँ अपने यहाँ बालब्रह्मचारी हैं। ६४ (बहिनों) में। आहाहा! फिर जवाब देता है—पैसा का अभिमान चढ़ गया, जवाब देता है, क्या हम कमाने के लिये यह करते हैं? हजारों लोग पोषित होते हैं, इसलिए यह धन्धा करते हैं। ऐ... सेठ! ऐसा जवाब देता है। यह पोपटभाई। बचाव करे। हजारों लोग (काम करे)। क्योंकि बड़ा गृहस्थ व्यक्ति। चालीस लाख के

तो बँगले हैं। दस, दस लाख के दो हैं। साठ-साठ के तीन तो बँगले हैं। आहा! धूल में भी कुछ नहीं। वह पाँच मिनिट में मर गया, लो! हार्टफेल। यह तो मद चढ़ा, ऐसा बताते हैं। अभिमान हो जाये कि हम तो किन्हीं का पोषण करते हैं। मिल मालिक ऐसा मानते हैं कि इस मिल में हजारों व्यक्तियों का पोषण होता है न! तेरी ममता के कारण करता है, यह (बात) मानता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परोपकार बताया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करते हैं। धूल भी नहीं, ममता तेरी है। सुन न! मति भ्रष्ट होकर मद चढ़ता है, कहते हैं। है? **बुद्धि के भ्रम होने से...** देखो! बुद्धि भ्रम होता है। धन से अभिमान और अभिमान से बुद्धि भ्रम। **बुद्धि भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** भाई! भभूतमलजी! है गाथा? आहाहा!

आहाहा! यह परमात्मप्रकाश है। भगवान परमात्मस्वरूप! एक समय की वर्तमान पर्याय में अल्पज्ञता होने पर भी उसकी वस्तु है, वह तो अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, ज्ञायकभाव से परिपूर्ण है। उसके सन्मुख का अनुभव की प्रतीति बिना ऐसा पुण्य हमको न होओ। आहाहा! सम्यग्दर्शन बिना का पुण्य है, वह हमको न होओ। फिर कहेंगे, सम्यग्दर्शन होता हो, वहाँ पुण्य हो परन्तु वह पुण्य उसे नरक में नहीं ले जाता, वह पुण्य स्वर्ग में ले जाता है, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। समझ में आया? आहाहा!

यह श्रीमद् राजचन्द्र, लो! गृहस्थाश्रम में थे। जवाहरात का धन्धा (था)। लाखों का बड़ा धन्धा (था) परन्तु अन्दर में भान-सम्यग्दर्शन था। देह छूटकर स्वर्ग में गये हैं, परन्तु वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। समझ में आया? आहाहा! स्वयं लिखते हैं, 'शेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे,' अभी अस्थिरता का राग बाकी रहता है, परन्तु 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' भभूतमलजी! आहाहा! गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है। आहाहा! 'अशेष कर्म का (भोग है)' अभी राग बाकी है, वह टलता नहीं, हमारा पुरुषार्थ कम है। 'इससे देह एक धारकर...' देह धारण करना पड़ेगा। आहाहा! स्वर्ग के अतिरिक्त, हों! स्वर्ग का देह तो एक धर्मशाला है, फिर मनुष्य का देह (पायेंगे)। 'अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष

रे...' आहाहा! 'इससे देह एक धारकर जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे।' हमारा स्वदेश आत्मधाम में हम प्रविष्ट हो जायेंगे। आहाहा! और मिथ्यादृष्टि क्रियाकाण्ड पंच महाव्रत आदि पालकर अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक जाता है, परन्तु वापस वहाँ से मरकर मनुष्य, वहाँ से मरकर पशु और मरकर नरक तथा निगोद में (जाता है)। आहाहा! समझ में आया? ऐसा समकित का माहात्म्य है और ऐसी मिथ्यात्व की नीचता—हल्कापना है। आहाहा!

मुमुक्षु : वेदनीय कर्म तो केवली को भी वेदना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई वेदते नहीं, केवली क्या वेदे? केवली तो अनन्त आनन्द वेदते हैं। असाता का जरा उदय है, वह तो अनन्तवें भाग के रजकण हैं। महासमुद्र भरा हो, उसमें एक जरा इतनी चिमटी भर राख दिखे? इसी प्रकार अन्दर में रजकण जरा प्रतिकूल थोड़े हों, परन्तु उन्हें वेदन नहीं है। वेदन तो अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन है।

केवली को क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते। श्वेताम्बर मानते हैं एकदम उलटा—विपरीत है। समझ में आया? महावीर भगवान को छह महीने रोग रहा और आहार लेने गये। सिंहअणगार लाये, तब खाया, पुष्ट हुए। सब कल्पनायें हैं। ऐ... शान्तिभाई! यह सब उनके वहाँ प्रमुख थे। जहाँ-तहाँ बैठे और फिर बातें करे, उसकी पुष्टि देते थे। अब यह तो बदल गये। अरे रे! हमारी जिन्दगी व्यर्थ चली गयी। शान्तिभाई वहाँ कलकत्ता में करते? तुम तो दिल्ली हो? दिल्ली। बेंगलोर, बेंगलोर। यह तो कलकत्ता में। भाई! आहाहा!

अरे रे! बापू! जिसे आत्मदर्शन वस्तु क्या चीज़ है, उसकी जिसे खबर भी नहीं, वह व्रत, तप, भक्ति और पूजा करे, कहते हैं कि उसके पुण्य फल में कभी राजा आदि, स्वर्ग आदि मिले, फिर तो नरक-निगोद में जायेगा। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! हमको ऐसा पुण्य न हो। आहाहा! मुनि को खबर है कि हम यहाँ से स्वर्ग में जानेवाले हैं। पंचम काल के मुनि हैं, उनका मोक्ष तो नहीं, खबर है, परन्तु वह पुण्य हमारे सम्यग्दर्शनसहित हेयबुद्धि से आता है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा के सुख के आदर में उस पुण्य का भाव हेय और दुःखरूप लगता है। उसमें पुण्य आता है अवश्य।

उसके फलरूप से स्वर्ग आदि होंगे। वहाँ से अन्तिम भव हमारा मनुष्य का हो कि वहाँ भले राज में उपजकर भी फिर हम मुनिपना लेकर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। आहाहा! लोगों को कीमत (नहीं), सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी कीमत नहीं। आहाहा! बाहर का त्याग और व्रत और तप और यह लंघन करे उसकी... आहाहा! उसकी महिमा (करे)। इसने इतने अपवास किये और इसने इतना किया... देखो न! यहाँ है न? क्या कहलाता है? उपधान किये उपधान। माला पहनानेवाले हैं। पालीताना। सवा सौ लोग (एकत्रित हुए)। अरे रे! उपधान करते हैं न?

मुमुक्षु : उसमें समकित का उपचार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका उपचार समकित का? श्वेताम्बर ऐसा आता है, दीक्षा दे, उसे द्रव्यसमकित का उपचार करे। समकित का उपचार होता होगा? आहाहा!

यह यहाँ आचार्य कहते हैं। ५८ (गाथा) चलती है न? **भावार्थ :- निर्दोष निज परमात्मा की अनुभूति की रुचिरूप...** आहाहा! भगवान आत्मा कैसा है? पवित्र निर्दोष है। आहाहा! उसमें तो पुण्य और पाप के दोष भी उस वस्तु के स्वरूप में नहीं हैं। आहाहा! निर्दोष निज परमात्मा वापस, हों! तीर्थंकर केवली हो गये, वे तो उनके परमात्मा। आहाहा! निर्दोष पवित्र निज आत्मा परमात्मा। यहाँ परमात्मप्रकाश है न? **निज परमात्म की अनुभूति...** आहाहा! अन्तर आत्मा पूर्णानन्द प्रभु को यहाँ परमात्मा कहा है। आहाहा! परम स्वरूप से विराजमान भगवान परमात्मा है। आहाहा! उसकी निज परमात्मा की अनुभूति, उस परमात्मा का अनुभव होकर। देखा? जो चीज़ है, उसे अनुसरकर दशा होकर। आहाहा! उसकी रुचिरूप उसकी रुचि।

तीन गुप्तिमयी जो निश्चयचारित्र उससे अविनाभावी... इसके साथ इतना रागरहित चारित्र होता है न! **(तन्मयी) जो वीतरागनिश्चयसम्यक्त्व...** आहाहा! **वीतरागनिश्चय-समकित उसके सन्मुख हुआ। हे जीव,...** उस समकितसहित हुआ, ऐसा हे जीव... आहाहा! निज परमात्मा के सन्मुख हुई जो दृष्टि। आहाहा! वह समकित से सहित हुआ ऐसा **हे जीव! जो तू मरण भी पावे,...** आहाहा! **तो दोष नहीं...** तो भी दोष नहीं। क्योंकि स्वर्ग में जायेगा, वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेगा। आहाहा!

श्रेणिकराजा सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। राज था, हजारों रानियाँ थीं। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन क्षायिक पाये। आहाहा! और जरा शुभविकल्प आया तो तीर्थंकरगोत्र बाँधा। तो समकितसहित जो थे। आहाहा! परन्तु पहले नरक की आयु बँध गयी थी। मुनि की असाता की, उसमें सातवें नरक का आयुष्य बँध गया। वे यहाँ समकित पाये, वहाँ ३३ सागर का आयुष्य तोड़ डाला। चौरासी हजार वर्ष का रहा। क्योंकि घी, आटा और शक्कर का लड्डू जो बना हो, उस लड्डू में से कहीं घी निकालकर नयी रोटी नहीं होती। आटा निकालकर रोटी नहीं होती। घी निकाल कर पूड़ी (नहीं होती)। वह तो खाना ही पड़ता है। इसी प्रकार एक बार आयुष्य बँध गया हो, उसकी स्थिति घटे। समकित पाने से स्थिति घट गयी। ३३ सागर का (आयुष्य) बाँधा था, वह चौरासी (हजार वर्ष में) रह गया। आहाहा!

सम्यग्दर्शन पाये। हजारों रानियाँ थी, सब परिवार बड़ा राज था। आहाहा! और भगवान के समवसरण में तीर्थंकरगोत्र बाँधा। आहाहा! फिर अभी नरक में गये हैं, परन्तु वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! उनका जन्म होगा तो तीन लोक में जरा साता की खलबलाहट हो जायेगी। साता... साता... साता (हो जायेगी)। यह सुख की साता, वह (अतीन्द्रिय) सुख नहीं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन का माहात्म्य!!

जिसे राग छूटा नहीं, व्रत नहीं, तप नहीं, चारित्र नहीं परन्तु एक आत्मा का अनुभव और दृष्टि (हुए हैं)। आहाहा! उस अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में जो रुचि हुई है, वह ऐसी रुचि है... आहाहा! कि उसमें पूर्णानन्द का स्वीकार है। आहा! उसे जरा समकित से पहले आयुष्य बँध गया (तो) नरक में गये हैं। चौरासी हजार (वर्ष की) स्थिति में (गये हैं), ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो गये। अभी साढ़े इक्यासी (हजार वर्ष) बाकी हैं। पहले नरक में हैं। आहाहा! यहाँ अरबोंपति सब बादशाही सेवन करते हों, वह वहाँ नरक में पड़ा है, परन्तु वहाँ से (निकलकर) तीर्थंकर होंगे।

वेदना है, जितना राग है, उतना वेदन है। जितना राग गया, उतना सुख है। मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का राग गया है, उतना सुख है। बाकी दूसरे तीन कषाय हैं,

उतना अभी (दु:ख है)। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। वे तीर्थंकर तीन लोक के नाथ, नरक में से आने से पहले उनकी माता के समक्ष इन्द्र आकर छह महीने पहले तो उनके गर्भ को साफ करेंगे। आहाहा! यह सम्यग्दर्शनसहित पुण्य का फल है। आहाहा! अज्ञानी के सम्यग्दर्शन बिना का पुण्य, वह भोग में आसक्ति करके मरकर चला जानेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

जो तू मरण भी पावे, तो दोष नहीं, और सम्यक्त्व के बिना... विमुख शब्द है न? उसमें सन्मुख है, परन्तु सन्मुख अर्थात् सहित और विमुख अर्थात् रहित। **सम्यक्त्व के बिना मिथ्यात्व अवस्था में...** देखो! आहाहा! जिसकी श्रद्धा ही विपरीत है अभी। पुण्य से धर्म होता है, व्रत करते-करते कल्याण होता है, यह पुण्य के भाव करते-करते आगे बढ़ा जाता है, ऐसी जिसे मिथ्या श्रद्धा है... आहाहा! उपदेश में भी यह कहे, यह व्रत, तप और यह करो (तो) तुम्हारा कल्याण होगा! यह मिथ्या श्रद्धा है। आहाहा!

अरे! चौरासी के अवतार में, बापू! एक-एक योनि में इसने समकित बिना अनन्त अवतार किये हैं। यह मिथ्यात्व का प्रताप है। आहाहा! समकित का प्रताप यह है कि जिसे कोई वर्तमान निर्धनता हो, नरक हो, तिर्यंच में अवतरित हो। लो न समकिती है, तिर्यंच में अभी असंख्य तिर्यंच समकिती है। आहाहा! तो भी वहाँ से स्वर्ग में जायेंगे, वहाँ से मनुष्य होकर कितने ही मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! और इस समकित बिना के पुण्य बाँधे हों, वे भले राजा आदि हों, वह ढोर है और यह राजा मनुष्य है परन्तु यह मरकर भोग की वांछा में मिथ्यात्व में पुण्य बाँधा है, उस इच्छा के प्रेम में, पुण्य के प्रेम में उसके फल में उसका प्रेम इसे छूटता नहीं। आहाहा!

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव **पुण्य भी करे तो अच्छा नहीं है।** है? आहाहा! दृष्टि में जिसे मिथ्यात्व है, वह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, पुण्य करे, परन्तु वह अच्छा नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसी बातें, बापू! यह तो किसी दिन ऐसी बात (आती है)। यह तो जगत का इतना भाग्य है कि ऐसी वस्तु रह गयी। आहाहा! समझ में आया? आहा! कहते हैं, मिथ्यादृष्टि पुण्य करे तो भी अच्छा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अवांछक वृत्ति से करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि को अवांछक वृत्ति होती ही नहीं। दृष्टि मिथ्यात्व है, इसलिए राग की ही भावना है वहाँ। समकिती को अवांछक वृत्ति से होता है। यह आयेगा थोड़ा, देखो!

जो सम्यक्त्व रहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य सहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं। है? अरे! सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन क्या चीज़ है, इसकी मूल की बात की खबर नहीं होती और ऊपर के सब वृक्ष, पत्ते तोड़े! बड़ी ईमली हो न, ईमली का वृक्ष? लाखों पत्ते तोड़े परन्तु फिर मूल तो सुरक्षित है। पन्द्रह दिन में वापस पल्लवित हो जायेगा। उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि यह व्रत करे और तप करे और ऊपर के पत्ते तोड़े, परन्तु मिथ्यात्व का मूल तो वहाँ सुरक्षित है। आहाहा! ऐसा उपदेश ही कम हो गया। भभूतमलजी! इन्होंने सुना हो न बहुत। आहाहा! अरे रे! इसका उन्हें विरोध करना है। अरे! भगवान! आहा!

मुमुक्षु : चरणानुयोग की शैली क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : चरणानुयोग के उपदेश में क्या है? चरणानुयोग का सार तो वीतरागता है। व्रत आदि का ज्ञान करावे, परन्तु उसका सार तो वीतरागता है। चरणानुयोग का व्यवहार करे, वह कहीं धर्म है? यह कहते हैं न कि चरणानुयोग प्रमाण हम आचरण करते हैं, इसलिए हम साधु हैं। चरणानुयोग का व्यवहार है, वह साधुपना है ही नहीं। उसे तो चरणानुयोग का आचरण जिसे सम्यग्दर्शन और वीतरागभावसहित है, उसे ऐसा भाव आता है, ऐसा उसे चरणानुयोग बताता है। आहाहा! दूसरा क्या हो? अरे! निराधार अशरण है। भगवान चिदानन्द अन्दर शरण है, उसे शोधता नहीं, खोजता नहीं और यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ... आहाहा! कहते हैं कि वह पापी ही है।

मिथ्यादृष्टि जीव पुण्यसहित हैं, तो भी पापी ही कहे हैं। आहाहा! गोम्मटसार में तो मिथ्यादृष्टि को अशुभभाव ही कहा है, शुभभाव कहा नहीं। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को शुभभाव कहा है। आहाहा! **पापी हैं। तथा जो सम्यक्त्वसहित हैं, वे पहले भव में उपार्जन किये हुए पाप के फल से दुःख-दारिद्र भोगते हैं,...** आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित है और वर्तमान में दरिद्र है। पच्चीस रुपये पैदा करना (हो तो भी) नहीं कर सकता। है? दरिद्र है और दुःख (भोगता है), बाहर की प्रतिकूलता का पार

नहीं। आहाहा! शरीर में रोग हो, स्त्री मिले नहीं, पुरुष सेवा करनेवाला नौकर न हो, मनुष्य न हो, पैसा न हो, आहाहा! वह दु:खी हो तो भी... आहाहा! **पुण्याधिकारी ही कहे हैं।** है ? पुण्य का अधिकारी है। मरकर वह स्वर्ग में जानेवाला है। यहाँ भले दरिद्री हो, तुम बड़े सेठिया करोड़पति दिखाई दो और वह गरीब मनुष्य हो, रोटियों के लिये मुश्किल से पच्चीस रुपये महीने मिलते हों! आहाहा! पति-पत्नी दो हों, वस्त्र जीर्ण (हो), गरीब मनुष्य (हो) परन्तु वह पुण्य का अधिकारी है। आहाहा! उसका पुण्य ऐसा होगा कि उसे स्वर्ग (मिलेगा अथवा) बड़ा राजा होगा। समझ में आया ? आहाहा!

वर्तमान में दु:ख और दारिद्र भोगता है। आहाहा! रहने का मकान मिलता नहीं, काँटे की वाड़ करके घास के पूले डालकर झोपड़े में रहना पड़ता हो। ऐई! झोपड़ा कहते हैं न झोपड़ा ? घास के बनाते हैं न ? अन्दर रहे। बेचारा गरीब मनुष्य हो परन्तु समकिती है तो वह पुण्य का अधिकारी है। आहाहा! और चालीस-चालीस लाख के बँगले में सोता हो परन्तु वह सब मिथ्यादृष्टि पाप के अधिकारी हैं। आहाहा! दृष्टि विपरीत है।

अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द सम्पन्न प्रभु है। आहाहा! उसकी दृष्टि होना, वह तो अलौकिक वस्तु है। दृष्टि भले पर्याय है, परन्तु उसका विषय है, वह तो परमात्मा का है। आहाहा! पूरा परमात्मा, वह दृष्टि का विषय है। आहाहा! अब ऐसा उपदेश। भभूतमलजी! यह सब पुण्य की क्रिया की भभूत लगा दे। इन्हें तो अब प्रेम है न! यह तो वस्तु अलग है, बापू! जरा बैठे नहीं घट में परन्तु बैठाना पड़ेगा इसे। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्टि दृष्टि को नहीं परन्तु परमात्मा को पकड़ती है!

पूज्य गुरुदेवश्री : परमात्मा (को पकड़ती) है। दृष्टि पर्याय है, वह पकड़ती है पर्याय को नहीं, परमात्मा को (पकड़ती है)। आहाहा! भाई! यह बातें नहीं। यह तो वीतराग के मार्ग के परम रहस्य हैं। आहाहा! भले दुनिया माने, न माने। आहाहा!

दारिद्र भोगते हैं, तो भी पुण्याधिकारी ही कहे हैं। शास्त्र में उसे पुण्य अधिकारी कहा है। **इसलिए जो सम्यक्त्वसहित हैं, उनका मरना भी अच्छा। मरकर ऊपर को जावेंगे...** मरकर स्वर्ग में जायेंगे, वैमानिक देव होंगे। आहाहा! सम्यग्दृष्टि मरकर मनुष्य नहीं होगा, तथा भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में नहीं जायेगा, नरक और तिर्यंच में नहीं

जायेगा। आयुष्य नहीं बँधा हो, उसकी बात है न? समझ में आया? आहाहा! **ऊपर को जायेंगे...** वैमानिक देव (होंगे)। आहाहा!

श्रीमद् राजचन्द्र, लो! स्वर्ग में हैं, वैमानिक में हैं। वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे। उनके कितने ही भक्त ऐसा कहते हैं, महाविदेह में गये हैं। महाविदेह में तो मिथ्यादृष्टि जाता है। क्या करता है तू यह? मनुष्य मरकर मनुष्य तो मिथ्यादृष्टि होता है। समकिती मनुष्य में जाये? इसलिए यहाँ ऊपर जाये, ऐसा कहा है। ऐसे नहीं जाता। आहाहा! लोगों को राग के प्रेम में सत्य क्या है, सिद्धान्त कहाँ टूटता है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : विदेहक्षेत्र में तो भगवान विराजते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान विराजते हैं तो क्या है? विदेह में अनन्त बार वहाँ गया है और मनुष्य मरकर मनुष्य हो तो मिथ्यादृष्टि हो, समकिती मनुष्य मरकर मनुष्य नहीं होता। समकिती नारकी भी मरकर मनुष्य ही होता है, तिर्यंच नहीं होता। समकिती देव मरकर मनुष्य होता है, तिर्यंच नहीं होता। मनुष्य मरकर स्वर्ग में ही जाता है। वह भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष, नरक, तिर्यंच में नहीं जाता। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो सब अभी क्रमसर हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमसर ही है। क्रमसर की दृष्टि कहाँ है इसकी? क्रमसर के माननेवाले की दृष्टि कहाँ है? इसे क्रमसर बैठा है (या) बातें की है जिसने क्रमसर की? समझ में आया? ऐसा क्रमसर होता है, उसकी दृष्टि कहाँ है? परमात्मा भगवान के ऊपर दृष्टि है, उसे यह क्रमसर आ गया है। आहाहा! ऐसी बात है, बापू! दुनिया के साथ मिलान नहीं खाता। आहाहा!

समकित बिना महाव्रत पाले, अट्ठाईस मूलगुण पाले, तो भी अभी पापी है, कहते हैं। आहाहा! समकितसहित दरिद्री हो, निर्धन हो, अविवाहित हो, वांढा समझते हो? स्त्री बिना। कोई स्त्री देता न हो। आहाहा! आँख से काणा हो, एकाध आँख हो और दूसरी आँख न भी हो और समकित हो। कोई कन्या भी न दे, परन्तु है पुण्य का अधिकारी। बड़ा देव होनेवाला है। समझ में आया? और समकित बिना के सब पुण्य

के थोथा खाते हैं... ऐ... देवानुप्रिया! उसे वहाँ सब पुण्य का है। किराया उपजता है। अकेला है तो किराया खाता है। किराया खाया जाता होगा? राग, राग (खाता है)। आहाहा!

यहाँ आचार्य कहते हैं। श्लोक बहुत सरस है। भभूतमलजी! आहा! जो **सम्यक्त्व रहित हैं, उनका पुण्य-कर्म भी प्रशंसा योग्य नहीं है।** है? जो समकितरहित है, उनके पुण्य-कर्म अर्थात् पूर्व का पुण्य और वर्तमान शुभभाव, वह प्रशंसा योग्य नहीं है। **वे पुण्य के उदय से क्षुद्र (नीच) देव...** आहाहा! **तथा क्षुद्र मनुष्य होके...** मिथ्यादृष्टि पुण्य करेगा तो हल्के-गरीब मनुष्य में अवतरित होगा। आहाहा! **संसार-वन में भटकेंगे।** जो मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य करता है, परन्तु प्रशंसा योग्य नहीं, क्योंकि उससे नीच देव और क्षुद्र मनुष्य होकर संसारवन में भटकेगा।

यदि पूर्व के पुण्य को यहाँ भोगते हैं तो तुच्छ फल भोग के नरक-निगोद में पड़ेंगे। आहाहा! अरबोंपति, करोड़ोंपति पुण्य के फल को भोगते हैं परन्तु सम्यग्दर्शन बिना का वह पुण्य है। आहाहा! **तुच्छ फल भोग के नरक-निगोद में पड़ेंगे।** आहाहा! समकिती यहाँ दरिद्र होगा तो वह स्वर्ग का बड़ा देव होगा और यह पुण्यवन्त प्राणी उसमें (मिथ्यात्व में) होगा, वह मरकर नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! ऐसे तो अनन्त भव किये, भाई! आहाहा! इसे जरा सी थोड़ी बाहर की अनुकूलता मिले, वहाँ इसे अधिकता (आकर) आकर्षित हो जाता है। शरीर, पैसा, यह स्त्री-पुत्र कहीं ठीक मिले वहाँ आकर्षित हो जाता है। यह तो धूल के ढ़ेले हैं। आहाहा! रूपवान शरीर हो, भाषा मीठी हो, स्त्री करोड़पति की पुत्री आयी हो तो, ओहोहो! क्या हम हैं! क्या तुम हो? पापी हो, सुन न! आहाहा! हमारी माँ दीवान की बहिन थी, हमारी ऐसी माता थी, हमारे पिता ऐसे थे। परन्तु तुझे क्या है? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह स्वयं होगा और स्वयं निकलेगा, इसलिए उसे स्वयं को खाली हो गया। स्वयं निकल गया। उसे ऐसा कि ऐसे तो मरकर सब रहनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ रहनेवाले भी निकलनेवाले हैं, यह कहते हैं, वह रहे तो मैं

तो निकल गया, मैं निकला अब वापस आनेवाला नहीं। आहाहा! भारी सूक्ष्म बातें, भाई! है?

इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है। क्योंकि उसमें अन्दर पुण्यभाव की उसे रुचि है। समकिती को पुण्यभाव की रुचि नहीं, उसे उसके ऊपर हेयबुद्धि, जहरबुद्धि है। आहाहा! उसकी आनन्दबुद्धि तो भगवान में है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की सुखबुद्धि तो भगवान में है, आत्मा में है; पुण्य में तो दुःखबुद्धि है। अज्ञानी को आत्मा में सुखबुद्धि नहीं, उसे पुण्य में सुखबुद्धि है। आहाहा! पहले ३९ गाथा में आगे कहा था। अज्ञानी पुण्य को उपादेय मानता है, उसे आत्मा हेय हो जाता है। आत्मा हेय (होता है)। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, शुभभाव को जो उपादेय मानता है, उसे आत्मा हेय हो जाता है और जो आत्मा को उपादेय मानता है, उसे पुण्य हेय हो जाता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! दुनिया के साथ तो बहुत मुश्किल पड़े। आहाहा!

मुमुक्षु : जो मोक्ष की वांछा करता है, उसे पुण्य के फल की वांछा होती है, उसे मोह होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष की इच्छा करे, वह इच्छा तो साधारण है। वह इच्छा भी इसे छोड़नेयोग्य है, ऐसा मानता है। वह आता है, ऐसा आता है। समाहि... बोहि लाभं... आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर से जुदा एकत्व की उपलब्धि केवल सुलभ ना!

पूज्य गुरुदेवश्री : 'सुलभ ना' अर्थात्? अनन्त काल में मिली नहीं, इसलिए 'सुलभ ना'। परन्तु मिल नहीं सकती, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। क्या कहा? ऐसा नहीं। अन्दर पुरुषार्थ की उग्रता से मिले, ऐसा है। अनन्त काल में नहीं मिली, इसलिए सुलभ नहीं है, ऐसा। परन्तु वस्तु स्वयं है, सहज है, सत् है, सत् से भरपूर है, सत् वह सरल है; सत्, वह सर्वत्र है; सत्, वह (सुगम है)। आहाहा! (सत् की) प्राप्ति सरल है। यह श्रीमद् कहते हैं, यह श्रीमद् के वाक्य हैं। सत् सत् है, सरल है, सर्वत्र है, उसकी प्राप्ति सुलभ है, परन्तु उसके समझानेवाले गुरु मिलना दुर्लभ है। वहाँ ऐसा कहा है। आहाहा! समझ में आया?

यह 'नजर के आलस से रे, मैंने नयन से न निरखे हरि।' नर का नारायण होने की सामर्थ्य है, जन का जैन होने की सामर्थ्य है। नर का नारायण होने की सामर्थ्य है, जन है, उसे जिन होने की सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया? जन है, वह नरक और निगोद के योग्य नहीं, वह तो 'जिन' के योग्य है। आहाहा! समझ में आया? यह तो पर्याय में अज्ञानभाव खड़ा करता है, इसलिए नरक-निगोद है। वस्तु जिनरूप से है। जन, वह जिनपना है, वह तो जिनपने के योग्य है। आहाहा! भाई! यह तो दुनिया से अलग प्रकार है, बापू! यह दुनिया के बाहर के भभका और उसमें महत्ता माने! आहाहा! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टियों का पुण्य भी भला नहीं है। निदानबन्ध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर... देखो! मिथ्यादृष्टि है न? उसे दृष्टि में निदान ही पड़ा है, पुण्य की इच्छा ही है। **पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे।** आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती। छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक! आहाहा! जब निदान किया था, तब तो पहले समकित था। समकिती चक्रवर्ती हो सकता है। मिथ्यादृष्टि को निदान में चक्रवर्तीपना होता नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि थे, उसमें निदान करके दृष्टि (मिथ्या) हो गयी। उसे चक्रवर्तीपना होता है, मिथ्यादृष्टि को—किसी दिन समकित पाया नहीं, उसे चक्रवर्ती पद हो सकता ही नहीं। वासुदेव, चक्रवर्ती, सब समकित पाये हुए। वे निदान में (मिथ्यादृष्टि) हुए हैं। आहाहा! समझ में आया? शल्य आया न? निदान, माया, मिथ्यात्व। आहाहा! मार्ग बहुत (सूक्ष्म), बापू! जन्म-मरण रहित का मार्ग है यहाँ तो। आहाहा!

अभी यह बात ही सुनना मुश्किल हो गयी और बात बाहर आयी वहाँ लोगों को ऐ... ऐसा है और वैसा है और फलाना है... सम्यग्ज्ञान दीपिका की बात हमारे सिर पर डाली कहो, वाममार्गी है, कहते हैं। सम्यग्ज्ञान दीपिका में ऐसा कहा, (विवाहित) स्त्री पर को भोगने पर भी बाहर में नहीं आती। यह बात उन्हें सहन नहीं हुई। यह तो धर्मदास क्षुल्लक का लेखन है। ८७ वर्ष पहले की पुस्तक है। अभी कल तक समाचारपत्र में आया था। उनको पूछो कि यह क्या है? परन्तु किसका लिखा हुआ है? आहाहा! क्या हो? जगत को इस प्रकार की पात्रता कम हो, वहाँ ऐसा होता है। आहाहा!

अभी तो अब लोगों को जिज्ञासा हुई है। सत्य क्या है, यह सुनना... आहाहा! प्रेम से सत्य को सुनते हैं, रुचि से, ऐसा कहते हैं कि मार्ग तो यह बराबर है। आहाहा! इससे (विरुद्ध) नहीं चलता, बापू! यहाँ तीन लोक के नाथ परमात्मा के पंथ में यह विरुद्ध नहीं चलता। आहाहा! वह तो लोगों का पुण्य कम, नहीं तो कोई इन्द्र-देव आकर विरोध करे। ऐसा मार्ग है। परन्तु अब लोगों का पुण्य न हो तो (नहीं होता)। ऋषभदेव भगवान के समय चार हजार साधु हुए, नहीं? वेश बदलकर दूसरा करने लगे। देव ने आकर ऐसा कहा, दण्ड करेंगे। वेश बदल डालो, दूसरा वेश, लो! नग्नपने में दूसरा करोगे तो नहीं चलेगा। आहाहा! इतना लोगों का भाग्य! देवों ने आकर रोका। आहाहा! (अभी) इतना पुण्य कम!

श्रीमद् राजचन्द्र जैसे समकिती वैमानिक में गये हैं... सोगानी जैसे, निहालचन्दभाई सोगानी जैसे (स्वर्ग में गये हैं)। द्रव्यदृष्टिप्रकाश आया है? ऐसा? ठीक! वहाँ दिया था? सोगानी का द्रव्यदृष्टिप्रकाश है न? स्वर्ग में गये हैं, वैमानिक स्वर्ग। आहाहा! होता है न?

निदानबन्ध पुण्य से भवान्तर में भोगों को पाकर पीछे नरक में जावेंगे। सम्यग्दृष्टि प्रथम मिथ्यात्व अवस्था में किये हुए पापों के फल से दुःख भोगते हैं,... दुःख अर्थात् प्रतिकूलता आती है। **लेकिन अब सम्यक्त्व मिला है, इसलिए सदा सुखी ही होवेंगे।** आहाहा! सम्यग्दर्शन में आत्मा का सुख है। आहाहा! **आयु के अन्त में नरक से निकलके मनुष्य होकर...** आहाहा! देखो! **ऊर्ध्वगति ही पावेंगे,...** श्रेणिकराजा आदि। आहाहा! समकिती नरक में पड़े हैं, परन्तु वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष जायेंगे या स्वर्ग में जायेंगे और फिर मोक्ष जायेंगे। **मिथ्यादृष्टि जो पुण्य के उदय से देव भी हुए हैं, तो भी देवलोक से आकर ऐकेन्द्री होवेंगे।** आहाहा! दूसरे देवलोक तक एकेन्द्रिय होंगे। **ऐसा दूसरी जगह भी 'वरं' इत्यादि श्लोक से कहा है, कि सम्यक्त्वसहित नरक में रहना भी अच्छा,...** योगसार में है। **और सम्यक्त्वरहित का स्वर्ग में निवास भी शोभा नहीं देता।** इतना सम्यग्दर्शन का माहात्म्य है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ५९

अथ तमेवार्थ पुनरपि द्रढयति -

१८३) जे णिय-दंसण-अहिमुहा सोक्खु अणंतु लहंति।
तिं विणु पुण्णु करंता वि दुक्खु अणंतु सहंति।।५९।।

ये निजदर्शनाभिमुखाः सौख्यमनन्तं लभन्ते।
तेन विना पुण्यं कुर्वाणा अपि दुःखमनन्तं सहन्ते।।५९।।

जे णिय इत्यादि। जे ये केचन णिय-दंसण-अहिमुहा निजदर्शनाभिमुखास्ते पुरुषाः सोक्खु अणंतु लहंति सौख्यमनन्तं लभन्ते। अपरे केचन तिं विणु पुण्णु करंता वि तेन सम्यक्त्वेन विना पुण्यं कुर्वाणा अपि। दुक्खुं अणंतु सहंति दुःखमनन्तं सहन्त इति। तथाहि। निजशुद्धात्म-तत्त्वोपलब्धिरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वाभिमुखा ये ते केचनास्मिन्नेव भवे धर्मपुत्रभीमार्जुनादि-वदक्षयसुखं लभन्ते, ये केचन पुनर्नकुलसहदेवादिवत् स्वर्गसुखं लभन्ते। ये तु सम्यक्त्वरहितास्ते पुण्यं कुर्वाणा अपि दुःखमनन्तमनुभवन्तीति तात्पर्यम्।।५९।।

अब इसी बात को फिर भी दृढ़ करते हैं -

जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख वे अनन्त सुख प्राप्त करें।
सम्यग्दर्शन के संग में यदि नरकवास भी श्रेष्ठ गिनें।।५९।।

अन्वयार्थ :- [ये] जो [निजदर्शनाभिमुखाः] सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं, वे [अनन्तं सुखं] अनन्त सुख को [लभन्ते] पाते हैं, [तेन विना] और जो जीव सम्यक्त्व रहित हैं, वे [पुण्यं कुर्वाणा अपि] पुण्य भी करते हैं, तो भी पुण्य के फल से अल्प सुख पाके संसार में [अनंतं दुःखम्] अनन्त दुःख [सहंते] भोगते हैं।

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निश्चयसम्यक्त्व के सन्मुख हुए जो सत्पुरुष हैं, वे इसी भव में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की तरह अविनाशी सुख को पाते हैं, और कितने ही नकुल, सहदेव की तरह अहमिंद्र-पद के सुख पाते हैं। तथा जो सम्यक्त्व से रहित मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य भी करते हैं, तो भी मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं, संसारी जीव ही हैं, यह तात्पर्य जानना।।५९।।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल २, मंगलवार
दिनांक-२३-११-१९७६, गाथा-५९, ६०, प्रवचन-१४०

परमात्मप्रकाश। ५९ गाथा। **अब इसी बात को फिर भी दृढ़ करते हैं**—५८ में कहा, उसका विशेष (कहते हैं)।

१८३) जे णिय-दंसण-अहिमुहा सोक्खु अणंतु लहंति।
तिं विणु पुण्णु करंता वि दुक्खु अणंतु सहंति।।५९।।

अन्वयार्थ :- जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं,... अपना आत्मा पूर्ण आनन्द के सन्मुख दृष्टि हुई है। समझ में आया? निमित्त, राग और पर्याय से विमुख होकर, पूर्ण ध्रुव आनन्दस्वभाव के सन्मुख दृष्टि हुई है। सन्मुख का अर्थ यहाँ सहित है। समझ में आया? **सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं, वे अनन्त सुख को पाते हैं,...** आहाहा! परन्तु कोई तो ऐसा कहते हैं कि काललब्धि होगी, तब होगा; भगवान ने देखा होगा, तब होगा। परन्तु भगवान ने देखा होगा....

मुमुक्षु : यह तो पर्याय का....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा होगा, वह होगा; परन्तु उस पर्याय का ज्ञान किसने किया? जो आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति, उसका निर्णय करता है, उसे क्रमबद्ध में काललब्धि के निर्णय की खबर पड़ती है। समझ में आया? क्रमबद्ध में यह आता है न? कि इसे काल में क्रम से होगा। उसमें हमारे कहाँ (पुरुषार्थ करना)? परन्तु क्रम से होगा, उसका निर्णय किसने किया? आहाहा!

सर्वज्ञस्वभावी भगवान ने क्रमबद्ध है, यह जगत में देखा। तो जिसने सर्वज्ञ स्वभाव अपना है, ऐसा जिसने अनुभव किया और निर्णय किया, उसे अन्दर स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ आ गया। ऐसी बात है। वे कहे, नियतिवाद है तुम्हारा सब अकेला सोनगढ़ का। ऐसा कहे। निमित्त आवे और हो, यह कुछ मानते नहीं तुम। मिट्टी में घड़ा होने की, सकारो होने की, निळ्युं होने की। नळियुं समझते हो? नलिया। ... नलिया होने की योग्यता है। परन्तु जैसा निमित्त आवे और कुम्हार की इच्छा हो तत्प्रमाण होता है वहाँ।

ऐसा कहते हैं न? कहते हैं यह सब। ऐसा नहीं। उपादान में एक समय की जो पर्याय होने की थी, वही योग्यता है, एक ही योग्यता है। निमित्त आवे तो ऐसा हो और निमित्त न आवे तो न हो, यह बात एकदम झूठी है। भारी कठिन काम। आहाहा!

मुमुक्षु : दस योग्यता साथ में हो, एक योग्यता....

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में ही हो। नियत का जहाँ निश्चित हुआ स्वभाव। तो स्वभाव है, पुरुषार्थ है, काल एक समय की पर्याय उसी काल में है और भवितव्यता उस काल में वह भाव है। आहाहा! यह बड़ा घोटाला। परन्तु इतना और इस बार भाई ने डाला है, ठीक है। कैलाशचन्दजी ने। क्रमबद्ध में सर्वज्ञता सिद्ध है, इतना डाला है। ... नहीं कहा।

मुमुक्षु : सकल क्रमबद्धता तथा सर्वज्ञता....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्धता नहीं। नियत। नियत। नियतवाद बनाम सर्वज्ञता। इतना ठीक डाला अब। नहीं तो वह तो वर्णीजी की श्रद्धा थी नहीं कुछ। थे या नहीं तब तुम? वहाँ थे? यह वस्तु उसमें बहुत महँगी, इसलिए यह कोई व्यक्तिगत को न बैठे, इससे वस्तु वस्तु में है। यह वस्तु तो अन्दर में जिसे स्वभावसन्मुख का पुरुषार्थ जगा है, उसे यह बात बैठती है, ऐसी है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि **जो सम्यग्दर्शन के सन्मुख हैं, वे अनन्त सुख को पाते हैं,...** वे तो क्रम-क्रम से चारित्र होकर क्रम से केवलज्ञान ही लेंगे। वे अनन्त सुख को प्राप्त करेंगे। आहाहा! **और जीव सम्यक्त्व रहित हैं,...** ऐसा। उसमें सहित और इसमें रहित इतना। **वे पुण्य भी करते हैं,..** है? वे दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, व्यवहाररत्नत्रय आदि करे **तो भी...** है? **पुण्य के फल से अल्प सुख पाके...** संसार के अल्प कोई सेठाई के, राज के, स्वर्ग के। **संसार में अनन्त दुःख भोगते हैं।** आहाहा!

यह तो परमात्मप्रकाश है। जिसे परमात्मस्वरूप का भान हुआ, वह अनन्त सुख को प्राप्त करेगा। और जिसे उस परमात्मा का भान नहीं, अल्पज्ञ में और राग में जिसकी रुचि पड़ी है, वह कदाचित् अल्प पुण्य के कारण स्वर्गादि, राजा आदि हो, परन्तु अनन्त दुःख को भोगेगा बाद में। आहाहा! इस संसार का जो अल्प सुख है, उसमें से वह

अनन्त दु:ख भोगेगा बाद में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात गहन बात है। **अनन्त दु:ख भोगते हैं।**

गाथा में ही दोनों आ गये हैं कि जिसे आत्मदर्शन है, वह अनन्त सुख को प्राप्त करेगा। जिसे आत्मदर्शन नहीं, वह अनन्त दु:ख को (प्राप्त करेगा)। सहज पुण्य करेगा दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, पूजा आदि का भाव हो तो थोड़ा पुण्य करेगा। स्वर्गादिक या राज आदि प्राप्त होगा। परन्तु बाद में तो अनन्त दु:ख को भोगेगा। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

भावार्थ :- निज शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप... भाषा देखो! सम्यग्दर्शन में पर परमात्मा की भगवान की प्राप्ति, ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान की श्रद्धा और प्राप्ति, वह तो शुभराग है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच परमेष्ठी की श्रद्धा, वह भी राग-विकल्प है। आहाहा! परद्रव्य है न? **निज शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप...** आहाहा! भगवान ज्ञायक सर्वज्ञस्वभावी अकेला ज्ञानभाव, ऐसा स्वभाव—ऐसा आत्मा। **निज शुद्धात्मा की...** शुद्ध है न? अपने शुद्ध अर्थात् सर्वज्ञस्वभावी शुद्धता। आहाहा!

शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निश्चयसम्यक्त्व के सन्मुख हुए... अर्थात् प्राप्त हुए। **जो सत्पुरुष हैं,...** आहाहा! **वे इसी भव में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन...** उसी भव में मोक्ष गये। यह पालीताणा से। पाँच पण्डाव वहाँ ध्यान में थे। तीन तो मोक्ष पधारे। आहाहा! महायोद्धा। अर्जुन, भीम। अर्जुन बाणावली कहलाये। भीम महायोद्धा। युधिष्ठिर धर्म राजा बड़े। पाँच भाईयों में बड़े। वे सम्यक्त्व के प्रताप से... आहाहा! **(निज) शुद्धात्मा की प्राप्तिरूप निश्चय सम्यक्त्व के सन्मुख हुए...** वे सत्पुरुष। आहाहा! वे सत्पुरुष हैं। आहाहा! जिन्हें परम सत्य ऐसा परमात्मा अपना स्वरूप, उसका भान हुआ, वे सत्पुरुष कहे जाते हैं। आहाहा!

इसी भव में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की तरह अविनाशीसुख को पाते हैं,... उसी भव में केवलज्ञान पाकर (अविनाशी सुख को प्राप्त हुए)। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित हैं, वे उसी भव में कोई केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेंगे। आहाहा! **और कितने ही नकुल, सहदेव की तरह...** ऐसा। **तरह...** है न भाषा? **इसी भव में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की**

तरह... ऐसा। अकेले तीन हुए, ऐसा नहीं। परन्तु उनकी भाँति। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **अविनाशी सुख को पाते हैं,...** आहाहा! बाहर में यह सब भपका दिखता है, वह तो सब जड़ का है। भगवान में आनन्द का भपका—सुख है। आहाहा! जिसे पर का पुण्य का प्रेम छूटकर... आहाहा! परमात्मा का प्रेम हुआ, वह समकिती जीव कोई भीम, अर्जुन और धर्मराजा की भाँति, ऐसा। दूसरे भी। उस भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष जायेंगे। आहाहा!

और कितने ही नकुल, सहदेव... दो भाई। उन्हें जरा विकल्प रह गया। मुनिराज को कैसे होगा? धर्मराजा, भीम, अर्जुन इनसे बड़े। सहोदर और साधर्मी। आहाहा! और बड़ी उम्र में। सहोदर, साधर्मी और बड़े। सहदेव और नकुल से तीनों बड़े। सहोदर—एक उदर से उत्पन्न हुए और साधर्मी। इसलिए ऐसा हो गया। अरे! यह कैसे होगा? लोहे के धगधगते... आहाहा! उस काल में भी ऐसा था। अरे रे!

मुमुक्षु : उस काल में सीता को रावण ले गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ले गया। रामचन्द्रजी जैसे पुरुष। पुरुषोत्तम पुरुष, वे बलदेव और वासुदेव। लक्ष्मण-वासुदेव, राम-बलदेव। उनकी विद्यमानता में सीताजी को रावण ले गया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि ऐसे जो पुरुष युधिष्ठिर आदि सम्यग्दर्शन के प्रताप से यह हुए, परन्तु उनकी विद्यमानता में उन्हें लोहे के गहने पहनाये। आहाहा! वे कोई देव भी नहीं आये? धर्मात्मा हैं। उसी भव में मोक्ष जानेवाले हैं। बापू! यह होना हो, वहाँ कौन.... आहाहा! स्वर्ग के देव भी नहीं आये उन्हें इस प्रकार से मदद करने? मदद किसकी करे? आहाहा! आत्मा के ध्यान में मस्त, आनन्द में मस्त। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन में भगवान को माना था, जाना था, देखा था, उसमें जो लीन हो गये हैं। आहाहा! आनन्द-आनन्द में लीन होकर गहरे उतर गये। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्तर में गहरे गये। अनन्त आनन्द को प्राप्त हुए। भले परीषह था। आहाहा! लोहे के मुकुट, लोहे के गहने, यह कड़े, कुण्डल। कुण्डल नहीं परन्तु पैर के... आहाहा! ऐसे निरपराधी परमात्मस्वरूप को प्राप्त करनेवालों को ऐसा (परीषह)! यह संयोग है। यह संयोग हो, उसे कौन रोके? आहाहा!

श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है कि महीने-महीने के उपवास करते थे। नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने जाना था। वहाँ पालीताना में सुना (कि) भगवान मोक्ष पधारे। नेमिनाथ भगवान मोक्ष पधारे हैं। देह छूट गयी है। इसलिए तुरन्त ही वे शत्रुंजय पर चढ़ गये। आहाहा! भगवान के दर्शन करने जा रहे थे। परन्तु छद्मस्थ है तो कुछ ख्याल नहीं कि... इसलिए आये पालीताना वहाँ। एक- महीने-महीने के उपवास। आहाहा! अर्थात् आनन्द में लीन। ऐसा। जिन्हें आहार की इच्छा भी नहीं होती। आहाहा! वे आनन्द में लवलीन प्रसन्नता के आनन्द में। विकल्प था भगवान के पास जाने का। भगवान मोक्ष पधारे। अरे! बस, अब उसके समीप—हम भी भगवान के समीप जायेंगे, वहाँ। आहाहा!

मुमुक्षु : अनशन किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनशन किया था। संथारा किया था। आजीवन आहार का त्याग, पानी का त्याग। अब ऐसे पुण्यवन्त प्राणी, वे दीक्षित हुए और साधु हुए। उन्हें ऐसा योग कैसे मिटे? बापू! आहाहा! उसमें तो अन्दर घुस गये हैं। आहाहा! केवलज्ञान पाकर मोक्ष गये। सहदेव और नकुल जैसे को जरा विकल्प रह गया। मुनि को कैसे होगा? तो यह कहते हैं कि स्वर्ग में गये। सर्वार्थसिद्धि में। है न वह? आहाहा! **नकुल, सहदेव की तरह...** नकुल और सहदेव का तो दृष्टान्त है। उनके जैसे। **तरह...** उनकी भाँति। दूसरे भी मुनि और धर्मात्मा, आहाहा! **अहमिन्द्र-पद के सुख पाते हैं।** आहाहा! नौवें ग्रैवेयक ऊपर। वहाँ अनुत्तर विमान में सब अहमिन्द्र हैं। **अहमिन्द्र-पद के सुख पाते हैं।** आहाहा! लौकिक (सुख)।

तथा जो सम्यक्त्व से रहित,... आहाहा! **मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य भी करते हैं,...** आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, चरणानुयोग का व्यवहार आचरण करते हैं, वह पुण्य है। आहाहा! भगवान आनन्द के नाथ का जहाँ आचरण नहीं, वहाँ पुण्य का आचरण कदाचित् करे, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? **तो भी मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं,...** आहाहा! वे मोक्ष के अधिकारी नहीं। सम्यग्दर्शनरहित जीव... आहाहा! चरणानुयोग के व्यवहार प्रमाण आचरण करे, व्रत, नियम, तप, भक्ति आदि (करे)। आहाहा! अब ऐसा तो स्पष्ट कथन है। उसे ऐसा कि यह व्यवहार चरणानुयोग का

आचरण करनेवाले, वे मोक्ष जायेंगे। बाद में जायेंगे, ऐसा कहे। निश्चय प्राप्त करेंगे। उससे तो पाता नहीं। व्यवहाररत्नत्रय के चरणानुयोग के व्यवहार आचरण से कोई समकित प्राप्त नहीं करता। आहाहा! यह तो 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह चरणानुयोग का आचरण नहीं था? आहाहा! भगवान आत्मा के आनन्द के आचरण बिना अकेला पुण्य का आचरण करनेवाले जरा स्वर्गादि के थोड़े सुख मिलें, कहते हैं, परन्तु बाद में तो नरक और निगोद में अनन्त दुःख होगा। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? आहाहा!

पुण्य भी करते हैं, तो भी मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं, संसारीजीव ही हैं,... आहाहा! संसारी जीव ही है। चरणानुयोग का आचरण व्यवहार का शास्त्र में कहा, वैसा करे, तो भी वे संसारी ही हैं। आहाहा! व्यक्ति के लिये यहाँ बात नहीं है, हों! यह तो वस्तु का स्वरूप है। कोई व्यक्ति ऐसे हैं और वैसे हैं, अभी यह बात नहीं लेना। यह करना नहीं चाहिए। समझ में आया? और साधारण मनुष्य को तो इस बात में पड़ना नहीं चाहिए। क्योंकि उनका... तत्त्व की बात (समझना)। क्योंकि उन लोगों को दुःख लगे न? और उनके माननेवालों को भी जरा (दुःख) हो कि ऐसे निकले हैं। इसलिए कोई व्यक्ति ऐसा है और वैसा है, ऐसा नहीं। वस्तु का स्वरूप इस प्रकार है, ऐसा। और यह तो अपने लिये है। दूसरों की जवाबदारी दूसरों के सिर पर है। उसकी जोखिम स्वयं किसलिए ले? आहाहा! वह भगवान है। भूला पड़ा है वह। वह भूल को तोड़कर भगवान होगा। आहाहा!

मोक्ष के अधिकारी नहीं हैं, संसारीजीव ही हैं, यह तात्पर्य जानना। देखा! है? '**दुःखमनन्तमनुभवन्तीति तात्पर्यम्॥**' है न? संस्कृत में है, हों! तात्पर्य यह है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि सहित कोई चारित्र के दोष होंगे परन्तु वह टालकर चारित्र होगा और अनन्त सुख को ही प्राप्त करेगा। आहाहा! और मिथ्यादृष्टि को पुण्य की क्रियायें आचरण की ऊँची होगी तो भी वह थोड़ा सुख संसार का जरा थोड़े काल स्वर्ग या राजा (होगा)। पश्चात् वह नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! ऐसी बात! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वह अनन्त दुःख पायेगा, ऐसी बात है। मिथ्यादृष्टि की नीचता, सम्यग्दर्शन की उच्चता इस प्रकार की है। समझ में आया?

गाथा - ६०

अथ निश्चयेन पुण्यं निराकरोति -

१८४)　**पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।**
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ।।६०।।

पुण्येन भवति विभवो विभवेन मदो मदेन मतिमोहः।
मतिमोहेन च पापं तस्मात् पुण्यं अस्माकं मा भवतु।।६०।।

पुण्णेण इत्यादि। पुण्णेण होइ विहवो पुण्येन विभवो विभूतिर्भवति, विहवेण मओ विभवेन मदोऽहंकारो गर्वो भवति, मएण मइ-मोहो विज्ञानाद्यष्टविधमदेन मतिमोहो मतिभ्रंशो विवेकमूढत्वं भवति। मइ-मोहेण य पावं मतिमूढत्वेन पापं भवति, तो पुण्णं अम्ह मा होउ तस्मादित्थंभूतं पुण्यं अस्माकं मा भूदिति। तथा च। इदं पूर्वोक्तं पुण्यं भेदाभेदरत्नत्रया-राधनारहितेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपनिदानबन्धपरिणामसहितेन जीवेन यदुपार्जितं पूर्वभवे तदेव मदमहंकारं जनयति बुद्धिविनाशं च करोति। न च पुनः सम्यक्त्वादिगुणसहितं भरतसगररामपाण्डवादिपुण्यबन्धवत्। यदि पुनः सर्वेषां मदं जनयति तर्हि ते कथं पुण्यभाजनाः सन्तो मदाहंकारादिविकल्पं त्यक्त्वा मोक्षं गताः इति भावार्थः। तथा चोक्तं चिरन्तनानां निरहंकारत्वम्। 'सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमे लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गे गतिर्निर्वृत्तेः। येषां प्रागजनीह तेऽपि निरहंकाराः श्रुतेर्गोचराश्चित्रं संप्रति लेशतोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः।।'।।६०।।

आगे निश्चय से मिथ्यादृष्टियों के पुण्य का निषेध करते हैं -

पुण्योदय से वैभव मिलता वैभव से मद मद से मोह।
मोहमति से पाप बन्ध हो ऐसा पुण्य कभी न हो।।६०।।

अन्वयार्थ :- [पुण्येन] पुण्य से घर में [विभवः] धन [भवति] होता है, और [विभवेन] धन से [मदः] अभिमान, [मदेन] मान से [मतिमोहः] बुद्धिभ्रम होता है, [मतिमोहेन] बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) [पापं] पाप होता है, [तस्मात्] इसलिये [पुण्यं] ऐसा पुण्य [अस्माकं] हमारे [मा भवतु] न होवे।

भावार्थ :- भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना से रहित, देखे, सुने, अनुभवे किये

भोगों की वाँछारूप निदानबंध के परिणामों सहित जो मिथ्यादृष्टि संसारी अज्ञानी जीव हैं, उसने पहले उपार्जन किये भोगों की वाँछारूप पुण्य उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा होने से अभिमान (घमंड) होता है, अभिमान से बुद्धि भ्रष्ट होती है, बुद्धि भ्रष्टकर पाप कमाता है, और पाप से भव भव में अनंत दुःख पाता है। इसलिये मिथ्यादृष्टियों का पुण्य-पाप का ही कारण है। जो सम्यक्त्वादि गुण सहित भरत, सगर, राम पांडवादिक विवेकी जीव हैं, उनको पुण्यबंध अभिमान नहीं उत्पन्न करता, परम्पराय मोक्ष का कारण है। जैसे अज्ञानियों के पुण्य का फल विभूति गर्व का कारण है, वैसे सम्यग्दृष्टियों के नहीं है। वे सम्यग्दृष्टि पुण्य के पात्र हुए चक्रवर्ती आदि की विभूति पाकर मद अहंकारादि विकल्पों को छोड़कर मोक्ष को गये अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती बलभद्र-पद में भी निरहंकार रहे। ऐसा ही कथन आत्मानुशासन ग्रंथ में श्रीगुणभद्राचार्य ने किया है, कि पहले समय में ऐसे सत्पुरुष हो गये हैं, कि जिनके वचन में सत्य, बुद्धि में शास्त्र, मन में दया, पराक्रमरूप भुजाओं में शूरवीरता, याचकों में पूर्ण लक्ष्मी का दान, और मोक्षमार्ग में गमन है, वे निरभिमानी हुए, जिनके किसी गुण का अहंकार नहीं हुआ। उनके नाम शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, परंतु अब बड़ा अचंभा है, कि इस पंचमकाल में लेशमात्र भी गुण नहीं हैं, तो भी उनके उद्धतपना है, यानी गुण तो रंचमात्र भी नहीं, और अभिमान में बुद्धि रहती है।।६०।।

गाथा-६० पर प्रवचन

देखो! अब गाथा आयी यह। ६०। यह गाथा फिर अन्यत्र है, हों! लिखा हुआ है। है? लिखा हुआ है? भाई! तिलोयपण्णत्ति भाग-२, गाथा-५२, पृष्ठ-८७९। लिखा है तब, तिलोयपण्णत्ति भाग-२, नीचे है। तिलोयपण्णत्ति लिखा है। भाग-२, पृष्ठ ८७९, गाथा-५२। वापस यह गाथा यहाँ ही है, ऐसा नहीं, तिलोयपण्णत्ति में भी यह है। तिलोयपण्णत्ति में तो तीन लोक का वर्णन करते हैं। उसमें भी यह बात है। आहाहा! समझ में आया? यह तिलोयपण्णत्ति की बातें करते हैं न अभी? वह आर्यिका और वे। उसमें भी यह गाथा है। इसलिए ऐसा कहते हैं न कि व्यवहार करते-करते व्यवहार से निश्चय होगा। तिलोयपण्णत्ति में भी ऐसा नहीं है। यह तो कहते हैं कि व्यवहार करेगा

तो उसका पुण्य होगा। यह है, देखो! '**निश्चयेन पुण्यं निराकरोति**' **निश्चय से मिथ्यादृष्टियों के पुण्य का निषेध करते हैं:**—आहाहा! जिसकी दृष्टि में पुण्य से धर्म होगा, ऐसी दृष्टि मिथ्यात्व है, उसके पुण्य परिणाम का यहाँ निषेध करते हैं कि इस पुण्यपरिणाम का फल उसे दु:ख आयेगा। आहाहा!

१८४) **पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मइ-मोहो।**
मइ-मोहेण य पावं ता पुण्णं अम्ह मा होउ।।६०।।

अन्वयार्थ :- पुण्य से घर में धन होता है,... पुरुषार्थ से नहीं, ऐसा कहते हैं। पूर्व के पुण्य के कारण दो-पाँच करोड़, अरब, दो अरब, पाँच अरब पैसा मिले। आहाहा! और अभिमान चढ़ जाये फिर अन्दर से। यह कहते हैं, देखो! **पुण्य से घर में...** ऐसा लिया है न? '**पुण्णेण होइ विहवो**' विभूति। यह पुण्य की विभूति होगी। आहाहा! घर का इन्होंने अर्थ किया है। पाठ में यह नहीं है। पुण्य से इसके पास धन आयेगा। आहाहा! एक तो यह अर्थ किया कि इसके वर्तमान पुरुषार्थ से धन आयेगा, यह नहीं। सेठ! पूर्व के पुण्य के कारण (धन मिलता है)। कोई व्रत पालन किये होंगे, भक्ति, पूजा, दया, दान किया होगा तो भविष्य में शुभभाव से उसे लक्ष्मी मिलेगी। आहाहा!

संयोगी भाव से संयोगी चीज़ मिलेगी, ऐसा कहते हैं। शुभभाव है, वह संयोगीभाव है, स्वभावभाव नहीं। आहाहा! इसलिए उसे संयोगी चीज़ मिलेगी—लक्ष्मी। और **धन से...** अर्थात् वैभव। है न? यह वहाँ से डाला। यह धन वहाँ है। परन्तु घर नहीं वहाँ। '**विभवः**' अर्थात् विभूति से। यह सब विभूति। आहाहा! पाँच-पाँच लाख की आमदनी दिन की हो। लड़के... आहाहा! बड़े योद्धा पके हों। अच्छे घर की करोड़ों-अरबोंपति की पुत्रियाँ आती हों, पुत्रियों को विवाहने में भी बड़े राजा मिलते हों। आहाहा! यह सब वैभव। आहाहा!

धन से अभिमान,... है? यह विभूति इतनी अन्दर जाये। आहाहा! यह बेचारा गरीब मनुष्य को तो कुछ मिलता भी नहीं। ऐसा उसे अभिमान चढ़ जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह तो परपदार्थ है, उससे अभिमान कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं करता है, इसलिए होता है। उससे होता है? ऐसा कि

यह शब्द ऐसा रखा है न धन से। पाठ में ऐसा रखा है न? परन्तु उसका अर्थ कि इसने अभिमान किया है न मिथ्यादृष्टि में, राग के भाव में अभिमान किया है कि यह मैं हूँ, इससे इसके पुण्य (फल में) इसका अभिमान होगा, ऐसा कहते हैं। वह पैसे के कारण नहीं। परन्तु इसने अभिमान किया था। हम दया पालते हैं, हम व्रत पालते हैं, हम भक्ति करते हैं, पूजा करते हैं, लाखों-करोड़ों रुपये दान में खर्च करते हैं, मन्दिर बनाये हैं। ऐसा जो अभिमान सेवन किया था... आहाहा! उसके फल में पैसा मिलेगा परन्तु वापस उसका अभिमान होगा। आहाहा! ऐसी बात है। अमेरिका में देखो न कितने पैसे! अरबोंपति। कितने अरबोंपति अमेरिका में हैं। सब थक गये हैं अब। फिर निकले हैं न वे? 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण'। वेश पहनकर निकले हैं। उसमें कहाँ भान है कि क्या है? उसमें कितने ही ठग हैं, ऐसा लोग तो कहते हैं। आहाहा!

धन से अभिमान... पाठ ऐसा है न? '**विहवेण मओ**' यह मद स्वयं करता है वैभव की अपेक्षा के कारण। क्योंकि पूर्व में पुण्य के परिणाम का अभिमान किया था कि हमारा पुण्य है, हम इसके कर्ता हैं। पुण्यभाव के कर्ता हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ज्ञानी को पुण्यभाव आवे परन्तु कर्ता नहीं। उसका ज्ञाता है। क्योंकि वस्तु का स्वरूप ही सर्वज्ञ ज्ञाता-दृष्टा है। इसलिए यह वस्तु के स्वरूप का जहाँ भान हुआ, तो फिर राग आवे सही परन्तु उसका वह ज्ञाता है, कर्ता नहीं। कर्ता बने, वह तो मिथ्यादृष्टि होता है। आहाहा!

मान से बुद्धि भ्रम होता है,... फिर मति में भ्रम हो जाता है। आहाहा! हम कैसे राजकुटुम्ब के! राजमाता के पुत्र और हम तो ऐसे। आहाहा! हमारी सम्पदा सात पीढ़ी से चली आती है इस प्रमाण। ऐसा उसे अभिमान हो जाता है। आहाहा! हमने तो निर्धनता देखी नहीं। गर्भश्रीमन्त हैं। गर्भश्रीमन्त समझे? गर्भ में से श्रीमन्त हैं हम। श्रीमन्त के घर में आये हैं। पाँच-दस करोड़ थे, उसके गर्भ में आये, वहाँ से गर्भश्रीमन्त हम हैं। हमने पैसे नये पैदा नहीं किये। हम तो गर्भश्रीमन्त हैं। आहाहा! अरे! भगवान! उसे पुण्य के कारण मद चढ़ेगा फिर, कहते हैं। आहाहा! और मद से बुद्धि भ्रम होगा। आहाहा! और इसने माना था न कि हम पुण्य करते हैं तो उसमें से कल्याण होगा। हमारा मोक्ष होगा? ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसमें इसे यहाँ अभिमान आयेगा। मतिभ्रम

होगा, मिथ्यात्व हो जायेगा। मिथ्यात्व तो है परन्तु भ्रम हो जायेगा अन्दर। हमने यह कमाये, हमने यह कमाये। पिताजी छोड़ गये थे, ऐसा नहीं, यह तो हमने हमारे बाहुबल से कमाये हैं। ऐसा कहते हैं न बहुत से? हमने जन्म के बाद हमारे बाहुबल से यह पैसे इकट्ठे किये हैं। ओहो! उद्योगपति। नहीं कहते? यह बड़े-बड़े हों उन्हें उद्योगपति कहते हैं। बड़े अरबोंपति हैं। उद्योग में ऐसे करते-करते इकट्ठे किये और ऐसे करते और ऐसे... अखबार में बहुत आता है।

मुमुक्षु : साहूजी भी उद्योगपति हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : साहूजी उद्योगपति हैं। सच्ची बात है। परन्तु दूसरे बहुत होते हैं। आहाहा! दस, पच्चीस, पचास लाख हों तो उसे उद्योगपति (कहते हैं)। उसके पिताजी के पास कुछ नहीं था। परन्तु स्वयं ने ही बाहुबल से धन्धा (करके) उद्योगपति (हुए)। उद्योग बढ़ाकर यह इकट्ठा किया। मर जाने के बाद ऐसे लेख आते हैं।

मुमुक्षु : इसे भ्रमणा कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा है। धूल में भी नहीं वहाँ अब, सुन न!

भगवान आत्मा अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति के सागर की लक्ष्मी अन्दर पड़ी है। आहाहा! उस लक्ष्मी का तो आदर नहीं किया। राग का-पुण्य का आदर किया, इसलिए उसके फल में तुझे उसका अभिमान (होगा), तू मतिभ्रष्ट होगा। आहाहा! धर्मात्मा जीव को तू गरीब मानेगा कि यह चल निकले, लो। त्यागी होकर नग्न-मुनि (हो गये)। कुछ खाने-पीने का साधन नहीं, (इसलिए) चल निकले हैं। ऐसा कहेगा यह। आहाहा! क्योंकि मुनि गरीब भी हों, निर्धन भी हो और फिर मुनि हुए हों। सच्चे सन्त मुनि। जिन्हें इन्द्र आदर करे। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि मति भ्रष्ट हो जायेगा। आहाहा!

बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) फिर कुछ विवेक नहीं रहेगा। आहाहा! **(अविवेक से) पाप होता है,...** आहाहा! भिन्नता के भान बिना अविवेक से फिर पाप बाँधेगा। आहाहा! और सन्त, मुनि, धर्मात्मा गरीब घर में से दीक्षित हुए (हों)। इसे (ऐसा अविवेक होगा कि) यह क्या? कुछ मिला नहीं खाने-पीने, हो गये साधु। ऐसी

मति भ्रष्ट हो जायेगी। अरे! बापू! गरीब हो, परन्तु मुनि हुए वह तो परमेश्वर है। समझ में आया? जिसे गणधर नमस्कार करें। इन्द्र तो करे, वह तो अविरति है, परन्तु मुनि गणधर (नमस्कार करे)। आहाहा! धन्य अवतार! जिसने आत्मा के दर्शनपूर्वक स्वरूप की चारित्र की—रमणता की दशा प्रगट की। गणधर ऐसा कहते हैं कि णमो लोए सव्व साहूणं। हे सन्त! तेरे चरणकमल में मेरा नमस्कार है। आहाहा! वह मुनिपना भले गरीब हो तो क्या हुआ। समझ में आया? और इसे मति भ्रष्ट होकर पाप होगा। आहाहा!

इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे। मुनि-आचार्य कहते हैं। आहाहा! यह आचरण का, राग का भाव आता है, उसका हमको अभिमान नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हम तो उसके जाननेवाले हैं। आहाहा! ऐसा पुण्य-मिथ्यादृष्टि का आचरण से किया हुआ पुण्य और उस पुण्यफल में मिले ऐसा, ऐसा पुण्य हमको न होओ। आहाहा! आचार्य ऐसा कहते हैं, देखो! आहा! क्योंकि वर्तमान में आचरण है पंच महाव्रतादि का, उसका हमको अभिमान नहीं है। उसके हम कर्ता नहीं हैं। आहाहा! ओहो! मुनियों ने कितना काम किया है, देखो न! दिगम्बर सन्त। ऐसी बात है कहाँ? इतने करोड़पति, अरबोंपति को दुःख होगा। ऐसी बात की उन्हें कहाँ दरकार है? यह सब अरबोंपति बड़े हों। यह कहते हैं कि तुम सब पुण्य के अभिमानी... आहाहा! मरकर दुर्गति में जाओगे। आहाहा!

भावार्थ :- भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना से रहित,... देखो! धर्मात्मा को अभेदरत्नत्रय की आराधना के साथ विकल्प होता है, (परन्तु) कर्तापना नहीं। समझ में आया? भेद, व्यवहार और अभेद निश्चय रत्नत्रय की आराधना से रहित। अर्थात् कि रत्नत्रय की आराधना सहित है, वह तो सन्त है। व्यवहार डाला। क्योंकि जहाँ निश्चयरत्नत्रय आत्मा के आश्रय से है, वहाँ अभी पूर्ण नहीं, वहाँ आगे विकल्प का कर्ता (हुए) बिना वह आये बिना रहता नहीं। भेदरत्नत्रय का विकल्प राग कर्ता (हुए) बिना आता है। उसका ज्ञान कराया है। समझ में आया?

ऐसे **भेदाभेदरत्नत्रय की आराधना से रहित देखे, सुने, अनुभव किये...** आहाहा! आँख से देखा। यह सब वैभव राज, बड़े देव और... आहाहा! सुना हो शास्त्र से। शास्त्र से बड़ा वैभव सुना हो। आहाहा! **देखे, सुने, अनुभव किये...** मन से भोगे हों। आहाहा! ऐसे **भोगों की वांछारूप निदानबन्ध के परिणामों सहित...** मिथ्यादृष्टि है न? आहाहा!

आराधना रहित है न? उसे यह वांछा ही है। मिथ्यात्व, वही महानिदान है, शल्य है। समझ में आया? मिथ्यात्व, माया (निदान), तीन शल्य आती है न? निदान। यह मिथ्यात्व स्वयं ही शल्य है। आहाहा!

उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य... आहाहा! **निदानबन्ध के परिणामों सहित जो मिथ्यादृष्टि संसारी अज्ञानी जीव हैं, उसने पहले उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य...** आहाहा! अनुभव तो है नहीं। इसलिए उस पुण्य में भोग की ही वांछा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **भोगों की वांछारूप पुण्य, उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा होने से अभिमान (घमण्ड) होता है,...** घमण्ड-घमण्ड। हम ऐसे हैं... हम ऐसे हैं... आहाहा! घमण्ड। **अभिमान से बुद्धि भ्रष्ट होती है,...** अभिमान से बुद्धि भ्रष्ट होती है। क्या करता हूँ अविवेक, इसकी भी उसे खबर नहीं रहती। आहाहा!

बुद्धि भ्रष्टकर पाप कमाता है,... आहाहा! **और पाप से भव-भव में अनन्त दुःख पाता है।** लो! आहाहा! अनन्त भव में अनन्त (दुःख भोगता है)। मिथ्यादृष्टि, उसके पुण्य के फल में अभिमान में... आहाहा! भगवान आत्मा का अनादर करके, पुण्य के परिणाम का अभिमान (करे), उसके फल में भी उसका अभिमान (करे)। आहाहा! जिसे भोगों में प्रेम है, उसे पूर्व के पुण्य का भी प्रेम है। समझ में आया? आहाहा! वास्तविक पाँच इन्द्रिय के विषयों की अनुकूलता का भोग, उसका जिसे प्रेम है, उसे उसके कारणरूप पुण्य के भाव का भी प्रेम है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञानी को शुभभाव आवे, परन्तु उसका प्रेम नहीं। आहाहा! और उसके फलरूप से उसे स्वर्ग में भी जाना पड़े। परन्तु वह निषेध करता जाता है कि यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। पद्मनन्दि में आलोचना के अधिकार में आता है। आलोचना अधिकार आता है। अनित्य, आलोचना। वह जाता है स्वर्ग में परन्तु निषेध करता (जाता है कि) यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। कर्ता तो नहीं परन्तु है, उसे (निषेध करता जाता है), यह नहीं। यह नहीं मेरी चीज़। आहाहा! इससे उसके फलरूप से स्वर्ग में जायेगा तो उसकी उसे रुचि नहीं होगी। उसकी रुचि नहीं होगी। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि तो स्वर्ग में ही जाये। मुनि हैं, वे स्वर्ग में जाते हैं पंचम काल के तो। परन्तु उन्हें रुचि नहीं रहती। आहाहा! भले नौवें ग्रैवेयक मिला हो। सर्वार्थसिद्धि मिला

हो, देखो न भाई को, सहदेव-नकुल को। रुचि नहीं। रुचि नहीं। आहाहा! अनुत्तर विमान में सुख की भी जिसे रुचि नहीं। आया सही। आहाहा! और वह तो फिर उसी और उसी में फँस जाये पैसे में। व्यापार, धन्धा, ओहोहो! चौड़ा होकर घूमे फिर। दो-पाँच करोड़ रुपये हों। पाँच लाख इसे दिये और पाँच लाख उसे दिये। सबको मालिक (होता है)। फिर पच्चीस दुकानें चलती हों। उसकी देखरेख रखे और चौड़ा-चौड़ा होकर ऐसे घूमे। आहाहा! दुकान में जाये तो सेठ साहेब... सेठ साहेब... पधारो, पधारो, पधारो। आहाहा! रेशमी कपड़े पहने हों, धोती, कोट। पतलून-बतलून तो अब हुआ है। नहीं तो धोती (पहनते थे)। आहाहा! हम बड़े साहूकार राजा हैं। मर जाओगे अब। सुन न! आहाहा!

मुमुक्षु : बहुत बड़े भाग्य से मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग्य से मिलता है तो भाग्य के अभिमान से मरकर नीचे जायेगा। भाग्यहीन में जायेगा। आहाहा! बाहर की चीज़—संयोग का क्या अभिमान? वह तो परचीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप अच्छे को खराब क्यों कहते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छा है कहाँ? अच्छा तो आत्मा का आनन्द है, वह अच्छा है। पुण्य परिणाम अच्छे हैं ही नहीं। उन्हें जहर कहा है। समकिती के पुण्य को, मुनि के पुण्य को जहर कहा है। चरणानुयोग का आचरण है, उस पुण्य को जहर कहा है। आहाहा! और वह जहर करते-करते उसे अमृत का स्वाद आयेगा? आत्मा का भान होगा? लोग बहुत उलझन में हैं। फिर यहाँ का एकान्त (है, ऐसा कहते हैं)। व्यवहार से भी होता है, निश्चय से भी होता है, यह अनेकान्त है। क्या हो? बापू! भाई! तेरा स्वभाव ही ऐसा नहीं। व्यवहार से होता है, ऐसा तेरा स्वभाव ही नहीं है। अलिंगग्रहण में कहते हैं, अपने स्वभाव से प्राप्त हो, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। आहाहा! वह पुण्यभाव से प्राप्त होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। चरणानुयोग का आचरण हो तो उससे निश्चय समकित होता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! घर में लड़के अभिमानी, मति भ्रष्ट हो जाती है। आहाहा!

पाप से भव-भव में अनन्त दुःख पाता है। आहाहा! लम्बा विचार करे तो खबर

पड़े। यहाँ अरबोंपति हो और बेचारा माँस और शराब न खाता(-पीता) हो। आहाहा! परन्तु पुण्य के फल में उसी और उसी में जागृति। रात और दिन यह करना... यह करना... यह किया... यह किया... आहाहा! भगवान को भूल गया। आनन्द का नाथ परमात्मा स्वयं, उसे भूलकर यह मैंने किया... यह मैंने किया... इतने मील किये, इतने यह किये। बापू! यह मरकर... आहाहा!

उस कथा में आता है न कि एक उसका पिता था। उसका श्राद्ध था। श्राद्ध समझते हो? श्राद्ध था। दूधपाक बनाया, दूधपाक। बरामदे में। वह सब खाते थे। फिर थोड़ा चिपका होगा। उसमें एक पिल्ला—कुत्ती का बच्चा (आया)। क्या कहते हैं? पिल्ला। वह पिल्ला आकर खाये और यह मारे चिमटे से उसका लड़का। फिर पूछा कि यह क्या? इतनी-इतनी बार करते हैं, यह क्यों यहाँ आता है? किसी को पूछा कि यह है कौन? कि जिसका श्राद्ध किया था, तेरे बाप का, वह यह तेरा बाप है। यह कुत्ती का बच्चा हुआ है। आहाहा! जिसके श्राद्ध में दूधपाक उठाया है, वह उसे चाटने आता है। आहाहा! यह जगत के खेल। ममता की हो, बहुत कठोर पाप माँस के, शराब के न हों। बनिये को तो वह कुछ नहीं होता। और ऐसे मायाचार और कपट (की हो)। आहाहा! (उसके फल में) कुत्ती का बच्चा हुआ। वह मारे चिमटे से और यह ऊं... ऊं... करके भागे। फिर से वह आये और (यह) फिर मारे। किसी को पूछा कि यह क्या है? बारम्बार इतना मारें तो भी आता है। यह तेरा बाप है यह। जिसका श्राद्ध किया है, वह आया है।

मुमुक्षु : श्राद्ध खाने आया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाने आया। बारह महीने हुए न? इसलिए यह बारह महीने का पिल्ला है। आहाहा! ऐसी बात है।

बुद्धि भ्रष्ट होकर पाप कमाता है, और पाप से भव-भव में अनन्त दुःख पाता है। इसलिए मिथ्यादृष्टियों का पुण्य, पाप का ही कारण है। देखा! आहाहा! जिसकी दृष्टि ही मिथ्यात्व है, महापाप है, महापाप है। मिथ्यादृष्टि वही आस्रव है और वही बड़ा संसार है। आहाहा! उन **मिथ्यादृष्टियों का पुण्य, पाप का ही कारण है।** है? उसका पुण्य फिर उसे पाप ही करायेगा। आहाहा!

जो सम्यक्त्वादि गुण सहित... सम्यक्त्वादि गुण सहित भरत, सगर, राम, पाण्डवादिक विवेकी जीव हैं,... आहाहा! बड़े राजा। धर्मराजा—युधिष्ठिर, भरत, सगर चक्रवर्ती, पाण्डव... आहाहा! **विवेकी जीव हैं...** आहाहा! इतनी सामग्री मिली है तथापि कहीं मेरा है, ऐसा वे मानते नहीं। आहाहा! मेरा नाथ तो मेरे पास है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर, वह मैं। राग मेरा नहीं, फिर यह चीज़ मेरी कहाँ रही? इतना विवेक था। आहाहा! **भरत, सगर (चक्रवर्ती), राम, पाण्डवादिक...** इसके अतिरिक्त दूसरे भी ऐसे। **विवेकी जीव हैं, उनको पुण्यबन्ध अभिमान नहीं उत्पन्न करता,...** आहाहा! पुण्य के फल आये हैं, परन्तु उन्हें अभिमान उत्पन्न नहीं करता। क्योंकि समकितसहित वहाँ पुण्य बँधा, उसके पुण्य में अभिमान नहीं था तो उसके फल में अभिमान कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **नहीं उत्पन्न करता...**

परम्पराय मोक्ष का कारण है। फिर उसका पुण्य छोड़कर केवल वीतराग होगा। इसलिए परम्परा कारण कहा गया है। वह पुण्य परम्परा कारण नहीं। परन्तु पुण्य का अभाव करेगा, इसलिए परम्परा कारण कहने में आया है। आहाहा! इसमें सब अटके हैं कि मिथ्यादृष्टि भले पुण्य करे तो वह परम्परा उसे मोक्ष का कारण होगा। परन्तु मिथ्यादृष्टि को पुण्य परम्परा कारण होता ही नहीं। और सम्यग्दृष्टि को जो कहा है, वह तो उसका अभाव करेगा, इस अपेक्षा से कहा है। राग कहीं परम्परा मोक्ष का कारण होता है कभी? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....साक्षात् नहीं और फिर अभाव करके होगा, ऐसा कहना है। आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने में भी विवाद। अब लोग यह कहते हैं कि तुम अर्थ बदलते हो। ऐसा कहते हैं। कहते हैं, भाई! क्या हो? ऐसा कि परम्परा कारण कहा तथापि तुम उससे इनकार करते हो। वह परम्परा कारण है अर्थात् अभी साक्षात् नहीं, बाद में करेगा तो परम्परा कारण कहा। राग स्वयं कारण होगा? आहाहा! राग तो दुःख का ही कारण है। वर्तमान और भविष्य में बाद में भी दुःख का ही कारण है। आहाहा!

(समयसार) ७४ गाथा में नहीं आया? राग वर्तमान दुःख का कारण और

भविष्य में दु:ख का कारण है। आहाहा! क्योंकि संयोग मिलेंगे, उसमें लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा। तो राग है, वह दु:ख है। स्वभाव के ऊपर दृष्टि जाये, तब अराग होगा। संयोग चाहे तीन लोक के नाथ और वाणी हो तो भी संयोगी चीज़ है। उसके ऊपर लक्ष्य जाने से राग ही होगा। यह लोगों को कठिन पड़ता है। आहाहा!

(समयसार) ३१वीं गाथा में यही कहा। वह तो इन्द्रिय है। भगवान और भगवान की वाणी, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राज, वह सब इन्द्रिय है। द्रव्य इन्द्रिय, भाव इन्द्रिय के विषय भी इन्द्रिय कहे गये हैं। उनसे हट जा तो अतीन्द्रिय प्राप्त होगा। उनसे प्राप्त होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा!

जैसे अज्ञानियों के पुण्य का फल विभूति गर्व का कारण है,... अज्ञानियों को पुण्य का फल विभूति गर्व का कारण है। आहाहा! **वैसे सम्यग्दृष्टियों के नहीं है।** आहाहा! **सम्यग्दृष्टि पुण्य के पात्र हुए...** आहाहा! सम्यग्दृष्टि पुण्य को पात्र बड़े राजा चक्रवर्ती हुए। आहाहा! **आदि की विभूति पाकर मद अहंकारादि विकल्पों को छोड़कर...** उसे मद नहीं होता। बड़ा चक्रवर्ती पद मिले भले। बलदेव पद मिले। आहाहा! अरे! वह तो संयोगी चीज़ है, संयोगीभाव का फल (आया है), उसमें मैं कहाँ हूँ? वे मेरे कहाँ हैं? और मेरे स्वभाव के कारण वे प्राप्त कहाँ हुए हैं? वह तो विभावभाव था तो उसके कारण से मिले हैं। उनका उन्हें गर्व नहीं होता। आहाहा!

एक दृष्टान्त आता है न? गरीब मनुष्य था, गरीब। कुबा, कुबा होता है न? यह घास का क्या कहते हैं? घास का कुबा। कुबा नहीं समझते? घास का कुबा—झोंपड़ी। उसमें एक बाई रहती थी। अब वह मजदूर बाई परन्तु उसे फिर सोने का कड़ा आया होगा कहीं से। लोग उसका देखने आवे नहीं। क्योंकि वहाँ झोंपड़े में कौन आवे? अब करना क्या? फिर झोंपड़ा सुलगाया। सब लोग देखने आये। देखो! यह मेरा झोंपड़ा सुलगता है। ऐसा करके वह बताना है। ऐसे हैं। यह मेरा झोंपड़ा सुलगता है। उसमें इतना हुआ। यह कड़ा तो देखो तुम। परन्तु यह झोंपड़ा सुलगता है उसका (क्या)? आहाहा! अभिमान में तेरा पुण्य जल जाता है। आहाहा! हमने इतनी सामग्री (इकट्ठी की), देखो! इतने सोने के गहने, हीरा, माणेक कितने देखो! आहाहा! लड़कियों को विदाई दी, लड़कों को इतने-इतने। पाँच हजार तौला सोना, फलाना इतना, यह चाँदी,

इतने पंखा, इतने कपड़े। विदा करना हो न, फिर खाट में बिछाकर सगे-सम्बन्धियों को देखने बुलावे। ऐसा होता है या नहीं? आहाहा!

मद अहंकारादि विकल्पों को छोड़कर मोक्ष को गये... आहाहा! **अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती बलभद्र-पद में भी निरहंकार रहे...** आहाहा! चक्रवर्ती पद और बलभद्र। बड़े पद जिसके। परन्तु जिन्हें अहंकार नहीं। आहाहा! हम तो आत्मा आनन्दस्वरूप हैं। यह विभूति हमारी कहाँ है? हमारी विभूति तो हमारे पास है। आनन्द और शान्ति प्रगट हुई है, वह हमारी विभूति है। कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा? मैं मेरे वैभव से कहूँगा। वह वैभव मेरा यह। राग और पुण्य यह मेरा वैभव नहीं। आहाहा! राग से भिन्न पड़कर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का वेदन आया, वह मेरा वैभव है। आहाहा! वह हमारी विभूति है। आहाहा!

कहते हैं कि **ऐसा ही कथन आत्मानुशासन ग्रन्थ में श्री गुणभद्राचार्य ने किया है कि पहले समय में ऐसे सत्पुरुष हो गये हैं,...** आहाहा! **कि जिनके वचन में सत्य,...** जिनके वचन में सत्य **बुद्धि में शास्त्र...** आहाहा! **मन में दया, पराक्रमरूप भुजाओं में शूरवीरता,...** आहाहा! **याचकों में पूर्ण लक्ष्मी का दान,...** आहाहा! याचक आवे तो उन्हें जो चाहिए हो, ऐसा पूरा दे। आहाहा! **पूर्ण लक्ष्मी का दान...** है न? आहाहा! '**श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमे लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये**' है न? संस्कृत में है। आत्मानुशासन। आहाहा! याचकों को पूर्ण लक्ष्मी का दान (दे)। आहाहा! वह माँगे पच्चीस और यह दे दो रुपये, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

और मोक्षमार्ग में गमन है,... आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में जिसका परिणमन और गमन है। आहाहा! **वे निरभिमानी हुए, जिनके किसी गुण का अहंकार नहीं हुआ।** आहाहा! **उनके नाम शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं,...** आहाहा! **परन्तु अब बड़ा अचम्भा है,...** आहाहा! **कि इस पंचम काल में लेशमात्र भी गुण नहीं...** आहाहा! **तो भी उनके उद्धतपना है,...** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि लेश भी नहीं और बाहर में वैभव में, पढ़ने के, करने के (अभिमान का पार नहीं होता)। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६१

अथ देवशास्त्रगुरुभक्त्या मुख्यवृत्त्या पुण्यं भवति न च मोक्ष इति प्रतिपादयति -

१८५) देवहं सत्थहं मुणिवरहँ भत्तिए पुण्णु हवेइ।
कम्म-क्खउ पुणु होइ णवि अज्जउ संति भणेइ।।६१।।

देवानां शास्त्राणां मुनिवराणां भक्त्या पुण्यं भवति।
कर्मक्षयः पुनः भवति नैव आर्यः शान्ति भणति।।६१।।

देवहं इत्यादि। देवहं सत्थहं मुणिवरहं भत्तिए पुण्णु हवेइ देवशास्त्रमुनीनां भक्त्या पुण्यं भवति कम्म-क्खउ पुणु, होइ णवि कर्मक्षयः पुनर्मुख्यवृत्त्या नैव भवति। एवं कोऽसौ भणति। अज्जउ आर्यः। किं नामा। सन्ति शान्ति भणेइ भणति कथयति इति। तथाहि। सम्यक्त्वपूर्वकदेव-शास्त्रगुरुभक्त्या मुख्यवृत्त्या पुण्यमेव भवति न च मोक्षः। अत्राह प्रभाकरभट्टः। यदि पुण्यं मुख्यवृत्त्या मोक्षकारणं न भवत्युपादेयं च न भवति तर्हि भरतसगररामपाण्डवादयोऽपि निरन्तरं पञ्चपरमेष्ठिगुणस्मरणदानपूजादिना निर्भरभक्ताः सन्तः किमर्थं पुण्योपार्जनं कुर्युरिति। भगवानाह। तथा कोऽपि रामदेवादिपुरुषविशेषो देशान्तरस्थितसीतादिस्त्रीसमीपागतानां पुरुषाणां तदर्थं संभाषणदानसन्मानादिकं करोति तथा तेऽपि महापुरुषाः वीतरागपरमानन्दैकरूपमोक्षलक्ष्मीसुख-सुधारसपिपासिताः सन्तः संसारस्थितिविच्छेदकारणं विषयकषायोत्पन्नदुर्ध्यानविनाशहेतुभूतं च परमेष्ठिसंबन्धिगुणस्मरणदानपूजादिकं कुर्युरिति। अयमत्र भावार्थः। तेषां पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादि-परिणतानां कुटुम्बिनां पलालवदनीहितं पुण्यमास्रवतीति।।६१।।

आगे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से मुख्यता से तो पुण्यबंध होता है, उससे परम्पराय मोक्ष होता है, साक्षात् मोक्ष नहीं, ऐसा कहते हैं -

देव शास्त्र गुरु की भक्ति से सदा पुण्य ही होता है।
कर्म-नाश उनसे नहिं होता आर्य-शान्ति यह कहते हैं।।६१।।

अन्वयार्थ :- [देवानां शास्त्राणां मुनिवरणां] श्रीवीतरागदेव, द्वादशांग शास्त्र और दिगम्बर साधुओं की [भक्त्या] भक्ति करने से [पुण्यं भवति] मुख्यता से पुण्य होता है, [पुनः] लेकिन [कर्मक्षयः] तत्काल कर्मों का क्षय [नैव भवति] नहीं होता, ऐसा [आर्यः शांतिः] शांति नाम आर्य अथवा कपट रहित संत पुरुष [भणति] कहते हैं।

भावार्थ :- सम्यक्त्वपूर्वक जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है, उसके मुख्य तो पुण्य ही होता है, और परम्पराय मोक्ष होता है। जो सम्यक्त्व रहित मिथ्यादृष्टि हैं, उनके भाव-भक्ति तो नहीं है, लौकिक बाह्य भक्ति होती है, उससे पुण्य का ही बंध है, कर्म का क्षय नहीं है। ऐसा कथन सुनकर श्रीयोगीन्द्रदेव से प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। हे प्रभो, जो पुण्य मुख्यता से मोक्ष का कारण नहीं है, तो त्यागने योग्य ही है, ग्रहण योग्य नहीं है। जो ग्रहण योग्य नहीं है, तो भरत, सगर, राम, पांडवादिक महान् पुरुषों ने निरंतर पंचपरमेष्ठी के गुणस्मरण क्यों किये? और दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर क्यों पुण्य का उपार्जन किया? तब श्रीगुरु ने उत्तर दिया-कि जैसे परदेश में स्थित कोई रामादिक पुरुष अपनी प्यारी सीता आदि स्त्री के पास से आये हुए किसी मनुष्य से बातें करता है-उसका सम्मान करता है, और दान करता है, ये सब कारण अपनी प्रिया के हैं, कुछ उसके प्रसाद के कारण नहीं है। उसी तरह वे भरत, सगर, राम, पांडवादि महान् पुरुष वीतराग परमानंद रूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख अमृत-रस के प्यासे हुए संसार की स्थिति के छेदन के लिये विषय कषायकर उत्पन्न हुए आर्त रौद्र खोटे ध्यानों के नाश का कारण श्रीपंचपरमेष्ठी के गुणों का स्मरण करते हैं, और दान पूजादिक करते हैं, परंतु उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है, पर वस्तु पर नहीं है। पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि शुभ क्रिया को परिणत हुए तो भरत आदिक हैं, उनके बिना चाहे पुण्यप्रकृति का आस्रव होता है। जैसे किसान की दृष्टि अन्न पर है, तृण भूसादि पर नहीं है। बिना चाहा पुण्य का बंध सहज में ही हो जाता है। वह उनको संसार में नहीं भटका सकता है। वे तो शिवपुरी के ही पात्र हैं।।६१।।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ३, बुधवार
दिनांक-२४-११-१९७६, गाथा-६१, प्रवचन-१४१

परमात्मप्रकाश, ५१ गाथा। ६० में ऐसा कहा कि मिथ्यादृष्टि जीव पुण्य बाँधे और पुण्य के कारण वैभव मिले, उसका उसे मद-अभिमान होता है, मतिभ्रष्ट होता है और वह चार गति में अनन्त दुःख को भोगता है। परन्तु जो समकिती है, उसे जो पुण्य होता है, वह किस प्रकार और उसका क्या फल है, यह बात चलेगी।

आगे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से मुख्यता से तो पुण्यबन्ध होता है,... समकिती

की बाता है, हों! मिथ्यादृष्टि की बात नहीं। मिथ्यादृष्टि के पुण्य तो उसे अभिमान करके भटकायेंगे। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि, जिसे आत्मानुभव हुआ है, वीतरागी पर्याय जिसे अन्तर में प्रगट हुई है, उसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति में पुण्य बँधता है, परन्तु उससे कर्म क्षय नहीं होता, ऐसा कहेंगे। फिर अर्थ में ऐसा कहते हैं, परम्परा मोक्ष का कारण। सम्यग्दृष्टि है न? इसलिए देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति में पुण्यबन्धन होता है। क्रम से उसे टालेगा, इसलिए परम्परा मोक्ष का कारण अर्थ में कहा है। पाठ में तो इतना है कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति से पुण्य बँधता है, वह कर्म क्षय नहीं करता। इतनी बात। समझ में आया? आहाहा!

१८५) देवहं सत्थहं मुणिवरहँ भत्तिए पुण्णु हवेइ।
कम्म-क्खउ पुणु होइ णवि अज्जउ संति भणेइ।।६१।।

अन्वयार्थ :- श्री वीतरागदेव, द्वादशांग शास्त्र और दिगम्बर साधु... सन्त सच्चे। उनकी **भक्ति करने से मुख्यता से पुण्य होता है,...** स्पष्टीकरण करना पड़ा। ऐसे तो '**पुण्यं भवति**' इतना है। **लेकिन तत्काल कर्मों का क्षय नहीं होता,...** पुण्यबन्ध है, वह कर्म के क्षय का कारण नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्काल अर्थात् वह मोक्ष का कारण तुरन्त नहीं है। वह तो बाद में उसे टालेगा, तब होगा, ऐसा। तत्काल तो बन्ध का ही कारण है और मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा कहना है। परन्तु उसे सम्यग्दर्शन है, हेयबुद्धि से राग आता है, वह क्रम-क्रम से उसे टालेगा और मोक्ष प्राप्त करेगा, ऐसा कहना है। समझ में आया? देखो! है?

ऐसा शान्ति नाम आर्य अथवा कपट रहित सन्त पुरुष कहते हैं। आहाहा! सीधी बात है, यह सन्त ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। कपट से उसे ऐसा कहे कि वह पुण्यबन्ध मोक्ष का कारण है, मिथ्यादृष्टि को भी वह पुण्यबन्ध परम्परा मोक्ष का कारण है। ऐसा सन्त नहीं कहते। समझ में आया? **कपट रहित सन्त पुरुष...** आर्य है न? आर्य '**भणति**' ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसे क्रमबद्ध बात यदि बैठे तो उसके अन्दर में आ

जाता है। क्रमबद्ध जब उसे स्वयं के स्वआश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, तब उसे राग होता है। उस क्रमकाल में राग भी होता है। इसलिए राग है, वह निश्चय का कारण है, ऐसा नहीं है। उसे यहाँ अपेक्षा से पीछे से क्रम में स्व का आश्रय लेकर राग टालने का क्रम आयेगा, तब टालेगा। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह विवाद का विषय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद का विषय नहीं। मानता है विवाद। वस्तु कहाँ (ऐसी) है? आहाहा!

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्शता नहीं। अब यह किस प्रकार मानेगा? यह अँगुली इस कागज को स्पर्शती नहीं, छूती नहीं। इस कागज को स्पर्शी नहीं।

मुमुक्षु : किसे स्पर्शी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी को स्पर्शी नहीं। वह स्वयं अपने में है। समयसार की तीसरी गाथा में नहीं आया? प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय को चूमता है, स्पर्शता है। प्रत्येक पदार्थ, परमाणु हो या आत्मा हो। चार अरूपी (द्रव्य) तो स्वतन्त्र है। यह गड़बड़ दो में है न जरा। एक आत्मा कर्म के उदय जड़ को स्पर्श नहीं करता। जड़ का-कर्म का उदय है, उसके क्रम में आया हुआ और यहाँ राग होता है, वह अपने क्रम में वह काल में है, इसलिए होता है, परन्तु वह राग कर्म के उदय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! तथा कर्म का उदय जड़ है, वह आत्मा को—राग को स्पर्श नहीं करता। कहो, यह टोपी है, वह सिर को स्पर्शी नहीं, ऐसा कहते हैं।

कहा नहीं, समयसार की तीसरी गाथा में? '**एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे। बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि ॥३॥**' आत्मा में बन्ध की... निमित्त है, वह तो जड़ है परन्तु उसके आश्रय से हुई बन्ध अवस्था, वह भी विसंवाद-झगड़ा खड़ा करती है, कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! वास्तव में वह बन्ध अवस्था अबन्ध स्वभाव को स्पर्शती ही नहीं, छूती नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप! वह तो लोग ऐसा घिसते हैं न सिर? तो कहते हैं कि वह हाथ ऐसे घिसता है, वह हाथ उसे स्पर्शता ही नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

मुमुक्षु : दिखता है, वह खोटा दिखता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखता है तो संयोग से देखता है। उसके—वस्तु के स्वभाव से कहाँ देखता है ? समझ में आया ? पण्डितजी ! ऐसी बातें हैं। तीसरी गाथा में आता है। प्रत्येक पदार्थ अपने अन्तर्मग्न धर्मों को, गुण-पर्याय को चूमता-स्पर्शता है। आहाहा ! प्रत्येक पदार्थ परद्रव्य को कोई स्पर्शता नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : आप कहते हो कि द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह और दूसरी (बात)। यह और अन्दर में। यह तो पर की अपेक्षा से। परद्रव्य इसे स्पर्शता नहीं। यह जरा... आहाहा !

रोटी, रोटी है, वह जीभ को स्पर्शती नहीं। छूती नहीं। उसे स्वाद का ज्ञान होता है। स्वाद आता नहीं। उस स्वाद का ज्ञान भी अपनी अपेक्षा से अपने को होता है, स्वाद के कारण नहीं। आहाहा ! क्योंकि स्वपरप्रकाशक अपना स्वभाव है, इसलिए उस स्वाद का ज्ञान स्वाद अस्ति है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा ! ऐसी बातें ! मात्र स्वाद की अस्ति में अपने को उस प्रकार के स्वपरप्रकाशक ज्ञान का अपना अपने कारण से सामर्थ्य है, (इसलिए) जानता है। बस। वह अपने को जानता है। आहाहा ! स्वाद है, वह परवस्तु है। पर को जानता है, ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं। इसे बैठना चाहिए, भाई ! समझ में आया ? यह चश्मा है, वह यहाँ आँख की चमड़ी को स्पर्शा भी नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आँख से दूर रहता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर ही है। ऐसी बात ! रोटी का चूरा होता है, वह दाँत से नहीं क्योंकि दाँत उसे स्पर्शा भी नहीं। तथा वह चूरा होता है वह दाँत को स्पर्शा नहीं। ऐई !

मुमुक्षु : दाँत को निमित्त किसलिए कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त हो। वस्तु, वह वस्तु नहीं ? उससे कर्ता होता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा ! यह तो क्रमबद्ध में ही यह बात उड़ जाती है। प्रत्येक द्रव्य की पर्याय उसके काल में होती है, वह हुई है। अब निमित्त है। हुई है, उसे कहाँ उसने की

है? निमित्त हो, परन्तु निमित्त परपर्याय को स्पर्शता नहीं, तथा निमित्त परपर्याय को करता नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? यह एक शरीर दूसरे शरीर को स्पर्शता नहीं। यह बात... आहाहा!

मुमुक्षु : ....स्पर्शकर जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई इन्द्रिय स्पर्शती नहीं, जानती नहीं। समझ में आया? जड़ इन्द्रिय को ज्ञान स्पर्शता नहीं। तथा जड़ इन्द्रिय ज्ञान को स्पर्शती नहीं। आहाहा! वहाँ तो पहली गाथा में ही स्पष्टीकरण कर दिया है। पहले अर्थात् तीसरी। शुरुआत जहाँ की वहाँ। आहाहा!

भोगकाल में शरीर दूसरे शरीर को स्पर्शा ही नहीं। गजब प्रभु! एक शरीर का स्पर्श दूसरे को हुआ ही नहीं। दूसरे शरीर का स्पर्श दूसरे शरीर को हुआ ही नहीं। आहाहा! जैनदर्शन का तत्त्व अर्थात् कि वस्तु स्वरूप का तत्त्व सूक्ष्म है। समझ में आया?

पानी गर्म होता है, तब अग्नि उसे स्पर्शी नहीं। अग्नि की पर्याय अग्नि को स्पर्श करती है। और पानी की गर्म पर्याय जो है, वह पानी गर्म पर्याय को स्वयं को स्पर्शता है। आहाहा! अब यह तो लोग कहते हैं न कि कर्म के कारण विकार होता है... कर्म के कारण विकार होता है। परन्तु कर्म जड़ का उदय है, वह जीव को स्पर्शता नहीं। उसे— अन्ध द्रव्य है, उसे खबर नहीं कि हम हैं या नहीं? ज्ञान जानता है कि एक दूसरी चीज़ है। उसे मैं स्पर्शता नहीं, वह मुझे स्पर्शती नहीं। आहाहा! विकार होता है, वह अपने उस प्रकार के चारित्रगुण की विकृत अवस्था का काल है, इससे स्वयं से होता है। आहाहा! ऐसी बात! बड़ा विवाद—दिक्कत।

यहाँ देखो न, देव-गुरु-शास्त्र को आत्मा स्पर्शता नहीं। मात्र उनके ऊपर लक्ष्य जाता है तो शुभभाव होता है। वह उनसे नहीं। वह शुभभाव होता है, वह देव-गुरु-शास्त्र से नहीं। वह तो निमित्त है। आहाहा! शुभभाव है, यह कहा। शुभभाव है, वह जीव की पर्याय में देव-गुरु-शास्त्र का जरा लक्ष्य गया है, स्पर्शा नहीं इसने। देव-गुरु-शास्त्र पर्याय को—पुण्यभाव को स्पर्शे नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु की मर्यादा जहाँ है, ऐसी न जाने और आड़ी-टेढ़ी जाने तो वह तो वस्तु की स्थिति विपरीत मानी इसने।

आहाहा! समझ में आया? गर्म पानी छिड़के (तो) चमड़ी में फफोला पड़ते हैं। कहते हैं कि वह पानी स्पर्शा नहीं उसे। यह बात (कैसे बैठे)?

मुमुक्षु : फफोला तो पड़े हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : फफोला पड़े हैं, वह उसके स्वयं के कारण से। पानी के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : रमेश ललितपुर में पिटा था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब खोटी बात। किसी का तमाचा है, वह यहाँ स्पर्शता ही नहीं न! यह बात ऐसी है, भाई! क्रमबद्ध की बात जैसे सूक्ष्म है, वैसे एक द्रव्य दूसरे को स्पर्शे नहीं, यह बात बहुत सूक्ष्म है।

एक परमाणु में दो गुण स्निग्धता है और चार गुण स्निग्धता (वाला) दूसरा परमाणु है। उसके सम्बन्ध में आवे तब यहाँ चार होते हैं। कहते हैं कि सम्बन्ध में अर्थात् उसे स्पर्शता नहीं। फिर सम्बन्ध में क्या? आहाहा! शास्त्र में ऐसा आवे। दो गुणवाला हो, वह चार गुण (वाला) होता है। परन्तु उस काल में परमाणु की चार गुण की पर्याय स्निग्धता की होने का स्वकाल है, उससे हुआ है। वह दूसरा परमाणु है, चार गुणवाला, इसलिए हुआ है, (ऐसा नहीं है)। उसे स्पर्शा ही नहीं न! आहाहा!

मुमुक्षु : तथापि नजदीक तो आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नजदीक की व्याख्या क्या? नजदीक तो सब पदार्थ बहुत नजदीक पड़े हैं। एक आकाश के प्रदेश में छहों द्रव्यों के प्रदेश एकसाथ हैं। एक आकाश के प्रदेश में। जीव के प्रदेश हैं, परमाणु हैं, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल। कोई किसी को स्पर्शते नहीं। आहाहा! इसलिए कोई किसी के कर्ता नहीं। ऐसी बात है, बापू! तत्त्व की यथार्थ (स्थिति यह है)। वीतराग सर्वज्ञ कहते हैं, इस प्रकार से तत्त्व का स्वरूप इसे जानने में आवे तो इसे सम्यग्दर्शन हो। आहाहा! पर से मुझे होता है और मुझसे पर में होता है, यह बात इसे उड़ जाती है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तक कहा है। सर्दी हो, तब ऐसे हाथ घिसे न? वहाँ उष्णता हो। तो कहते हैं कि वह हाथ घिसा ही नहीं और स्पर्शा ही नहीं न। आहाहा!

मुमुक्षु : वह निमित्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त का अर्थ क्या? है दूसरी चीज़ वह तो। उससे हुआ नहीं, उसे यह स्पर्शा नहीं। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। मूल बात छोड़कर सब बातें अभी चलती है। इसलिए मूल बात की नींव सुरक्षित होती नहीं। आहाहा!

खाट में समरूप पाया न हो और एक ऊँचा हो तो ऐसे लथड़-पथड़ हो जाये। खाट समझते हो? पलंग। चार पाये समरूप न हो और एक ऐसे असमरूप हो तो ऐसा-ऐसा हो जाता है। इसी प्रकार वस्तु की स्थिति की मर्यादा जो है, (उसे बराबर समझना चाहिए)। काल में होता है, पर को स्पर्शता नहीं और निश्चय और व्यवहार एक समय में साथ में होते हैं... आहाहा! यह वह कोई बातें! निमित्त और उपादान एक साथ होने पर भी निमित्त उपादान को स्पर्शता नहीं, निमित्त को उपादान स्पर्शता नहीं और उपादान में कार्य स्वयं के कारण से होता है। आहाहा! यह बड़ा झगड़ा। उपादान-निमित्त, क्रमबद्ध, निश्चय और व्यवहार—इन पाँच के सोनगढ़ के सामने विवाद है। यह विवाद एक सेकेण्ड में उड़ जाता है। आहाहा!

नीचे अग्नि है और पानी खदबद-खदबद होता है ऐसे। (अग्नि) नहीं थी, तब खदबद नहीं होता था। ऐसे बुलबुले पड़ते हैं, ऐसा-ऐसा होता है। कहते हैं, परन्तु वह अग्नि उसे स्पर्शी ही नहीं। ऐई! अग्नि के परमाणु भिन्न, पानी के परमाणु भिन्न। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्शता ही नहीं न! तुझे कैसे भासित होता है कि अग्नि के कारण पानी ऐसे-ऐसे होता है? अरे रे! पागल कहे ऐसा है। भाई! तत्त्व है न? वस्तु है न? और प्रत्येक वस्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से टिक रही है। उसमें आता है न विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य। नहीं? तीसरी में। (समयसार) तीसरी गाथा में आता है। स्वयं अपने से टिक रही है। आहाहा! भले विपरीत कार्य विभाव हो या अविपरीत कार्य (स्वाभाविक हो), परन्तु है स्वयं से स्वयं में। आहाहा! यह बात कठिन पड़े, बापू!

अक्षर जो लिखे जाते हैं, वे शीशपेन से अक्षर नहीं लिखे जाते, ऐसा कहते हैं। शीशपेन की पर्याय को वह कागज की पर्याय स्पर्शी नहीं। यह वह कुछ बात! वस्तुस्वरूप है ऐसा, बापू! तत्त्व नौ है न? तो नौ को नौ प्रकार से जानना पड़ेगा न? नौ तत्त्व में

अजीव और जीवतत्त्व दोनों भिन्न हैं। आहाहा! है, यह है न उसमें? तीसरी गाथा में। नहीं?

कैसे हैं वे सर्व पदार्थ? (समयसार) तीसरी गाथा। **कैसे हैं वे सर्व पदार्थ?** अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, एक निगोद के शरीर में अनन्त जीव। एक जीव दूसरे जीव को स्पर्शता नहीं, एक जीव कर्म को स्पर्शता नहीं। आहाहा! एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त जीव और एक-एक जीव को दो-दो शरीर—तैजस और कार्मण। वह तैजस और कार्मणशरीर में एक-एक स्कन्ध अनन्त परमाणुओं का। वह एक-एक परमाणु दूसरे को स्पर्शा नहीं। आहाहा! है?

कैसे हैं वे सर्व पदार्थ? अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले... अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं—....** आहाहा! अपने गुण-पर्याय को वे स्पर्शते हैं, चूमते हैं, स्पर्शते हैं। यह हाथ है। देखो! यह ऐसा हो वहाँ खड्डा पड़ जाये यहाँ। परन्तु यह उसे स्पर्शा ही नहीं, कहते हैं। सुजानमलजी! कहा न? वे **कैसे हैं सर्व पदार्थ?** सर्व पदार्थ, हों! संस्कृत है। आहाहा! **'केचनाप्यर्थास्ते सर्व एव स्वकीयद्रव्यान्तर्मग्नानन्तस्वधर्मचक्रचुम्बिनोऽपि परस्परचुम्बन्तो -ऽत्यन्तप्रत्यासत्तावपि नित्यमेव स्वरूपादपतन्तः'** आहाहा! सर्व पदार्थ **अपने द्रव्य में...** अपने द्रव्य में **अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों...** गुण और पर्याय। **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते...** आहाहा! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। इस प्रकार उसे लक्ष्य में न आवे और अध्धर से माने... आहाहा! वह विपरीत मान्यता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भी है नहीं। संयोगदृष्टि है ही नहीं। संयोगदृष्टि अज्ञानी मानता है। संयोग है ही नहीं। आहाहा!

तथापि... अन्तर में अपने गुण को, पर्याय को प्रत्येक रजकण, प्रत्येक आत्मा स्पर्श करता है, चुम्बन करता है। चुम्बन करता है, कहते हैं। आहाहा! लड़के को चुम्बन करते हैं न? कहते हैं कि उसके होंठ मुँह को स्पर्शे नहीं। होंठ उसके मुँह को

स्पर्शे नहीं। लड़के को चुम्बन नहीं करते? अरे! ऐसी बात। यह होंठ उसके मुख को स्पर्शे ही नहीं। चुम्बन किया ही नहीं।

मुमुक्षु : कोई पाप नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप उसके भाव में रहा। वह चुम्बन की क्रिया करता है, इसलिए वहाँ पाप हुआ है? वह तो जड़ की क्रिया है। वह भी पर को स्पर्शती नहीं। आहाहा! बापू! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई!

यह भेदज्ञान है, भेदज्ञान। आहाहा! एक शब्द में कितना डाल दिया है? ओहो! **कैसे हैं वे सर्व पदार्थ?** आहाहा! **अपने द्रव्य में...** अपनी वस्तु में, अपने क्षेत्र में, अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्शते हैं। **अनन्त धर्मों के चक्र....** चक्र अर्थात् अनन्त धर्मों का समूह—पिण्ड, उसे स्पर्शते हैं। आहाहा! बापू! इसमें बहुत धीरज चाहिए। पर से भिन्न करके पर को स्पर्शता नहीं, यह भिन्न दृष्टि हुए बिना यह बात बैठती नहीं। आहाहा! **तथापि...** तथापि क्यों लिया? कि अपने धर्म को चूमता है, छूता है, स्पर्शता है। **तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते।** आहाहा! **और अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से...** एकक्षेत्रावगाह का प्रश्न किया न? इकट्ठा है। एकक्षेत्रावगाह में इकट्ठे हैं। आहाहा! **तथापि जो सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते...** अपनी पर्याय और गुण में हैं। एकक्षेत्रावगाही सब पदार्थ साथ में होने पर भी वे एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते, इसलिए अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते। आहाहा!

समयसार की एक-एक गाथा जगत के प्रत्येक पदार्थ की भिन्नता करने का बतलाती है। और भिन्न है, उसकी भिन्नता बतलाती है। आहाहा! सुना न हो और मान बैठे। यह अनादि काल से मानता है, उसमें क्या? दियासलाई घिसकर, कैरोसिन का डिब्बा हो उसका। क्या कहलाता है? वाट। दियासलाई वाट को स्पर्श करावे, तब भड़का (प्रकाश) होता है उसमें। तो कहते हैं कि दियासलाई उसे स्पर्शी ही नहीं। यह तो पागल कहे या क्या कहे? सेठ! दियासलाई, बीड़ी तुम्हारी। वह दियासलाई बीड़ी को स्पर्श ही नहीं करती।

मुमुक्षु : तो बीड़ी पीनेवाला स्पर्श किसलिए करावे?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन स्पर्श कराता है ? वह तो मानता है। स्पर्श कहाँ कराता है ? उसके कारण वह पर्याय वहाँ आती है और यहाँ स्पर्शती नहीं। आहाहा ! वह दियासलाई ऊँची करके यहाँ लाया, ऐसा है ही नहीं। वह तो दियासलाई की पर्याय ही इस प्रकार से ऊँची होकर वहाँ आनेवाली थी। आहाहा ! यह नियतवाद माने, ऐसा है। लोग नियति-नियति चिल्लाहट मचाये न बेचारे ? बड़ा लेख आया है न जैनगजट में। नियतवाद है सोनगढ़ का। महा जहर है। बापू ! भाई ! तुझे खबर नहीं। बापू ! पदार्थ की स्थिति की मर्यादा में जो पदार्थ है, वह दूसरे पदार्थ की भूमिका में जाता ही नहीं। उसकी मर्यादा ऐसी है। आहाहा ! अरे ! यह बात मानने जाये, वहाँ राग से भिन्न पड़ जाता है।

वास्तव में तो राग भी चैतन्य को स्पर्शा नहीं। परद्रव्य तो स्पर्शा नहीं, परन्तु राग का भाव वह शुद्ध स्वभाव को स्पर्शा नहीं। संयोगीभाव है वह तो। ... आहाहा ! ऐसी मार्ग की वस्तु। सुनने को थोड़ा मिले किसी को। यह दया पालो। अरे ! परन्तु पर को स्पर्शता नहीं और पर की दया किस प्रकार पाले ? पर की दया पालो। आहाहा ! परन्तु पर को स्पर्शता नहीं और दया किस प्रकार पाले ? भाव हो। भाव होते हैं, वह राग है। परसन्मुख के झुकाववाला भाव तो राग है। अब उसे कहा कि राग है, वह हिंसा है। दया के भाव का राग हिंसा है। अर र ! गजब काम किया इन लोगों ने। दया उड़ाई, दया उड़ाई। अरे ! प्रभु ! सुन न भाई ! तब तेरी दया तुझे प्रगट हुई, ऐसा कहते हैं।

राग, वह हिंसा है और अराग, वह अहिंसा है। हिंस-अहिंसा अपनी पर्याय में होती है। पर की हिंसा कौन करे ? पर की दया कौन पाले ? पर को स्पर्शता नहीं वहाँ पाले कौन ? और स्पर्शता नहीं, वहाँ मारे कौन ? शान्तिभाई ! यह सब सुना नहीं इतने वर्ष में। तो इतने भाग्यशाली कि यह सब सुलटा पड़ गया वापस। और स्वीकार किया इसने, हों ! स्वीकार किया। बात ऐसी बापू ! क्या कहें ? आहाहा !

प्रत्येक द्रव्य का विस्तार अपने गुण-पर्याय में है। विस्तार पावे तो पर्याय में विस्तार पावे, कोई पर में विस्तार पावे और जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा ! यह वस्तु की स्थिति की खबर नहीं और इससे सब झगड़े उठाता है। आहाहा ! यह फलटन में करेंगे बेचारे। क्या करेंगे ? उन्हें बैठा, वैसा करेंगे। देव को मानते नहीं, ऐसा कहेंगे। क्योंकि

प्रतिमा को डाली है पानी में। हमने तो वाणी को डाला परन्तु यह तो प्रतिमा को पानी में डालते हैं। मीठालालजी! तुमने फतेपुर में नहीं किया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे? बापू! तुझे खबर नहीं। उसे स्पर्शता नहीं, वह उसे—पर को पानी में डाले? भाई! तुझे खबर नहीं। तब (ऐसी दलील करे कि) हमने वाणी (पानी में) डाली तो हम स्पर्शे नहीं। वह कौन... ऐई! बात तो बैठ जाना चाहिए न? भाव था या नहीं तेरा? इतनी बात है। आहाहा! निमित्त से होता नहीं, ऐसा कहे और फिर शिक्षण शिविर से उसे समझावे। कहते हैं न? भाई ने कहा था न? कैलाशचन्दजी ने लिखा था पहले, निमित्त से होता नहीं, ऐसा कहे और निमित्तों द्वारा जगत को निमित्त से नहीं होता, यह सिखलावे। ऐई! भाई! यह तो विकल्प हो, उतनी बात है। आहाहा! वाणी, वाणी के काल में निकलती है और समझनेवाले उनकी पर्याय के काल में उनकी पर्याय से समझे हैं। आहाहा! ऐसी बात बहुत कठिन पड़ती है।

यह तो वीतरागता के भाव की बात है, बापू! आहाहा! यह तत्त्व की वस्तु ऐसी है, इसका फिर तात्पर्य क्या? कि इसे वीतरागता तात्पर्य है। अर्थात् कि उसे पर-सन्मुख का झुकाव छोड़कर स्वसन्मुख ढलना। पर को स्पर्शता नहीं, उसका तात्पर्य स्वसन्मुख ढलना। आहाहा! पर का कर नहीं सकता, इसका अर्थ कि स्वसन्मुख ज्ञान में ढलना। क्रमबद्ध होता है, इसका अर्थ कि कर्तापना छोड़ना। अर्थात् ज्ञातापना होना। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तीसरा आया। सवेरे यह विचार आया था कि यह सब ऐसा शरीर घिसे, यह करे, यह करे और बहुत घिसे तब उष्णता आवे, ऐसा। सिर में घिसे तब नहीं आता? बहुत सर्दी हो तो। यह कहे कि हाथ स्पर्शता ही नहीं। ... भगवान! बापू! आहाहा!

यहाँ कहा न? **समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य की हेतुता से जो हमेशा विश्व का उपकार करते हैं—**अपना विरुद्ध कार्य हो विभाव आदि या आस्रव हो, वह तो उसके कारण से टिक रहा है। पूरा विश्व स्वयं से टिक रहा है। पर के कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विरुद्ध-अविरुद्ध अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : विरुद्ध अर्थात् विभावभाव हो तो भी स्वयं विश्व को अपने से टिका रखा है और अविरुद्ध-स्वभाव हो तो भी टिका रखा है। आहाहा! विभावरूप परिणमना, वह गुण का पर्याय में अपना परिणमन है न? वह पर के कारण नहीं है। उस पर्याय में। अब जब द्रव्य की बात जब देखने में आवे, तब विकारी पर्याय उसे स्पर्शी ही नहीं। द्रव्य स्पर्शा नहीं। वह तो नहीं परन्तु निर्मल पर्याय भी द्रव्य को स्पर्शी नहीं। वह तो पृथक् वापस। वह तो पर से भिन्न करके। यह तो पर से भिन्न पड़े हुए की अपेक्षा से पर को स्पर्शता नहीं, इतना। बाकी द्रव्य जो है स्वयं भगवान, वह पर्याय को स्पर्शता भी नहीं। अपनी पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! और पर्याय है, वह द्रव्य को स्पर्शती नहीं। अपनी निर्मल पर्याय द्रव्य को स्पर्शती नहीं। विकारी पर्याय तो फिर विभाव और संयोगी है। आहाहा!

क्योंकि पर्याय के अस्तित्व में द्रव्य का अस्तित्व आता नहीं। द्रव्य के अस्तित्व का पर्याय में ज्ञान आता है। वस्तु नहीं आती। द्रव्य का जैसा सामर्थ्य है, वैसा ज्ञान पर्याय करे, परन्तु पर्याय में द्रव्य आता नहीं। आहाहा! बहुत कहाँ तक खींचना यह? वीतराग का तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म हैं, बापू! लोगों को इस तत्त्वज्ञान की महिमा नहीं आती। परन्तु बाह्य त्याग करे, दुकान छोड़े, पैसे छोड़े, यह व्यापार छोड़ा, यह त्यागी हुआ, नंगे पैर चलता है—इसका माहात्म्य इसे (अज्ञानी को) आता है। वस्तु की स्थिति क्या है? आहाहा! उसके द्रव्य, गुण और पर्याय की स्थिति क्या है, उसका इसे माहात्म्य नहीं आता। यह तो इतना याद आया था तीसरी गाथा का। आहाहा! एक न्याय से कपाट खुल जाये ऐसा है। बात ऐसी है, बापू!

यहाँ कहते हैं कि देव-गुरु-शास्त्र को आत्मा स्पर्शता नहीं। परन्तु अपनी पर्याय में पुण्यभाव से उन्हें मानता है। समझ में आया? उससे उसे पुण्य होता है परन्तु कर्म का नाश आंशिक भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। यह तत्काल का अर्थ? फिर राग को टालेगा अर्थात् होगा। ऐसा। अभी राग है, इससे नहीं। परन्तु पश्चात् तो दृष्टि में राग का अभाव है, दृष्टि में तो द्रव्य को स्वीकार किया है अर्थात् राग का अभाव वह करेगा ही। ऐसा।

राग के कारण परम्परा मोक्ष होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत अन्तर! बात-बात में अन्तर। मूल चीज़ की खबर नहीं होती इसलिए। (बाह्य) चारित्र दोष को और (बाह्य) चारित्र के दोष के त्याग को मान दिया है। उसे (बाह्य) चारित्रदोष होता है, उसे बहुमान दिया... ओहोहो! वह महापाप है और चारित्र के दोष का बाह्य से त्याग किया, थोड़ा राग मन्द किया, उसका इसे माहात्म्य आ जाता है। परन्तु श्रद्धा का दोष जो महा-महासंसार का कारण है (उसकी समझण नहीं)। आहाहा! यह तो अपने समझने के लिये है, हों! किसी जीव का तिरस्कार करने के लिये नहीं है। वस्तुस्थिति ऐसी है।

यहाँ कहते हैं। अब लिया। भावार्थ देखो! **सम्यक्त्वपूर्वक जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है,...** देखा! मिथ्यादृष्टि भक्ति करे, उसका पुण्य तो बन्ध का कारण—भटकने का कारण है। आहाहा! जिसे अभी दृष्टि मिथ्यात्व है—पुण्य के परिणाम से धर्म होता है, पर के निमित्त से मुझे विकार होता है, मेरे निमित्त से पर में कुछ हलचल होती है, प्रभाव पड़कर कुछ होता है या नहीं? उपदेश का प्रभाव पड़ता है या नहीं अन्दर? उसमें कुछ दम नहीं है। आहाहा! देखो! यह डाला। पाठ में है, हों! यह। संस्कृत में है। देखो! '**सम्यक्त्वपूर्वकदेवशास्त्रगुरुभक्त्या**' संस्कृत में है। इसलिए कोई ऐसा कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति... कल ही वीरवाणी में आया है कि पहले पुण्य करो, फिर करते-करते शुद्ध होगा। अभी तो शुद्ध का समय नहीं परन्तु शुभभाव करो, उससे होगा। यह एकदम मिथ्यात्व का शल्य है। आहाहा! क्योंकि मिथ्यादृष्टिसहित शुभभाव (करके) नौवें ग्रैवेयक गया, ऐसा शुभभाव तो अभी है नहीं। उस शुभभाव से भी जहाँ समकित नहीं हुआ और वहाँ से गिरा और भटका चार गति में। कहो।

यहाँ तो समकितपूर्वक की बात है। जिसे सम्यग्दर्शन है, सत्य श्रद्धा खिल गयी है। समझ में आया? उसे **सम्यक्त्वपूर्वक...** ऐसा कहा न? समकितसहित। **जो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करता है, उसके मुख्य तो पुण्य ही होता है,...** मूल तो शुभ है इसलिए पुण्य ही होता है। **और परम्पराय मोक्ष होता है।** अर्थात् कि समकिती है, उसके ख्याल में है कि यह हेय है। परन्तु अभी हेय का त्याग कर नहीं सका है। समझ में आया? इसलिए आगे हेय को त्यागकर केवलज्ञान परमात्मा होगा। इसलिए उसके व्यवहार को परम्परा कहा है। वह आरोप से कथन है। आहाहा! समकिती को भी यह

(है तो) मिथ्यादृष्टि के पुण्य की तो बात क्या करना? यह तो पहले आ गया है। वह प्रशंसा करनेयोग्य नहीं है। उसके त्याग का भाव, मिथ्यादृष्टि के शुभभाव, वे प्रशंसा करनेयोग्य नहीं हैं।

यहाँ तो समकिती के जो पुण्य है, वह भी हेय है। परन्तु उसकी दृष्टि में राग को हेय स्वीकार करके स्वभाव को उपादेय अनुभव किया है, इसलिए उसका वह राग क्रमशः छूटेगा। समझ में आया? स्व का आश्रय बढ़ाता जाएगा, वैसे-वैसे पर के आश्रय से (होता) राग घटता जायेगा। वह उसका क्रम है। ऋषभदेव भगवान, लो! एक हजार वर्ष तक साधुपना पालन किया। फिर केवल(ज्ञान) हुआ। और किसी को दो दिन, चार दिन या अमुक होकर सीधे केवलज्ञान हो। वह उसके पुरुषार्थ की स्व के आश्रय की जितनी योग्यता है, तत्प्रमाण उसका राग घटता है। समझ में आया?

जो सम्यक्त्वरहित मिथ्यादृष्टि हैं, है? उनके भाव भक्ति तो नहीं हैं,... उसे भावभक्ति तो नहीं। है? क्योंकि वीतरागपने की दृष्टि की उसे खबर नहीं। इसलिए वीतराग की भावभक्ति तो उसे होती नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित जो भक्ति का भाव होता है, वह तो उसे होता नहीं। आहाहा! अरे! दुनिया को यह गले उतरना भारी कठिन। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। यह अँगुली इसे स्पर्श नहीं हुई है।

मुमुक्षु : स्तम्भ खड़े गिनो तो बहुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी ने खड़े किये नहीं। उनके कारण से रजकण वहाँ खड़े हुए हैं। निमित्त को वह स्पर्शा नहीं, वह निमित्त को स्पर्शा नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु। यह ऊपर रहा है न? क्या कहलाता है वह? नीचे के आधार से वहाँ नहीं रहा है वह। क्या कहलाता है वह?

मुमुक्षु : बीम।

पूज्य गुरुदेवश्री : बीम, बीम बड़ा। वे वहाँ रहे हैं वे, निचले के आधार के कारण से नहीं रहे। निचले तो निमित्त हैं। निमित्त को वह स्पर्शा भी नहीं। वजुभाई वहाँ करते थे सब। वांकानेर।

मुमुक्षु : ....बँगला।

पूज्य गुरुदेवश्री : बँगला बड़ा राजा का। अभी उसके राज के कुँवर उसे बुलावे ऐसा कुछ हो तो। अरे..! आहाहा!

मिथ्यादृष्टि... है ? **उनके भाव-भक्ति तो नहीं है,...** आहाहा! समन्तभद्राचार्य कहते हैं, प्रभु! आपको अभव्य पैर नहीं लगता—वन्दन नहीं करता। क्योंकि उसे राग का ही प्रेम है। वीतरागता क्या है, उसकी खबर नहीं। वह आपको वन्दन नहीं करता। वीतरागी ज्ञानी है, समकिती, वह आपको वन्दन करेगा। क्योंकि वास्तविक वीतरागभाव का उसे माहात्म्य है। आहाहा! जिसे अपना वीतरागस्वभाव दृष्टि में माहात्म्य से आया नहीं, वह वीतरागस्वभाव प्रगटे हुए की भावभक्ति नहीं कर सकता। आहाहा! निश्चयसहित उसका व्यवहार नहीं होता। अकेला पुण्य का व्यवहार होगा। वह कुछ वस्तु नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

लौकिक बाह्य भक्ति होती है,... भाषा देखो। जिसकी दृष्टि में राग का प्रेम है, राग से धर्म होता है, ऐसी रुचि है, वह भगवान की तो लौकिक भक्ति करेगा। आहाहा! ऐसा स्वरूप! बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। **भाव-भक्ति तो नहीं है,...** क्योंकि भाव में वीतरागता का तो प्रेम है नहीं। अपनी वीतरागता का प्रेम नहीं तो दूसरे की वीतरागता के प्रति प्रेम तो सच्चा होता ही नहीं। आहाहा! **लौकिक बाह्य भक्ति होती है,...** आहाहा! पूरा दिन बेचारा सिद्धचक्र करे, अमुक करे, यह करे, यह करे। बाह्य भक्ति। **उससे पुण्य का ही बन्ध है,...** उससे पुण्य का ही बन्ध है। मिथ्यादृष्टि को। **कर्म का क्षय नहीं है।** आहाहा! यह तो प्रवचनसार में आता है कि देव-गुरु-यति... नहीं ? देव-गुरु-यति की श्रद्धा करे, वह पुण्यबन्ध करता है। अब यहाँ देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करे, उसे धर्म होता है, ऐसा मानना है। कहो, अब इसमें कहाँ ? काल (अलग) है, वह वस्तु कहीं पलट जाती है ? धर्म तो धर्म एकरूप (रहता है)। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' पाँचवाँ काल हो, इसलिए शुभयोग से धर्म होगा, तीसरे-चौथे काल में शुद्ध से धर्म होगा, ऐसे दो प्रकार होंगे ? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो और न कहे परन्तु ऐसा कि अभी तो वह शुद्ध तो नहीं। ऐसा। परन्तु नहीं तो तूने पुरुषार्थ किया नहीं, इसलिए नहीं है। शुद्ध नहीं, ऐसा किसने कहा? आहाहा! भगवान शुद्धपने स्थित है। उसकी तूने दृष्टि नहीं की, इसलिए शुद्धता नहीं है। और इसलिए अकेले व्यवहार को मानकर मिथ्यादृष्टिपने के पुण्य से आगे शुभ से शुद्ध होगा, यह तो यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया तो कितने शुभभाव थे इसके। मुनिपना (ऐसा पालन किया)। चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध न करे, इतना इसका शुभभाव था। इतनी तो प्रतिकूलता है नहीं और इतनी क्षमा भी नहीं। व्यवहार क्षमा थोड़ी। अनन्त बार किया तो भी उसके कारण समकित को प्राप्त नहीं हुआ।

पुण्य का ही बन्ध है, कर्म का क्षय नहीं है। ऐसा कथन सुनकर... ऐसा कथन सुनकर **श्री योगीन्द्रदेव से प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया। हे प्रभो! जो पुण्य मुख्यता से मोक्ष का कारण नहीं है, तो त्यागने योग्य ही है, ग्रहण योग्य नहीं है।** तो त्यागनेयोग्य ही है, ग्रहणयोग्य नहीं। **जो ग्रहण योग्य नहीं है, तो भरत, सगर, राम, पाण्डवादिक महान पुरुषों ने निरन्तर पंच परमेष्ठी के...** भक्ति की है निरन्तर। अर्थात् प्रतिदिन। ऐसा। प्रतिदिन होती है न भक्ति? देव-गुरु-शास्त्र छह बोल है न? प्रतिदिन होते हैं। निरन्तर अर्थात् प्रतिदिन होते हैं। आहाहा! निरन्तर अर्थात् समय-समय में हो, ऐसा नहीं। निरन्तर अर्थात् प्रतिदिन-प्रतिदिन ऐसी भगवान की भक्ति समकिती करता है। आहाहा! समझ में आया? अन्तर पड़े बिना प्रतिदिन भगवान की भक्ति, पूजा... आहाहा! करता है या नहीं? ऐसा भाव उसे होता है। ऐसा कहेंगे। **और दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर...** देखा! वापस, पूर्ण होकर। आहाहा! पंच परमेष्ठी गुण स्मरण। '**दानपूजादिना निर्भरभक्ताः**' निर्भर का अर्थ पूर्ण। आहाहा! **पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर...** पूजा, भक्ति प्रतिदिन करते थे। **क्यों पुण्य का उपार्जन किया?** उसमें तो पुण्य उपार्जन हुआ। समकिती, भरत चक्रवर्ती आदि को। आहाहा!

तब श्रीगुरु ने उत्तर दिया कि जैसे परदेश में स्थित कोई रामादिक पुरुष अपनी प्यारी सीता... आहाहा! परदेश में स्थित कोई राम की सीता आदि **स्त्री के पास से आये हुए किसी मनुष्य से बातें करता है...** उसके साथ बात करे। **उसका सम्मान करता है,...**

आओ... आओ। पधारो। क्या बात लाये हो? ऐसा पूछते हैं न कि भाई! क्या लाये? तुम गये थे? तो कहे हाँ। उसके साथ (बात हुई)। उसका सन्देशा दिया है। दृष्टान्त दिया है न। **रामादिक पुरुष अपनी प्यारी सीता आदि स्त्री के पास से आये हुए किसी मनुष्य से बातें करता है—उसका सन्मान करता है, और दान करता है,...** आज मेरे यहाँ भोजन करना, हों! चाय-पानी पिलावे। विलायत आदि देश में गया हो तो जिमावे। यहाँ अपने है न वह मलूकचन्दभाई का लड़का नहीं? निहालभाई। निहालभाई स्वीट्जरलैण्ड। वे कोई यहाँ के हिन्दुस्तान के लोग जायें, वे वहाँ ही उतरते हैं। क्योंकि बड़े गृहस्थ हैं, चार करोड़ रुपये हैं। मलूकचन्दभाई का पहले नम्बर का। दूसरे नम्बर का यहाँ मुम्बई है। उसके पास पाँच करोड़ हैं। वे सब देश के लोग वहाँ जाये, खबर पड़े कि देश का व्यक्ति है तो वह अपने घर में रखे। चाहे जिस जाति का हो। और बँगला बड़ा है। बड़े बँगले, चार करोड़ रुपये हैं। बँगला, बाग, बगीचा बड़ा। वहाँ वह सीखे सबको रहना पड़े। इतने पैसे बहुत हैं। ऐसा कहते थे। तुम्हारे इतना सब? वह सब साधारण मनुष्य को भी इतने पैसे हों और वहाँ ऐसा हो। उसमें कुछ... बाग-बगीचा... लड़की एक ही है, उसका विवाह कर दिया है। अपने देश का—हिन्दुस्तान का व्यक्ति जाये। वह मानो कि अपने निहालभाई हैं वहाँ जाये। वहाँ जिमावे, चाय-पानी पिलावे, तदुपरान्त जितने दिन रहे, तब तक वहाँ ही रहे। यहाँ सोने का, यहाँ बैठने का।

इसी प्रकार भगवान के पास से जो बात आयी हो, उस लानेवाले की भक्ति करे। गुरु लाये हैं न? आहाहा! है? सम्मान करे, दानादि (करे)। **सब कारण अपनी प्रिया के हैं,...** यह प्रिया के कारण से यह सब करते हैं। **कुछ उसके प्रसाद के कारण नहीं है। उसी तरह वे भरत, सगर, राम, पाण्डवादि महान पुरुष वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख अमृत-रस के प्यासे हुए...** आहाहा! देखो! यह समकिती! समझ में आया? आहाहा! विशेष कहा जायेगा, हों! समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ४, गुरुवार
दिनांक-२५-११-१९७६, गाथा-६१-६२, प्रवचन-१४२

परमात्मप्रकाश, ६१ गाथा। शिष्य का प्रश्न है। आप पुण्य का त्याग करने को कहते हो तो भरत, सगर, चक्रवर्ती आदि ने पुण्य तो किया है। ऐसा प्रश्न है। है? **जो पुण्य मुख्यता से मोक्ष का कारण नहीं है, तो त्यागने योग्य ही है,...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव, वह पुण्य है। पुण्य तो त्यागनेयोग्य है, ऐसा आप कहते हो। **ग्रहण योग्य नहीं है। जो ग्रहण योग्य नहीं हैं, तो भरत, सगर, राम, पाण्डवादिक महान पुरुषों ने निरन्त पंच परमेष्ठी के गुणस्मरण क्यों किये?** निरन्तर का अर्थ प्रतिदिन। निरन्तर अर्थात् समय-समय में, ऐसा नहीं। भगवान का पंच परमेष्ठी का स्मरण किया। **दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से पूर्ण होकर क्यों पुण्य का उपार्जन किया?** समकिती थे, ज्ञानी थे, पुण्य को ग्रहण करनेयोग्य नहीं है—ऐसा मानते थे, तथापि उन्होंने पुण्य क्यों किया? ऐसा प्रश्न है। आहाहा!

तब श्रीगुरु ने उत्तर दिया कि जैसे परदेश में स्थित कोई रामादिक पुरुष अपनी प्यारी सीता आदि स्त्री के पास से आये हुए किसी मनुष्य से बातें करता है—उसका सन्मान करता है, और दान करता है, ये सब कारण अपनी प्रिया के हैं, कुछ उसके प्रसाद के कारण नहीं है। जो दान आदि देता है, उसके प्रसाद के कारण से नहीं। आहाहा!

उसी तरह वे भरत, सगर, राम, पाण्डवादि महान पुरुष वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख अमृत-रस के प्यासे हुए... यह बात यहाँ मुख्य है। आहाहा! धर्मी सम्यग्दृष्टि ऐसे होते हैं, धर्मी उसे कहते हैं—सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं। आहाहा! **वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी...** रागरहित परमानन्दरूप मोक्षलक्ष्मी के **सुख अमृत-रस के प्यासे हुए...** आहाहा! वीतरागी परमानन्दी मोक्ष, उसके सुख का पिपासु। अर्थात् अमृत—वीतरागी परमानन्द का वेदन तो आया है। उस परमानन्द के रस का पिपासु है। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह धर्मी की शुरुआत। सम्यग्दृष्टि की शुरुआत ऐसी होती है कि उसे आत्मा के परमानन्द का स्वाद आया होता है। आहाहा! जो मोक्ष का परमानन्द वीतरागी पन्थ यह ही है, वीतरागी परमानन्द का अनुभव मोक्षमार्ग पूर्ण,

उसके आत्मा के अमृत के स्वाद में समकिती आया है। आहाहा! है? आहाहा!

वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी... यह लक्ष्मी। यह लक्ष्मी तुम्हारे पाँच-पचास लाख धूल मिट्टी। उसके अभिलाषी तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! मिट्टी है न धूल? धूल पुद्गल है, वह तो मिट्टी। उसका जो अभिलाषी है, जड़ का, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान... आहाहा! वह **वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी...** आहाहा! उसके **सुख अमृत-रस के प्यासे हुए...** आहाहा! जैसे प्यास लगी हो, प्यास। पानी की पिपासा हो। आहाहा! इसी प्रकार धर्मी जीव को वीतरागी परमानन्दरूपी मोक्षलक्ष्मी के सुख का, उसके सुख के अमृत का वह पिपासु है। आहाहा! समझ में आया? चक्रवर्ती पद हो, बलदेव पद में हो, इन्द्र पद में हो, समकिती (धर्म की) शुरुआतवाला। आहाहा! परन्तु है कैसा वह? उसे चक्रवर्ती पद की अभिलाषा नहीं है। उसे तो अन्तर में परमानन्द वीतरागी, वीतरागी परमानन्द (की पिपासा है)। इन्द्रिय के विषय में तो राग के जहर के सुख की कल्पना है। इन्द्रिय के विषयों में रागरूपी जहर की कल्पना है। वहाँ अज्ञानी सुख मानता है, वह तो जहर में सुख मानता है।

मुमुक्षु : जहर तो दवा में प्रयुक्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दवा में प्रयुक्त हो, वह अलग। मार डाले परन्तु उसे। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों के भोग, वह जहर का स्वाद है। आहाहा! धर्मी को वीतरागी परमानन्दरूपी मोक्षलक्ष्मी ऐसा जो सुख, उसके अमृत का रसिक है वह। आहाहा! सेठ! है? कल बात वहाँ....

वीतराग... यह राम, पाण्डव आदि, भरत आदि महापुरुष वीतरागी परमानन्दरूपी लक्ष्मी—मोक्ष की लक्ष्मी... आहाहा! उसके... 'एक' शब्द है। परमानन्दरूपी एक शब्द है। वीतराग परमानन्द एकरूप, ऐसा चाहिए। **वीतराग परमानन्द एकरूप मोक्षलक्ष्मी...** ऐसा। 'एक' शब्द पड़ा रहा है यहाँ। वीतराग परमानन्दरूपी एकरूप स्वभाव जिसका है। मोक्ष में तो वीतरागी परमानन्द एकरूप जिसका स्वभाव है। आहाहा! आत्मा की मोक्षदशा, उसमें तो वीतरागी परमानन्द एकरूप स्वभाव है। आहाहा! **सुख अमृत-रस**

के प्यासे हुए... वीतरागी परमानन्दरूपी जो मोक्षलक्ष्मी, उसके सुख के अमृतरस के पिपासु हुए। आहाहा!

गृहस्थाश्रम में होने पर भी चक्रवर्ती पद और इन्द्र पद होने पर भी... आहाहा! यहाँ तो मनुष्य लिये हैं। समकिती चक्रवर्ती, बलदेव आदि होने पर भी सम्यग्दृष्टि हैं, उसे तो वीतरागी परमानन्दरूपी मोक्ष की लक्ष्मी, उसके सुख के अमृत का पिपासु है। आहाहा! वीतरागी परमानन्दरूपी सुख का पिपासु—अभिलाषी है। आहाहा! समझ में आया? यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, राजपाट, अरबों रुपये की आमदनी (हो) परन्तु उसमें कोई चीज़ मेरी है और मुझे चाहिए, यह बात उसके अभिप्राय में नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कल कहा था न अन्त में एक? श्रीमद् राजचन्द्र बहुवचन से बोलते थे। तो किसी को मानी लगते थे। अमारा कपड़ा लाओ, अमारा कोट लाओ, अमारी दुकान पर आना, ऐसा कहते थे। अमारी... अमारी (बोले) इसलिए लोग कहे मेरी-मेरी नहीं करे और अमारी-अमारी बहुवचन क्यों कहते हैं यह? ऐसी आलोचना करते थे। तब उसका स्पष्टीकरण करते थे कि अमारी स्त्री, अमारा कुटुम्ब। इसका अर्थ अ—मारी-मारा नहीं। सेठ! अमारी, ऐसा बहुवचन बोलने में यह मेरे नहीं हैं, ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा! समझ में आया? किसकी स्त्री? उसका आत्मा अलग, उसका शरीर अलग। इस आत्मा की यह स्त्री कहाँ से हो गयी? आहाहा! यह पुत्र, उसका आत्मा अलग, उसका शरीर अलग, उसके परिणाम अलग। उसमें तेरे परिणाम में वह कहाँ आया? आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में राग से लेकर पूरे जगत की चीज़ों का स्वामित्व छूट जाता है। आहाहा! और उसे अभिलाषा, वीतरागी परमानन्द मोक्षलक्ष्मी के सुख के अमृत के रस का पिपासु है वह तो। आहाहा! देखो! यह धर्मी। अभी तो कहे, यह एक सामायिक की, प्रोषध किये और यात्रा की, (इसलिए) हो गया धर्मी। धूल भी नहीं धर्मी, वहाँ कहाँ धर्म था? समझ में आया? अभी दृष्टि में से विपरीतता तो गयी नहीं। पुण्य और परवस्तु की अभिलाषा है अन्दर, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि तो परमानन्द

सुख अमृत के रस का (पिपासु है)। आहाहा! जैसे प्यासे को मोसम्बी का पानी मिले (तो) गटक-गटक पीता है न वह? भाई ने लिखा है, नहीं? सोगानी। सोगानी का है द्रव्यदृष्टि प्रकाश। आहाहा! जैसे गन्ने का रस... गन्ना, उसका रस। प्यास लगे और गटक-गटक पीवे। उसी प्रमार धर्मात्मा... आहाहा! अपना अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद गटक-गटक लेता है। आहाहा! कहीं उसे सुख भासित नहीं होता। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को सुख तो वीतरागी परमानन्द में भासित होता है और ऐसा जो भगवान आत्मा, वहाँ अन्तर आनन्द है। आहाहा! उसका जो अभिलाषी और पिपासु है। आहाहा! साधारण धर्म-धर्म करे और धर्मी है, बापू! यह तो कठिन बातें हैं। आहाहा! ... अनन्त काल में हुई नहीं, क्योंकि वीतरागी परमानन्द का नाथ भगवान आत्मा की दृष्टि और उसका अनुभव हुआ नहीं। इस बिना के क्रियाकाण्ड में जुड़ गया व्रत और नियम और तप में। वह तो मिथ्यादृष्टि का पुण्य है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को वह पुण्य कैसे होता है, यह बात चलती है। आहाहा! ऐसी व्याख्या धर्म की। अब वह तो कहे, दया पालो, व्रत करो, ब्रह्मचय पालो, भक्ति करो, यात्रा करो, पूजा करो, मन्दिर बनाओ, पच्चीस-पचास लाख डालकर (खर्च करके)। धूल भी धर्म नहीं, कहते हैं। सुन न! वह तो सब राग है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि की व्याख्या तो देखो! **वीतराग परमानन्दरूप मोक्ष से लक्ष्मी के सुख अमृत-रस के प्यासे...** आहाहा! इन्द्र को हजारों इन्द्राणियाँ हों। चक्रवर्ती भरत को छियानवें हजार स्त्रियाँ और एक स्त्री की तो हजार देव सेवा करे। स्त्री रत्न। कोई अभिलाषा अन्दर है नहीं। जरा आसक्ति है। रुचि नहीं। आहाहा! यह (स्त्री मेरी) है, इस बुद्धि का नाश हो गया है, तब सम्यग्दर्शन हुआ है। आहाहा! समझ में आया? इस शब्द के लिये कल अटकाया था न? आहाहा! यह **राम, पाण्डवादि महान पुरुष...** आहाहा! पुरुषोत्तम पुरुष। राम आदि, पाण्डव आदि समकिती थे, आत्मज्ञानी थे। आहाहा! वे आत्मा के आनन्द के रसिक थे। आहाहा! वे राग के रसिक नहीं थे। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि की बुद्धि परपदार्थ चाहे तो इन्द्रपद हो, परन्तु उसमें से सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! तो फिर राज और यह तुम्हारे पाँच-पचास करोड़ रुपये और धूल के सेठिया कहलाये न? धूल के सेठिया। वह तो बेचारे दुःखी हैं सब। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय से तो दुःखी हैं परन्तु व्यवहार से तो सुखी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से क्या सुख? व्यवहार कब था? कहनेमात्र है पागल को सुख। आहाहा!

भगवान आत्मा में आनन्द है। इसके अतिरिक्त किस चीज़ में आनन्द है? आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की व्याख्या करते हुए वीतरागी परमानन्दरूपी मोक्ष की लक्ष्मी, वह लक्ष्मी। उसके सुख के अमृत के रस का पिपासु। अब वे कहते हैं कि दानादि क्यों करते हैं? कि **संसार की स्थिति के छेदने के लिये...** कर्म की स्थिति लम्बी है, उसे घटाने के लिये। **विषय कषायकर उत्पन्न हुए...** उन्हें भी विषय कषाय तो है। उनसे **उत्पन्न हुए आर्त रौद्र खोटे ध्यानों के नाश का कारण,...** आहाहा! **श्री पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करते हैं,...** पंच परमेष्ठी के गुण का स्मरण है पुण्य-शुभभाव पुण्य। परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ उसके पुण्य पर नहीं है। आहाहा! है? अन्दर आता है, देखो!

दान पूजादिक करते हैं,... सन्तों को—सच्चे सन्तों को दान दे, पूजा-भक्ति करे, **परन्तु उनकी दृष्टि...** आहाहा! **केवल निज परिणति पर है,...** वीतरागीदशा पर उनकी दृष्टि है अर्थात् कि द्रव्य के ऊपर (दृष्टि है)। आहाहा! ऐसी बात है। ऐसे पुण्य के भाव आते हैं। धर्मी को रामादि पाण्डवों को जब तक मुनि नहीं थे, फिर मुनि हुए और मोक्ष गये, परन्तु उससे पहले जब तक समकिती थे और विषयकषाय के परिणाम भी थे, उन्हें छेदने के लिये... आहाहा! दान, पूजा आदि भाव करता है। कर्ता होकर करता है, ऐसा तो व्यवहार हुआ। कर्ताबुद्धि नहीं, परन्तु परिणति में वह भाव होता है। आहाहा! समझ में आया? भाई! ऐसी बहुत बात में अन्तर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार अवस्था।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थिति घटती है न वह।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर में भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें तो कहाँ है कुछ? उन्हें तो पूरा परित संसार करता है, ऐसा है। वह यहाँ परित संसार नहीं। यहाँ तो समकितसहित है, उसे शुभभाव होता है और कर्म की स्थिति घटाता है। स्थिति। कर्म का अभाव करता है, ऐसा नहीं। स्थिति घटाता है।

मुमुक्षु : अनुभाग....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभाग, स्थिति... आहाहा! घटाता है। आहाहा!

परन्तु उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है,... वीतरागीदशा पर उनकी दृष्टि है। आहाहा! उस पुण्य की क्रिया पर धर्मी की दृष्टि नहीं है। आहाहा! तथापि उस व्यवहार को कारण कहेंगे। व्यवहार समकित को कारण कहेंगे, वह तो निमित्त का कथन। आहाहा! बहुत मार्ग, बापू! वर्तमान में तो पूरे सम्प्रदाय में पूरी बात ही फेरफार हो गयी है। वीतरागमार्ग के बदले अजैन को जैन मनवा दिया है। और लोगों को निवृत्ति कहाँ है बेचारे को कमाने के कारण। पूरे दिन दुकान, स्त्री, पुत्र में... धन्धा आदि में निवृत्त कब है? आठ, दस-बारह घण्टे उसमें जाते हैं, छह घण्टे नींद में जाते हैं। आहाहा! दो-तीन घण्टे खाने में जाये। थोड़ा समय मिले सुनने में, वहाँ ऐसा सुने। तुमको इस पुण्य से धर्म होगा, दया, दान से धर्म होगा। अब बेचारा क्या करे वह? आहाहा! संसार के पाप के कारण उसे निवृत्ति कहाँ है? आहाहा! यह धन्धा किया, यह पैसे मिले, यह धूल मिली।

मुमुक्षु : सोनगढ़ में आवे तो काम हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे में? किसका काम हो जाये?

मुमुक्षु : दोनों काम हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी दृष्टि करे तो धर्म हो और उसमें पुण्य अन्दर आवे तो उसे पुण्य बँधे। आहाहा! यह तो स्पष्टीकरण हो गया है, नहीं? कितने ही तो कहते हैं, भाई! इन महाराज की लकड़ी फिरे तो पैसा होता है। बहुत पैसेवाले हों न यहाँ इसलिए... लकड़ी तो हाथ में पसीना होता है और वह (शास्त्र को) नहीं छुआ जाता, इसके लिए (रखते) हैं। आहाहा! जादू है उसमें, ऐसा कहते हैं। एक भाई आये थे

उमराला से।... भाई अपने बलुभाई के ... आटकोट में नारणसेठ के पुत्र। वे स्थानकवासी हैं। सेठिया परिवार में। वे भाई आये थे यहाँ। भतीजा आया न, इसलिए बुलाया था। उन्हें अन्दर में (ऐसा था कि) महाराज कुछ लकड़ी फिरा दें तो। हम स्थानकवासी हैं। अभी आये थे। यह है न डॉक्टर? आटकोटवाले। उनकी बुआ। वह स्थानकवासी पक्के। उनके लड़के पक्के विरोधी। सेठिया परिवार में से वहाँ है उमराला, स्थानकवासी। परन्तु यहाँ आये तो कहे, महाराज के पास जाते हैं और कुछ लकड़ी फिराकर वापस जादूगरी करे तो? भाई! यहाँ जादूगरी (कैसी)? यहाँ तो तत्त्वज्ञान की जादूगरी है। आहाहा! बराबर तत्त्वज्ञान समझे, सुने तो उसकी दृष्टि बदल जाये। सम्प्रदाय की दृष्टि बदल जाये। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! राम, पाण्डव, भरत और सगर आदि चक्रवर्ती। भरत, सगर चक्रवर्ती थे। राम, वे बलदेव थे, पाण्डव योद्धा थे। महान पुरुष... आहाहा! उन्होंने विषयकषाय के नाश (के लिये) **श्री पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करते हैं,...** शुभभाव। पाप के नाश के लिये। पाप न हो इसके लिये। **दान पूजादिक करते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है,...** आत्मा पर उनकी दृष्टि है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द (के ऊपर उनकी दृष्टि है)। भरत चक्रवर्ती छह खण्ड के धनी। आहाहा! उनके घर में छियानवें हजार तो स्त्रियाँ, सोलह हजार तो देव सेवा करे। उनकी दृष्टि वहाँ नहीं थी। आहाहा! वे पुण्यभाव करें, उनकी दृष्टि भी पुण्य पर नहीं थी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग, बापू! धर्म का ऐसा मार्ग है। यह वीतराग का, हों! वापस। जिनेश्वरदेव। का मार्ग कोई अलौकिक है। लोगों ने लौकिक जैसा कर दिया साधारण। बस, एक सामायिक करे, प्रोषध करे तो धर्म हो गया। जादवजीभाई! ऐसा था। यह सब वहाँ के प्रमुख। कलकत्ता में स्थानकवासी। नहीं? सामायिक करे, शाम को प्रतिक्रमण एक करे, रात्रि में चतुर्विध आहार त्याग करे, आहार न करे, हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। वह धर्म कैसे हो, इसकी खबर नहीं। आहाहा!

तीन लोक का नाथ चिदानन्द भगवान अन्दर विराजता है। उसकी अन्तर्दृष्टि बिना... धर्म नहीं। और उस धर्मी को पुण्य आवे। पाप को छेदने के लिये। तथापि... परिणति पर ... आहाहा! ... इतना। ... इसका स्पष्टीकरण स्वयं ने किया है। '**पञ्चपरमेष्ठिभक्त्यादि-**

परिणतानां कुटुम्बिनां पलालवदनीहितं पुण्यमास्त्रवतीति' इच्छा बिना उसे पुण्य होता है। उस पुण्य की इच्छा नहीं है। कमजोरी से आर्त-रौद्रध्यान छेदने के लिये ऐसे दान, पूजा, व्रत आदि के भाव होते हैं। आहाहा! परवस्तु पर बुद्धि नहीं है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त कर दिया। धर्मी को इस जाति के पुण्य के भाव में आता है, परन्तु उसकी दृष्टि पुण्य पर नहीं है। आहाहा! तथा जिसे आहार-पानी देता है, पूजा करे, उनके ऊपर उसकी दृष्टि नहीं। आहाहा! दृष्टि परमात्मा स्वयं शुद्ध चैतन्यघन, उस निज परिणति पर—निज स्वभाव पर जिसकी दृष्टि है। आहाहा! कहो, शान्तिभाई! यह ऐसा कहाँ सुना था वहाँ सब? थोथा-थोथा था सब।

भाई! तेरा धर्म का उपाय कौन सा कहलाये? आहाहा! जिसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अमृत अतीन्द्रिय आनन्द के रस का सरोवर, कुण्ड प्रभु है। आहाहा! अरे! इसे कैसे बैठे? उसकी दृष्टि होने पर इसे वीतरागी परमानन्द का अंश स्वाद आता है और इसलिए वह वीतरागी परमानन्द का अभिलाषी है। इच्छा होती है, उसका अभिलाषी नहीं है। आहाहा! पुण्य का अभिलाषी नहीं, ऐसा कहते हैं। अनिहित वृत्ति से, रुचि बिना वे परिणाम आवे हैं। आहाहा!

उनकी दृष्टि केवल निज परिणति पर है, परवस्तु पर नहीं है। उन पंच परमेष्ठी पर भी उसकी नजर नहीं, दृष्टि वहाँ नहीं। वह तो परवस्तु है। पंच परमेष्ठी भी परवस्तु है। वह कहीं स्ववस्तु नहीं। आहाहा! धर्मी की दृष्टि तो स्ववस्तु के ऊपर है, परवस्तु के ऊपर नहीं। आहाहा! कितना (स्पष्ट कथन है)! **पंच परमेष्ठी की भक्ति आदि शुभ क्रिया को परिणत हुए...** पाण्डव, राम, भरत। **जो भरत आदिक हैं, उनके बिना चाहे पुण्य प्रकृति का आस्त्रव होता है।** आहाहा! चाहना नहीं, अभिप्राय—भाव नहीं, तथापि उन्हें उस जाति की पुण्यप्रकृति बँधती है, आस्त्रव आता है। आहाहा! बहुत थोड़े में बहुत डाला है। **बिना चाहे पुण्य प्रकृति का आस्त्रव होता है।** अब दृष्टान्त देते हैं।

जैसे किसान की दृष्टि अन्न पर है,... किसान-किसान अनाज बोवे, उसकी दृष्टि अनाज पर है, घास पर नहीं। आहाहा! सौ कलथी अनाज हो, वहाँ सौ गाड़ा घास होती है। खड-खड समझे न? घास। परन्तु उसकी दृष्टि अनाज के ऊपर है। अनाज कितना

पका ? डुंडा कितने हुए ? आहाहा ! इसी प्रकार धर्मी की दृष्टि निज वस्तु के ऊपर है। ऐसे यह बीच में घास होती है। ... घास। आहाहा ! ऐसा है। पुण्य की अभिलाषा नहीं, अनिहित वृत्ति से प्रकृति का आस्रव आता है उसे। आहाहा ! तथा वह पुण्य परिणाम का कर्ता नहीं कि मेरा कर्तव्य है, इसलिए करूँ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा ! तथापि अनिहित वृत्ति से वह शुभभाव होता है, इसलिए पुण्यास्रव आता है। आहाहा ! कितनी शर्तें हैं यह !

धर्मीजीव की कितनी शर्तें ! धर्मी को वीतराग परमानन्दरूप मोक्षसुख का पिपासु, पाप के नाश के लिये वैसे पुण्य का भाव आवे, तो भी वह उसका आस्रव आवे, वह अनिहित वृत्ति से है। दोपहर में तो ऐसा कहा था कि समकिती को आस्रव है ही नहीं। वह तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष-मोह की अपेक्षा से बात थी। यहाँ तो थोड़ा जो है न, जितना राग आता है, मुनि को भी पंच महाव्रत आते हैं, उतना उन्हें आस्रव आता है। आहाहा ! ...पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति होना, वह धर्म है। आहाहा !

जैसे किसान की दृष्टि अन्न पर है, तृण भूसादि पर नहीं है। वह तृण और भूसा-छिलका, उन पर किसान की दृष्टि नहीं है। आहाहा ! **बिना चाहा पुण्य का बन्ध सहज में ही हो जाता है।** आहाहा ! रुचि बिना, चाहना बिना (पुण्यबन्ध) दान, पूजा में हो जाता है। आहाहा ! **वह उनको संसार में नहीं भटका सकता है।** वे पुण्यास्रव हैं, वे उसे संसार में भटकायेंगे नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : चारित्र में....

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र में भी... इच्छा नहीं। कर्ताबुद्धि नहीं, कहा न, बीच में आता है। परिणति में ऐसा शुभभाव आवे, उसका आस्रव भी आता है। आहाहा ! यह तो कहा न, वीतरागी परमानन्द का पिपासु है। जिसे अतीन्द्रिय आनन्द स्वाद में आया है आत्मा। आहाहा ! जिसे इन्द्र के इन्द्रासन में करोड़ों अप्सराओं में भी जो सुख है, वह तो जहर है। आहाहा ! समझ में आया ?

यहाँ तो यह धान का ढोकला शरीर है। धान (अनाज) व्यवस्थित खाये तो शरीर ठीक रहे और दो-चार दिन व्यवस्थित (न) रहे, बुखार आया और अन्न पचता न हो, उल्टी हुई हो तो ऐं... ऐं... शरीर हो जाये। यह तो इन्द्र के इन्द्रासन और इन्द्राणियाँ,

जिन्हें अनाज का भोजन नहीं। जिन्हें (अमृत की डकार) है। आहाहा! उनके भोग की भी इच्छा समकिती को नहीं है। समझ में आया? उसमें सुखबुद्धि समकिती को उड़ गया है। आहाहा! ऐसी बातें, बापू! .... बहुत। सम्प्रदाय में तो अपवास करना, वह तपस्या, तपस्या से निर्जरा और निर्जरा से धर्म, जाओ। आहाहा! यहाँ प्रतिक्रमण करे, वह संवर और दानादि दो, वह पुण्य। अरे रे! कहाँ बापू! ... तुझे अभी? धर्म कैसे हो और कहाँ से होता है, इसकी खबर नहीं होती। यह तो सब राग की क्रियायें हैं। सामायिक, प्रोषध और प्रतिक्रमण, यह सब तो शुभराग है और मिथ्यात्वसहित है। यह धर्म होता है, ऐसा मानकर (करे, वह) मिथ्यात्वसहित है। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को सुख के, आनन्द के अभिलाषी को आर्त-रौद्रध्यान छेदने के लिये व्रत आदि के, पूजा आदि के भाव आते हैं, तथापि उसके ऊपर उसकी दृष्टि नहीं है। आहाहा! ऐसे पुण्यभाव का वह स्वामी भी नहीं है। अरे! ऐसी गजब बातें। आहाहा!

जिनवर वीतराग परमेश्वर जिनवर का धर्म अलौकिक है। लोगों को सच्चा (धर्म) सुनने को मिला नहीं। करें तो कहाँ से? सुनने को मिला नहीं उन्हें (कि) क्या कहलाता है धर्म? आहाहा! जिनवरधर्म तो वीतरागी अनन्त सुख का अभिलाषी, उसे जिनवरधर्म कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? उसे यह पूजा, भक्ति होते हैं। गुणस्मरण भगवान का होता है। उसमें उसे पुण्य का आस्रव आता है। परन्तु अनिहित वृत्ति से। आहाहा! जैसे शुक्लध्यान में राग है तो भेद है बहुत। परन्तु वह अनिहित वृत्ति से। ४२ भेद लिये हैं न शुक्लध्यान में? वह भेद कहीं ध्यान नहीं है, परन्तु राग बाकी है, इसलिए उसमें भेद पड़ जाते हैं। आहाहा! अनिहित वृत्ति से अबुद्धिपूर्वक आता है। वहाँ अनिहित वृत्ति शब्द है। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसे कहना तप? आनन्द का नाथ भगवान है, उसमें लीन होना। इच्छा की उत्पत्ति न हो और तपते। सोना जैसे गेरू लगाने से ओपता है, उसी प्रकार भगवान आनन्द का नाथ आनन्द से ओपता-शोभता है। अतीन्द्रिय आनन्द की दशा से शोभे, उसे तप कहते हैं। यह तो सब लंघन है। समझ में आया? तप की व्याख्या

नहीं की थी ? ... लक्षण। तप का लक्षण। **शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्ट मित्र, शत्रु, परज्ञेयों को छोड़ना, यानि उसमें ममतारहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णा रहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना, अपना आनन्द में स्थिरता होना, ऐसी तपस्या तप कहलाती है।** आत्मावलोकन। दया किसे कहना, व्याख्या की थी एक बार। परजीव की दया, वह दया नहीं। पर की दया कौन पाल सके ? दया उसे कहते हैं, देखा ! **स्वभाव में स्थिरता होना...** आनन्दस्वरूप भगवान में जम जाना, उसका नाम तपस्या है। व्याख्या भी अलग प्रकार से। आहाहा !

दया का लक्षण—**विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना।** पुण्य, दया, दान, व्रत वह सब विकारभाव है। आहाहा ! **विकारमय परिणामों द्वारा अपने निजस्वभाव का घात नहीं करना तथा अपने स्वभाव का पालन करना, वह दया है।** वीतरागी स्वभाव भगवान आत्मा का, उस वीतरागीपने का पालन करना, वह दया है। आहाहा ! यह तो कहे, पर की दया पालना, वह दया है और दया है, वह धर्म है। धूल भी नहीं। 'दया वह सुख की बेलडी, दया वह सुख की खान...' जादवजीभाई ! 'अनन्त जीव मुक्ति गये दया के (फल जान)' यह दया नहीं, बापू ! तू मानता है, वह नहीं। आहाहा ! यह दया। है ?

'यत् निजस्वस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया।' आहाहा ! वे दया, ... दया पाल सकूँ, परदया पालने का भाव हो, वह राग है और हिंसा है। आहाहा ! उसमें बहुत अधिक बात है, हों ! दान की व्याख्या की, धर्म का लक्षण सब बहुत कहा... व्रत का लक्षण। **इन्द्रिय मन और भोगादिक की ओर जाने से अपने परिणामों का रोकना, वह व्रत कहलाता है।** इन्द्रिय की ओर का विकल्प रोकना, अन्तर में आना, इसका नाम व्रत है। आहाहा ! आत्मावलोकन है एक पुस्तक।

वे तो शिवपुरी के ही पात्र हैं। आहाहा ! राम बलदेव, चक्रवर्ती भरत, सगर चक्रवर्ती, पाण्डव, ये सब शिवपुरी के... आहाहा ! पात्र हैं। शिवपुरी–मोक्षपुरी। जिसमें कोई उपद्रव नहीं और अतीन्द्रिय आनन्द की दशा है, ऐसी शिवपुरी परमानन्द की दशा मोक्ष, उसके वे पात्र हैं। वापस **शिवपुरी के ही पात्र हैं।** ऐसा लिया, देखा ! आहाहा ! ... आया, उसका अर्थ किया है। आहाहा !

गाथा - ६२

अथ देवशास्त्रमुनीनां योऽसौ निन्दां करोति तस्य पापबन्धो भवतीति कथयति –

१८६) देवहं सत्थहँ मुणिवरहँ जो विद्देसु करेइ।
णियमें पाउ हवेइ तसु जें संसारु भमेइ।।६२।।

देवानां शास्त्राणां मुनिवराणां यो विद्वेषं करोति।
नियमेन पापं भवति तस्य येन संसारं भ्रमति।।६२।।

देवहं इत्यादि। देवहं सत्थहं मुणिवरहं जो विद्देसु करेइ देवशास्त्रमुनीनां साक्षात्पुण्यबन्ध-हेतुभूतानां परंपरया मुक्तिकारणभूतानां च योऽसौ विद्वेषं करोति। तस्य किं भवति। णियमें पाउ हवेइ तसु नियमेन पापं भवति तस्य। येन पापबन्धेन किं भवति। जें संसारु भमेइ येन पापेन संसारं भ्रमतीति। तद्यथा। निजपरमात्मपदार्थोपलम्भरुचिरूपं निश्चयसम्यक्त्वकारणस्य तत्त्वार्थश्रद्धानरूपव्यवहारसम्यक्त्वस्य विषयभूतानां देवशास्त्रयतीनां योऽसौ निन्दां करोति स मिथ्यादृष्टिर्भवति। मिथ्यात्वेन पापं बध्नाति, पापेन चतुर्गतिसंसारं भ्रमतीति भावार्थः।।६२।।

आगे देव-शास्त्र-गुरु की जो निंदा करता है, उसके महान् पाप का बंध होता है, वह पापी पाप के प्रभाव से नरक निगोदादि खोटी गति में अनंतकाल तक भटकता है-

जो जन देव शास्त्र गुरु के प्रति द्वेष-भाव ही रखते हैं।
उन्हें निरन्तर पाप बन्ध हो जिससे भ्रमण चतुर्गति है।।६२।।

अन्वयार्थ :- [देवानां शास्त्राणां मुनिवरणां] वीतरागदेव, जिनसूत्र और निर्ग्रंथमुनियों से [यः] जो जीव [विद्वेषं] द्वेष [करोति] करता है, [तस्य] उसके [नियमेन] निश्चय से [पापं] पाप [भवति] होता है, [येन] जिस पाप के कारण से वह जीव [संसारं] संसार में [भ्रमति] भ्रमण करता है। अर्थात् परम्पराय मोक्षके कारण और साक्षात् पुण्यबंध के कारण जो देव-शास्त्र-गुरु हैं, इनकी जो निंदा करता है, उसके नियम से पाप होता है, पाप से दुर्गति में भटकता है।

भावार्थ :- निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि वही निश्चयसम्यक्त्व, उसका कारण तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहारसम्यक्त्व, उसके मूल अरहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु, और दयामयी धर्म, इन तीनों की जो निंदा करता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है। वह मिथ्यात्व का महान् पाप बाँधता है। उस पाप से चतुर्गति संसार में भ्रमता है।।६२।।

गाथा-६२ पर प्रवचन

अब, ६२ गाथा। **देव-शास्त्र-गुरु की जो निन्दा करता है, उसके महान पाप का बन्ध होता है,...** सर्वज्ञदेव परमेश्वर जिनवरदेव परमात्मा, गुरु-निर्ग्रन्थ सन्त, मुनि, दिगम्बर मुनि, जिनकी दशा तीन कषाय के अभाव की अन्तर में है, ऐसे गुरु, उनकी और शास्त्र—भगवान के कहे हुए शास्त्र। चारों अनुयोग भगवान के कहे हुए हैं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की निन्दा करता है, **उसके महान पाप का बन्ध होता है,...** आहाहा! समकित सहित विनय है, उसे पुण्यबन्ध होता है और जो अवर्णवाद बोले, निन्दा करे... आहाहा! पंच परमेष्ठी वीतरागदेव त्रिलोकनाथ, जिन्हें इन्द्र ... भगवान हो गये वे। हमको दे तो नहीं कुछ। ... कहे कि तुमको तुम्हारे से धर्म होगा, हमारे से नहीं होगा। निमित्तपने का अर्थ कि वह कुछ करता नहीं। आहाहा!

एक नहीं कहा था? टी.जी. शाह नहीं थे वढवाण के? टी.जी. शाह। मुम्बई में है न भाई का बँगला। वह तो गुजर गये। उनकी लड़की ने ईसाई में विवाह किया है। वह यहाँ एक बार बोलते थे। हमारे पास आये थे। हीराभाई के मकान में। ऐसा पूछा, लौकिक व्यक्ति। बाहर की प्रवृत्ति का रसिक। धर्म क्या, कुछ खबर नहीं होती। महाराज! यह सिद्ध भगवान क्या करते हैं? मोक्ष जाकर क्या करते हैं? कहा, आत्मा का आनन्द अनुभव करते हैं। किसी का कुछ करते या नहीं? किसी का कुछ नहीं करते। वह सिद्धपना किस काम का? किसी का कुछ न करे (तो), ऐसा कहते थे। यहाँ हीराभाई के मकान की बात है। ९२-९३ की बात होगी। (संवत्) १९९१-९२-९३ हीराभाई के मकान में आये थे। यहाँ आये थे फिर। आहाहा!

क्या करता है यह? सिद्ध भगवान पूर्ण (आनन्द की) प्राप्ति (होने के) बाद पूर्ण दशा, पूर्ण वीर्य (प्रगट हुआ), वे क्या करे? किसी का कुछ करे? कहा, किसी का हराम करे तो। वे तो अपने अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करे। प्रवचनसार में नहीं आया? केवली किसका ध्यान करे? वे तो तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। वे ध्यान किसका करे? तब आचार्य कहते हैं कि यह ध्यान करते हैं आत्मा के आनन्द का। प्रवचनसार में आता है। अतीन्द्रिय आनन्द का ध्यान करे, अनुभव करे वे। आहाहा! प्रवचनसार में।

देव-शास्त्र-गुरु की जो निन्दा करता है, उसके महान पाप का बन्ध होता है, वह पापी पाप के प्रभाव से नरक-निगोदादि खोटी गति में अनन्त काल तक भटकता है। आहाहा! यह ६२।

१८६) देवहं सत्थहँ मुणिवरहँ जो विद्देसु करेइ।
णियमें पाउ हवेइ तसु जें संसारु भमेइ।।६२।।

अन्वयार्थ—वीतरागदेव... सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग परमात्मा। **जिनसूत्र...** जिनसूत्र। भगवान के कहे हुए शास्त्र। **निर्ग्रन्थ मुनियों से...** देखा! निर्ग्रन्थ मुनि। जिन्हें राग की एकता में से तो निकल गये हैं परन्तु राग की अस्थिरता में से निकल गये हैं। आहाहा! वे मुनि तो दिगम्बर होते हैं, नग्न। अन्तर में तीन कषाय से निकल गये हैं। वीतरागपना जिन्हें प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसे निर्ग्रन्थ मुनि। निर्ग्रन्थ—ग्रन्थ जिन्हें नहीं। वस्त्र का टुकड़ा नहीं बाहर में और अन्दर में राग का अंश नहीं। आहाहा! ऐसी जो निर्ग्रंथदशा, वे मुनि।

जो जीव द्वेष करता है,... आहाहा! **उसके निश्चय से पाप होता है,...** धर्म तो नहीं, परन्तु पुण्य भी नहीं और वह तो अकेला पाप करता है। **जिस पाप के कारण से वह जीव संसार में भ्रमण करता है।** लो। आहाहा! कैसे हैं वे...? वीतरागदेव, हों! अरिहन्त देव। इसके अतिरिक्त कोई देव नहीं। यह पद्मावती देव और जैनशासन के सेवक देव और, वे नहीं। तथा चार गति में से देव(गति) के देव, वे नहीं। आहाहा! अरिहन्तदेव वीतराग जिन्होंने विकारभाव को नष्ट कर पूर्ण वीतरागता पूर्णानन्द की दशा जिन्होंने प्रगट की है—ऐसे वीतराग देव और गुरु निर्ग्रन्थ मुनि और शास्त्र। वे **परम्पराय मोक्ष के कारण...** निमित्त। **साक्षात् पुण्यबन्ध के कारण...** देखा! देव-गुरु-शास्त्र तो साक्षात् तो पुण्यबन्ध का कारण है। परद्रव्य है न? **पुण्यबन्ध के कारण जो देव-शास्त्र-गुरु हैं, इनकी जो निन्दा करता है,...** आहाहा! **उसके नियम से पाप होता है, पाप से दुर्गति में भटकता है।** दुर्गति में (भटकता है)।

भावार्थ :- निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि, वही निश्चयसम्यक्त्व... अब कहते हैं कि समकित के दो प्रकार—निश्चय और व्यवहार। निज परमात्मद्रव्य, यह भगवान आत्मा अपना पूर्ण परमात्मा। स्वयं परमात्मा ही अन्दर है। आहाहा! निज

परमात्मद्रव्य। भगवान परमात्मद्रव्य, वह तो पर है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। **निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि...** परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि, **वही निश्चयसम्यक्त्व...** है। वह सत्य समकित है। आहाहा! पूर्ण वीतराग परमानन्दस्वरूप स्वयं है। स्वरूप उसका द्रव्यस्वरूप ही ऐसा है। निज परमात्मा की... आहाहा! परमात्मद्रव्य, परमात्मद्रव्य अर्थात् वस्तु, उसकी रुचि। आहाहा! परमात्म पदार्थ, परमात्म निजद्रव्य... आहाहा! उसकी **प्राप्ति की रुचि निश्चयसम्यक्त्व, उसका कारण तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहारसम्यक्त्व,...** यह तो निमित्त से कथन है। व्यवहारसमकित, वह तो उपचारिक कथन है। वह समकित है नहीं, समकित की पर्याय है ही नहीं। परन्तु निश्चय आत्मा के सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट हुई है, उसे यह तत्त्वार्थश्रद्धान का व्यवहार का जो विकल्प है, उसमें आरोप करके व्यवहारसमकित कहा है। है तो राग। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : रागमिश्रित नौ तत्त्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व है। नौ तत्त्व भेदवाले हैं। भेदवाले की श्रद्धा मिथ्यात्व है। यहाँ तो निमित्त कारण कहा। ... नौ तत्त्व का समकितसहित है न? उसके नौ तत्त्व समकित कहा। आहाहा! यह तो पहले बात की।

निज परमात्मद्रव्य की प्राप्ति की रुचि, वही निश्चयसम्यक्त्व, उसका कारण... अर्थात् है उसका ... **तत्त्वार्थश्रद्धानरूप व्यवहारसम्यक्त्व...** आहाहा! और उस व्यवहार समकित का मूल **उसके मूल अरहन्तदेव,...** निश्चय समकित का मूल अरिहन्त देव हैं। अरिहन्त देव के अतिरिक्त देव, वे देव हैं ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? **निर्ग्रन्थ गुरु,...** है। व्यवहार समकित का मूल कारण निर्ग्रन्थ गुरु। मुनि दिगम्बर सन्त, आत्मा के आनन्द में मस्त, अतीन्द्रिय आनन्द में मस्त बनवास में (रहें), वे निर्ग्रन्थ गुरु। वह व्यवहार समकित का निमित्त है। **और दयामयी धर्म,...** व्यवहार दया, हों! अहिंसा। **इन तीनों की जो निन्दा करता है, वह मिथ्यादृष्टि होता है।** आहाहा! **वह मिथ्यात्व का महान पाप बाँधता है।** आहाहा! इसमें बड़ा विवाद है। देव वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, वे देव। उनकी ... करनेवाले सब जो वीतराग जैनशासन के रक्षक कहते हैं देव, वे देव नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वे तो स्वरूप के देव हैं। आहाहा! जिन्हें शक्ति, दिव्यशक्ति है स्वरूप में, परमात्मस्वरूप ही है, उसकी पर्याय में प्राप्ति हुई है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....रक्षक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रक्षक है? वह स्वयं है अपना रक्षक। है अभी सब ... देवी और जैनशासन का रक्षक कौन? जैनशासन तो वीतरागीभाव है, उसका रक्षक तो स्वयं है। रक्षक कौन था? वीतरागीभाव का रक्षक वे देव है? जैनशासन... समयसार की १४-१५वीं गाथा में नहीं आया? '**जो पस्सदि अप्पाणं**' ... अबद्धस्पृष्ट जाने अन्दर, मुक्तस्वरूप जाने... आहाहा! सामान्य को जाने, सामान्य को माने, अभेद को माने, विषयकषाय के... जैनशासन वह है। उस जैनशासन की रक्षा कौन करे? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनशासन... वह तो सब बाहर के व्यवहार हैं। कहाँ रहे? आत्मा के शुद्ध उपयोग में जैनशासन रहता है। आत्मा का शुद्धउपयोग, वह जैनशासन है। दया, दान, व्रत के परिणाम, वह जैनशासन? वह तो राग है। आहाहा! बहुत अन्तर है, बापू! सब बात में। है न, खबर है न, सबकी तो खबर है न! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मायतन तो यहाँ आत्मा है। धर्म का आयतन आत्मा है। यह छह आयतन कहे हैं न? छह आयतन नहीं कहे? वे तो व्यवहार हैं। आहाहा! भाई ने लिखा है। छह आयतन—देव सेवा, गुरु पूजा आदि छह आयतन। वह आयतन तो व्यवहार है, पुण्य है। आयतन अर्थात् धर्म का स्थान वह तो आत्मा है। मन्दिर है, वह तो व्यवहार है, वह तो बाहर है। वह तो पुण्य का निमित्त है। आहाहा!

वह मिथ्यात्व का महान पाप बाँधता है। उस पाप से चतुर्गति संसार में भ्रमता है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि जीव पुण्यादि करे और ... संसार में छूट जायेगा उसे। और मिथ्यादृष्टि ऐसे पाप करे... आहाहा! वह पाप से संसार में भटकेगा। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६३

अथ पूर्वसूत्र द्वयोक्तं पुण्यपापफलं दर्शयति -

१८७) पावेँ णारउ तिरिउ जिउ पुण्णेँ अमरु वियाणु।
मिस्सेँ माणुस-गइ लहइ दोहि वि खइ णिव्वाणु।।६३।।

पापेन नारकः तिर्यग् जीवः पुण्येनामरो विजानीहि।
मिश्रेण मनुष्यगतिं लभते द्वयोरपि क्षये निर्वाणम्।।६३।।

पावें इत्यादि। पावें पापेन णारउ तिरिउ नारको भवति तिर्यग्भवति। कोऽसौ। जिउ जीवः पुण्णें अमरु वियाणु पुण्येनामरो देवो भवतीति जानीहि। मिस्सें माणुस-गइ लहइ मिश्रेण पुण्यपापद्वयन मनुष्यगतिं लभते। दोहि वि खइ णिव्वाणु द्वयोरपि कर्मक्षयेऽपि निर्वाणमिति। तद्यथा। सहजशुद्ध-ज्ञानान्दैकस्वभावात्परमात्मनः सकाशाद्विपरीतेन छेदनादिनारक-तिर्यग्गति-दुःखदानसमर्थेन पापकर्मोदयेन नारकतिर्यग्गतिभाजनो भवति जीवः। तस्मादेव शुद्धात्मनो विलक्षणेन पुण्योदयेन देवो भवति। तस्मादेव शुद्धात्मनो विपरीतेन पुण्यपापद्वयेन मनुष्यो भवति। विलक्षणेन पुण्योदयेन देवो भवति। तस्मादेव शुद्धात्मनो विपरीतेन पुण्यपापद्वयेन मनुष्यो भवति। तस्यैव विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावेन निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्-श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपेण शुद्धौपयोगेन मुक्तो भवतीति तात्पर्यार्थः। तथा चोक्तम् - 'पावेण णरयतिरियं गम्मइ धम्मेण देवलोयम्मि। मिस्सेण माणुसत्तं दोण्हं पि खएण णिव्वाणं।।'।।६३।।

आगे पहले दो सूत्रों में कहे गये पुण्य और पाप फल हैं, उनको दिखाते हैं -

पापोदय से नारक् तिर्यक् पुण्योदय से सुरगति हो।
मिश्र भाव से नर-गति होती उभय नाश से मुक्ति हो।।६३।।

अन्वयार्थ :- [जीवः] यह जीव [पापेन] पाप के उदय से [नारकः तिर्यग्] नरकगति और तिर्यंचगति पाता है, [पुण्येन] पुण्य से [अमरः] देव होता है, [मिश्रेण] पुण्य और पाप दोनों के मेल से [मनुष्यगति] मनुष्यगति को [लभते] पाता है, और [द्वयोरपि क्षये] पुण्य-पाप दोनों के ही नाश होने से [निर्वाणम्] मोक्ष को पाता है, ऐसा [विजानीहि] जानो।

भावार्थ :- सहज शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव जो परमात्मा है, उससे विपरीत जो

पापकर्म उसके उदय से नरक तिर्यंचगति का पात्र होता है, आत्मस्वरूप से विपरीत शुभ कर्मों के उदय से देव होता है, दोनों के मेल से मनुष्य होता है, और शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत इन दोनों पुण्य-पापों के क्षय से निर्वाण (मोक्ष) मिलता है। मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है, वह शुद्धोपयोग निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप है। इसलिये इस शुद्धोपयोग के बिना किसी तरह भी मुक्ति नहीं हो सकती, यह सारांश जानो। ऐसा ही सिद्धान्त-ग्रन्थ में भी हरएक जगह कहा गया है। जैसे-यह जीव पाप से नरक तिर्यंचगति को जाता है, और धर्म (पुण्य) से देवलोक में जाता है, पुण्य-पाप दोनों के मेल से मनुष्यदेह को पाता है, और दोनों के क्षय से मोक्ष पाता है।।६३।।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ५, शुक्रवार
दिनांक-२६-११-१९७६, गाथा-६३-६४, प्रवचन-१४३

परमात्मप्रकाश, ६३वीं गाथा है। ६० और ३। क्या कहते हैं? **आगे पहले दो सूत्रों में कहे गये पुण्य और पाप फल हैं, उनको दिखाते हैं**—क्या कहते हैं? अरिहन्तदेव, वीतरागी निर्ग्रन्थ सन्त मुनि और शास्त्र की भक्ति करता है, वह पुण्य बाँधता है। धर्म नहीं। देव-गुरु-शास्त्र परवस्तु है न? उनकी भक्ति करता है, वह पुण्य बाँधता है और अरिहन्त वीतरागदेव, गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्त और शास्त्र—वीतराग ने कहे हुए शास्त्र, उनकी निन्दा करता है, वह पाप बाँधता है। अब दोनों का फल बतलाते हैं। पुण्य का फल क्या और पाप का फल क्या? समझ में आया? दो गाथा हुई। ६१ और ६२।

६१ में यह कहा कि सच्चे वीतराग सर्वज्ञ जिनवरदेव, जिन्हें एक समय में तीन काल—तीन लोक ज्ञात हुए हैं और (वे) वीतरागस्वरूप हैं, उनकी प्रशंसा, भक्ति करता है तो पुण्य बाँधता है और गुरु निर्ग्रन्थ मुनि वीतरागी सन्त, जिन्हें परम प्रचुर आनन्द का संवेदन है। परम आनन्द का प्रचुर वेदन है, ऐसे निर्ग्रन्थ सन्त, उनकी भक्ति में पुण्य बाँधता है। और भगवान के (कहे हुए) शास्त्र-वाणी की भक्ति करता है, वह पुण्य बाँधता है और देव-गुरु-शास्त्र की निन्दा करता है, वह पाप बाँधता है। इसका फल अब बतलाते हैं। है न?

आगे पहले दो सूत्रों में कहे गये पुण्य और पाप फल हैं, उनको दिखाते हैं—

१८७) **पावें णारउ तिरिउ जिउ पुण्णें अमरु वियाणु।**
मिस्सें माणुस–गइ लहइ दोहि वि खड़ णिव्वाणु।।६३।।

अन्वयार्थ :- यह जीव पाप के उदय से... जो देव–गुरु–शास्त्र की निन्दा करता है, उसके पाप के कारण से **नरकगति और तिर्यंचगति पाता है,...** समझ में आया? और **पुण्य से...** देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति करने से जो पुण्य होता है, उस पुण्य से क्या फल मिलता है? **देव होता है...** आहाहा! **पुण्य से देव होता है...**

मुमुक्षु : मनुष्यपना गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्यपना बीच में फिर आयेगा।

पुण्य और पाप दोनों के मेल से मनुष्यगति को पाता है... आहाहा! यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि सच्चे देव अरिहन्त वीतराग त्रिलोकनाथ परमेश्वर और निर्ग्रन्थ वीतरागी सन्त, जिन्हें छठवें गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव होकर अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र वेदन है, ऐसे सन्त मुनि और सर्वज्ञ ने कहे हुए शास्त्र। सर्वज्ञ परमात्मा की दिव्यध्वनि में से रचे हुए शास्त्र, उनकी जो भक्ति करता है तो पुण्य (बँधता) है। उससे धर्म नहीं होता। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें नहीं लिखा कि धर्म नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी आता है न! आता है अभी।

देव होता है, पुण्य और पाप दोनों के मेल से मनुष्यगति को पाता है और पुण्य-पाप दोनों के ही नाश होने से... आया? शुभ और अशुभ दो भाव हैं, उसका नाश करने से अपना आत्मस्वभाव जो वीतराग परमेश्वर ने देखा है, ऐसे वीतरागस्वभाव में शुद्ध उपयोग में रहता है, उसे धर्म होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! समझ में आया?

मुमुक्षु : मोक्ष को पाता है, ऐसा लिखा है, धर्म कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म मोक्ष का उपाय है। चार गति का उपाय शुभाशुभभाव है तो मोक्ष का उपाय शुद्धोपयोग है। शुभभाव, वह अशुद्ध उपयोग है। परन्तु शुभभाव

से पुण्य बँधता है और पुण्य बन्ध के कारण से स्वर्ग मिलता है और पाप के कारण से, देव-गुरु-शास्त्र की निन्दा के पाप के कारण से नरकयोनि और तिर्यंचयोनि मिलती है। और पाप तथा पुण्य की मिश्र दशा से मनुष्यपना होता है। मोक्ष नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दोनों का नाश करने से **मोक्ष को पाता है।** देखो! शुद्ध उपयोग से मोक्ष मिलता है। शुद्ध उपयोग पुण्य और पाप के दोनों भाव अशुद्ध उपयोग है। अशुद्ध उपयोग से तो बन्ध होता है और बन्ध से चार गति मिलती है। समझ में आया? आहाहा! और इस शुभभाव से भिन्न मेरी चीज़ है, बारीक-सूक्ष्म बात है।

सम्यग्दर्शन कैसे होता है? कोई देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करने से तो पुण्य बँधता है, सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन तो अपना आत्मा शुद्ध चिदानन्द ध्रुवस्वभाव, **'भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'।** यह कुन्दकुन्दाचार्यदेव की ११वीं गाथा में यह कहा कि पुण्य-पाप से भिन्न पड़कर, अपना त्रिकाली सत्यार्थ भगवान शुद्धात्मा जो है, उसकी दृष्टि करना, इसका नाम शुद्ध उपयोग, उसमें समकित है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! वीतरागमार्ग... अन्यत्र ऐसी बात है नहीं। जैन परमेश्वर वीतराग में भी दिगम्बरधर्म जैनधर्म, वह वीतराग का मार्ग है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग है नहीं।

यहाँ तो यह कहा कि जिसे शुभभाव और अशुभभाव होता है, उसे चार गति मिलती है। जिसे शुद्धभाव होता है... आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध परमात्मस्वरूप है। आगे आयेगा अभी। वह चैतन्यस्वरूप ही, परमात्मस्वरूप अपना निज स्वरूप है। उसकी दृष्टि से शुद्ध उपयोग होता है और वह शुद्ध उपयोग मोक्ष का कारण है। आहाहा! सूक्ष्म बात बहुत, भाई! समझ में आया? देव-गुरु की भक्ति, यात्रा, वह सब शुभभाव है, वह पुण्यभाव है। पुण्यभाव से स्वर्ग मिले। उससे मोक्ष नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रमुनि दिगम्बर १३०० वर्ष पहले हुए। कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले संवत् ४९ में हुए। वे कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास गये थे। सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में विराजते हैं, उनके पास गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर यह समयसार, प्रवचनसार, नियमसार (आदि) शास्त्र बनाये। तत्पश्चात्

७०० वर्ष बाद यह योगीन्द्र आचार्य, दिगम्बर सन्त वनवासी हुए, उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया। आहाहा! मुनि तो वनवास में ही रहते थे। आहाहा! और अपना आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, उस आनन्द के वेदन में रहते थे। आहाहा! समझ में आया?

कल यह कहा था न? पाँचवीं गाथा। नहीं? कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि, सर्वज्ञ परमात्मा जो महावीर केवलज्ञानी परमात्मा, वे निर्मल विज्ञानघन आत्मा में निमग्न थे। आया था? पाँचवीं गाथा में, समयसार। यह सर्वज्ञ परमेश्वर महावीर आदि तीर्थंकर, केवली, अपना आत्मा निर्मल विज्ञानघन आत्मा अन्दर है... आहाहा! विज्ञानघन आत्मा अन्दर निर्मल है, उसमें वे केवली निमग्न होते हैं। और निर्मल विज्ञानघन में निमग्न हों, वे मुनि। पाँचवीं गाथा में आया है। ठेठ महावीर भगवान से लेकर हमारे गुरु, कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि हमारे गुरु कैसे थे? कि निर्मल विज्ञानघन भगवान में निमग्न थे। आहाहा! आया न पाँचवीं गाथा में? कल बताया था। आहाहा!

ऐसे मुनि की प्रशंसा, भक्ति आदि करता है तो पुण्यबन्ध होता है और भगवान ने कहे हुए शास्त्र—यह वाणी सर्वज्ञ की कही हुई, यह पौने चार लाख अक्षर उत्कीर्ण कराये हैं न, यह भगवान की वाणी है, दिगम्बर सन्तों की। इस वाणी की भक्ति करें तो पुण्यबन्ध होता है, निन्दा करे तो पापबन्ध होता है। आहाहा! और पुण्य-पाप के दोनों भाव से रहित होकर... आहाहा! अपना शुद्ध चिद्घन आत्मा में मग्न होता है, लीन होता है, इतना शुद्ध उपयोग है। वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? शान्तिभाई! ऐसी बात है।

चार गति कैसे मिलती है? और मोक्षगति कैसे मिलती है? यह पाँच गति की बात है। नरकयोनि और तिर्यंचयोनि तो पाप से मिलती है और मनुष्ययोनि मिश्र से मिलती है, देव(योनि) पुण्य से मिलती है और मोक्ष शुद्धोपयोग से मिलता है। आहाहा! ऐसी बात, भाई! सूक्ष्म बात, बापू! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव की दिव्यध्वनि में आया है, वह यह बात है। समझ में आया? यह आया? **'द्वयोरपि क्षये'**। कहाँ लिखा है? धन्नालालजी! गाथा नहीं, नीचे शब्दार्थ में। **पुण्य-पाप दोनों के नाश होने से मोक्ष को पाता है, ऐसा... 'विजानीहि' जानो**। आहाहा! शब्दार्थ में है। शब्दार्थ में है न?

भगवान आत्मा शुद्ध चिद्घन आनन्दकन्द निर्मल विज्ञानघन, उसमें दृष्टि करके एकाग्र होता है तो शुभाशुभभाव से रहित होता है। ऐसे धर्म से, उसे शुद्धोपयोग कहते हैं, उससे मुक्ति होती है। आहाहा! भाषा तो सादी है, भाव भले ऊँचे हों। वस्तु तो यह है। अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सर्वज्ञ दिव्यध्वनि द्वारा यह कहते आये हैं। वह यह योगीन्द्रदेव कहते हैं। यह तो पहले शब्दार्थ कहा।

भावार्थ :- सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव... यहाँ 'एक' शब्द रह गया है। संस्कृत में है, नीचे रह गया है। कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? इस देह से भिन्न है, कर्म से भिन्न है, और पुण्य-पाप के विकल्प जो राग है, उससे भी भिन्न भगवान है। आहाहा! नौ तत्त्व हैं न? तो नौ तत्त्व में जो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम होते हैं, वे तो पुण्यास्रव, पुण्य है और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, वह पाप है। वह पापतत्त्व है। पहला पुण्यतत्त्व है। दोनों आस्रवतत्त्व हैं और भगवान आत्मा उनसे भिन्न है, ज्ञायकतत्त्व है। आहाहा! कैसा ज्ञायक है?

सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा है,... वह अपना स्वरूप, हों! आहा! परमात्मा अर्थात् वीतराग, वह नहीं। **सहज शुद्ध ज्ञानानन्द एक स्वभाव जो परमात्मा अपना स्वरूप।** ओहोहो! **है,...** सहज-स्वाभाविक, शुद्ध ज्ञानानन्द। ज्ञानानन्द-ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा है। आहाहा! ऐसा जो अपना आत्मा परमात्मा है, **उससे विपरीत जो पापकर्म...** पाप परिणाम हैं, वे तो विपरीत हैं। आहाहा! ज्ञानानन्द स्वभाव जो अपना परमात्मस्वरूप, उससे पाप, वह विपरीत भाव है। आहाहा! **उसके उदय से नरक-तिर्यंच गति का पात्र होता है,...** आहाहा!

आत्मस्वरूप से विपरीत शुभ कर्मों के... पुण्य। देखो! आहाहा! भगवान आत्मा स्वाभाविक आनन्दकन्द ज्ञानानन्द, उससे शुभकर्म कहो या पुण्यभाव कहो, वह उससे विपरीत है। आत्मा के स्वभाव से पुण्यभाव, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का भाव, वह पुण्यभाव आत्मस्वभाव से विपवरीत है। है अन्दर? सेठ! आहाहा! दोनों विपरीत। आहाहा! सहजात्मस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप प्रभु, ज्ञान और आनन्द, अनाकुल आनन्द और अनाकुल अतीन्द्रिय ज्ञान, उसकी मूर्ति प्रभु आत्मा तो है। आहाहा! उस

आत्मा से शुभभाव विपरीत है। समझ में आया? अब विपरीत है, वह मदद कैसे करे? कहते हैं कि शुभक्रिया है, वह व्रत, नियम करो, उससे निश्चय होगा। यहाँ तो इनकार करते हैं कि भगवान शुद्ध आत्मा से तो शुभभाव विपरीत है। विपरीत से अविपरीत आत्मा प्राप्त होगा? सूक्ष्म बात, भाई! मार्ग बहुत (सूक्ष्म)। आहाहा!

उसके उदय से नरक तिर्यंचगति का पात्र होता है, आत्मस्वरूप से विपरीत शुभ कर्मों के उदय से देव होता है,... आहाहा! स्वर्ग मिले, पुण्य से मोक्ष नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र, वे परपदार्थ हैं, अपनी निज चीज़ नहीं। तो परपदार्थ की भक्ति आदि से, शुभभाव से तो पुण्य होता है। आहाहा! स्वभाव भगवान आत्मा का, ज्ञानानन्द, सहज स्वरूप प्रभु के आश्रय से-सन्मुखता से जो भाव होता है, वह शुद्ध (भाव है)। उस शुद्ध (भाव से) मुक्ति होती है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग कभी सुनने को मिला नहीं। दूसरे भाग की ६३वीं गाथा चलती है। आहाहा!

आत्मस्वरूप—भगवान ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप, ऐसा जो अपना आत्मा, उससे पुण्य शुभकर्म विपरीत है। आहाहा! विपरीत से आत्मा का अविपरीत सम्यग्दर्शन होता है? सम्यग्दर्शन बिना व्रत करे, तप करे आदि, वे सब तो शुभभाव हैं। वह तो आत्मस्वरूप से विपरीत है। आहाहा! और सम्यग्दर्शन बिना जितने व्रत, तप आदि हैं, वे तो निरर्थक हैं। मात्र मिथ्यात्वसहित पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि पुण्य और पाप के दोनों भाव, अपने आत्मस्वरूप से विपरीत भाव हैं। जिनसे बन्ध पड़े, वे विपरीत भाव हैं। आहाहा! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, षोडशकारणभावना, वह भी शुभभाव बन्ध का कारण है। आहाहा! वह शुभभाव भी आत्मस्वभाव से विपरीत भाव है। कठिन बात है, भाई! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग वीतराग परिणति से प्राप्त होता है।

मुमुक्षु : इतना कठिन विषय क्यों करते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या है? कठिन है या सरल है? इसका स्वरूप ही ऐसा है। क्या कहते हैं? देखो न! आहाहा!

शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत इन दोनों पुण्य-पापों के क्षय से निर्वाण (मोक्ष)

मिलता है। है ? शुभकर्म के उदय से देव और दोनों के मेल से मनुष्य होता है। और **शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत इन दोनों पुण्य-पापों के...** आहाहा! **क्षय से निर्वाण (मोक्ष) मिलता है।** पुण्य-पाप से मोक्ष नहीं होता, उसका नाश करने से मोक्ष होता है। आहाहा! अनन्त काल हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन...' आता है न? भाई! यह छहढाला में आता है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' आहाहा! यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण सब राग और दुःख है। आहाहा! राग से भिन्न अपने आत्मज्ञान बिना सुख का अंश भी मिलता नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भगवान! परन्तु लोगों को सुनने को मिला नहीं, इसलिए फिर बाहर में घुस गये कि यह करते-करते होगा। शुभभाव करते-करते (शुद्धता होगी)। लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी। सेठ! यह लहसुन... लहसुन। इसी प्रकार शुभभाव करते-करते सम्यग्दर्शन और ज्ञान होगा, तीन काल में नहीं होगा। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेश्वरदेव की वाणी कुन्दकुन्दाचार्यदेव साक्षात् सुनकर आये। भगवान के पास गये थे। भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान अभी महाविदेह में विराजते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर केवलज्ञानीरूप से बीस तीर्थंकर विराजते हैं। सीमन्धर भगवान विराजते हैं, वहाँ गये थे। मनुष्यपने में (विराजते हैं)। मोक्ष में नहीं। महावीर आदि सबका मोक्ष हो गया, णमो सिद्धाणं में गये। और सीमन्धर भगवान आदि विराजते हैं, वे णमो अरिहंताणं में हैं। सिद्ध तो अभी अरबों वर्ष बाद होंगे। अरबों वर्ष बाद सिद्ध होंगे। अभी तो भगवान अरिहन्त पद में हैं। महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् मौजूद विराजते हैं विदेह (में) विहरमान भगवान। कुन्दकुन्दाचार्यदेव वहाँ गये थे। आहाहा! दिगम्बर सन्त आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर शास्त्र बनाये। उन सब शास्त्रों की छाप परमात्मप्रकाश आदि सभी शास्त्रों में पड़ी है। समझ में आया? यही बात लेते हैं न? भाई! पश्चात् भी निश्चय प्रतिक्रमण लेंगे। सब समयसार की (छाप है)। आहाहा!

वहाँ कहा न? चाण्डालिनी के दो पुत्र हैं। एक ब्राह्मण के घर में पला है और

एक चाण्डाल के घर रहा। है तो दोनों चाण्डालिनी के पुत्र। इसी प्रकार पुण्य और पाप दोनों विभाव के पुत्र हैं। वे धर्म के पुत्र—स्वभाव के नहीं हैं। विभाव है। पुण्य और पाप दोनों विभाव हैं। आहाहा! यह कहते हैं न यहाँ? देखो न!

शुद्धात्मस्वरूप से विपरीत इन दोनों पुण्य-पापों के क्षय से (मोक्ष) मिलता है। आहाहा! अरे! एक बात भी सत्य इसे बैठनी चाहिए न! सत्य का स्वीकार नहीं और असत्य का स्वीकार अनन्त काल से हुआ है, उसे चार गति मिटी नहीं। **मोक्ष का कारण...** देखो! **एक शुद्धोपयोग है...** आहाहा! मोक्ष का कारण तो (शुद्धोपयोग है)। शुभ-अशुभभाव तो अशुद्ध उपयोग है। दोनों अशुद्ध हैं। अशुद्ध के दो भाग हैं। शुभ और अशुभ। और उनसे रहित **मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है,...** आहाहा! यह शुद्धोपयोग किस प्रकार होता है?

यह शुद्धोपयोग निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ, उसकी सम्यक् श्रद्धा, शुद्धात्मतत्त्व की सम्यक् श्रद्धा-सम्यग्दर्शन। स्वसन्मुख की दृष्टि होकर जो श्रद्धा हुई, वह सम्यग्दर्शन है और सम्यग्ज्ञान। निज शुद्धात्मा, ऐसा पाठ है। **यह शुद्धोपयोग निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान...** परमात्मा और देव-गुरु की श्रद्धा, वह तो शुभभाव है। आहाहा! अरे! इसे सत्य मिलता नहीं। यहाँ तो पर की भक्ति आदि है, वह वीतराग आदि सब परपदार्थ है। वह तो शुभभाव है। और यह निज शुद्धात्मा। यह निज अन्दर शब्द पड़ा है। निज शुद्धात्मतत्त्व। भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी सम्यक् श्रद्धा। अन्तर्मुख में ज्ञान की पर्याय में शुद्धात्मा का ज्ञान होकर अनुभूति होकर रुचि होना, उसका नाम सम्यक् श्रद्धान है। आहाहा! सत्य। सम्यक् अर्थात् सत्य श्रद्धान। सत्यस्वरूप जो भगवान पूर्णानन्दस्वरूप सहजानन्द है। आहाहा! सहजात्मस्वरूप। स्वयं सहज स्वरूप—अकृत्रिम अकृत अनादि-अनन्त जो चिदानन्द प्रभु आत्मा है, उसका सम्यक् श्रद्धान शुद्ध उपयोग में होता है। आहाहा! अब अभी ऐसा कहते हैं कि अभी शुभ उपयोग ही है, अभी शुद्ध उपयोग है नहीं। शुद्ध उपयोग नहीं तो इसका अर्थ कि धर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान... यह सम्यग्दर्शन। निज शुद्धात्मा पूर्णानन्द सहजात्मस्वरूप के सन्मुख होकर, निमित्त, पर्याय और राग से विमुख होकर, संयोगी चीज़ भगवान आदि से भी विमुख होकर, उनकी भक्ति में राग हुआ, उससे भी विमुख होकर और एक समय की राग को जाननेवाली पर्याय है, उससे भी विमुख होकर, सहजात्मस्वरूप का जो सम्यक् श्रद्धान होता है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! इस निज शुद्धात्मतत्त्व के सम्यक्ज्ञान, ऐसा लेना। सम्यक्श्रद्धान, सम्यक्ज्ञान, ऐसा लेना। यह सम्यक् तीनों को लागू पड़ता है। समझ में आया? आहाहा! जिसमें निज शुद्धात्मतत्त्व की अन्तर्मुख होकर सम्यक्श्रद्धान (हो)। वह निज शुद्धात्मा का सम्यक्ज्ञान; शास्त्र का ज्ञान या दूसरा ज्ञान नहीं। आहाहा! निज शुद्धात्मा भगवान आत्मा का अन्तर सम्यक्ज्ञान और निज शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् आचरण। आहाहा! यह चारित्र। पंच महाव्रत का विकल्प आदि, वह चारित्र नहीं, वह तो राग है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है।

शुद्धात्मा पवित्र भगवान सहजात्मस्वरूप परमात्मा सर्वज्ञ ने कहा, ऐसे सहजात्मस्वरूप में आचरण करना, स्वरूप में रमना, स्वरूप में जमना, इसका नाम आचरण और चारित्र है। आहाहा! बात-बात में अन्तर। यह कहे, पंच महाव्रत और समिति, गुप्ति और यह सब चारित्र है। वे तो सब बाहर के विकल्प हैं। सहजात्मस्वरूप निज के सम्यक् आचरणरूप। आहाहा! क्या कहते हैं वह? यह शुद्ध उपयोग कैसा है, वह कहते हैं। **मोक्ष का कारण एक शुद्धोपयोग है,...** आहाहा! वह कैसा है? निज शुद्धात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, भगवान निज आत्मा का सम्यग्ज्ञान और निज आत्मा के आनन्द में रमणता। **इसलिए उसे शुद्धोपयोग के बिना किसी तरह भी मुक्ति नहीं हो सकती,...** 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' उमास्वामी का तत्त्वार्थसूत्र का पहला सूत्र है। दशलक्षणीपर्व में वांचन होता है न? 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' यह सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र किसे कहते हैं?

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले आ गया। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो शुभराग है, ऐसा आया।

निज शुद्धात्मतत्त्व की सम्यक् अनुभवदृष्टि, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। निज आत्मा भगवान पूर्णानन्द स्वरूप 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है? समयसार नाटक, बनारसीदास। 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो।' चेतनरूप। मैं तो चैतन्यरूप हूँ। आहाहा! चेतनाप्रकाश। अनन्त चेतना का प्रकाश वह मैं आत्मा हूँ। आहाहा! अनूप अमूरत। जिसे किसी की उपमा नहीं (दी जा सकती)। अमूरत अर्थात् जिसमें रंग, गन्ध, स्पर्श, रस—मूर्तपना है नहीं। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आहाहा! बनारसीदास समयसार नाटक में कहते हैं। है ऐसा। कैसा है? कहते हैं। 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो' परन्तु पर में, सावधानी राग में, पुण्य में सावधानी करके महातम—महा अन्धकार उत्पन्न किया। 'मोह महातम आतम अंग' स्वभाव जो शुद्ध चैतन्य के अंग में, 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग' राग का संग किया, पुण्य आदि का संग किया। 'महातम घेरो।' अन्धकार का घेरा हो गया। आहाहा!

'ज्ञानकला उपजी अब मोकूं, कहूं गुणनाटक आगम केरो, तासु प्रसाद सधै शिवमारग, वेगी मिटे घटवास वसेरो।' यह बनारसीदासजी (कृत)। आहाहा! समयसार नाटक। मुझे मेरी ज्ञानकला उत्पन्न हुई। वह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न मेरी ज्ञानशक्ति में से ज्ञानकला प्रगट हुई। 'ज्ञानकला उपजी अब मोकूं, कहूं गुणनाटक आगम केरो,' समयसार आत्मा को मैं इस शास्त्र से कहूँगा। 'तासु प्रसाद सधै शिवमारग।' यह चैतन्यमूर्ति भगवान की श्रद्धा, ज्ञान और आनन्द में रमणता के प्रसाद से 'सधै शिवमारग।' मोक्ष का मार्ग उससे सिद्ध होता है। आहाहा! 'वेगी मिटे घटवास वसेरो।' यह घट अर्थात् शरीर में रहना, वह छूट जायेगा। आहाहा! यह तो तुम्हारी हिन्दी भाषा है। बनारसीदास (कृत समयसार नाटक है न)। छहढाला, सब है न? यह तो सब देखा है न! हमने तो हजारों शास्त्र देखे हैं। श्वेताम्बर के करोड़ों श्लोक देखे हैं, परन्तु यह चीज़ कहीं नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

इसलिए इस शुद्धोपयोग के बिना... शुभ उपयोग से कभी मुक्ति, धर्म नहीं होता। कहो, मीठालालजी! यह तो अभी सब ऐसा कहते हैं, भगवान की भक्ति करो, व्रत करो, यात्रा करो, उसमें से कल्याण हो जाये। लो! सम्मेदशिखर। 'एक बार वंदे जो

कोई' आता है या नहीं? 'तांहि नरक पशुगति न होई।' उसमें क्या हुआ? एक बार नरकगति नहीं मिली तो। गति तो मिटी नहीं। वह तो शुभभाव है। आहाहा! 'एक बार वंदे जो कोई, तांहि नरक पशुगति न होई।' शुभभाव हो तो स्वर्ग में जायेगा। परन्तु उससे भव का अभाव नहीं होगा। आहाहा!

भव का अभाव तो भगवान शुद्धात्म चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वभाव, जिसमें शुभाशुभभाव की गन्ध नहीं। आहाहा! और जिसमें आनन्द की गन्ध है, आनन्द का स्वाद है अन्दर। आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम, रसस्वादत सुख ऊपजे अनुभव ताकौ नाम।' बनारसीदास, समयसार नाटक में सब आया है। यह समयसार (कलश) में से बनाया है। आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावतै' भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का पिण्ड, ऐसी वस्तु को विचारते—ध्यान करने से, 'वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम।' मन का विकल्प वहाँ स्थिर हो जाता है। अन्दर स्वरूप में स्थिर हो जाता है। आहाहा! उसे धर्म और समकित कहा जाता है। आहाहा! 'वस्तु विचारत ध्यावतै मन पावै विश्राम, रसस्वादत सुख ऊपजे...' आत्मा के अतीन्द्रिय रस का स्वाद अनुभव में आवे, उसे अनुभव कहते हैं। वह अनुभव मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? 'रसस्वादत सुख ऊपजे' आहाहा! किसका रस? यह मैसूर का रस, दूध का रस, वह तो जड़ है, जड़। जड़ का स्वाद तो आत्मा को कभी आता नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। मौसम्बी, मैसूर... मैसूर कहते हैं न? मैसूर। मैसूरपाक वह तो मिट्टी-धूल है।

मुमुक्षु : बहुत अच्छा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अच्छा नहीं लगता। यह जड़ का स्वाद तो कभी अज्ञानी आत्मा को भी आया नहीं। उसकी ओर लक्ष्य करके 'यह ठीक है' ऐसे राग का स्वाद उसे आता है। यह तो अरूपी भगवान है। वह तो रूपी चीज़ जड़ है। अरूपी कभी रूपी को स्पर्शता नहीं। आहाहा! यह तो तीसरी गाथा आयी थी न?

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्शता नहीं। तीसरी गाथा, समयसार। अपने आत्मा में और रजकण में जो कुछ अपने गुण-पर्याय है, उसे वह चूमता है। परद्रव्य को कभी छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा! समझ में आया? तीसरा गाथा में है। समयसार।

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

यह कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की गाथा है।

मुमुक्षु : यह तो समयसार की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समयसार की है। भगवान की वाणी है न यह? निर्ग्रन्थ मुनियों की वाणी है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मप्रकाश....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब भगवान की वाणी आयी है। सन्त है, दिगम्बर है, मुनि हैं। आहाहा! दिगम्बर मुनि अर्थात्... आहाहा! जिन्हें अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द के... उभरा को क्या कहते हैं? उफान। अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आता है। दूध में उफान आता है, वह तो पोला है। दूध है न, दूध? वह तो पोला है। वहाँ कहाँ दूध बढ़ गया है? पोला उफान आता है। पोला समझे? पोला-खाली। आत्मा में जो अतीन्द्रिय आनन्द भरा है, आहाहा! उसके अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द का उफान आता है, उसका नाम रसास्वाद कहते हैं।

मुमुक्षु : यह आप हमको क्यों नहीं करा देते?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करा दे? कौन करे? भगवान भी करा देते हैं? आहाहा! निज का अनुभव निज से होता है या पर से होता है? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **इसलिए इस शुद्धोपयोग के बिना किसी तरह भी मुक्ति नहीं हो सकती,...** यह शुभ उपयोग करते-करते धर्म होगा और मुक्ति होगी, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? **यह सारांश जानो।** देखो! इस शास्त्र का यह सारांश है। आहाहा! शुभभाव से कभी धर्म नहीं होता और मुक्ति नहीं होती।

मुमुक्षु : परम्परा से होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा से भी उसे नहीं होती। वह तो सम्यग्दृष्टि को शुभ से भिन्न अनुभव हुआ है, उसे जो पुण्य होता है, वह परम्परा अर्थात् फिर नाश करके

वीतराग होगा। अभी पुण्य है, साक्षात् तो बन्ध का कारण है। परन्तु पश्चात् स्वभाव का आश्रय लेकर उसका नाश करेगा तो परम्परा मुक्ति का आरोप दिया गया है। राग कहाँ मुक्ति का कारण है? वीतरागमार्ग में राग कहाँ (कारण होता है)? राग तो बन्ध का कारण है। आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! बहुत सूक्ष्म। इसने पूर्व में अनन्त काल में नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर साधु होकर अनन्त बार अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। नौवें ग्रैवेयक। खड़े पुरुष के आकार यह चौदह ब्रह्माण्ड है न। ग्रैवेयक अर्थात् गर्दन। उस स्थान में नौ ग्रैवेयक हैं। वहाँ भी अनन्त बार गया। अनन्त बार पुद्गलपरावर्तन किये। अनन्त चौबीसी (गयी), अनन्त भव वहाँ किये। ओहोहो! दिगम्बर साधु होकर पंच महाव्रत और बराबर निरतिचार क्रियाकाण्ड किया परन्तु सम्यग्दर्शन नहीं। 'आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आहाहा! इसका अर्थ तो यह किया कि पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पालता है, वह दुःख है। राग है न? वह तो राग है, दुःख है। ऐसे मुनिव्रत अनन्त बार धारण किये, परन्तु आत्मा का ज्ञान हुआ नहीं। आत्मा का ज्ञान नहीं हुआ, सुख नहीं हुआ। आहाहा! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू!

मुमुक्षु : जब काललब्धि पके, तब होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : काललब्धि तो अपने पुरुषार्थ से पकती है या ऐसी की ऐसी? 'भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहीं आत्मार्थ।' अपने स्वभाव-सन्मुख पुरुषार्थ करे तो काललब्धि पक जाती है।

मुमुक्षु : ....ऐसा लिखा है,... क्योंकि काललब्धि नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लिखते हैं। श्वेताम्बर में आता है। वह तो अपने उसमें भी आता है। 'स्वात्मानुभव मनन' दीपचन्दजी का अनुभवप्रकाश, चिद्विलास है न? है, एक वस्तु है। परन्तु वह काललब्धि...

मैं तो पहले से ऐसा कहता हूँ, कि काललब्धि है, उसका ज्ञान किसको होता है? कि काललब्धि है, काललब्धि है, ऐसा इसे बोलना है? काललब्धि का... पर्याय में जब पुरुषार्थ करके स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यक् आनन्द आया तो काललब्धि इस समय पकी, ऐसा ज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में टोडरमलजी ने

लिखा है कि एक कारण जहाँ है, वहाँ पाँचों कारण साथ में है ही। स्वभाव-सन्मुख जो पुरुषार्थ किया, उसी समय पाँचों समवाय साथ में है। नौवें अध्याय में कहा। टोडरमलजी (कृत) मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमलजी ने बहुत काम किया है। ओहो! टोडरमलजी ने आचार्यों के हृदय खोल दिये हैं।

यह तो हमारे सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा हुई थी। बड़ी चर्चा हुई थी। अपने पुरुषार्थ से होता है। काललब्धि कोई वस्तु नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में नौवें अध्याय में लिया है। काललब्धि कोई वस्तु नहीं। जिस समय पुरुषार्थ से धर्म हुआ, उसका नाम काललब्धि है। समझ में आया? हम सम्प्रदाय में थे, तब यह चर्चा बहुत चलती थी। सत्य की खबर नहीं।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय में किसी ने माना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह माननेवाले आये न।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय छोड़ने के बाद....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु आये न! सम्प्रदाय में से आये हैं न! स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी श्वेताम्बर में से हजारों लोग आये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आयी है, खबर है। परन्तु अब व्याख्यान पूरा हो गया। दस मिनिट है। क्या कहते हैं, समझ में आया?

इसलिए इस शुद्धोपयोग के बिना... अपना आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्यघन है, उसके शुद्ध उपयोग बिना शुभभाव से तीन काल में कभी मुक्ति नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, यात्रा, पूजा, व्रत, नियम वह सब शुभभाव है। तो शुभभाव से मुक्ति तीन काल में कभी नहीं होती। शुभभाव बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आता है, अशुभ से बचने (के लिये शुभ) भाव आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा! समझ में आया? यह कहते हैं, देखो!

शुद्धोपयोग के बिना किसी तरह भी मुक्ति नहीं हो सकती,... अपने पुण्य-पाप

के भाव रहित, शुभ-अशुभभाव रहित निज आत्मा का शुद्ध उपयोग का व्यापार होने के अतिरिक्त दूसरे किसी (उपाय) से मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? **यह सारांश जानो। ऐसा ही सिद्धान्त-ग्रन्थ में भी हर एक जगह कहा गया है।** देखो! यह बात सिद्धान्त ग्रन्थों में वीतरागी सन्तों ने सब जगह कही है। प्रत्येक जगह यह बात की है। क्या? **जैसे—यह जीव पाप से नरक तिर्यंचगति को जाता है,...** यह दूसरे किसी ग्रन्थ की साक्षी है। **यह जीव पाप से...** हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोधभाव, वह पापभाव है। आहाहा! उस पापभाव से नरक और तिर्यंचगति को प्राप्त करता है। नरक में जाता है, या तिर्यंचगति (पाता है)। आहाहा! तिर्यंच शब्द से यह गाय, भैंस, ढोर, ऐसे तिरछे शरीर हैं न? मनुष्य के शरीर ऐसे सीधे हैं, पशु के शरीर ऐसे आड़े हैं। गाय, भैंस, घोड़ा, आड़ा हुए।

मुमुक्षु : ऐसे क्यों हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : वक्रता की थी इसलिए। क्या कहा? पूर्व में माया, कपट की बहुत तीव्रता की थी, इसलिए तिर्यंचगति आड़ी मिली। तिर्यंच अर्थात् तिरछा, तिरछा अर्थात् आड़ा। आड़ा को क्या कहते हैं? टेढ़ा। पूर्व में वक्रता बहुत की थी। माया, कपट, कुटिलता। इसलिए शरीर भी आड़ा हो गया। गाय, भैंस, गिलहरी। खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी। ऐसे आड़ा है न? छिपकली। उसे भगवान तिर्यंच कहते हैं। तिर्यंच का अर्थ तिरछा होता है, तिरछा का अर्थ टेड़ा होता है। पूर्व में बहुत वक्रता की थी तो शरीर भी टेड़ा हो गया। समझ में आया? माया, कपट, कुटिलता, दम्भ। यह सब वक्रता है। उसके फल में तिर्यंचगति मिलती है। आहाहा! और माँस खाये, शराब पीवे, कठोर व्यभिचार (करे) वह मरकर नरक में जाता है। समझ में आया? यह बड़े सेठिया और बड़ी मिल चलावे और मिलमालिक। पानी के प्रपात में चूहे मर जायें, सर्प मर जायें। आहाहा! महापाप। उससे ये नरक में जायेंगे। यहाँ भले करोड़ोंपति गिने जायें, अरबोंपति गिने जायें, परन्तु सब मरकर (नरक में जानेवाले हैं)। जिसमें ऐसे पाप हो, प्राणी मरे, चूहे मरे, अरे! बन्दर पानी में मर जाते हैं। आहाहा! ऐसे पाप से तो नरकगति मिलती है। आहाहा! और वक्रता से तिर्यंचगति है। और पुण्य-पाप की मिश्र

दशा से मनुष्यगति मिलती है। पुण्य से देवगति मिलती है। चार गति का अभाव इस शुद्धोपयोग से होता है। आहाहा! है?

और धर्म (पुण्य) से देवलोक में जाता है, पुण्य-पाप दोनों के मेल से मनुष्यदेह को पाता है, और दोनों के क्षय से मोक्ष पाता है। पाठ में दूसरा आधार दिया है। यह ६३ गाथा हुई। ओहोहो! ६१ में पुण्य बताया था। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, वह पुण्य है। ६२ में देव-गुरु-शास्त्र की निन्दा करने से पाप बताया था। यह पाप और पुण्य का फल यहाँ ६३ (गाथा) में बतलाया। समझ में आया? परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव दिगम्बर सन्त जंगलवासी थे, उन्होंने यह बनाया है। और यह दूसरा भाग (अधिकार) है। पहला भाग (अधिकार) तो पूरा हो गया। १२३ श्लोक। दो भाग (अधिकार) है न? दो अध्याय हैं। यह दूसरे अध्याय की ६३वीं गाथा है। आहाहा! ६४ गाथा।

गाथा - ६४

अथ निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनस्वरूपे स्थित्वा व्यवहारप्रतिक्रमण प्रत्याख्यानालोचनां त्यजन्तीति त्रिकलेन कथयति -

१८८) वंदणु णिंदणु पडिकमणु पुण्णहँ कारणु जेण।
करइ करावइ अणमणइ एक्कु वि णाणिण तेण।।६४।।

वन्दनं निन्दनं प्रतिक्रमणं पुण्यस्य कारणं येन।
करोति कारयति अनुमन्यते एकमपि ज्ञानी न तेन।।६४।।

वंदणु इत्यादि। वंदणु णिंदणु पडिकमणु वन्दननिन्दनप्रतिक्रमणत्रयम्। किं विशिष्टम्। पुण्णहं कारणु पुण्यस्य कारणं जेण येन कारणेन करइ करावइ अणुमणइ करोति कारयति अनुमोदयति, एक्कु वि एकमपि, णाणि ण तेण ज्ञानी पुरुषो न तेन कारणेनेति। तथाहि। शुद्ध-निर्विकल्पपरमात्मतत्त्वभावनाबलेन दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षास्मरणरूपाणामतीतरागादि-दोषाणां निराकरणं निश्चयप्रतिक्रमणं भवति, वीतरागचिदानन्दैकानुभूतिभावनाबलेन भाविभोगाकांक्षारूपाणां रागादिनां त्यजनं निश्चयप्रत्याख्यानं भण्यते, निजशुद्धात्मोपलम्भ-बलेन वर्तमानोदयागतशुभाशुभनिमित्तानां हर्षविषादादिपरिणामानां निजशुद्धात्मद्रव्यात् पृथक्करणं निश्चयालोचनमिति। इत्थंभूते निश्चयप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनत्रये स्थित्वा योऽसौ व्यवहारप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनत्रयं तन्त्रयानुकूलं वन्दननिन्दनादिशुभोपयोगं च त्यजन् स ज्ञानी भण्यते न चान्य इति भावार्थः।।६४।।

आगे निश्चयप्रतिक्रमण, निश्चयप्रत्याख्यान और निश्चयआलोचनारूप जो शुद्धोपयोग उसमें ठहरकर व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान और व्यवहार आलोचनारूप शुभोपयोग को छोड़े, ऐसा कहते हैं -

वन्दन निन्दन प्रतिक्रमण, ये पुण्यबन्ध के कारण हैं।
अतः न ज्ञानी करें-करायें अनुमोदन भी नहीं करें।।६४।।

अन्वयार्थ :- [वंदनं] पंचपरमेष्ठी की वंदना, [निंदनं] अपने अशुभ कर्म की निंदा, और [प्रतिक्रमणं] अपराधों की प्रायश्चित्तादि विधि से निवृत्ति, ये सब [येन पुण्यस्य कारणं] जो पुण्य के कारण हैं, मोक्ष के कारण नहीं हैं, [तेन] इसीलिये पहली

अवस्था में पाप के दूर करने के लिये ज्ञानी पुरुष इनको करता है, कराता है, और करते हुए को भला जानता है तो भी निर्विकल्प शुद्धोपयोग अवस्था में [ज्ञानी] ज्ञानी जीव [एकमपि] इन तीनों में से एक भी [न करोति] न तो करता है, [कारयति] न कराता है, और न [अनुमन्यते] करते हुए को भला जानता है।

भावार्थ :– केवल शुद्ध स्वरूप में जिसका चित्त लगा हुआ है, ऐसा निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना के बल से देखे, सुने और अनुभव किये भोगों की वाँछारूप जो भूतकाल के रागादि दोष उनका दूर करना वह निश्चयप्रतिक्रमण; वीतराग चिदान्द शुद्धात्मा की अनुभूति की भावना के बल से होनेवाले भोगों की वाँछारूप रागादिक का त्याग वह निश्चयप्रत्याख्यान, और निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से वर्तमान उदय में आये जो शुभ–अशुभ के कारण हर्ष–विषादादि अशुद्ध परिणाम उनको निज शुद्धात्मद्रव्य से जुदा करना वह निश्चयआलोचन; इस तरह निश्चयप्रतिक्रमण प्रत्याख्यान और आलोचना में ठहकर जो कोई व्यवहारप्रतिक्रमण, व्यवहारप्रत्याख्यान, व्यवहारआलोचना, इन तीनों के अनुकूल वन्दना, निंदा आदि शुभोपयोग है, उनको छोड़ता है वही ज्ञानी कहा जाता है, अन्य नहीं। सारांश यह है कि ज्ञानी जीव पहले तो अशुभ को त्यागकर शुभ में प्रवृत्त होता है, बाद शुभ को भी छोड़ के शुद्ध में लग जाता है। पहले किये हुए अशुभ कर्मों की निवृत्ति वह व्यवहारप्रतिक्रमण, अशुभपरिणाम होनेवाले हैं, उनका रोकना वह व्यवहारप्रत्याख्यान, और वर्तमानकाल में शुभ की प्रवृत्ति अशुभ की निवृत्ति वह व्यवहारआलोचन है। व्यवहार में तो अशुभ का त्याग शुभ का अंगीकार होता है, और निश्चय में शुभ–अशुभ दोनों का ही त्याग होता है।।६४।।

गाथा–६४ पर प्रवचन

आगे निश्चय प्रतिक्रमण... व्यवहार प्रतिक्रमण है, वह शुभ विकल्प, शुभउपयोग है। निश्चय प्रतिक्रमण है, वह शुभउपयोग से छूटकर अन्दर आनन्द में लीन होना, वह निश्चय प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण—विमुख होना। शुभाशुभभाव से विमुख होकर अन्दर में लीन होना। आनन्द का नाथ प्रभु, सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा अपने स्वरूप में लीन होना। प्रतिक्रमण—प्रति—पुण्य-पाप से हटकर उसमें रहना, उसका नाम निश्चय प्रतिक्रमण

कहलाता है। आहाहा! **निश्चय प्रत्याख्यान,...** भविष्य के शुभाशुभभाव में न आना, अन्तर में लीन होना, इसका नाम निश्चय प्रत्याख्यान है। **निश्चय आलोचना...** वर्तमान शुभाशुभभाव से रहित होकर शुद्ध चैतन्य के शुद्धोपयोग में आना, वह निश्चय आलोचना है। ये तीनों शुद्धोपयोग कहा। तीनों शुद्धोपयोग है। **जो शुद्धोपयोग उसमें ठहरकर...** आहाहा!

व्यवहार प्रतिक्रमण,... शुभभाव **व्यवहार प्रत्याख्यान...** शुभभाव **व्यवहार आलोचनारूप शुभोपयोग को छोड़े,...** आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार प्रतिक्रमण आदि शुभराग शुभोपयोग है। मिच्छामि दुक्कडम यह शुभोपयोग है। व्यवहार प्रत्याख्यान करना, वह भी एक शुभोपयोग है। पाप का त्याग करके प्रत्याख्यान लेना, वह शुभोपयोग है। व्यवहार आलोचना—वर्तमान विचार करना कि यह नहीं... यह नहीं... यह नहीं। यह भी शुभोपयोग है। इन तीनों को छोड़कर... आहाहा! तीनों को छोड़कर पहले नहीं लिया। अन्तर में स्थिर होकर। आनन्दघन भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद्घन आनन्द में स्थिर होकर। आहाहा! है?

उसमें ठहरकर व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान और व्यवहार आलोचनारूप शुभोपयोग को छोड़े,... आहाहा! अन्दर में स्थिर हो तो शुभोपयोग छूटता है। शुभउपयोग पुण्यबन्ध का कारण है। पहले आता है, यह कहेंगे। आहाहा! पाप से छूटने के लिये, बचने के लिये शुभभाव आता है। परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है। इसलिए जिसे धर्म करना हो, उसे तो अपने आत्मा में स्थिर होकर, आनन्द में लीन होकर। आहाहा! शुद्ध चैतन्य निर्मल आनन्दकन्द, निर्मल विज्ञानघन प्रभु आत्मा है। आहाहा! उसमें स्थिर होकर इस शुभोपयोग को छोड़े। आहाहा! **ऐसा कहते हैं।**

१८८) **वंदणु णिंदणु पडिकमणु पुण्णहँ कारणु जेण।**
करइ करावइ अणमणइ एक्कु वि णाणिण तेण।।६४।।

पाठ तो यह है, देखा?

अन्वयार्थ—पंच परमेष्ठी की वन्दना... यह शुभभाव है। आहाहा! **'निंदनं' अपने अशुभ कर्म की निन्दा...** यह भी शुभभाव है। **'प्रतिक्रमणं' अपराधों की प्रायश्चित्तादि**

विधि से निवृत्ति, ये सब जो पुण्य के कारण हैं... ऐसा मार्ग है। आहाहा! उसकी श्रद्धा की भी खबर न हो कि क्या श्रद्धा है? शुभोपयोग क्या चीज़ है? वह बन्ध का कारण है।

समयसार में मोक्ष अधिकार में तो इस शुभोपयोग को तो विषकुम्भ कहा है। जहर का घड़ा। घड़ा समझे न? घट। भगवान आत्मा अमृत का कुम्भ है। अमृत का सरोवर भगवान आत्मा है, सागर है, समुद्र है। आहाहा! सागर है, अमृतसागर है। अपरिमित जिसकी शक्ति है। अनन्त जिसकी शक्ति है। ज्ञान, आनन्द, शान्ति अनन्त है। अनन्त है तो सागर है। आहाहा! सागर में जैसे बूँद का पार नहीं, वैसे भगवान की ज्ञान, दर्शन (आदि) शक्ति का पार नहीं। आहाहा! चैतन्यद्रव्य क्या है, इसकी लोगों को खबर नहीं है। इसकी तो कुछ कीमत ही नहीं। यह राग करना और यह करना, उसकी कीमत है इसे। अरे! जन्म-मरण मिटाने का पंथ कोई दूसरा है। यह कहते हैं, देखो!

मोक्ष के कारण नहीं हैं,... यह व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार निन्दा, व्यवहार आलोचना, वह पुण्य(बन्ध) का कारण है। आहाहा! मोक्ष का कारण नहीं। **इसलिए पहली अवस्था में पाप के दूर करने के लिये...** आता है, इतना चाहिए। वह अधिक डाला है। टीका में इतना सब नहीं है। टीका में नहीं है इतना सब। पाठ में है न? '**करोति कारयति अनुमोदयति**' कौन? शुद्ध। उसके बदले शुभ को डाला अर्थ में। मूल तो ऐसा है। शुद्धभाव को करना, कराना और अनुमोदन करना। और इस शुभभाव को छोड़ना। है? **इन तीनों में से एक भी न तो करता है, न कराता है, और न करते हुए को भला जानता है।** इस प्रकार शुद्धोपयोग में रहकर शुभोपयोग को छोड़ देना, इसका नाम धर्म है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ६, शनिवार
दिनांक-२८-११-१९७६, गाथा-६४-६५, प्रवचन-१४४

परमात्मप्रकाश, ६४ गाथा। फिर से। '**वंदनं**' है न? वहाँ से। **पंच परमेष्ठी की वंदना,...** यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है। जिसने पहले पुण्य और पाप के राग से भिन्न अपनी चीज़ जो शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी दृष्टि अनुभव हुआ हो तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। देहादि की क्रिया, वह जड़ शरीर तो अजीव है, परन्तु अन्दर पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह भी आस्रव है। तो अजीव और आस्रव से अपनी चीज़ शुद्ध ज्ञानघन निर्मल भिन्न है, उसकी अन्तर्दृष्टि अनुभव होना, निर्विकल्प दृष्टि होना, रागमिश्रित दृष्टि छूटकर अरागी आत्मा के अनुभव की दृष्टि होना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को व्यवहार पंच परमेष्ठी की वन्दना का (भाव) आता है, परन्तु वह है पुण्यभाव। समझ में आया? है? '**वंदनं' पंच परमेष्ठी की वंदना,...** शब्दार्थ है।

'निंदनं' अपने अशुभ कर्म की निन्दा... हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग, पाप की निन्दा करने का भाव होता है, वह शुभभाव है, पुण्यभाव है। समकिती को भी वह भाव पुण्यभाव है। समझ में आया? आहाहा! **और अपराधों की प्रायश्चित्तादि विधि से निवृत्ति,...** वह भी शुभभाव है, पुण्यभाव है। **ये सब तो पुण्य के कारण हैं,...** है? सम्यग्दृष्टि को भी पुण्य का कारण है। अज्ञानी को तो धर्म है ही नहीं, जिसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर नहीं आयी और पुण्य-पाप के परिणाम के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यहाँ तो सम्यग्दृष्टि को भी पंच परमेष्ठी की वन्दना का शुभभाव आता है, वह पुण्य का कारण है। आहाहा! **मोक्ष के कारण नहीं है,...** परमानन्द की प्राप्तिरूपी मोक्ष, उसकी प्राप्ति उस पुण्यभाव से नहीं होती।

इसलिए पहली अवस्था में पाप के दूर करने के लिये ज्ञानी पुरुष... देखा! ज्ञानी-धर्मी को पहली अवस्था में शुभभाव आता है। करते हैं, अर्थात् आता है। समझ में आया? कर्तृत्वबुद्धि से नहीं। सम्यग्दृष्टि को, जिसकी दृष्टि स्वभाव के ऊपर है, उसे भी ऐसा भाव अशुभ से बचने के लिये, अशुभ वंचनार्थ, ऐसा शुभभाव आता है और वह है पुण्य का कारण। आहाहा! बन्ध का कारण। पहली अवस्था में वह आता है। करता

है। करता है, अर्थात् परिणमन होता है। **कराता है...** यह तो स्वयं अर्थकार ने डाला है। **और करते हुए को भला जानता है तो भी निर्विकल्प शुद्धोपयोग अवस्था में...** धर्मी को जब अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित, रागरहित अन्तर आनन्द में उपयोग जम गया, वह **ज्ञानी जीव इन तीनों में से एक भी न तो करता है,...** आहाहा! सूक्ष्म बात, बापू! भगवान! जिनवीर का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

अपूर्व बात है। अनन्त काल में कभी चैतन्य भगवान आत्मा की कभी भेंट नहीं की। वस्तु भगवान परमानन्दमूर्ति प्रभु, उस आत्मा निर्मल विज्ञानघन की भेंट कभी नहीं की और राग की एकताबुद्धि कभी नहीं छोड़ी। आहाहा! यह एकताबुद्धि छोड़ने के पश्चात् स्वरूप की दृष्टि और अनुभव हो, तो भी अशुभ से बचने के लिये ऐसा शुभभाव आता है। तो ज्ञानी का शुभभाव, वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम्परा मोक्ष का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल जरा भी मोक्ष का कारण नहीं। वह तो समकिती को आत्मज्ञान हुआ है, वह शुभभाव को हेयरूप से जानता है। पश्चात् स्व का आश्रय लेकर उसे छोड़ेगा तो परम्परा कारण कहने में आया है। राग, वह कहीं आत्मा के मोक्ष का कारण होता है? बहुत सूक्ष्म बात, बापू! प्रभु! अनन्त काल में चौरासी के अवतार में दुःख में डोल रहा है। अन्दर में दुःख के पर्वत में पड़ा है। अपनी शान्ति क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं। वह शुभाशुभभाव दुःखरूप है, रागरूप है। उसमें अज्ञानी अनादि से रचा-पचा है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे उस राग की रुचि छूट गयी और शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्णानन्द की रुचि, अनुभव हुआ, उसे भी अशुभ से बचने के लिये ऐसे शुभभाव, पंच परमेष्ठी की वन्दना आदि का (भाव) आता है। समझ में आया? परन्तु जब निर्विकल्प में स्थिर होता है... आहाहा! मूल तो यह है। शुभभाव को छोड़कर आनन्दस्वरूप में शान्ति... शान्ति... शान्ति... ध्याता, ध्यान और ध्येय के भेद भी छोड़कर; ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भेद को भी छोड़कर अन्तर में लीन होता है, तब उसे सच्चा मोक्षमार्ग कहते हैं। वह निर्विकल्प उपयोग, वह चारित्र है। गजब! शब्द-शब्द में अन्तर! यह कहते हैं। देखो!

मुमुक्षु : .... भला जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भला जानता है, यह कहा न? शुभभाव के समय ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। व्यवहार से। यह तो अर्थकार ने लिखा है। पहले भी कहा था। अर्थकार ने लिखा है। पाठ में नहीं है। पाठ में तो ज्ञानी को शुभभाव करना नहीं, कराना नहीं, अनुमोदना नहीं। ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : अर्थात् जानता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है, ऐसा भी नहीं यहाँ तो। अन्दर स्थिर होता है। सूक्ष्म बात है। जानता है, वह तो है, उसे जानता है। यह तो है ही नहीं। अन्तर निर्विकल्प उपयोग में समकिती ज्ञानी जम जाता है, तब वह शुभभाव है ही नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात, भाई! जिनवरदेव वीतराग और दिगम्बर सन्तों की शैली बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! प्रथम अभी सम्यग्दर्शन ही सूक्ष्म है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को शुभराग आता है, परन्तु कर्तृत्वबुद्धि नहीं है। करनेयोग्य है, ऐसी बुद्धि नहीं है। परन्तु आये बिना रहता नहीं। वीतराग नहीं हुआ, इसलिए शुभभाव आता है, तो उसे जानता है कि पुण्यबन्ध का कारण है। हेयबुद्धि से आता है। यहाँ तो उसे भी छोड़कर जब अन्तर में स्थिर होता है, ज्ञानानन्दस्वभाव में लीन होता है, निर्मल विज्ञानघन भगवान आत्मा में लीन होता है, तब वह शुभभाव करता नहीं, कराता नहीं और करते हुए को भला जानता नहीं। कहो, धन्नालालजी! तब इसका अर्थ उसे होते ही नहीं, ऐसा। अन्तर आनन्द को ध्यान में स्थिर हुआ तो वह विकल्प, शुभराग है ही नही। व्यवहार प्रतिक्रमण आदि का जो शुभभाव है, वह तो उस समय में है ही नहीं। यह बात यहाँ करते हैं। आहाहा! है? **न करते हुए को भला जानता है।** आहाहा!

भावार्थ :- केवल शुद्ध स्वरूप में जिसका चित्त लगा हुआ है,... आहाहा! जिसका चित्त शुद्ध स्वरूप भगवान परमानन्दस्वरूप है, उसमें जिसका चित्त अन्दर लगा है। आहाहा! **ऐसा निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना के बल से...** क्या कहा? केवल एक शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा में जिसका चित्त लगा है, आहाहा! **ऐसा निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना के बल से...** ऐसी रागरहित वीतरागी दशा, परमात्मतत्त्व की

एकाग्रता के बल से। **देखे, सुने और अनुभव किये भोगों की वांछारूप...** चक्षु इन्द्रिय से देखा हो, कान से सुना हो, मन से रागादि का अनुभव किया हो, **भोगों की वांछारूप जो भूतकाल के रागादि दोष उनका दूर करना...** आहाहा! भूतकाल के अर्थात् गत काल में जो रागादि हुए हैं, वह दोष है। शुभराग भी दोष है। आहाहा!

मुमुक्षु : भूतकाल में दोष हुए, वे चले कैसे जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में वीतरागता प्रगट करता है तो भूतकाल की अपेक्षा से राग दूर किया, वर्तमान अपेक्षा से आलोचना, भविष्य की अपेक्षा से प्रत्याख्यान (किया)। समय तो एक ही है। अपने शुद्ध स्वभाव-सन्मुख होकर वीतरागता प्रगट हुई तो उस वीतरागता में तीन बोल लागू पड़ते हैं। भूतकाल के राग का अभाव, भविष्य के राग का प्रत्याख्यान—अभाव, वर्तमान राग से पृथक्; है तो वीतरागता एक ही है। उसका तीन प्रकार से कथन है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! मार्ग... मार्ग भारी सूक्ष्म है, भाई!

भगवान अन्दर वीतरागीबिम्ब प्रभु है। वस्तु है, वह तो वीतरागीबिम्ब है। निर्मल विज्ञानघन आत्मद्रव्य है। उसमें निर्विकल्प वीतराग परिणति से परिणमन करना... आहाहा! **निर्विकल्प परमात्मतत्त्व की भावना...** देखो! परमात्मतत्त्व अर्थात् स्वयं अपना स्वरूप। परमात्मत्त्व जो त्रिकाली परमात्मस्वरूप अपना है, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता से, एकाग्रता के बल से। आहाहा! **देखे, सुने और अनुभव किये भोगों की वांछारूप जो भूतकाल के रागादि दोष उनका दूर करना, वह निश्चयप्रतिक्रमण...** है। वह सच्चा प्रतिक्रमण है। आहाहा! वह सच्चे मुनि को होता है। जिसे अन्तर वीतरागदशा प्रगट हुई, सन्त की चारित्रदशा, वह विकल्प छोड़कर अन्दर स्थिर होता है, उसे निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है। आहाहा! अन्दर आनन्द का नाथ भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ, गाँठड़ी। गाँठड़ी कहते हैं न? गठड़ी। आहाहा! उसमें सम्यग्दर्शनसहित अन्दर में लीन होना, वह भूतकाल के राग के दोष से भिन्न हुआ, उसका नाम निश्चय प्रतिक्रमण है। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की अनुभूति की भावना के बल से... अब

निश्चय प्रत्याख्यान कहते हैं। प्रत्याख्यान। बाहर से ऐसे पचक्खाण करते हैं, वह तो शुभविकल्प है, राग है। आहाहा! अन्दर में निश्चय प्रत्याख्यान सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ऐसा कहते हैं, वे सन्त कहते हैं। वीतराग चिदानन्द शुद्धात्मा। वीतराग चिदानन्द शुद्धात्मा, यह भाषा। पहले में निर्विकल्प परमात्मतत्त्व कहा था। विकल्परहित परमात्मतत्त्व की भावना, ऐसा कहा था। यहाँ **वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की अनुभूति की भावना के बल से...** आहाहा! उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। पचक्खाण कहते हैं न? प्रत्याख्यान। वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा, वीतराग चिदानन्द एक स्वभाव शुद्धात्मा... आहाहा! अनुभूति—उसका अनुभव, शुद्धात्मा का अनुभव। यह कहा था न? 'शुद्धता विचारे ध्यावै, शुद्धता में केली करै' आता है न? 'शुद्धता में मगन रहे (अमृतधारा बरसे) रस स्वादत...' 'वस्तु विचारत ध्यावते, मन पावै विश्राम।' मन का विकल्प घट जाये। 'रस स्वादत सुख उपजै' आत्मा के आनन्द के रस का स्वाद जिसमें उत्पन्न हो, 'अनुभव ताकौ नाम' उसका नाम अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम सम्यग्ज्ञान, उसका नाम सम्यक्चारित्र। आहाहा!

मुमुक्षु : एक के इतने सब नाम?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बहुत प्रकार कहे न? भाई ने नहीं कहा? सम्यग्ज्ञान दीपिका में। भगवान आत्मा एक और बाईस परीषह? आत्मा एक और बारह भावना? यह तो सब भेद के कथन हैं। बाकी तो अन्तर वस्तु स्वरूप में वीतरागता प्रगट करने से जो भाव होता है, उसे चाहे जिस भाव से कहो। धर्मदास क्षुल्लक (कृत) सम्यग्ज्ञान दीपिका। यह विवादित प्रश्न अभी उत्पन्न हुआ है न? यह सम्यग्ज्ञान दीपिका का बोल है, सोनगढ़ का नहीं।

मुमुक्षु : यही सम्यग्ज्ञान दीपिका जो आपने बनायी, छपाई?

पूज्य गुरुदेवश्री : बनायी किसने है? वह तो मेरे जन्म से पहले बन गयी है। धर्मदास क्षुल्लक ब्रह्मचारी हुए हैं। दिगम्बर ब्रह्मचारी धर्मदास क्षुल्लक, जिन्होंने सम्यग्ज्ञान दीपिका, स्वात्मानुभव मनन, ज्ञानभावना ऐसे ग्रन्थ बनाये हैं। सब देखे हैं न, हमारे पास सब हैं। वह तो मेरे जन्म से पहले प्रकाशित हुई है। हमारा जन्म तो (संवत्) १९४६ के

वैशाख शुक्ल-२ (को हुआ है)। और वह पुस्तक प्रकाशित है १९४६ के माघ महीने में। सब लेखन है अन्दर है। तब हमारा जन्म भी नहीं हुआ था। जन्म तो वैशाख शुक्ल-२। (संवत्) १९४६ के वर्ष। (अभी) ८७ वाँ चलता है न? इससे पहले माघ महीने में प्रकाशित हुआ है। आया है, हुकमीचन्दजी का आया है। इसमें तो दृष्टान्त दिया है। यह बात पण्डितों ने (उड़ाई है)... सोनगढ़वाले ऐसा कहते हैं कि स्त्री भोग करे परन्तु पति सिर हो तो उसे दोष नहीं। अरे! यह तो धर्मदास क्षुल्लक का दृष्टान्त है। सम्यग्ज्ञान दीपिका की बात है। आहाहा! पहले प्रकाशित हुआ था (संवत्) १९४६ वर्ष के माघ महीने में। दूसरी बार प्रकाशित हुआ अभी ४२ वर्ष पहले। तीसरी, चौथी बार यहाँ प्रकाशित हुई। पाँचवीं बार अभी प्रकाशित हुई। यहाँ तो कितनी पुस्तकें प्रकाशित हो गयीं। १४ लाख तो यहाँ से प्रकाशित हुई हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार दिगम्बर शास्त्र, हों! १४ लाख। और ६ लाख वहाँ हुकमचन्दजी के यहाँ जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। हुकमचन्दजी तुम्हारे, भारिल्ल कहते हैं न? भारिल्ल... भारिल्ल। उन्होंने ६ लाख प्रकाशित की हैं। इन ४२ वर्षों में २० लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यहाँ ४२ वर्ष हुए। ४० और २। ४५ वर्ष की उम्र में यहाँ आये थे। (अभी) ८७ हुए। ४५ और ४२। यह तो पहले प्रकाशित हुई हैं। परन्तु वाँचन नहीं, किसकी पुस्तक है, उसकी खबर नहीं। और किस अपेक्षा से लिखा है, (इसकी खबर नहीं होती)। अरे! क्या करे? निश्चय की सत्य बात तो गुप्त हो गयी और बाहर के क्रियाकाण्ड में सब लगे पड़े हैं। कल आया था न?

भव्यसागर साधु है। कर्नाटक में दिगम्बर साधु है। कर्नाटक में भव्यसागर दिगम्बर साधु। १८ वर्ष की दीक्षा है। १० और ८, १८। शीघ्र कवि है। आशु कवि—शीघ्र कवि। हमारे प्रति दस पत्र आये हैं। कल ही एक आया है। पहले भी आया था। ओहो! स्वामीजी! आपने जो आत्मधर्म की बात प्रकाशित की है, ऐसी बात कहीं नहीं है। हम साधु नहीं, हम मुनि नहीं। बापू! अभी सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और साधु कहाँ से हो गये? समझ में आया? कल पत्र आया है। नहीं? दसवाँ आया है। आपकी बात सुनने के लिये मुझे वहाँ आने का भाव है। धन्य भाग्य! आपकी सभा में मैं सुनूँ, यह मेरा धन्यपना है! मुनि है, मुनि। बाहर से मुनि हुए उसमें क्या? सम्यग्दर्शन

क्या चीज़ है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! धर्म का मूल तो सम्यग्दर्शन है। दंसण मूलो धम्मो। तो सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी खबर नहीं तो चारित्र और व्रत कहाँ से आये?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन तो चाहे जब हो सकता है, चारित्र तो ले लेवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु चारित्र कहते किसे हैं?

स्वरूप सम्यग्दर्शन का अनुभव हो, पश्चात् अन्तर में रमणता, आनन्द में रमणता, चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का भोजन करना, इसका नाम चारित्र है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! कल आया है। बहिन के शब्द वाँचे थे न? बहिन के शब्द। ६३ (वचनामृत)। वह वाँचकर बहुत प्रसन्न हो गये हैं। बहुत प्रसन्न। अहो! बहिन जैसे! अनुभव से ऐसी बात की। बहुत बेचारा... मनुष्य भला है परन्तु अब... हम तो कहीं किसी को बुलाते नहीं, किसी को पत्र-बत्र लिखते नहीं। आवे वह यहाँ का वांच ले। कल रात्रि में पत्र वाँचा था। आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन... उसने लिखा है, निश्चय सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है। आप कहते हो, वह बात यथार्थ है। व्रत कैसा, प्रत्याख्यान कैसा, तप कैसा? सम्यग्दर्शन बिना। अभी सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी तो खबर नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन चौथा गुणस्थान, बापू! जिसने अन्दर में देह से तो भिन्न, कर्म से भिन्न—पृथक्, परन्तु दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम राग हैं, उनसे भी भिन्न... आहाहा! और अपने स्वभाव से भगवान अभिन्न, ऐसे आत्मा का अनुभव होना, उसकी दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अभी तो पहली चीज़ (क्या है, वह खबर नहीं)।

मुमुक्षु : यह तो निश्चय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय की बात ही सत्य है। व्यवहार तो उपचार है, कथन है। आहाहा! कोथला होता है न? चावल का कोथला। बोरी-बोरी। चावल की बोरी। (ऐसा बोले) चार मण, ढाई सेर। परन्तु चार मण ढाई सेर में ढाई सेर का तो कोथला है, बोरी है। चार मण चावल हैं। परन्तु तोलने में साथ में ले लिया। तो कहे, चार मण चावल के साथ ढाई सेर बारदान पकता है? चावल के बदले उसे पकाते हैं? आहाहा!

उसी प्रकार नग्नपना और पंच महाव्रत विकल्प तो बारदान है। अन्दर माल तो वीतराग शुद्ध चिदानन्द प्रभु की दृष्टि, अनुभव और स्थिरता, वह माल है—चावल है। (गुजराती में) चोखा कहते हैं न? चावल... चावल। श्वेत-सफेद। उसी प्रकार भगवान आत्मा पवित्र आनन्दकन्द प्रभु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता हो, वह चावल—आत्मा चावल है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! ऐसी बात है, भाई! बहुत फेरफार हो गया है। आहाहा! कल कहा था न?

दीपचन्दजी साधर्मी हुए हैं। अनुभवप्रकाश, चिद्विलास, आत्मावलोकन ऐसी बहुत सी पुस्तकें बनायी हैं। एक भावदीपिका है। (अध्यात्म) पंचसंग्रह उनका है, नहीं? (अध्यात्म) पंचसंग्रह है। है, सब पुस्तकें हैं। यह रही। यह आत्मावलोकन है। यहाँ सब पुस्तकें हैं, सब देखी हैं। हजारों! उसमें भावदीपिका में ऐसा लिखा है, रात्रि में कहा था, ३००-३५० वर्ष पहले दीपचन्दजी गृहस्थाश्रम में समकिती आत्मज्ञानी अनुभवी थे। कहते थे कि, अभी मैं देखता हूँ तो कोई सत्य वक्ता है नहीं। पुस्तक है यहाँ? पुस्तक नहीं आयी। ४६ पृष्ठ पर है। भावदीपिका के २४२ पृष्ठ हैं। २४१ पृष्ठ के बाद यह है। वर्तमान में ३५० वर्ष पहले हुए। महा अनुभवी ज्ञानी समकिती। मैंने रणस्तम्भ रोपा है, ऐसा लिखा है। यह मोक्षमार्ग में जाते हैं, अल्पकाल में हमारा मोक्ष होगा। आहाहा! यह कहते हैं, उन्होंने उसमें लिखा है, अभी कोई सत्य वक्ता दिखता नहीं और सत्य श्रद्धानवान कोई दिखता नहीं। ऐसा लिखा है और मुख से कहते हैं तो कोई सुनता नहीं। इसलिए मैं लिख जाता हूँ।

मुमुक्षु : झगड़ा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ा करे। मुख से क्लेश करे। उसमें लिखा है। भावदीपिका है। वहाँ है, वहाँ होगी। अभी प्रकाशित नहीं हुई, पहले की प्रकाशित है। भावदीपिका है। यह तो बहुत वर्ष से वाँचते हैं। सब वाँचा है पहले से, हम तो (सम्प्रदाय में) थे, वहाँ भी दिगम्बर के शास्त्र वाँचते थे। पहले से हमारा रस तो यह था न! भले स्थानकवासी में थे। तत्त्वार्थ राजवार्तिक, आदिपुराण, समयसार, प्रवचनसार सब देखा था। बहुत वर्ष पहले। परिवर्तन तो (संवत्) १९९१ में यहाँ किया। ४२ वर्ष हुए। इससे पहले हम तो १९७८ के वर्ष से वाँचते हैं। ५४ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : आपने बहुत हजारों शास्त्र वाँचे!

पूज्य गुरुदेवश्री : हजारों देखे हैं। करोड़ों श्लोक श्वेताम्बर के देखे हैं और अपने दिगम्बर शास्त्र, सब देखा है।

मुमुक्षु : आपको दूसरा कोई काम ही नहीं था?

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारा यह एक काम था। आहा! ऐसा लिखा है। मीठालालभाई! दीपचनदजी ने यह लिखा है। चिद्‌विलास, अनुभवप्रकाश, आत्मावलोकन। देखो! यह आत्मावलोकन है। देखो! कल कहा था न? दया किसे कहते हैं? इन्होंने लिखा है। **विकारमय परिणामों द्वारा अपने निज आत्मा (स्वभाव) का घात न करना...** इस शुभभाव से अपने जीवस्वभाव का घात होता है। शुभभाव भी राग है। राग है, वह हिंसा है। गजब बात, बापू! संस्कृत है। '**यत् निजस्वभावं विकारभावेन न घातयति न हिनस्ति, निजस्वभावं पालयति तदेव (सैव) दया।**' आहाहा! आया? और तप किसे कहते हैं? यह कहा था। देखो!

शरीर, परिग्रह, भोग, कुटुम्ब, इष्टमित्र, शत्रुरूप परज्ञेयों को छोड़ना अथवा उनमें ममतारहित परिणति होना तथा उनमें तृष्णारहित होना और अपने स्वभाव में स्थिरता होना, ऐसी तपस्या ही, वह तप कहलाता है। आत्मावलोकन ग्रन्थ है। २४१ पृष्ठ है।

संस्कृत प्राकृतरूप भाषा तीन लोक विषैं प्रसिद्ध, ताकूं छोडी आप भ्रमरूप देशाभाषा विषैं शास्त्ररचना काहे को करिये? शिष्य ने प्रश्न किया। संस्कृत में सब शास्त्र विद्यमान हैं, तुम क्यों शास्त्र की रचना करते हो? **ताका समाधान—काल दोष तै सम्यगज्ञानी, वीतराग प्रवृत्तिनी के धारक यथार्थ वक्तानि का तो अभाव भया...** उस समय कोई श्रद्धावन्त देखे नहीं। आहाहा! **अर अवसर्पिणी काल के निमित्त तैं जिनमत विषैं कुलिंग के धारक प्रचंड हैं। क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषाय जिनके, अर पंच इन्द्रिय के विषय में है आसक्तभाव जिनके, साक्षात् गृहीत मिथ्यात्व के पोसने तैं जिनमत के विषैं वक्ता भये...** अधिष्ठाता हुए, **जिनसूत्र के अर्थ अन्यथा करने लगे, ता करि भोले जीव तिनकी बताई प्रवृत्ति विषैं प्रवर्तते भये, नहि है सत्य सूत्र का ज्ञान**

जिनको अर नाहीं है संस्कृत ज्ञान तिनको, ताकरि महान शास्त्रनि का ज्ञान तिनतैं अगोचर भया। ताकरि मूढता को प्राप्त भये, हीन शक्ति भये। सत्य वक्ता, सांचा जिनोक्त सूत्र का अर्थ ग्रहण करावनेहारा कोई रहा नहीं। तातैं सत्य जिनमत का तो अभाव भया। तब धर्मतैं परान्मुख भये। तब कोई-कोई गृहस्थ सुबुद्धि संस्कृत-प्राकृत का वेत्ता भया। ताकरि तिन सूत्रनिको अवगाहा। तब ऐसा प्रतिभासता भया—जो सूत्र के अनुसार एक भी श्रद्धान, ज्ञान, आचरण की प्रवृत्ति न करे हैं, अर बहुत काल होय गया मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान, आचरण की प्रवृत्ति कों, ताकरि अति गाढता नैं प्राप्त भई, तातैं मुख करि कही माने नहीं। तब जीवनि का अकल्याण होता जानि, करुणाबुद्धि करि देशभाषा विषैं शास्त्ररचना करि। लो! इसलिए शास्त्र की रचना की है। आहाहा! दीपचन्दजी कृत भावदीपिका। बहुत ज्ञानी थे। सम्यग्ज्ञानी अनुभवी (थे)। समझ में आया? बहुत पुस्तकें बनायी हैं। चिद्विलास। कितना लिखते हैं! अरेरे! सम्यग्दर्शन की सत्य बात कहनेवाला कोई नहीं, कोई श्रद्धा करनेवाला नहीं, मुख से कहें तो मानते नहीं, इसलिए मैं शास्त्र में लिख जाता हूँ। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : उस समय में.... लोग थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस समय में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, वीतराग चिदानन्द एक शुद्धात्मा की अनुभूति, अन्दर में आनन्द का वेदन, उसकी एकाग्रता के बल से **होनेवाली भोगों की वांछारूप रागादिक का त्याग...** शुभ रागादि का भी त्याग **वह निश्चय प्रत्याख्यान...** है। सच्चा पच्चखाण / प्रत्याख्यान उसे कहते हैं। आहाहा!

और निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के बल से... आहाहा! निज शुद्धात्मा परमानन्द प्रभु की एकाग्रता की भावना के बल से। अन्तर आनन्द की लीनता के बल से। आहाहा! **वर्तमान उदय में आये जो शुभ-अशुभ के कारण हर्ष-विषादादि अशुद्ध परिणाम उनको निज शुद्धात्मद्रव्य से जुदा करना...** आहाहा! शुभ-अशुभराग आता है, उसे अपने स्वभाव के आश्रय से भिन्न करना, इसका नाम निश्चय संवर है, आलोचना है। आहाहा! भाषा सूक्ष्म, भाव सूक्ष्म। ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव सौ इन्द्र के पूजनीक, जिनकी सभा में सिंह, बाघ और नाग भगवान की वाणी

सुनने के लिये जाते थे। सिंह, सैकड़ों सिंह जंगल में से (आवे)। बाघ, नाग, इन्द्र, गणधर, एकभवतारी इन्द्र आदि सुनने जाते थे। अभी भी भगवान विराजते हैं। उन भगवान की यह वाणी है। समझ में आया? आहाहा!

निज शुद्धात्मद्रव्य से जुदा करना... आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, उससे भी आत्मा को भिन्न करना और भिन्न करके स्वरूप में स्थिरता करना, वह निश्चय आलोचना, संवर है। आहाहा! उसका नाम संवर है। यह तो सम्यग्दर्शन बिना व्रत ले लिये, हो गया संवर। बापू! कठिन बात है, भाई! जन्म-मरणरहित होने की चीज़ वीतराग ने कही है, वह चीज़ अलौकिक है। आहाहा!

इस तरह निश्चय प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना में ठहरकर... देखा! ठहरकर अर्थात् अन्दर आनन्द में रमकर **जो कोई व्यवहार प्रतिक्रमण,...** शुभभाव **व्यवहार प्रत्याख्यान,...** शुभभाव **व्यवहार आलोचना, इन तीनों के अनुकूल वन्दना, निन्दा आदि शुभोपयोग है, उनको छोड़ता है...** आहाहा! वन्दना आदि का शुभभाव है, उसे अन्तर रमणता करके, स्थिरता करके छोड़ता है, उसका नाम चारित्र है और धर्म है। आहाहा! गजब बात, भाई! है? **इन तीनों के अनुकूल...** व्यवहार को अनुकूल **वन्दना, निन्दा,...** पाप की (करना), वह शुभोपयोग है, **उनको छोड़ता है।** शुभोपयोग को छोड़कर स्वरूप में स्थिर होता है। आनन्द में लीन होता है, उसका नाम चारित्र, उसका नाम प्रत्याख्यान, उसका नाम आलोचना और उसका नाम प्रतिक्रमण है। आहाहा! बहुत अभ्यास चाहिए। यह तो वीतरागमार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी से सिद्ध हुआ है। यह कोई कल्पित नहीं है। साक्षात् भगवान एक समय में तीन काल—तीन लोक जिन्होंने देखे, उन्हें इच्छा बिना वाणी निकलती है। इच्छा है नहीं, वे तो वीतराग हैं। वीतराग तो बारहवें गुणस्थान में हुए थे, भगवान केवली तो तेरहवें गुणस्थान में हुए। इच्छा तो है नहीं। वाणी निकलती है। ॐ ध्वनि।

'ॐ ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' भगवान की ॐ ध्वनि निकलती है, उससे गणधर शास्त्र रचते हैं, उसमें का यह शास्त्र है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें। निश्चय... निश्चय... परन्तु निश्चय, वही सत्य है। व्यवहार तो शुभोपयोग है, बन्ध का कारण है।

आहाहा! अभी इसकी समझण में ठिकाना नहीं, श्रद्धा में ठिकाना नहीं, उसे कहाँ से सम्यग्दर्शन हो?

मुमुक्षु : निवृत्ति मिलती नहीं तो सम्यग्दर्शन कैसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति मिलती नहीं (ऐसा) नहीं, लेता नहीं निवृत्ति। नौकरी करे उसमें घुस जाता है तो निवृत्ति कहाँ से ले? भाई का दृष्टान्त दिया। नौकरी करते थे न, भाई!

मुमुक्षु : नौकरी न करे तो पेट कैसे भरे?

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति तो चाहिए न! वह तो पुण्य हो तो मिलता है। अभी साधारण लोगों को हम नहीं देखते? हमको खबर नहीं? बुद्धि साधारण हो और लाखों रुपये पैदा करते हैं। बुद्धि के बारदान। बारदान समझे? कोथला-बोरी। बुद्धि के बोरी-कोथला जैसे हों परन्तु महीने के लाखों पैदा करते हैं, पाँच-पाँच लाख पैदा करते हैं, एक दिन के! अभी इराक का एक राजा है न? देश छोटा है, परन्तु उसकी एक दिन की ३६ लाख की आमदनी है। एक दिन के ३६ लाख। अभी है। उसकी गद्दी थी, उसके कुटुम्बी ने मार दिया और दूसरा गद्दी पर बैठा है। एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी है। मरकर सब नरक में जानेवाले हैं। क्योंकि माँस खानेवाले अधर्मी हैं। उनके देश में पेट्रोल बहुत निकला है। देश छोटा है, परन्तु पेट्रोल के कुएँ निकले हैं। एक घण्टे की डेढ़ लाख की आमदनी है। एक दिन की ३६ लाख की आमदनी है।

मुमुक्षु : पेट्रोल को काला सोना कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : काला सोना है न! उसमें क्या है? वह हो, वह तो पुण्य के कारण ऐसा योग बने। उसमें आत्मा को क्या मिला? नुकसान है, वह तो मरकर नरक में जायेगा। आहाहा! यह तो अपने पहले ६०वीं गाथा आ गयी है। ६०-६०। ६०वीं गाथा है, देखो! अपने चलता है इसके पहले, ६०वीं। '**पुण्णेण होइ विहवो**' है? ६०वीं गाथा है। पुण्य से वैभव मिलता है। यह सब वैभव पुण्य से मिलता है, आत्मा के पुरुषार्थ से नहीं। है? अर्थ में है। **पुण्य से घर में धन होता है, और धन से अभिमान,...** होता है। अभिमान (हो कि) मैंने दो करोड़, पाँच करोड़ कमाये। ऐसे और वैसे। मर

जायेगा, वह तो पुण्य के कारण मिला है, तेरे पुरुषार्थ से नहीं मिला। समझ में आया? अभिमान करता है। है? आहाहा! **मान से बुद्धिभ्रम होता है, बुद्धि के भ्रम होने से पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवे।** आचार्य कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमारे न हो। योगीन्द्रदेव मुनि दिगम्बर मुनि हैं। मुनि को पुण्य तो होता है। क्योंकि अभी तो केवलज्ञान तो है नहीं, तो आत्मा का ध्यान है, चारित्र है, आनन्द है, परन्तु शुभभाव है तो शुभभाव में पुण्य बँधेगा और स्वर्ग में जायेंगे। परन्तु वह पुण्य समकितसहित का पुण्य है। वह भटकायेगा नहीं, वह भवभ्रमण कराने का विशेष कारण नहीं है। और मिथ्यादृष्टि के पुण्य से वैभव मिले, अरबों रुपये मिले और ओहो! अभिमान हो जाये। हम ऐसे पैसेवाले हैं, हम राजा हैं, हम धनाढ्य हैं। मद में अभिमान हो जायेगा, मति भ्रष्ट हो जायेगी, अविवेक हो जायेगा और पाप करके नरक में जायेगा। आहाहा! साधारण बुद्धि का हो तो पैदा करता है और बहुत बुद्धिवाला हो तो भी एक महीने के दो हजार पैदा करना हो तो पसीना उतरे। उसके साथ क्या सम्बन्ध है?

यहाँ कहते हैं... ६०वीं गाथा। अपने ६४वीं चलती है। आहाहा! क्या कहते हैं? **वही ज्ञानी कहा जाता है,...** भाषा देखो! निर्विकल्प आनन्द में शुभभाव को छोड़कर रमता है, उसे यहाँ यथार्थ ज्ञानी चारित्रसहित कहने में आता है। आहा! **अन्य नहीं।** अन्य को ज्ञानी नहीं कहते। राग का कर्ता होता है, शुभभाव का कर्ता होता है, वह ज्ञानी नहीं। आहाहा! **सारांश यह है कि ज्ञानी जीव पहले तो अशुभ को त्यागकर शुभ में प्रवृत्त होता है,...** है तो समकिती, आत्मभान है तो पहले अशुभ को छोड़कर शुभ में आता है। महाव्रतादि परिणाम में आता है। तथापि दृष्टि में वह शुभभाव हेय है, छोड़नेयोग्य है, ऐसी दृष्टि हुई तो सम्यग्दर्शन हुआ है। परन्तु शुभभाव आदरणीय है और शुभभाव से कल्याण होगा, यह दृष्टि तो मिथ्यात्व है। आहाहा! ऐसी बातें, भाई!

पहले किये हुए अशुभ कर्मों की निवृत्ति... है न? अशुभ को त्यागकर शुभ में प्रवृत्त होता है, **बाद शुभ को भी छोड़ के शुद्ध में लग जाता है।** आहाहा! **पहले किये हुए अशुभ कर्मों की निवृत्ति...** वह व्यवहार प्रतिक्रमण। सम्यग्दर्शन सहित की बात है। अशुभकर्म से निवृत्ति होकर शुभभाव में आना, वह व्यवहार प्रतिक्रमण है। **अशुभ परिणाम होनेवाले हैं, उनका रोकना, वह व्यवहारप्रत्याख्यान,...** अशुभ से हटकर शुभ

में आना, इतना। **और वर्तमान काल में शुभ की प्रवृत्ति अशुभ की निवृत्ति, वह व्यवहार आलोचना है। व्यवहार में तो अशुभ का त्याग शुभ का अंगीकार होता है,...** यह तो शुभ आता है। **और निश्चय में शुभ-अशुभ दोनों का ही त्याग होता है।** आहा! दृष्टि तो राग के त्याग में है। राग का त्याग है, ऐसी समकिती की दृष्टि है, परन्तु अस्थिरता में राग आये बिना रहता नहीं। उस राग को भी स्थिरता द्वारा छोड़ना, वह यहाँ उपदेश है। समझ में आया? ऐसी बातें सूक्ष्म। सत्य यह है। आहाहा! ऐसी सत्य चीज़ है, उसकी शरण लेना, वही चीज़ है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! यात्रा की और सम्मेदशिखर की ऐसी की, इसलिए उससे संसार घट जायेगा, यह सब मिथ्या शल्य है। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से कभी संसार घटता नहीं।

संसार का नाश तो निज द्रव्यस्वरूप वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसके आश्रय से संसार नाश होता है। पर के आश्रय से संसार उत्पन्न होता है। शुभराग भी संसार है। आहाहा! '**परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा पाठ है। मोक्षपाहुड़। कुन्दकुन्दाचार्यदेव का अष्टपाहुड़ है न? अष्टपाहुड़ है। इस ओर अष्टपाहुड़ है, यह नियमसार है, यह अष्टपाहुड़ है, यह समयसार है, यह पंचास्तिकाय है, यह प्रवचनसार है। पाँच हैं। बीच में कुन्दकुन्दाचार्यदेव के समीप समयसार है और अमृतचन्द्राचार्य के समीप प्रवचनसार है, ॐ के नीचे पंचास्तिकाय है। इस ॐ के नीचे अष्टपाहुड़ है, भगवान पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि नियमसार की टीका करनेवाले। महामुनि सन्त नियमसार की (टीका करनेवाले)। उनके (चित्र के) नीचे नियमसार है। पाँच शास्त्र हैं, पाँच। समझ में आया? यह पाँच शास्त्र के... क्या कहलाता है? उत्कीर्ण किये हैं। ये पाँच शास्त्र (इस परमागम मन्दिर में) उत्कीर्ण किये हैं और उनकी टीका उत्कीर्ण की है।

एक अष्टपाहुड़ की टीका नहीं है। अष्टपाहुड़ की टीका नहीं है। क्योंकि उसमें कड़क शब्द है। ऐसा नहीं होता। वस्तुस्वरूप बतलाना, परन्तु किसी का तिरस्कार करना, (ऐसा नहीं होना चाहिए)। *इसकी टीका में ऐसास लिखा है, वह टीका प्रकाशित नहीं की, जो मूर्ति को न माने और मूर्ति की पूजा न करे, स्थानकवासी के ऊपर

---

* **अष्टपाहुड़ की भट्टारक श्रुतसागर कृत टीका के सन्दर्भ में यह कथन है।**

डाला है, तो उसके जूते को विष्टा चुपड़कर मारना, वह पाप नहीं है। ऐसा होता है? किसी की विपरीत दृष्टि है तो क्या उसके प्रति बैर है? विरोध नहीं। वह तो आत्मा है, भगवान है। ऐसा (अष्टपाहुड़ की भट्टारक श्रुतसागरकृत टीका में) लिखा है। ऐसी टीका मान्य नहीं है। भट्टारक की ऐसी बात हो? ऐसा कि कोई शासनदेव को माने नहीं, मूर्ति को पूजे नहीं तो उसे जूते में विष्टा चुपड़कर मुख पर मारना। पापं नास्ति। वीतरागमार्ग में ऐसा विरोध नहीं होता। चाहे वह कोई भी प्राणी पापी हो, सत्वेषुमैत्री। सभी प्राणियों के प्रति मैत्री होती है। धर्मी को किसी के प्रति बैर-विरोध नहीं होता। ऐसी चीज़... अष्टपाहुड़ है न? ॐ के नीचे दूसरे नम्बर में अष्टपाहुड़ है। यह नियमसार है और वह अष्टपाहुड़ है। उसकी (श्रुतसागरिय) टीका में ऐसा है। सब वाँचन किया है। सर्वत्र चिह्न किये हैं। पूरा शास्त्र पढ़कर जितनी भूल है, वहाँ (चिह्न किये हैं)। वह टीका नहीं है। यह तो अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका तो अमृत का सागर वीतरागी टीका है। आहाहा! अलौकिक!

मुमुक्षु : आचार्य की टीका की हुई है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वे भट्टारक थे। दिगम्बर। परन्तु भट्टारक को बाहर की... क्या कहलाता है? शासनदेव की पूजा और... वह तो व्यन्तर है। व्यन्तर की पूजा कैसी? वीतरागमार्ग में वह नहीं होती। कठिन बात है, भाई!

मुमुक्षु : रक्षा करे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन रक्षा करे? धर्म की रक्षा तो धर्मी करता है। आहाहा! परजीव की रक्षा आत्मा नहीं कर सकता तो धर्म की रक्षा क्या करे? पर की दया पालने की शक्ति आत्मा में है? उसका आयुष्य हो तो बचे। क्या आत्मा पर को बचा सकता है? पर की रक्षा, जिनशासन की रक्षा? जिनशासन तो अपने वीतरागभाव में है। उसकी रक्षा तो आत्मा स्वयं करता है।

मुमुक्षु : स्वयं रक्षित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं रक्षित है। आहाहा! है, भाई! बहुत गड़बड़ हो गयी है। पद्मावती की मूर्ति रखते हैं न? जैनशासन नहीं। कटारिया ने बहुत लिखा है। कटारिया

है न ? मिलापचन्द कटारिया, उन्होंने बहुत लिखा है। विरोध (किया है कि) शासनदेव की पूजा मिथ्यात्व है, पद्मावती की पूजा मिथ्यात्व है। तीन पुस्तकें हैं। यहाँ हमारे पास आयी हैं। कटारिया। मिलापचन्द और उनका पुत्र दोनों ? उनके पुत्र का नाम ? रतनलाल। मिलापचन्द उसके पिता का नाम। इस पुत्र का नाम रतनलाल है। इन्होंने बनायी है। तीन पुस्तकें हैं। यहाँ हमारे पास सब हैं। उसमें बहुत लिखा है। तीन लोक के नाथ वीतराग को मानना, वह भी शुभभाव है, तो फिर देवी-देवला को मानना... जैनदर्शन में बहुत गड़बड़ हो गयी है। तीन लोक के नाथ वीतराग सर्वज्ञ सौ इन्द्रों से पूजनीय, उन्हें पूजना और मानना, वह भी शुभभाव है, तो फिर ऐसे व्यन्तर आदि को मानना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ?

यहाँ यह कहते हैं, समकिती को अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आता है, परन्तु स्वरूप में स्थिर होकर सब शुभभाव भी छोड़ देना। तब उसे चारित्र और वीतरागता अन्दर प्रगट होती है, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! यह ६४ (गाथा) हुई।

गाथा - ६५

अथ -

१८९) वंदणु णिंदणु पडिकमणु णाणिहिं एहु ण जुत्तु।
एक्कु जि मेल्लिवि णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्तु।।६५।।
वन्दनं निन्दनं प्रतिक्रमणं ज्ञानिनां इदं न युक्तम्।
एकमेव मुक्त्वा ज्ञानमयं शुद्धं भावं पवित्रम्।।६५।।

वंदणु णिंदणु पडिकमणु वन्दननिन्दनप्रतिक्रमणत्रयम्। णाणिहिं एहु ण जुत्तु ज्ञानिनामिदं न युक्तम्। किं कृत्वा। एक्कु जि मेल्लिवि एकमेव मुक्त्वा। एकं कम्। णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्तु ज्ञानमयं शुद्धभावं पवित्रमिति। तथाहि। पञ्चेन्द्रियभोगाकांक्षाप्रभृतिसमस्तविभावरहितः शून्यः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्न सहजानन्दपरमसमरसीभावलक्षणसुखामृतरसास्वादेन भरितामृतस्थो योऽसौ ज्ञानमयो भावः तं भावं मुक्त्वाऽन्यद्द्रव्यव्यवहारप्रतिक्रमणप्रत्याख्यानालोचनत्रयं तदनुकूलं वन्दननिन्दनादि-शुभोपयोगविकल्पजालं च ज्ञानिनां युक्तं न भवतीति तात्पर्यम्।।६५।।

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं –

परम पवित्र अत्यन्त शुद्ध ज्ञायक स्वभाव से च्युत होकर।
ज्ञानी जन को उचित नहीं है वन्दन निन्दन प्रतिक्रमण।।६५।।

अन्वयार्थ :– [वंदन निंदनं प्रतिक्रमणं] वंदना, निंदा, और प्रतिक्रमण [इदं] ये तीनों [ज्ञानिनां] पूर्ण ज्ञानियों को [युक्तम् न] ठीक नहीं हैं, [एकमेव] एक [ज्ञानमयं] ज्ञानमय [शुद्धं पवित्रम् भावं] पवित्र शुद्ध भाव को [मुक्त्वा] छोड़कर अर्थात् इसके सिवाय ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है।

भावार्थ :– पाँच इन्द्रियों के भोगों की वाँछा आदि लेकर संपूर्ण विभावों से रहित जो केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप परमात्मतत्त्व उसके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न जो परमानंद परमसमरसीभाव वही हुआ अमृत-रस उसके आस्वाद से पूर्ण जो ज्ञानमयीभाव उसे छोंड़कर अन्य व्यवहारप्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना के अनुकूल वंदन निंदनादि शुभोपयोग विकल्प-जाल हैं, वे पूर्ण ज्ञानी को करने योग्य नहीं हैं। प्रथम अवस्था में ही हैं, आगे नहीं है ।।६५।।

गाथा-६५ पर प्रवचन

आगे इसी कथन को दृढ़ करते हैं—६५।

१८९) **वंदणु णिंदणु पडिकमणु णाणिहिं एहु ण जुत्तु।
एक्कु जि मेल्लिवि णाणमउ सुद्धउ भाउ पवित्तु।।६५।।**

आहाहा! अर्थ है नीचे। **अन्वयार्थ :- 'वंदन निंदनं प्रतिक्रमणं' वन्दना,...** देव-गुरु-शास्त्र की वन्दना, पाप की **निन्दा और प्रतिक्रमण ये तीनों पूर्ण ज्ञानियों को ठीक नहीं है,...** आहाहा! स्वरूप में स्थिरता करनेवाले को ठीक नहीं। आहाहा! समझ में आया? है? यह तो योगीन्द्रदेव ने १३०० वर्ष पहले बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो हजार वर्ष पहले भगवान के पास गये थे।

मुमुक्षु : .... पूर्ण ज्ञानी....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण अर्थात् यह सातवें गुणस्थान की बात है न! छठवें में तो शुभभाव आता है। आत्मज्ञान है, आत्मदर्शन है, चारित्र भी है, परन्तु राग आता है। प्रतिक्रमण का, प्रत्याख्यान का, प्रायश्चित का, महाव्रत का (राग आता है)। कहते हैं कि जब अन्दर में स्थिर होना है, ऐसे ज्ञानी को ऐसे भाव छोड़ देना, ऐसा कहना है। क्योंकि राग का कर्तृत्व है नहीं, परन्तु अस्थिरता हो जाती है, वह भी दोष है। आहाहा! धर्मी को वन्दन (आदि का) शुभभाव आता है परन्तु वह दोष है; इसलिए उसे छोड़कर अन्दर स्थिर होना। आहाहा! वह वीतरागता और वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! गजब बातें कठिन। इसमें तत्त्व को न समझे तो झगड़ा उठे। आहाहा! प्रतिक्रमण और पूजा, वह सब शुभभाव है। यह कहते हैं, देखो न यहाँ।

'वंदन निंदनं प्रतिक्रमणं' ये तीनों पूर्ण ज्ञानियों को... अर्थात् सातवें गुणस्थान में ध्यान में **ठीक नहीं है, एक ज्ञानमय पवित्र शुद्धभाव को छोड़कर...** आहाहा! आत्मा ज्ञानस्वरूपी है। उसमें राग-बाग है ही नहीं। ऐसा ज्ञानमय भाव होकर... आहाहा! है? **एक ज्ञानमय पवित्र शुद्धभाव को छोड़कर अर्थात् इसके सिवाय ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है।** आहाहा! यह शुभभाव का कार्य करना भी योग्य नहीं है। दृष्टि में

हेय है न? आता है, परन्तु उसे भी छोड़कर अन्दर में स्थिर हो, वह आदरणीय है। है? **एक ज्ञानमय...** वे तो बहुत प्रकार हो गये। शुभ प्रतिक्रमण और अमुक। एक ज्ञान, वस्तु ज्ञानस्वरूप चिद्‌बिम्ब की एकाग्रता। शुद्ध... है न? **पवित्र शुद्धभाव को छोड़कर अर्थात् इसके सिवाय ज्ञानी को कोई कार्य करना योग्य नहीं है।** आहाहा!

भावार्थ :- पाँच इन्द्रियों के भोगों की वांछा आदि लेकर सम्पूर्ण विभावों से रहित... देखो! शुभभाव भी विभाव है। पाँच इन्द्रिय के भोग की वांछा, वह तो पाप है। **आदि लेकर सम्पूर्ण विभावों से...** अर्थात् शुभभाव भी त्याज्य है। **विभावों से रहित जो केवलज्ञानादि अनन्त गुणरूप परमात्मतत्त्व...** केवलज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान, हों! केवलज्ञान तेरहवें गुणस्थान में हो, वह नहीं। एक ज्ञान, एक दर्शन, एक आनन्द, ऐसे अनन्तगुणरूप। **अनन्त गुणरूप परमात्मतत्त्व...** अपना परमात्मतत्त्व अनन्त गुणरूप है। आहाहा! इतने गुण अन्दर हैं... कल भक्ति में आया था।

संज्ञी पंचेन्द्रिय हो और पूरे जंगल की वनस्पति के वृक्ष हों, उनकी कलम बनावे, तो भी भगवान के गुण लिखे नहीं जा सकते, इतने अनन्त गुण हैं। इस आत्मा के अन्दर गुण, हों! इसके गुण अनन्त हैं। आकाश के प्रदेश अनन्त हैं, उससे अनन्तगुणे गुण एक जीव में है। आहाहा! क्या कहा? आकाश के प्रदेश हैं न? आकाश सर्वव्यापक है। यह लोक-जगत है और खाली अलोक है, वह सब आकाश के प्रदेश की संख्या, एक परमाणु जितनी जगह रोके, उसे प्रदेश कहा जाता है, वह जितने आकाश के अनन्त अमाप प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुणे गुण एक जीव में हैं। आहाहा! वे अनन्त गुण यहाँ कहे। है न?

केवल अर्थात् अकेला ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुणरूप परमात्मतत्त्व अपना स्वरूप। आहाहा! **उसके सम्यक् श्रद्धान...** ऐसे निज परमात्मतत्त्व की सच्ची श्रद्धा अन्दर अनुभव में होना, उसका सहज सम्यग्ज्ञान और उसका सम्यक् आचरण स्वरूप का। **निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न जो परमानन्द...** आहाहा! **निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न जो परमानन्द परमसमरसीभाव वही हुआ अमृत-रस...** आहाहा! देखो! यह मुनि की दशा! सप्तम गुणस्थान में ऐसी दशा होती है। छठवें गुणस्थान में अभी शुभभाव

आता है, वह प्रमाद है, राग है। आहाहा! **परमसमरसीभाव वही हुआ अमृत-रस उसके आस्वाद से...** आहाहा! अतीन्द्रिय अमृत के रस के आस्वाद से **पूर्ण जो ज्ञानमयीभाव...** ऐसे ज्ञान की स्थिरतामयी भाव। **उसे छोड़कर अन्य व्यवहारप्रतिक्रमण प्रत्याख्यान आलोचना के अनुकूल वन्दन निन्दनादि शुभोपयोग विकल्प-जाल है,...** आहाहा! अमृतरस के स्वाद से पूर्ण ज्ञानमयी भाव, अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति का वीतरागी परिणमन छोड़कर, अन्य व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार प्रत्याख्यान और व्यवहार आलोचना को **अनुकूल वन्दन निन्दनादि शुभोपयोग विकल्प-जाल है,...** वह शुभोपयोग का विकल्पजाल है, वह तो। आहाहा! **वे पूर्ण ज्ञानी को करने योग्य नहीं है।** सप्तम गुणस्थान में स्थिरता करनेवाले को वह वस्तु करनेयोग्य नहीं है। **प्रथम अवस्था में ही है,...** छठवें गुणस्थान में आत्मज्ञान, शान्ति, चारित्र प्रगट हुआ है, परन्तु छठवाँ गुणस्थान है, वहाँ राग आता है। व्यवहारप्रतिक्रमण, वन्दन आदि होता है। फिर स्वरूप में स्थिर होता है, तब वे नहीं होते। **आगे नहीं है।** आहाहा! यह मोक्ष का मार्ग और वीतराग का मार्ग है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६६

अथ -

१९०) वंदउ णिंदउ पडिकमउ भाउ असुद्धउ जासु।
पर तसु संजमु अत्थि णवि जं मण-सुद्धि ण तासु।।६६।।

वन्दतां निन्दतु प्रतिक्रामतु भावः अशुद्धो यस्य।
परं तस्य संयमोऽस्ति नैव यस्मात् मनः शुद्धिर्न तस्य।।६६।।

वंदउ इत्यादि। वंदउ णिंदउ पडिकमउ वन्दननिन्दनप्रतिक्रमणं करोतु। भाउ असुद्धउ जासु भावः परिणामः न शुद्धो यस्य, पर परं नियमेन तसु तस्य पुरुषस्य संजमु अत्थि णवि संयमोऽस्ति नैव। कस्मान्नास्ति। जं यस्मात् कारणात् मण-सुद्धि ण तासु मनःशुद्धिर्न तस्येति। तद्यथा। नित्यानन्दैकरूपस्वशुद्धात्मानुभूतिप्रतिपक्षैर्विषयकषायाधीनैः ख्यातिपूजालाभादि-मनोरथशतसहस्रविकल्पजालमालाप्रपञ्चोत्पन्नैरपध्यानैर्यस्य चित्तं रञ्जितं वासितं तिष्ठति तस्य द्रव्यरूपं वन्दननिन्दनप्रतिक्रमणादिकं कुर्वाणस्यापि भावसंयमो नास्ति इत्यभिप्रायः।।६६।। एवं मोक्षमोक्षफलमोक्षमार्गादिप्रतिपादकद्वितीयमहाधिकारमध्ये निश्चयनयेन पुण्यपापद्वयं समानमित्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्दशसूत्रस्थलं समाप्तम्। अथानन्तरं शुद्धोपयोगादि-प्रतिपादनमुख्यत्वेनैकाधिकचत्वारिंशत्सूत्रपर्यन्तं व्याख्यानं करोति। तत्रान्तरस्थलचतुष्टयं भवति। तद्यथा। प्रथमसूत्रपञ्चकेन शुद्धोपयोगव्याख्यानं करोति, तदनन्तरं पञ्चदशसूत्रपर्यन्तं वीतरागस्वसंवेदनज्ञानमुख्यत्वेन व्याख्यानम्, अत ऊर्ध्वं सूत्राष्टकपर्यन्तं परिग्रहत्यागमुख्यत्वेन व्याख्यानं, तदनन्तरं त्रयोदशसूत्रपर्यन्तं केवलज्ञानादिगुणस्वरूपेण सर्वे जीवाः समाना इति मुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। तद्यथा।

आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं -

जिसके भाव शुद्ध नहिं होते वह वन्दन प्रतिक्रमण करे।
निन्दादिक भी करे किन्तु मन-शुद्धि बिना नहिं संयम है।।६६।।

अन्वयार्थ :- [वंदतु निंदतु प्रतिक्रामतु] निःशंक वंदना करो, निंदा करो, प्रतिक्रमणादि करो, लेकिन [यस्य] जिसके [अशुद्धो भावः] जब तक अशुद्ध परिणाम हैं, [तस्य] उसके [परं] नियम से [संयमः] संयम [नैव अस्ति] नहीं हो सकता, [यस्मात्]

क्योंकि [तस्य] उसके [मनःशुद्धिः न] मन की शुद्धता नहीं है। जिसका मन शुद्ध नहीं, उसके संयम कहाँ से हो सकता है?

भावार्थ :- नित्यानंद एकरूप निज शुद्धात्मा की अनुभूति के प्रतिपक्षी (उलटे) जो विषय कषाय, उनके आधीन आर्त रौद्र खोटे ध्यानों कर जिसका चित्त रँगा हुआ है, उसके द्रव्यरूप व्यवहार-वंदना, निंदा प्रतिक्रमणादि क्या कर सकते हैं? जो वह बाह्य-क्रिया करता है, तो भी उसके भावसंयम नहीं है। सिद्धान्त में उसे असंयमी कहते हैं। कैसे हैं, वो आर्त रौद्र स्वरूप खोटे ध्यान अपनी बड़ाई, प्रतिष्ठा और लाभादि सैंकड़ों मनोरथों के विकल्पों की माला के (पंक्ति के) प्रपंच कर उत्पन्न हुए हैं। जब तक ये चित्त में हैं, तब तक बाह्य-क्रिया क्या कर सकती है? कुछ नहीं कर सकती।।६६।।

इस तरह मोक्ष, मोक्ष-फल, मोक्षमार्गादि का कथन करनेवाले दूसरे महा अधिकार में निश्चयनय से पुण्य, पाप दोनों समान हैं, इस व्याख्यान की मुख्यता से चौदह दोहे कहे। आगे शुद्धोपयोग के कथन की मुख्यता से इकतालीस दोहों में व्याख्यान करते हैं, और आठ दोहों में परिग्रहत्याग के व्याख्यान की मुख्यता से कहते हैं, तथा तेरह दोहों में केवलज्ञानादि गुणस्वरूपकर सब जीव समान हैं, ऐसा व्याख्यान है।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ७, रविवार
दिनांक-२८-११-१९७६, गाथा-६६-६७, प्रवचन-१४५

जिनवरदेव वीतराग परमेश्वर, जिन्हें त्रिकाल ज्ञान और अनन्त आनन्द आदि केवलज्ञान प्रगट हुआ, उन्होंने त्रिकाल वस्तु जानी, वह दिव्यध्वनि द्वारा उपदेश दिया। इच्छा बिना। वीतराग को इच्छा नहीं होती। इच्छा बिना वाणी खिरती है। उस वाणी में से गणधर, सन्त शास्त्र रचते हैं। उसमें का यह शास्त्र है। ६६ (गाथा)। जरा शान्ति से समझने की बात है। पूरा सब फेरफार है।

आगे इसी बात को दृढ़ करते हैं—

१९०) वंदउ णिंदउ पडिकमउ भाउ असुद्धउ जासु।
पर तसु संजमु अत्थि णवि जं मण-सुद्धि ण तासु।।६६।।

आहाहा! कहते हैं कि **निःशंक वन्दना करो,...** भगवान आदि की वन्दना करो, वह शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! **निःशंक वन्दना करो, निन्दा करो,...** आत्मा के पाप के भाव की निन्दा करो। अरे! यह पाप हुए। परन्तु वह निन्दा का भाव भी शुभभाव है। पुण्य है, धर्म नहीं। **प्रतिक्रमणादि करो...** यह करते हैं न सायं-सवेरे प्रतिक्रमण व्यवहार? मिच्छामि दुक्कडम्। वह सब शुभभाव राग है। वह धर्म नहीं। सूक्ष्म बात, बापू! जगत को वस्तु सत्य... है? प्रतिक्रमण। **प्रतिक्रमण आदि करो...** सामायिक, यह प्रतिक्रमण, प्रौषध करते हैं न? वह अभी सम्यग्दर्शन बिना, चैतन्य आनन्द का नाथ प्रभु, उसके अनुभव के शुद्धभाव बिना वह सब क्रियाकाण्ड संसार को प्राप्त करावे, ऐसा है। संसार को प्राप्त (करावे), वह भटकने की बात है सब। सेठ! आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू!

अनन्त काल में इसने चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु शुद्ध आनन्द का, अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा के सन्मुख होकर कभी इसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया ही नहीं। शुद्धता। उसे शुद्धता कहते हैं। उस शुद्धता के भान बिना यह सब प्रतिक्रमण आदि क्रिया करो। **जिसके जब तक अशुद्ध परिणाम हैं,...** आहाहा! वह तो अशुद्ध परिणाम है, कहते हैं। अशुद्ध। अशुद्ध के दो प्रकार—शुभ परिणाम और अशुभ परिणाम। तो यह प्रतिक्रमण आदि, सामायिक आदि क्रिया के भाव हैं, वे शुभभाव अशुद्धभाव हैं। वे धर्म नहीं। आहाहा! **उसके नियम से संयम नहीं हो सकता,...** आहाहा! ऐसे व्यवहार प्रतिक्रमण, व्यवहार सामायिक, व्यवहार प्रौषध, वह सब क्रियाकाण्ड का शुभराग है, उसमें जब तक धर्म मानता है, उसे संयम नहीं, उसे चारित्र नहीं, उसे मुनिपना है नहीं। है?

'संयमोऽस्ति' नहीं हो सकता, क्योंकि उसके मन की शुद्धता नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध वीतरागमूर्ति आत्मा है, उसकी दृष्टि की निर्मलता उसके ज्ञान में नहीं। उस दृष्टि की निर्मलता बिना यह सब क्रियाकाण्ड संसार के कारण हैं। भव का अभाव होने का यह कारण नहीं। समझ में आया? आचार्यों ने तो स्पष्ट रखा है। यह समयसार में मोक्ष अधिकार में आया है, वह यहाँ रखा है। **'मनःशुद्धिः न' 'मनःशुद्धिः'** का अर्थ? यह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न भगवान आत्मा है, वह चैतन्यप्रकाश की मूर्ति है। किसे कहाँ खबर? आत्मा, वह तो चैतन्य के प्रकाश की, अनन्त चैतन्य के

प्रकाश का स्वरूप है। उसकी अनुभवदृष्टि और सम्यग्दर्शन बिना उसके मन में शुद्धि नहीं आती। आहाहा! वह चौरासी के अवतार में भटक मरता है। नरक, स्वर्ग और सेठाई और... क्या है कुछ? तत्त्व का अविनय है, पाप है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **मन की शुद्धता नहीं है। जिसका मन शुद्ध नहीं, उसके संयम कहाँ से हो सकता है?** आहाहा! जिसके मन में आत्मा पवित्र आनन्द का नाथ प्रभु भगवत्स्वरूप आत्मा है, उसका स्वभाव ही भगवन्तस्वरूप है। उसका जिसे अनुभव सम्यग्दर्शन, जिसकी शुद्धता का भाव प्रगट नहीं हुआ, उस जीव को ऐसे प्रतिक्रमण आदि क्रियाकाण्ड क्या करे, कहते हैं। समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बात है। अभी सम्प्रदाय में तो यह बात भी चलती नहीं। यह बाहर का यह करो, प्रतिक्रमण करो, सामायिक करो, इच्छामि प्रतिक्रमण ईरिया वहियाये तस्स मिच्छामि दुक्कडम। तस्सउत्तरी करणेण तावकाय ठाणेणं, इसमें अर्थ भी आता न हो। वह सब क्रिया शुभभाव है, पुण्यभाव है, धर्म नहीं। आहाहा!

धर्म तो परमात्मा जिनवरदेव त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ प्रभु, उसे धर्म कहते हैं, वह पुण्य और पाप के भाव से भिन्न भगवान आत्मा इसकी दृष्टि में आना, इसकी वर्तमान ज्ञान की दशा में पूरा ज्ञेय-परमात्मा का ज्ञान होना। आहाहा! परमात्मा स्वयं, हों! भगवान, भगवान है, वे तो पर परमात्मा हैं। उनका वन्दन, नमन आदि तो शुभभाव है; धर्म नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य जो भगवान आत्मा चैतन्य का प्रकाश का हीरा, जिसमें अनन्त आनन्द और अनन्त ज्ञान और अनन्त शान्ति पड़ी है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जिसे अनुभव नहीं अर्थात् कि जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, अर्थात् कि उस शुद्ध आत्मा के अनुभव की पर्याय में शुद्धता प्रगट नहीं हुई... आहाहा! उसके यह सब व्यवहार प्रतिक्रमण और सामायिक और पाप की निन्दा तथा मिच्छामि दुक्कडम् और यह सब भाव संसार में भटकने के हैं। समझ में आया? **उसके संयम कहाँ से हो सकता है?** आहाहा! कहते हैं कि बाहर की सामायिक करे शुभभाव, प्रतिक्रमण करे, भगवान चौबीस तीर्थंकर का स्तवन करे, सामायिक, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग करे, ताव काय ठाणेणं माणेण झाणेणं अप्पाणं वोसरे। ये सब तो राग की क्रिया है। वह राग की क्रिया आत्मा की शुद्धता बिना क्या कर सकती है? कहते हैं। आहाहा! अब यह व्याख्या करते हैं।

भावार्थ :- नित्यानन्द एकरूप निज शुद्धात्मा की अनुभूति... आहाहा! यह आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने जैसा कहा है और वैसा वह है। कैसा है वह आत्मा? नित्यानन्द। जिसमें नित्य आनन्द पड़ा है। अतीन्द्रिय आनन्द, हों! इस विषयसुख में जो आनन्द मानता है, वह तो दुःख है, वह तो जहर है। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की झुकाव वृत्ति है, वह तो जहर है, दुःख है। भगवान आत्मा तो नित्यानन्दस्वरूप है। आहाहा! जिसमें नित्य शाश्वत् अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है। आहाहा! यह कैसे जँचे? आहाहा! यह आत्मतत्त्व भगवान ने-जिनवरदेव ने जो कहा आत्मतत्त्व वह, यह तो नित्यानन्दस्वरूप है। आहाहा! शाश्वत् असली आनन्द से भरपूर वह भगवान आत्मा है। कहाँ किसे खबर? जय नारायण। अरे! ऐसी की ऐसी जिन्दगी अनन्त काल गयी। एक तो संसार के व्यापार-धन्धा आदि के काम, स्त्री-पुत्र के पाप में से निवृत्त नहीं होता। आहाहा! उसमें से कदाचित् निवृत्त होकर ऐसी क्रिया करे, वह भी पुण्य है, वह धर्म नहीं। जन्म-मरण को टालने की वह क्रिया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

नित्यानन्द एकरूप निज शुद्धात्मा की अनुभूति... अनुभूति अर्थात् अनुभव। अनुभव में सम्यग्दर्शन है। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु एकरूप निज शुद्धात्मा। अपना शुद्ध आत्मा। भगवान का शुद्ध आत्मा भगवान के पास रहा। वह कहीं आत्मा को लाभ नहीं करता। आहाहा! **निज शुद्धात्मा...** अपना अन्दर निर्मल भगवान ज्ञायकस्वरूप चैतन्य शुद्ध नित्यानन्द। आहाहा! उसकी अनुभूति, उसका अनुभव अर्थात् कि उसकी शुद्ध पर्याय में उसका ज्ञान और आनन्द का भान होना। आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। अभी उसे चौथा गुणस्थान है। उसे अनुभूति कहते हैं। आत्मा परमानन्द नित्यानन्द एक शुद्धात्मा का अनुभव। जो राग का अनुभव अनादि से पुण्य-पाप का है, वह तो अशुद्ध-मलिन, जहर का अनुभव है। आहाहा! शुभभाव जो है, यह प्रतिक्रमण दया, दान, व्रतादि, वह भी शुभराग जहर है। नहीं जँचता। अनन्त काल से बात बैठी नहीं। इसने सुनी नहीं। सुनी नहीं। आहाहा! इस शुभभाव को भी परमात्मा विषकुम्भ कहते हैं। विष अर्थात् जहर का घड़ा है यह। आहाहा! भगवान आत्मा नित्यानन्द अमृत का घड़ा है। अब इतना आत्मा कैसे बैठे? एक-दो बीड़ी पीवे, तब पाखाने में ठीक से दस्त उतरे। इतने तो जिसके अपलक्षण। सवेरे डेढ़-पाव सेर चाय पीवे तब मस्तिष्क ठिकाने रहे।

नहीं तो कहे, आज चाय पीकर नहीं आया, इसलिए मस्तिष्क बराबर ठीक नहीं। कहो अब। अरर! डेढ़-पाव सेर चाय की उकाली पीवे, तब इसे मस्तिष्क ठिकाने रहे। कहो, सुजानमलजी! इस अपलक्षण के पार कितने हैं इसके? उसे यह आत्मा शुद्ध नित्यानन्दस्वरूप है, वह इसे कैसे बैठे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे मोक्ष के मार्ग की दशा प्रगट करनी है, उसे तो नित्यानन्द एक शुद्धात्मा का अनुभव करना पड़ेगा। आहाहा! वह मोक्षमार्ग की क्रिया है। समझ में आया? आहाहा! **नित्यानन्द...** नित्यानन्द अर्थात् वह नित्यानन्द नाम होता है बहुतों का। बाबा का नाम। यह नित्यानन्द आता है न वहाँ? थे वहाँ। साधु बाबा हों और बाबा नित्यानन्द। नित्यानन्द नाम हो, अन्दर जहर भरा हो। दृष्टि मिथ्यात्व हो। आहाहा! यह तो भगवान आत्मा परमेश्वर जिनवरदेव केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ की आज्ञा में—हुकम में यह आया है। प्रभु! तू तो नित्यानन्दस्वरूपी है न! आहाहा! भगवान! तुझे तेरी खबर नहीं। तेरा स्वरूप अन्दर भगवानस्वरूप है। आहाहा! यदि भगवानस्वरूप न हो तो पर्याय में भगवान केवली होंगे कहाँ से? कहीं बाहर से आवे, ऐसा है? आहाहा! समझ में आया?

नित्यानन्द एकरूप निज शुद्धात्मा... आहाहा! वह तो एकरूप स्वरूप है, कहते हैं। नित्यानन्द (कहने पर) आनन्द का भेद नहीं वहाँ। वस्तु नित्यानन्द एकरूप है न? एकरूप। आहाहा! चिदानन्द आनन्दकन्द प्रभु एकरूप शुद्धात्मा। आहाहा! उसकी अनुभूति, वह नित्यानन्द एकरूप शुद्धात्मा को अनुसरकर राग के त्याग से अनुभूति होना... आहाहा! इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम सम्यग्ज्ञान और उसमें—स्वरूप में स्थिर होना, इसका नाम सम्यक्चारित्र है। बाकी सब थोथा है। आहाहा! समझ में आया?

इस **अनुभूति के प्रतिपक्षी (उल्टे)...** क्या कहते हैं? देखो! ऐसी जो अनुभूति से उल्टा। **विषय कषाय, उनके आधीन...** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों की ओर झुकाव और राग। शुभ-अशुभ राग, वह कषाय। **उनके आधीन...** आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति, प्रतिक्रमण आदि के भाव, वह शुभराग कषाय है। उसके आधीन हुआ अनादि का अज्ञानी... आहाहा! सहजानन्दस्वरूप। सहजानन्द वे स्वामीनारायण के सहजानन्द, वह

नहीं, हों! यह सहजानन्दस्वरूप ही आत्मा का है। कहा न? नित्यानन्द कहा न? नित्यानन्द कहो या सहजात्मस्वरूप सहजानन्द कहो। आहाहा!

एक बार ऐसा आया था, उमराला में। सहजात्मस्वरूप। एक बाई थी सेठानी। हमारे यहाँ जीवाभाई, बाबूभाई की माँ थी। वह कहे, यह सहजात्मस्वरूप, सहजानन्द आत्मा में कहाँ से आया? यह तो स्वामीनारायण के सहजानन्द हैं। आहाहा! खबर नहीं होती क्या बात है। यह तो आत्मा नित्यानन्द है, सहजानन्द है। स्वाभाविक, सहज अर्थात् स्वाभाविक आनन्द की मूर्ति प्रभु है। इसे खबर कहाँ है? आहाहा! ऐसा जो नित्यानन्द भगवान, उसकी जो शुद्धात्मा की अनुभूति, उससे उल्टे ये शुभ-अशुभाव हैं। समझ में आया? यह शुभ और अशुभभाव, यह अशुद्धभाव, इस नित्यानन्द शुद्धात्मा से विपरीत भाव है। देवीलालजी! ऐसी बात है। आहाहा!

अरे! ऐसी बात सुनने को मिले नहीं। वे बेचारे कहाँ भटकें? मर जाते हैं अनादि काल से। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार...' मुनि के व्रत पाँच महाव्रत लिये, हजारों रानियाँ छोड़ीं, दुकान-धन्धा छोड़कर साधु हुआ। परन्तु वह तो सब राग की क्रिया है। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' भगवान कहते हैं कि ग्रैवेयक में गया। ग्रैवेयक। यह ग्रीवा है न? चौदह ब्रह्माण्ड भगवान ने खड़े पुरुष के आकार देखा है। यह सृष्टि। चौदह ब्रह्माण्ड लोक खड़े पुरुष के आकार है। उसमें ग्रीवा की जगह ग्रैवेयक देव के नौ पासड़ा हैं। वहाँ भी अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। मिथ्यादृष्टि ऐसा क्रियाकाण्ड (करके वहाँ भी उत्पन्न हुआ है)। अभी तो ऐसी क्रिया भी नहीं है। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गया तब, वह क्रिया इसकी ऐसी सख्त। व्रत, तप, भक्ति, पूजा ऐसा शुभभाव, जिसे शुक्ललेश्या अनन्त बार करके वहाँ से स्वर्ग में अनन्त बार गया। 'पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा अन्दर शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसकी अनुभव की दृष्टि बिना आनन्द नहीं आया। आनन्द नहीं आया तो दु:ख आया। पंच महाव्रत के परिणाम भी आस्रव, राग और दु:ख है। अब उसे अभी धर्म मानते हैं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। उसे संयम नहीं। वह शुभभाव, पंच महाव्रत पाले तो उसे संयम नहीं। क्योंकि दृष्टि शुद्ध चैतन्य की नहीं। आहाहा! उसकी दृष्टि में तो अशुद्ध भाव है।

मुमुक्षु : ....रौद्रध्यान हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय से तो वह आर्तध्यान ही है। शुभ दया, पंच महाव्रत के परिणाम, अहिंसा, वह सब आर्तध्यान है, राग है। लोगों को बेचारों को कहाँ (खबर है)। उन्हें पाँच महाव्रत अर्थात् मानो धर्म हो गया। अब ऐसे तो अनन्त बार अभव्य ने किये और तूने भी किये हैं। इसके लिये तो यहाँ बात करते हैं। आहाहा!

जिसे भगवान आत्मा सहजात्म प्रभु, स्वाभाविक वस्तु जो अनादि है। किसी ने की नहीं। उसका कोई ईश्वर कर्ता-बर्ता नहीं। आहाहा! अनादि से सहज वस्तु प्रभु आत्मा है। वह सहजात्मस्वरूप नित्यानन्दस्वरूप है। उसमें नित्य आनन्द पड़ा है, अतीन्द्रिय आनन्द, हों! धूल में यह सब पैसेवाले... पैसे, विषय और भोग, वह तो सब जहर है।

मुमुक्षु : आर्त रौद्रध्यान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आर्तध्यान, रौद्रध्यान है। वह आर्त-रौद्रध्यान है। शुभभाव, वह आर्तध्यान है। अरे! यह बात कैसे बैठे? समझ में आया?

विषय कषाय, उनके आधीन आर्त-रौद्र खोटे ध्यानोंकर जिसका चित्त रंगा हुआ है,... आहाहा! जिसका मन इस कषाय के भाव से रँगा हुआ है, उस शुभक्रिया का भाव राग, उससे रँगा हुआ है, उसे संयम नहीं है, उसे सम्यग्दर्शन नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **उसके द्रव्यरूप व्यवहार-वन्दना,...** आहाहा! उसे भगवान को वन्दन, गुरु को वन्दन, **निन्दा...** पाप का पश्चाताप करे। अरे रे! मैंने ऐसे पाप किये। अरे रे! खोटे। ऐसे भाव। वह भी शुभभाव है। **निन्दा प्रतिक्रमणादि क्या कर सकते हैं?** उसे वन्दन और निन्दन और प्रतिक्रमणादि क्रिया क्या कर सकती है? जिसका चित्त ही राग में रँगा हुआ है। आहाहा! रागरहित भगवान चिदानन्द प्रभु की दृष्टि और अनुभव तो है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, शान्तिभाई! है यह? है या नहीं यह?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो अब नरम पड़ गये हैं। इन्हें तो स्वीकार, पूरा स्वीकार। जिन्दगी गयी हमारी सब। यह सब भाषण करनेवाले।

मुमुक्षु : निदान....

पूज्य गुरुदेवश्री : निन्दन-निन्दन। निदान नहीं, निन्दन। निन्दन चाहिए।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह वन्दन-निन्दन है। संस्कृत में वन्दन है। विद्यावन्दन निन्दन है। है न अन्दर। नहीं, नहीं। यह तो कहा न? यह तो बात चलती है। यह भूल है, कहा नहीं? यह तो बात चलती है। वहाँ निन्दन चाहिए। वह तो यहाँ सुधारा है न उसमें। निन्दन चाहिए। निदान नहीं। '**वन्दननिन्दनप्रतिक्रमणं**' आदि पाठ है न। संस्कृत है न। यह तो लिखने में भूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आये हैं न। यह तो लिख गया है। यह तो शब्द में भूल हो गयी है छापनेवाले को। व्यवहार वन्दना, व्यवहार निन्दन। निन्दन अर्थात् निन्दा, पाप की निन्दा। यह मिच्छामि दुक्कडम्। यह सब शुभभाव है, राग है यह तो। परसन्मुख के झुकाववाली सब वृत्तियाँ कषाय के राग से रँगी हुई है। आहाहा!

भगवान अन्दर नित्यानन्द प्रभु, उसे जिसने स्पर्शा नहीं, उसका जिसे अनुभव नहीं, उसका जिसे आदर नहीं, वे सब राग में रँग गये चित्तवाले हैं। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग में राग से रँगे हुए को धर्म नहीं होता। वीतराग से रँगी हुई जिसकी आत्मपरिणति है। आहाहा! रागरहित अकषायस्वभाव जिसे चौथे गुणस्थान से (प्रगट होता है)। सम्यग्दर्शन, वह अकषायभाव की परिणति है, पर्याय है। बात-बात अन्तर है। उसमें नहीं आता? 'आनन्दा कहे परमानन्दा माणसे माणसे फेर, एक लाखे तो न मळे अने एक तांबियाना तेर।' यहाँ वीतराग कहते हैं कि तेरे और मेरे बात-बात में अन्तर है, भाई! आहाहा! तेरी श्रद्धा मान्यता और हमारी श्रद्धा-मान्यता में पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। आहाहा! कहो, जयन्तीभाई! क्या है यह? यह अभी तक किया नहीं सब? ढोंग किये थे या नहीं? बापू! मार्ग अलग, प्रभु! बापू! आहाहा!

यह शुद्ध नित्यानन्द प्रभु आत्मा... परन्तु वह आत्मा नित्यानन्द है, यह बात भी बैठी नहीं, सुनी नहीं। आत्मा (अर्थात्) हिले-चले और दया पाले, वह आत्मा। आहाहा!

गजब किया है! आत्मा को दूसरे प्रकार से मानकर मार डाला है, घात डाला है, हिंसा की है। आहाहा! यह तो परमात्मा नित्यानन्द शुद्धात्मस्वरूप, उसे इस प्रकार से न मानकर उसे रागवाला और पुण्यवाला मानना, वह आत्मा की हिंसा है। इस अहिंसा का इसने नाश किया है। अहिंसा अर्थात् राग की उत्पत्ति नहीं होना और वीतराग की पर्याय वीतरागस्वभाव के आश्रय से वीतरागी पर्याय होना, वह अहिंसा है। पर की दया पालना, वह अहिंसा नहीं। आहाहा! कौन पर की (दया) पाल सकता है? उसका आयुष्य हो, तब तक रहेगा। तू उसकी दया पाल सकता है? पर की दया का भाव आवे, वह शुभराग है। निश्चय से हिंसा है। आहाहा! ऐसी बात सुनी जाये नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, सेठ! पर की दया का भाव राग—हिंसा। क्या हाँ। यह सेठ कहते हैं। सुनने को मिलता नहीं। यह करोड़ोंपति सेठ है। बड़े वैभववाले हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची। खबर है न हमको। आहाहा!

यहाँ तो ६३ वर्ष तो दीक्षा के हुए हैं। ६३। ६० और ३। यह परसों ६४वाँ लगेगा। मगसिर शुक्ल ९। (संवत्) १९७० के मगसिर शुक्ल ९ की दीक्षा है। यह मगसिर चलता है न? परसों मंगलवार है। तब रविवार था। मगसिर शुक्ल ९ और रविवार। दीक्षा को ६३ वर्ष पूरे होंगे। ६० और ३। यह ६४वाँ लगेगा। ४२ तो यहाँ हुए। २१ वर्ष और ४ महीने उसमें (सम्प्रदाय में) थे। यह बात कहीं थी नहीं। आहाहा! इसीलिए तो बदलना पड़ा। बापू! मार्ग दूसरा है, भाई! आहाहा! बड़े भाई ने दीक्षा दी थी तब तो बड़ी धूमधाम से ६३ वर्ष पहले। तब १८०० रुपये खर्च करके। ६३ वर्ष पहले। बड़े भाई (ने) भाई को कहा, यह मार्ग नहीं है। यह साधुपना ऐसा नहीं है। मैं इसमें से निकल जानेवाला हूँ। अभी तैयारी होती थी वहाँ उमराला दीक्षा की। नवमीं को। हाथी के हौदे दीक्षा ली थी। वळा, वळा साथ में है न उमराला में।

मुमुक्षु : धोती फट गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह धोती फटी। शंका पड़ गयी थी। हाथी आया। हाथी ऊँचा होता है न बड़ा? ६३ वर्ष हुए। वळा के दरबार रखते थे। अब तो राजा भी कहाँ रखते

हैं। राजा रखते थे। उमराला से सात मील है। वहाँ हाथी ऊपर जहाँ चढ़ने गये। धोती तो ऊँची (कीमती) पहनते थे न सब उस समय तो? वह धोती उसकी निसरणी में उसमें फटी। निसरणी थी न? ऊपर चढ़ते हुए फँसकर फटी। कहा, क्या हुआ यह? कुछ है। उस समय तो कुछ खबर नहीं पड़ी। बात यह कि इस वस्त्रसहित मुनिपना, यह मुनिपना होता ही नहीं जैनदर्शन में। परन्तु यह बाद में खबर पड़ी, हों! उस समय किसे भान था। यह हुआ क्या कहा? बड़ी धूमधाम थी। गाँव छोटा उमराला, तथापि दो हजार लोग बाहर से आये थे। आहाहा! यह वस्तु सब दूसरी, बापू!

यह तो आत्मा जिसे परमेश्वर, जिनवरदेव जिसे (आत्मा कहते हैं)। यह नव तत्त्व है न? तो यह शुभक्रिया है, वह पुण्यतत्त्व है। सामायिक और प्रतिक्रमण वह सब पुण्यतत्त्व, शुभराग है। और यह व्यापार, धन्धे के भाव, वे पापतत्त्व हैं। विषयभोग के भाव, वे पापतत्त्व हैं। यह पुण्य-पाप दोनों आस्रवतत्त्व हैं। और पुण्य-पाप दोनों भाव बन्धतत्त्व है। उससे भगवान आत्मा भिन्न आता है या नहीं? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। तब यह बन्ध और पुण्य-पाप और आस्रव से जीवतत्त्व भिन्न है। इतनी अभी खबर नहीं। उसे नव तत्त्व के नाम आवे सही। नव तत्त्व किसे कहते हैं? आत्मा, पुण्य, पाप, यह दोनों होकर आस्रव, यह भावबन्ध और फिर संवर, निर्जरा और मोक्ष। यह तो और निर्मल दशा। परन्तु यह संवर, निर्जरा, मोक्ष, वह भी आत्मतत्त्व नहीं। आहाहा! वह तो पर्याय है। जब अभी इस शुभ की क्रिया के भाव भी आस्रव और पुण्य है, तो आत्मा के आश्रय से हुई निर्मल दशा, शुद्ध चैतन्य की संवर दशा वीतरागी परिणति, वह संवर है। और उसमें शुद्धि की वृद्धि होना, वह निर्जरा है। और शुद्धि की पूर्णता होना, वह मोक्ष है। तथापि ये तीन तत्त्व, वे आत्मतत्त्व नहीं हैं।

मुमुक्षु : आत्मा के आश्रय से....

पूज्य गुरुदेवश्री : आश्रय से हुई परन्तु तत्त्व नहीं न यह, यह तो पर्याय है। बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! संवर, निर्जरा, मोक्ष तो शुद्ध आत्मा की निर्मल वीतरागी पर्याय है। और आत्मा तो नित्यानन्द वीतरागमूर्ति है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आया, कहा जाता है न? समझ जाये, तब तो निहाल हो जाये। परन्तु किस अपेक्षा से क्या बात

कही जाती है, इसकी गन्ध आती है कुछ? आहाहा! अरे रे! इसने वीतरागमार्ग को, जिनवर ने कहे हुए मार्ग को जाना नहीं। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे शुद्ध स्वरूप की अन्तर्दृष्टि और अनुभव बिना ऐसे क्रियाकाण्ड के शुभभाव, **उसके द्रव्यरूप व्यवहार-वन्दना, निन्दा प्रतिक्रमणादि क्या कर सकते हैं? जो वह बाह्य-क्रिया करता है, तो भी उसके भावसंयम नहीं है।** आहाहा! ऐसे व्रत पालन करे, महीने-महीने के अपवास करे, दो-दो महीने के संथारा करे, परन्तु सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। वस्तु अन्दर कौन है। उसे संयम नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह बाहर की चमक। उसमें शरीर सुन्दर, पैसा दो-पाँच करोड़ हो धूल के, स्त्री-पुत्र अच्छे हों मानो, ओहोहो! धूल है अब, सुन न! वह तो मिट्टी परवस्तु है। ऐसा जब पर से आत्मा की शोभा नहीं, वैसे पुण्य और पाप के परिणाम से आत्मा की शोभा नहीं। वह तो पुण्य के फलरूप से यह धूल मिले, दो-पाँच करोड़ रुपये, दस-दस लाख की आमदनी, स्त्री, पुत्र, परिवार ऐसा सब... क्या कहलाता है? समझ में आया? भरकर भर्यूं... भर्यूं... कुछ कहते हैं। एक बार कहते थे। परिवार सब...

मुमुक्षु : आज्ञाकारी कुटुम्ब।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज्ञाकारी कुटुम्ब। यह सब आज्ञाकारी कुटुम्ब इकट्ठा हुआ। एक बार वहाँ हुए थे न राजकोट में? पुंजाभाई का पुत्र, मरने की तैयारी थी न! यह सब करोड़पति उसके भाई। नानालालभाई करोड़पति। तो मुझे बुलाया। महाराज इसे मांगलिक सुनाओ। मरने की तैयारी। नवविवाहित। यह (संवत्) १९९९ के वर्ष की बात है। ...लिये जाये अन्दर से। आहाहा! आज्ञाकारी कुटुम्ब इकट्ठा हुआ। पूरा कमरा भर गया था। बड़ा गृहस्थ न! नानालालभाई, बेचरभाई उसके काका का पुत्र था वह। अमुलख-अमुलख नाम था। आहाहा! आज्ञाकारी कुटुम्ब इकट्ठा हुआ। क्या धूल। आज्ञाकारी कुटुम्ब किसे कहे? यह रजकण शरीर का, वह भी तेरा नहीं और तेरे कारण रहता नहीं वहाँ। वह तो स्वतन्त्र अजीव है, जड़ है। और दूसरे आत्मायें वे स्वतन्त्र आत्मा हैं। वे कहीं तेरे नहीं हैं और तेरे कारण नहीं आये वहाँ। आहाहा! यह बाहर की शोभा में भ्रमित हो गया बेचारा। इससे आगे गये, तब त्यागी हुए, वे राग की चमक में भ्रमित हो गये। देह-देहादि की क्रिया जो शुभ दया, दान, व्रत, भक्ति, उसकी चमक में भ्रमित हो

गये बेचारे। उससे भिन्न भगवान नित्यानन्द का नाथ प्रभु, उसके सन्मुख देखा नहीं, उसकी विमुखता टाली नहीं, इसलिए उसे शुद्धता हुई नहीं। आहाहा! ऐसा उपदेश भी किस जाति का? ऐसा मार्ग है, बापू! जिनवर वीतराग परमेश्वर... अभी तो अजैन के नाम से जैन चलाया है। आहाहा!

जिनवरदेव वीतराग परमात्मा साक्षात् विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर प्रभु विराजते हैं। पाँच सौ धनुष का देह है। करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक पूर्व में ७० लाख, ५६ हजार करोड़ वर्ष होते हैं। ऐसे भगवान अभी समवसरण में विराजते हैं। मनुष्यक्षेत्र में हैं अभी, महाविदेह में। वहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। संवत् ४९। दो हजार वर्ष हुए। वहाँ गये थे। आठ दिन रहकर वहाँ से आकर समयसार आदि शास्त्र बनाये हैं। समयसार, प्रवचनसार, यह सब। यह पौने चार लाख अक्षर हैं। ये वहाँ से भगवान के पास जाकर आने के बाद यह सब शास्त्र रचे हैं। वे यह (परमागम मन्दिर में) उत्कीर्ण हो गये हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसका भाव, वीतराग शास्त्र का तात्पर्य तो वीतरागता है। तो वीतरागता कब प्रगट हो? आहाहा! वह सब शुभाशुभक्रिया के राग की रुचि छोड़कर, उसका आश्रय छोड़कर भगवान नित्यानन्द का आश्रय करे, तब उसे सम्यग्दर्शन अनुभूति, वीतरागीदशा प्रगट हो। यह शास्त्र का तात्पर्य है। आहाहा! भगवान के कहे हुए चारों ही अनुयोग, उनका तात्पर्य तो यह है।

वह बाह्य क्रिया करता है, तो भी उसके भावसंयम नहीं है। सिद्धान्त में उसे असंयमी कहते हैं। देखो! आहाहा! पंच महाव्रत पाले, पाँच समिति—गुप्ति रखे, निर्दोष आहार ले, उसके लिये बनाया हुआ ले नहीं। परन्तु वह सब क्रिया के भाव राग और विकल्प है। उस राग में रँगे हुए को संयम नहीं। जिसे चैतन्य का रंग चढ़ा नहीं... आहाहा! वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, उसका रंग, जिसे लगन लगी नहीं, उसे संयम नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

देखो न! अभी तो यह हार्टफेल का सुनते हैं जहाँ-तहाँ। घड़ीक में हार्टफेल हो गया। ढींकणा हो गया। जाये मरकर पशु और... बनिया-बनिया बेचारा नरक में तो जाये

नहीं। माँस-मदिरा तो खाता (पीता) न हो। मुसलमान ऐसे हों। माँस-शराब खाते(पीते) हों, वह तो मरकर नरक में जाये। यह बेचारा नरक में न जाये, परन्तु ढ़ोर में जाये। आहाहा! पशु के अवतार। क्योंकि भगवान आत्मा वीतराग नित्यानन्द प्रभु से उल्टी दशा की है। वक्र दशा। पुण्य और पाप के भाव। उसमें यदि पाप का भाव हो तब तो नरक और पशु होता है। पुण्य का भाव हो तो स्वर्ग होता है। पुण्य और पाप का मिश्रणपना हो तो मनुष्य होता है। बाकी गति बिना इसे सिद्धपद नहीं होता। आहाहा!

असंयमी कहते हैं। आहाहा! लो! यह व्रत पाले पाँच महाव्रत, नग्नमुनि दिगम्बर होकर हजारों रानियाँ छोड़े और उसके लिये बनाया हुआ आहार ले नहीं। एकेन्द्रिय को घाते नहीं। एकेन्द्रिय जीव, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति। वह एकेन्द्रिय जीव है। आहाहा! लहसुन के एक राई जितने टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव हैं। उन्हें न मारे तो भी वह असंयमी है। आहाहा! क्योंकि वह तो राग की क्रिया में रँग गया है। वीतरागभाव में रँगा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

सिद्धान्त में उसे असंयमी कहते हैं। कैसे हैं, वो आर्त-रौद्र स्वरूप खोटे ध्यान अपनी बड़ाई,... आहाहा! हम ऐसा पालन करते हैं, हम व्रत पालते हैं। वह तो राग की क्रिया है, बापू! आत्मा तो ज्ञाता-दृष्टा है। उस ज्ञाता-दृष्टा में आया नहीं और उस क्रिया में बड़ाई माने। आहाहा! **अपनी बड़ाई, प्रतिष्ठा...** दुनिया में हमारी इज्जत कितनी है! हमको कितने लोग मानते हैं। परन्तु इसमें तुझे क्या हुआ? समझ में आया? **प्रतिष्ठा और लाभादि सैकड़ों मनोरथों के...** बड़ाई का मनोरथ, प्रतिष्ठा का मनोरथ, लाभ का (मनोरथ)। शिष्य हों, इज्जत मिले... आहाहा! ऐसे लाभ के सैकड़ों मनोरथ। **मनोरथों के विकल्पों की माला के (पंक्ति के)...** आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्प नित्यानन्द का भान नहीं, उसका वेदन नहीं, अनुभव नहीं। इसलिए ऐसे विकल्प के जाल में रंगे हुए जीव हैं सब। आहाहा! है?

सैकड़ों मनोरथों के विकल्पों की... आहाहा! जैसे वह धागा खींचते हैं न, क्या कहलाता है? पुणी। पुणी एक के बाद एक पुणी साँधते ही जाते हैं। डोरा टूटता नहीं। इसी प्रकार एक के बाद एक विकल्प पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... पुण्य और पाप... साँधते ही जाता है अनादि से। दोनों विकल्प के जाल हैं। आहाहा! शुभभाव तो एकेन्द्रिय

में भी होता है। क्या कहा? निगोद के जीव, लहसुन के जीव अनन्त जीव हैं। एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्त जीव भगवान त्रिलोकनाथ ने कहे हैं। उन एक-एक जीव को शुभ और अशुभभाव हमेशा होते हैं। एकेन्द्रिय में भी होते हैं। शुभ और अशुभ। क्योंकि अकेला अशुभ उसे होता नहीं। और शुभ से वह पुण्य बाँधता है। और उसी और उसी में पर्याप्तपना मिले, बादरपना मिले, विशेष शुभ हो जाये तो वहाँ से मरकर मनुष्य हो, निगोद में से मनुष्य होता है। यह निगोद में से आया है न बाहर? आहाहा!

पुण्यभाव, शुभभाव तो, कहते हैं कि एकेन्द्रिय जीव को भी है। उसमें तेरी विशिष्टता तूने क्या की? समझ में आया? आहाहा! ऐसे विकल्प के जाल के मनोरथ, पंक्ति-पंक्ति करके? माला। एक के बाद एक... एक के बाद एक विकल्प साँधा ही करता है। निर्विकल्प भगवान आत्मा में दृष्टि न देकर विकल्प के जाल साँधा करता है। आहाहा! भारी बातें, भाई! परन्तु बहुत अन्तर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दिखाव करने के लिये कहते हैं। अन्दर भाव है न कि हमने ऐसा किया... यह ऐसा किया। यह तो है न अन्दर वहाँ। आहाहा! बाह्य क्रिया पहले आयी थी न? बाह्य क्रिया करता है, ऊपर लिखा है।

मुमुक्षु : उसे बाह्य.... कुछ नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह क्या करे? यह तो बात आ गयी पहली। परन्तु ऐसा कि बड़ाई के लिये है न। अन्दर बड़ाई करता है। महत्ता लेता है। हम व्रतधारी हैं। यह सब पापी अव्रत में हैं। परन्तु व्रत भी राग है, अब सुन न! उसकी बड़ाई और प्रतिष्ठा में बेचारे मर गये ऐसे के ऐसे। आहाहा!

एक तो संसार के कारण निवृत्त कहाँ है? छह-सात घण्टे नींद में जाये, दो-तीन घण्टे भोग में जाये, दो-तीन घण्टे आहार में जाये, दो-तीन घण्टे कुथली में—विकथा में जाये और घण्टा भर कुछ मिला हो और सुनने जाये वहाँ बात ऐसी बतावे इसे। श्रीमद् कहते हैं, कि घण्टा भर मिले, उसमें (सुनने) जाये, वहाँ कुगुरु इसका घण्टा लूट लेते

हैं। उसे बतावे कि इस क्रिया से धर्म होगा, इस क्रिया से धर्म होगा। (ऐसा एक घण्टा) इसका लूट लेते हैं। समझ में आया? आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर की कही हुई सम्यग्दृष्टि क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं, सुनने को मिलता नहीं। आहाहा! ऐसे अन्तर में शुद्ध आत्मा की सम्यग्दर्शन की क्रिया बिना ऐसी क्रियाओं से... क्या कहते हैं?

यह तो **प्रपंच कर उत्पन्न हुए हैं।** आहाहा! माला की पंक्ति के प्रपंचकर विकल्प उठे हैं। **जब तक ये चित्त में हैं, (विकल्प), जब तक बाह्य क्रिया क्या कर सकती है?** आहाहा! ऐसी शुभ की क्रिया क्या इसे लाभ करे? दर्शनमोह के परिणाम की क्रिया अन्दर चालू है। आहाहा! मिथ्यात्व के परिणाम की क्रिया तो चालू है। आहाहा! **कुछ नहीं कर सकती।** आहाहा! बाह्य क्रिया अर्थात् शरीर की नहीं, हों! उस शुभभाव की। व्रत की, बाह्य त्याग की। सूर्यास्तपूर्व भोजन करते हैं। लो! यह ६६ गाथा हुई। बात तो बहुत सरस थी। आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़े, बापू!

वे कहते हैं न, 'बाह्य क्रिया रुचि जीवडा', एक तो जगत के जीव बाह्य क्रिया के रुचिवाले, शुभ की क्रिया के रुचिवाले, 'उपदेशक पण तेहवा' उसे उपदेशक ऐसे मिले। आहाहा! क्या कुछ कहते हैं न? मालण। योगी 'जहलो जोगी अने माली मकवाणी।' माली मकवाणी को कुछ लेता नहीं था और जहला योगी को कोई देता नहीं था। उन दोनों का मेल खा गया। इसी प्रकार इस अज्ञानी को पुण्य की क्रिया की रुचि है, और इसे उपदेशक ऐसे मिल गये कि इससे तुझे कल्याण होगा। जहलो जोगी और माली मकवाणी दोनों इकट्ठे हो गये। आहाहा! 'बाह्य क्रिया रुचि जीवडा, भाव धर्म रुचि हीण।' वीतरागी दृष्टि क्या है, उसकी खबर नहीं होती। 'उपदेशक पण तेहवा, शुं करे जीव नवीन?' बेचारा नवीन क्या करे? अनादि से करता है, वह करे। आहाहा! उसकी जिन्दगी ऐसी की ऐसी पूरी हो जाती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही होता है। खबर है न यहाँ तो। आहाहा!

गाथा - ६७

रागादिविकल्पनिवृत्तिस्वरूपशुद्धोपयोगे संयमादयः सर्वे गुणास्तिष्ठन्तीति प्रतिपादयति–

१९१) सुद्धहँ संजमु सीलु तउ सुद्धहँ दंसणु णाणु।
सुद्धहँ कम्मक्खउ हवइ सुद्धउ तेण पहाणु।।६७।।

शुद्धानां संयमः शीलं तपः शुद्धानां दर्शनं ज्ञानम्।
शुद्धानां कर्मक्षयो भवति शुद्धो तेन प्रधानः।।६७।।

सुद्धहं इत्यादि। सुद्धहं शुद्धोपयोगिनां संजमु इन्द्रियसुखाभिलाषनिवृत्तिबलेन षड्जीव–निकायहिंसानिवृत्तिबलेनात्मा आत्मनि संयमनं नियमनं संयमः स पूर्वोक्तः शुद्धोपयोगिनामेव। अथवोपेक्षासंयमापहृतसंयमौ वीतरागसरागपरनामानौ तावपि तेषामेव संभवतः। अथवा सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धसूक्ष्मसंपराययथाख्यातभेदेन पञ्चधा संयमः सोऽपि लभ्यते तेषामेव। सीलु स्वात्मना कृत्वा स्वात्मनिवृत्तिर्वर्तनं इति निश्चयव्रतं, व्रतस्य रागादिपरिहारेण परिरक्षणं निश्चयशीलं तदपि तेषामेव। तउ द्वादशविधतपश्चरणबलेन परद्रव्येच्छानिरोधं कृत्वा शुद्धात्मनि प्रतपनं विजयनं तप इति। तदपि तेषामेव। सुद्धहं शुद्धोपयोगिनां दंसणु छद्मस्थावस्थायां स्वशुद्धात्मनि रुचिरूपं सम्यग्दर्शनं केवलज्ञानोत्पत्तौ सत्यां तस्यैव फलभूतं अनीहितविपरीता–भिनिवेशरहित परिणामलक्षणं क्षायिकसम्यक्त्वं केवलदर्शनं वा तेषामेव। णाणु वीतराग–स्वसंवेदनज्ञानं तस्यैव फलभूतं केवलज्ञानं वा सुद्धहं शुद्धोपयोगिनामेव। कम्मक्खउ परमात्म–स्वरूपोपलब्धिलक्षणो द्रव्यभावकर्मक्षयः हवइ तेषामेव भवति। सुद्धउ शुद्धोपयोगपरिणाम–स्तदाधारपुरुषो वा तेण पहाणु येन कारणेन पूर्वोक्ताः संयमादयो गुणाः शुद्धोपयोगे लभ्यन्ते तेन कारणेन स एव प्रधान उपादेयः इति तात्पर्यम्। तथा चोक्तं शुद्धोपयोगफलम् – 'सुद्धस्स य सामण्णं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं। सुद्धस्स य णिव्वाणं सो च्चिय सुद्धो णमो तस्स।।'।।६७।।

अब प्रथम ही रागादि विकल्प की निवृत्तिरूप शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण रहते हैं, ऐसा वर्णन करते हैं –

जो हैं शुद्ध उन्हें ही संयम शील ज्ञान तप दर्शन भी।
उनको ही है कर्मक्षपण इसलिए शुद्ध को मुख्य करें।।६७।।

अन्वयार्थ :– [शुद्धानां] शुद्धोपयोगियों के ही [संयमः शील तपः] पाँच इन्द्री

छट्ठे मन को रोकनेरूप संयम, शील और तप [भवति] होते हैं, [शुद्धानां] शुद्धों के ही [दर्शनं ज्ञानम्] सम्यग्दर्शन और वीतरागस्वसंवेदनज्ञान और [शुद्धानां] शुद्धोपयोगियों के ही [कर्मक्षयः] कर्मों का नाश होता है, [तेन] इसलिये [शुद्धः] शुद्धोपयोग ही [प्रधानः] जगत में मुख्य है।

भावार्थ :– शुद्धोपयोगियों के पाँच इन्द्री छट्ठे मन का रोकना, विषयाभिलाष की निवृत्ति, और छह काय के जीवों की हिंसा से निवृत्ति, उसके बल से आत्मा में निश्चल रहना, उसका नाम संयम है, वह होता है, अथवा उपेक्षासंयम अर्थात् तीन गुप्ति में आरूढ़ और उपहृतसंयम अर्थात् पाँच समिति का पालना, अथवा सरागसंयम अर्थात् शुभोपयोगरूप संयम और वीतरागसंयम अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परमसंयम वह उन शुद्ध चेतनोपयोगियों के ही होता है। शील अर्थात् अपने से अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना यह निश्चयशील, रागादि के त्यागने से शुद्ध भाव की रक्षा करना वह भी निश्चयशील है, और देवांगना, मनुष्यनी, तिर्यंचनी तथा काठ पत्थर चित्रामादि की अचेतन स्त्री–ऐसे चार प्रकार की स्त्रियों का मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना, वह व्यवहारशील है, ये दोनों शील शुद्ध चित्तवालों के ही होते हैं। तप अर्थात् बारह तरह का तप उसके बल से भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर शुद्धात्मा में मग्न रहना, काम क्रोधादि शत्रुओं के वश में न होना, प्रतापरूप विजयरूप जितेंद्री रहना। यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है। दर्शन अर्थात् साधक अवस्था में तो शुद्धात्मा में रुचिरूप सम्यग्दर्शन और केवली अवस्था में उस सम्यग्दर्शन का फलरूप संशय, विमोह, विभ्रम रहित निज परिणामरूप क्षायिकसम्यक्त्व केवलदर्शन यह भी शुद्धों के ही होता है। ज्ञान अर्थात् वीतराग स्वसंवेदनज्ञान और उसका फल केवलज्ञान वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है, और कर्मक्षय अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का नाश तथा परमात्मस्वरूप की प्राप्ति वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होती है। इसलिये शुद्धोपयोग–परिणाम और उन परिणामों का धारण करनेवाला पुरुष ही जगत् में प्रधान है। क्योंकि संयमादि सर्व गुण शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं। इसलिये शुद्धोपयोग के समान अन्य नहीं है, ऐसा तात्पर्य जानना। ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में हरएक जगह 'सुद्धस्स' इत्यादि से कहा गया है। उसका भावार्थ यह है, कि शुद्धोपयोगी के ही मुनि–पद कहा है, और उसी के दर्शन ज्ञान कहे हैं। उसी के निर्वाण है, और वही शुद्ध अर्थात् रागादि रहित है। उसी को हमारा नमस्कार है।।६७।।

गाथा-६७ पर प्रवचन

अब कहते हैं, **इस तरह मोक्ष,...** पहले मोक्ष की व्याख्या बहुत हुई है। सिद्धपद कैसा होता है? मोक्षपद। **मोक्ष-फल...** अनन्त आनन्द आदि। **मोक्षमार्गादिक...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। उसके **कथन करनेवाले दूसरे महा अधिकार में निश्चयनय से पुण्य-पाप दोनों समान हैं,...** देखो! निश्चय दृष्टि से शुभ और अशुभ दोनों समान हैं, दोनों बन्ध के कारण हैं। जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग का भाव, पापबन्ध का कारण है। वैसे ही व्रत, तप, भक्ति का भाव, वह पुण्य है, वह बन्ध का कारण है। दोनों समान हैं। आहाहा!

प्रवचनसार में तो ऐसा कहा है कि दोनों को समान न माने, (वह) घोर संसार में भटकेगा नरक-निगोद में। अन्तर माने, कोई कहे, पुण्य शुभ वह ठीक है और अशुभ अठीक है। गाथा-७७ है। ७७। प्रवचनसार गाथा-७७। जो कोई विशेष माने शुभ-अशुभभाव में। दोनों बन्ध के कारण हैं। आहाहा! शुभोपयोग राग और अशुभोपयोग वह भी राग। वह पाप राग, वह पुण्य राग। व्रत आदि का वह पुण्य राग। इन दोनों में अन्तर माने कि यह ठीक है और यह अठीक है, उसकी दृष्टि मिथ्यात्व है तो घोर संसार में भटकेगा। वह नरक और निगोद में भटकेगा। आहाहा! ऐसी बात है। परमात्मा की यह आज्ञा है।

निश्चयनय से पुण्य, पाप दोनों समान हैं, इस व्याख्यान की मुख्यता से चौदह दोहे कहे। आगे शुद्धोपयोग के कथन की मुख्यता से इकतालीस दोहों में व्याख्यान करते हैं, और आठ दोहों में परिग्रहत्याग के व्याख्यान की मुख्यता से कहते हैं, तथा तेरह दोहों में केवलज्ञानादि गुणस्वरूपकर सब जीव समान हैं, ऐसा व्याख्यान है।

अब प्रथम ही रागादि विकल्प की निवृत्तिरूप शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण रहते हैं, ऐसा वर्णन करते हैं। क्या कहते हैं अब? आहाहा! यह पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् रागजाल, उससे निवृत्ति अन्दर में होना। आहाहा! है? **रागादि विकल्प की निवृत्तिरूप शुद्धोपयोग...** वह शुद्धोपयोग आत्मा के आनन्द का व्यापार अन्दर में। आहाहा! यह व्रत आदि के भाव तो राग अशुद्ध उपयोग है। अब यहाँ शुद्धोपयोग। पुण्य

और पाप के विकल्प की वृत्तियों से भिन्न पड़कर स्वभाव के आश्रय से शुद्धोपयोग (हुआ), उसमें **संयमादि सब गुण रहते हैं,...** शुद्धोपयोग में संयम आदि, चारित्र आदि रहते हैं। उस शुभ उपयोग में संयम-बंयम है नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। कितनों ने तो जिन्दगी में सुना न हो। यह बाहर में सिरपच्ची में पूरी जिन्दगी व्यतीत की हो। निवृत्ति भी थोड़ी मिली हो। आहाहा! सुनने जाये तो ऐसा सब मिला हो। यह करो, व्रत करो, अपवास करो। व्रत करो, वह संयम है। धूल भी नहीं, सुन न! सं—यम। जिसे सं—सम्यग्दर्शन आत्मा का अनुभव हो, उसे अन्दर स्थिरता हो, उसे सं—यम कहा जाता है। आहाहा! बात-बात में अन्तर लगे। पुराने व्यक्ति को रुढ़ि का सब सुना हो, उसमें यह तो बात-बात में अन्तर लगे। सब अन्तर ही है, बापू! पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पश्चिम का अन्तर है दोनों। एक पूर्व का ऐसा और पश्चिम का ऐसा। इसी प्रकार अज्ञानी का मार्ग परलक्ष्यी है, ज्ञानी का मार्ग अन्तरलक्ष्यी है। आहाहा! अन्तरलक्ष्यी और बाह्यलक्ष्यी, क्या यह कहते हैं? बापू! बात ऐसी है, भाई! भगवान अन्दर नित्यानन्द प्रभु है।

कहा नहीं था वहाँ? यह नित्यानन्द का आया था। यह शकरकन्द नहीं, शकरकन्द? यह शक्करिया। उस शकरकन्द की ऊपर की छाल है, वह लाल है। परन्तु छाल न देखो तो अन्दर शकरकन्द है अकेला। शक्कर अर्थात् चीनी की मिठास का पिण्ड। शकरकन्द कहते हैं न उसे? शकरकन्द। वह जरा छाल है, उसे न देखो तो वह शकरकन्द-चीनी की मिठास का पिण्ड है। इसी प्रकार यह (आत्मा) नित्यानन्द प्रभु है। उसे यह पुण्य-पाप के विकल्प की छाल है यह। उस छाल को न देखो तो अन्दर नित्यानन्द आनन्द का कन्द भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द है। अरे! शकरकन्द की बात जँचती है। कहा न, यह पुण्य और पाप के विकल्प का जाल है, वह तो छाल है।

नारियल होता है न, नारियल? उस नारियल की छाल अलग चीज़ है, नारियल में काचली होती है, वह अलग चीज़ है और काचली की ओर की लाल लालिमा की छाल होती है, वह अलग चीज़ है। जो यह महिलायें खोपरापाक बनावे, (तब उसे) घिसकर निकाल डालती है। वह लाल छाल। काचली की ओर की लाल छाल होती है

न ? उस लाल छाल के पीछे है, वह सफेद गोला है। सफेद मीठा गोला, उसे श्रीफल कहते हैं।

इसी प्रकार यह देह है, वह जटा है। अन्दर कर्म के रजकण आठ कर्म हैं, वह काचली है और पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वह लाल छाल है। आहाहा! उस छाल के पीछे अन्दर भगवान है। जैसे वह नारियल श्वेत-सफेद गोला है, उसी प्रकार यह आत्मा आनन्द का शुद्ध गोला है। अरे रे! सुना भी न हो कभी। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा का जिसे भान है, पहिचान और दृष्टि है, उसमें **संयमादि सब गुण रहते हैं,...** उसे संयम, चारित्र, शान्ति, स्वच्छता, मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान उसमें होता है। शुभभाववाले को होता नहीं। आहाहा! **सब गुण रहते हैं, ऐसा वर्णन करते हैं**—लो! ऐसा वर्णन करते हैं यहाँ। ६७ गाथा।

१९१) सुद्धहँ संजमु सीलु तउ सुद्धहँ दंसणु णाणु।
सुद्धहँ कम्मक्खउ हवइ सुद्धउ तेण पहाणु।।६७।।

अन्वयार्थ :- शुद्धोपयोगियों के ही पाँच इन्द्री छट्ठे मन को रोकनेरूप संयम, शील और तप होते हैं,... आहाहा! जिसे यह व्रतादि के विकल्प से भिन्न पड़कर शुद्ध उपयोग जिसे अन्दर प्रगट हुआ... आहाहा! शुद्ध उपयोग क्या और अशुद्ध क्या, (अभी इसकी खबर नहीं)। वह शुद्ध उपयोगी अन्दर आत्मा पवित्र नित्यानन्द का जिसे अन्तर व्यापार हुआ, उस वीतरागी परिणाम को यहाँ शुद्धोपयोग कहते हैं। उस शुद्धोपयोगी को मन और इन्द्रियों को रोकनेवाला संयम होता है। उसे संयम होता है। शुद्ध उपयोगी को शील होता है। उसे अच्छा ब्रह्मचर्य होता है। मात्र शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करे पूरी जिन्दगी, वह कहीं धर्म नहीं। वह तो एक शुभ विकल्प है। आहाहा! शुद्ध उपयोग में अन्दर रहना, उसका नाम ब्रह्मचर्य और शील है। बात बात में अन्तर लगता है। बात तो ऐसी है, बापू! क्या हो ? आहाहा!

ऐसे संयमियों को शील और ऐसे संयमियों को तप होता है। जिसे अन्दर आत्मा पवित्र आनन्द का नाथ, उसका उपयोग प्रगट हुआ—शुद्धोपयोग, वीतरागी परिणाम, उसे तप होता है। मात्र अपवास करके मर जाये, वर्षीतप करके, वह सब लंघन है। समझ में आया ? विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ९, मंगलवार
दिनांक-३०-११-१९७६, गाथा-६७, प्रवचन-१४६

परमात्मप्रकाश, गाथा ६७ चलती है न? भावार्थ। थोड़ा चला है। भावार्थ है न?

शुद्धोपयोगियों के... यहाँ यह सिद्ध करना है कि आत्मा—शुद्ध पवित्र स्वभावी आत्मा के आश्रय से हुआ शुद्धोपयोग या शुद्ध परिणमन, उसमें संयमपना, मोक्षमार्गपना है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह शुद्धोपयोग में है। समझ में आया? शुभोपयोग में यह नहीं, ऐसा कहते हैं। पाप के परिणाम में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान नहीं, पुण्य के परिणाम भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं। शुद्ध चेतनास्वभाव का परिणमन, ऐसा जो शुद्धभाव, शुद्धोपयोग कहा है यहाँ, उस शुद्धभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। कहो, समझ में आया? उस शुद्धोपयोगी को संयम होता है, ऐसा कहना है।

पाँच इन्द्री छट्ठे मन को रोकना, विषयाभिलाष की निवृत्ति, और छह काय के जीवों की हिंसा से निवृत्ति, उसके बल से आत्मा में निश्चल रहना, उसका नाम संयम है,...

मुमुक्षु : महाव्रत नहीं आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : महाव्रत-बहाव्रत संयम कब थे? सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा!

शुद्ध स्वभावी आत्मा, त्रिकाली पवित्रधाम, उसके परिणाम पवित्रधाम के आश्रय से होते हैं, वे शुद्ध होते हैं। वह शुद्ध परिणमन कहो या यहाँ शुद्धोपयोग कहो। उस शुद्ध परिणमन में संयम होता है। यह छह काय की हिंसा की निवृत्ति, मन से निवृत्ति इत्यादि। वह तो निमित्त। परन्तु उससे रहित होकर शुद्ध आत्मा के स्वभाव में उपयोग शुद्धरूप से परिणमना, वह संयम है। यह अभी बड़ा विवाद है। अभी शुद्धोपयोग होता नहीं और यह शुभोपयोग है, वही सर्वस्व है, ऐसा (वे) कहते हैं। यह ऐसा मार्ग पूरा बदल गया। है?

उसे संयम होता है। शुद्ध। पुण्य-पाप के परिणाम जो अशुद्धोपयोग है, उनसे रहित वस्तुस्वभाव के उपयोग का—शुद्ध का परिणमन होना। उसे अशुद्ध की अपेक्षा

नहीं। ऐसा जो शुद्ध परिणमनरूप उपयोग, उसमें संयम होता है। समझ में आया? कहेंगे आगे। गाथा दी है न? प्रवचनसार की २७४ (गाथा)। कहेंगे, शुद्ध को संयम होता है। वहाँ आया है। २७४, प्रवचनसार अन्तिम २७४। पाठ शुद्ध है। शुद्ध को संयम होता है। आहाहा! अर्थात? छहकाय के जीव को न घातना और मन से राग न होना, यह तो व्यवहार हुआ। इससे रहित शुद्धस्वरूप के अवलम्बन से चैतन्य अनन्त गुण पवित्ररूप से जिसे शक्ति और सामर्थ्य है, उसके सन्मुख होकर जो शुद्ध परिणमन शुद्धोपयोग हुआ, वह संयम है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, छहकाय के जीव को हम नहीं मारते, इसलिए संयम है। यह तो निमित्त से—नास्ति से बात है। आहाहा! मारे कौन? परन्तु यह विकल्प है, उसका त्याग करे। परन्तु यह त्याग से—नास्ति से बात हुई है। अस्ति से होनेपने से परमात्मा स्वयं आत्मा शुद्धात्मा है। उसका पूरा स्वरूप ही शुद्धात्मा है। उस शुद्धात्मा की सन्मुख के परिणाम, ऐसा जो शुद्धोपयोग और शुद्ध परिणमन, वह संयम है। लो! यह देवीलालजी! ऐसा संयम। अब यहाँ बात बाहर से मनवानी है। बापू! यह कठिन पड़े उसे—बेचारे को को। मार्ग तो यह है, भाई! किसी व्यक्ति के लिये कुछ नहीं। व्यक्ति के परिणाम की जवाबदारी तो उसे है। अनादि से वीतराग का मार्ग तो यह है। आहाहा! छहकाय जीव को न मारना, मन को विषय से रोकना, वह संयम—ऐसा नहीं। अपने शुद्धस्वभाव का निर्मल परिणमन करना, वीतरागी परिणाम शुद्धोपयोग के (हों), उसमें संयम होता है। आहाहा! ऐसी बात है।

अथवा उपेक्षासंयम अर्थात् तीन गुप्ति में आरूढ़... शुभ विकल्प से रहित तीन गुप्ति। अन्दर गुप्त हो गया। मन, वचन और काया के विकल्प से छूटकर गुप्त हुआ है। गुप्त शक्तिरूप भगवान, गुप्त शक्तिरूप परमात्मा स्वयं, उसमें जिसने गुप्ति की है। आहाहा! उसमें जिसकी लीनता जमी है। आहाहा! उसे संयम कहते हैं। है? यह उपेक्षासंयम कहा।

अब, **उपहृतसंयम अर्थात् पाँच समिति का पालना, अथवा सरागसंयम अर्थात् शुभोपयोगरूप संयम...** आहाहा! **वीतरागसंयम अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परमसंयम वह**

उन शुद्ध चेतनोपयोगियों के ही होता है। यह क्या कहा, समझे? आहाहा! शुद्ध चैतन्य का उपयोग है, उसे ही शुद्धोपयोग है और उसे जो राग बाकी रहा, वह सराग संयम उसे है। समझ में आया? शुद्ध जो चैतन्य भगवान आत्मा, उसके अवलम्बन से हुआ शुद्ध परिणमन उपयोग, वह निश्चय संयम और उस जीव को शुभोपयोग वह व्यवहारसंयम उसे होता है। जिसे निश्चय चेतन परिणमन नहीं, उसे व्यवहार संयम भी नहीं होता। यह ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! आहाहा!

यह संसार। देखो न! ओहोहो! कल यहाँ एक कुत्ती प्रसूत हुई थी। कुतरी समझे? कुत्ती। तीन बच्चे थे। उसमें दो बच्चे खा गयी। यह तो कुत्ते खाते हैं न? पहले में तो ऐसा रखते थे लोग। हम छोटी उम्र में सुनते थे। ७०-७५ वर्ष पहले। कुत्ती प्रसूत हो और लड़के इकट्ठे होकर कहीं से आटा और ऐसा ले आवे, तेल का हलुवा बनावे। तेल का। घी तो कौन कर दे। तेल का हलुवा बनाकर खिलावे। उसे जठर बहुत वह हो गयी हो। बच्चे आये हों न कुत्ती को? अब यहाँ तो कोई नहीं था। भाई भीखाभाई खड़े। मैं शाम को आहार करने निकला। वहाँ भीखाभाई खड़े थे। इस कुत्ती को तीन बच्चे आये और कोई नहीं था। भूख लगी तो दो बच्चों को खा गयी। कुत्ती के। क्या कहा उसका नाम? पिल्ला। दो खा गयी। भूख लगी थी। फिर भीखाभाई कहे, हलुवा कर आये थोड़ा। शेरो समझे न? हलुवा। तेल में-तेल में। पहले ऐसा करते थे हम छोटी उम्र में। कुत्ती हुई हो और लड़के ले आवे। ओ मायी! कुत्ती प्रसूत हुई, धान दो, ऐसा कहते। ७५ वर्ष (पहले की बात है)। धान धोबो समझे न? कुछ धान, धोबो कुछ। आटा आदि दो, ऐसा कहते। खबर है। वहाँ हमारे उमराला में तो कणबीवाड में बहुत हो न। कुत्ती प्रसूत हुई, इसलिए जायें। ओ मायी! कुत्ती प्रसूत हुई है। हे माता! कुत्ती प्रसूत हुई है। धान-धान या धोबो दो तो उस कुत्ती को खिलायें, ऐसा गाते। ऐई! लड़के सात-आठ इकट्ठे होकर और छीबडो हो, यह ठीकरा का, वह लेकर जायें। आहाहा! कल तो नजरों से देखा शाम को। कुत्ती खड़ी थी और भीखाभाई खड़े थे। एक बच्चा देखा अन्दर। एक बच्चा पड़ा है। दो बच्चे तो खा गयी, भूख लगी तो। आहाहा!

इसी प्रकार यह अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी है, वह सर्पणी है। काल। अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी है न? उसमें जो अज्ञान में खड़ा होता है, उसे वह खा जाता है। आहाहा! इस

सर्प को यह होता है। सर्पणी होती है, वह जब ऐसे बल खाकर फिर अण्डा करे। पच्चीस-पचास जन्में उसे। फिर वह सब खा जाती है। भूख लगी हो न। सर्प को कौन हलुवा दे? उस समय कौन वहाँ खड़ा हो? सर्प-सर्प। सर्पणी को फिर बच्चा हो और कुण्डली माँडकर उसमें खाये। उसमें से कोई बाहर निकल गया, वह बच गया। इसी प्रकार इस अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल में राग और काल को अपना मानकर पड़े हैं, वे मर जानेवाले हैं। उसमें से निकल जायेंगे, राग और काल से भिन्न मेरी चीज़ है। आहाहा! मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ। राग होने पर भी शुद्ध चैतन्य का परिणमन, वह वस्तु है। ऐसा दो कहते हैं न? देखो न!

सरागसंयम, शुभोपयोग संयम। **वीतरागसंयम अर्थात् शुद्धोपयोगरूप परमसंयम वह उन शुद्ध चेतनोपयोगियों के ही होता है।** है? शुभ उपयोगी कहो परन्तु शुद्ध चेतना उपयोग जिसे है, उसे वीतराग संयम और उसे शुभराग का सराग संयम उसे होता है। समझ में आया? अकेला शुभराग, ऐसा व्यवहारसंयम, निश्चयसंयम बिना होता नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? या अकेले शुद्धोपयोग में स्थित हो तो वीतरागसंयम है और उपयोग में न हो और शुद्ध परिणमन हो। है न? चेतना उपयोग। चेतना का परिणमन है वास्तव में। ज्ञानचेतना शुद्धरूप से परिणमन है, वह वीतराग संयम है। उसके साथ राग बाकी रहा है, वह शुभराग का व्यवहार संयम है। परन्तु उसे। समझ में आया? आहाहा! मूल बात निश्चय की भूलकर सब बातें (माँडी है)। यहाँ कहते हैं कि निश्चय रखकर फिर सब बात है। आहाहा!

अरे! ऐसे अवतार देखो! ऐसे। यह बेचारा कहाँ से जीव आया होगा। कुत्ती का बच्चा हुआ। और होने के साथ ही खा गयी। वह फिर कहीं गया होगा पशु में। अवतरित हो बेचारा। यह तो कहीं नरक-बरक में तो हो नहीं। मनुष्य के अवतार में (जाये नहीं)। पशु के परिणाम से पशु में जाये वापस पशु में कहीं। आहाहा! ऐसे अनन्त अवतार किये। वे सब अशुद्ध उपयोग के फलरूप से। समझ में आया?

शुभ और अशुभ दोनों अशुद्ध उपयोग है। अशुद्ध व्यापार है। भगवान शुद्धात्मा चैतन्यस्वरूप की सन्मुख का शुद्ध व्यापार, शुद्धोपयोग, वह निश्चय संयम है और उसमें

राग बाकी रहा है, उसे व्यवहार संयम कहा जाता है। शुभराग। अशुभ नहीं। शुभराग है, उसे व्यवहार संयम कहते हैं। समझ में आया? निश्चय है और उस समय अशुभराग में आया होता है तो उसे व्यवहार नहीं है। परन्तु जब वह शुभराग में आता है, निश्चय परिणति है शुद्ध की और शुभराग में आता है, तब उसे व्यवहार संयम कहा जाता है। समझ में आया? उसे भी निश्चयवाले को आर्तध्यान आदि के परिणाम के होते हैं, उस समय तो व्यवहार संयम भी नहीं। निश्चय है अमुक परिणमन में। परन्तु यहाँ तो निश्चय परिणमन के काल के समय शुभराग में जब वर्तता है... आहाहा! तब दोनों को निश्चय और व्यवहार संयम होता है। आहाहा!

अब यहाँ तो अभी ऐसी चिल्लाहट मचाते हैं कि शुद्ध तो अभी होता ही नहीं। शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। अरे! हो गया, धर्म ही होता नहीं। सम्यग्दर्शन होता नहीं। यह पहले से यही लिखा है। देखो! उसमें है। सम्यग्दर्शन का है न? ७४ गाथा में। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम शुद्धोपयोग में होते हैं। शुद्धोपयोग में होते हैं। एक संयम की व्याख्या की। '**सुद्धहँ संजमु**' ६७ गाथा। '**सुद्धहँ संजमु**' की व्याख्या की है। है न पाठ? अब '**सुद्धहँ सीलु**' शील।

शील अर्थात् अपने से अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना... आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान आनन्दमूर्ति प्रभु, वह स्वयं अपने में-आत्मा में आनन्द में प्रवृत्ति (करे)। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान, उसके सन्मुख की अतीन्द्रिय आनन्द की प्रवृत्ति-परिणमन। आहाहा! **करना यह निश्चयशील,...** है। वह निश्चय शील-शील। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका यहाँ काम नहीं। यह संयम है, बस। यह उसमें आ गया इकट्ठा। रागरहित दशा का परिणमन, वह सामायिक, छेदोपस्थापन और वह संयम। इसका अर्थ आ गया है। इसमें है कहीं। इसमें है, देखो! इस टीका में है। '**सामायिकच्छेदो-पस्थापनापरिहारविशुद्धेसूक्ष्मसंपराययथाख्यातभेदेन पञ्चधा संयमः सोऽपि लभ्यते तेषामेव**' संस्कृत में है। ऐसा इसमें आ गया है इकट्ठा। संस्कृत में है। '**सामायिकच्छेदो-पस्थापनापरिहारविशुद्धेसूक्ष्मसंपराययथाख्यातभेदेन पञ्चधा संयमः सोऽपि लभ्यते**' पाँच

चारित्र। **'तेषामेव'** अर्थात् शुद्ध उपयोगी को ही होता है। आहाहा! यह सामायिक है, वह शुद्ध उपयोगी को ही होती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो उसे सम्यग्दर्शन की खबर न हो और फिर सामायिक करे और मान बैठे कि मुझे सामायिक हो गयी। आहाहा!

जिसे शुद्धात्मा की दृष्टि हुई है, उसे वह शुद्धात्मा में रमता है, निश्चल स्थिर होता है, उसे सामायिक होती है। उसे यह संयम कहो या सामायिक कहो। समझ में आया? गृहस्थाश्रम में देशसंयम होता है। अर्थात् शुद्ध आत्मा में पूर्ण रीति से स्थिर होना, उसे होता नहीं। अपूर्ण रीति से स्थिर हो शान्ति के आनन्द में, उसे यहाँ सामायिक कहा जाता है। सर्वविरति सामायिक को विशेष लीनता होती है। आनन्द में विशेष लीनता, उसे सर्वविरति सामायिक कहते हैं। परन्तु जिसे दर्शन सामायिक हो उसे। सम्यग्दर्शन है, शुद्ध चैतन्य का सत्कार जिसे अनुभव में आया है। आहाहा! उसे जो स्थिरता अन्दर जमे, वीतरागी शुद्धोपयोग हो, वह सामायिक है। वह छेदोपस्थापनीय है, वह परिहारविशुद्धि, यथाख्यात और संयम। सूक्ष्म साम्पराय है। आहाहा! यह शील की बात चलती है।

रागादिक त्यागने से शुद्ध भाव की रक्षा करना वह भी निश्चयशील है,... लो, ठीक! यह तो वह का वह हुआ। **अपने आत्मा में प्रवृत्ति करना...** शुद्ध भगवान आत्मा में रमना, वह निश्चयशील है। और **रागादिक त्यागने से शुद्धभाव की रक्षा करना...** देखा! शुद्धभाव की रक्षा करना, शुभभाव की रक्षा छोड़ना। आहाहा! वीतराग का मार्ग लोगों ने कुछ अजैन को जैनपना कल्पकर (मान लिया)। अब यह मार्ग ऐसा है।

और देवांगना,... शील की विशेष व्याख्या करते हैं। **मनुष्यनी, तिर्यंचनी तथा काठ पत्थर चित्रामादि की अचेतन स्त्री—ऐसे चार प्रकार की स्त्रियों का मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना वह व्यवहारशील है,...** यह व्यवहार है। परन्तु जिसे निश्चयशील है, उसे ऐसा व्यवहारशील होता है। संयम आ गया न? निश्चय संयम शुद्ध उपयोग है अर्थात् शुद्ध परिणमन है, उसे शुभराग का व्यवहार संयम होता है। इसी प्रकार जिसे निश्चय ब्रह्मचर्य, शील आत्मा के अनुभव के आनन्द का वेदन

है... आहाहा! उसे व्यवहारशील होता है। तीन प्रकार की स्त्रियाँ। पत्थर की, लकड़ी की, चित्र की। तीन। **मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से त्याग करना वह व्यवहारशील है,...** परन्तु किसे? जिसे निश्चयशील हो उसे। आहाहा! निश्चय होता है, वहाँ व्यवहार होता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब (होता है)। परन्तु उसे निश्चय स्वभाव का आश्रय लेकर शुद्ध परिणमन जिसे उत्पन्न हुआ है। यहाँ उसे उपयोग कहा भले। परन्तु शुद्ध परिणमन है, उसे शुभराग होता है न? तो उस समय शुद्धोपयोग नहीं, परन्तु शुद्ध परिणमन है। उसे उपयोग कहा जाता है। शुद्ध परिणमन, वह निश्चयशील और यह चार देवी आदि का त्याग करना, वह व्यवहारशील। परन्तु इस निश्चयवाले को व्यवहार होता है। समझ में आया? आहाहा! अगम्यगम्य की बातें सब।

मुमुक्षु : .... हो वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसी वस्तु है न। आहाहा!

ये दोनों शील शुद्ध चित्तवालों के ही होते हैं। देखो! जिसका ज्ञान शुद्ध परिणमन है, चित्त अर्थात् जिसका ज्ञान शुद्धरूप से परिणमा है, उसे निश्चयशील और व्यवहारशील होता है। आहाहा! कितना स्पष्ट है! यहाँ कहते हैं कि निश्चय भले न हो परन्तु व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। व्यवहार कैसा? उनका अपना माना हुआ। आहाहा! यह तो कहते हैं कि व्यवहार निरतिचार (हो)। उनके लिये बनाया हुआ आहार ले नहीं, ऐसा व्यवहार निरतिचार हो, तब उसे व्यवहार कहते हैं। कब? कि निचय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम हों उसे। आहाहा! समझ में आया?

'सूत्र अनुसार...' बोलते हैं यह। सूत्र अनुसार जो भविक क्रिया करे, उसका शुद्ध चारित्र परखो। हम यह शुद्ध चारित्र पालते हैं। उसे अभी दृष्टि सम्यक् नहीं, मिथ्यादृष्टि है, वहाँ चारित्र कैसा? आनन्दघनजी में आता है न? यह बोलते हैं। एक आर्यिका यह बोलती है। 'सूत्र अनुसार जो...' ऐसा कि हम त्यागी हैं। देखो! हम सूत्र अनुसार क्रिया करते हैं। आनन्दघनजी में आता है। 'सूत्र अनुसार जो भविक क्रिया करे, उसका शुद्ध चारित्र परखो।' परन्तु ऐसा कहा है वहाँ? क्रिया यह बाहर की करता है, वह सब बिना ठिकाने की है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति आत्मा की जिसे दृष्टि हुई है, और उसमें जिसकी आनन्द की रमणता हुई है... आहाहा! प्रचुर वेदन आनन्द का हुआ है, वह

निश्चयशील है और मन, वचन, काया, कृत, कारित, अनुमोदना से स्त्री आदि का त्याग व्यवहार हुआ, वह शुभराग व्यवहारशील है। आहाहा!

अब तप, तप। वह तप किसे कहते हैं? ठीक! **बारह तरह का तप उसके बल से...** निमित्त से बात है। **भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मरूप सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर...** आहाहा! द्रव्यकर्म की नहीं, शरीरादि नोकर्म की नहीं, वाणी आदि की और पुण्य के परिणाम की नहीं। इन **सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर शुद्धात्मा में मग्न रहना,...** आहाहा! शुद्धात्मा में लीन रहना। आहाहा! **काम क्रोधादि शत्रुओं के वश में न होना,...** आहाहा! **प्रतापरूप विजयरूप जितेन्द्रिय रहना।** देखो भाषा। कितनी तप की व्याख्या! यहाँ तो कहे, अपवास किया तो हो गया तप। और तप अर्थात् निर्जरा और निर्जरा अर्थात् मोक्ष का मार्ग। जाओ। बारह प्रकार के तप में नहीं आता? अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, कायक्लेश, लो! यह तप है या नहीं? यह तो निमित्त की बातें हैं। यह कहा नहीं? उसके बल से अर्थात् उसकी ओर ओर से लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! उसके बल से, यह निमित्त से बात है। बारह प्रकार के व्यवहारतप हैं न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध चित्तवाले को। आहाहा! जिसका चित्त-ज्ञान शुद्ध परिणमा है। आहाहा! बहुत अन्तर। अब इसके साथ समन्वय करो कुछ, ऐसा कहते हैं। कुछ ढीला करो तुम, कुछ हम ढीला करें। सेठ! ऐसा कहते हैं, तुम्हारी ओर से यह सब उनके लोग। कुछ ढीला रखो थोड़ा। सख्त रखा है कि....

मुमुक्षु : अच्छी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छी बात यह है कि सच्चे-झूठे के समन्वय किस प्रकार होगा? आहाहा! समन्वय हो तो प्रेम हो। तो यह दो भाग पड़ते हैं, वे न पड़ें। भगवान! भाग पड़े, न पड़े, वस्तु तो यह है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : समझौता करना....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ढीला करे? शुद्ध के ऊपर परिणमन नहीं और शुभ से उसे मनवाना है। किस प्रकार समन्वय करना?

मुमुक्षु : झगड़ा मिट जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका झगड़ा ? झगड़ा खड़ा रहेगा उसे अन्दर में। यह कोई व्यक्ति की बात नहीं है। यह तो वस्तु की स्थिति है। वस्तु का स्वभाव है। उस व्यक्ति के परिणाम व्यक्ति को जवाबदारी है। उसमें कुछ नहीं। यहाँ तो वस्तुस्थिति ऐसी है।

शुभ-अशुभ परिणाम जो अशुद्ध परिणाम हैं, उनका त्याग करके शुभ की भी इच्छा रोककर। आहाहा! **शुद्धात्मा में मग्न रहना,...** है न ? **सब वस्तुओं में इच्छा छोड़कर शुद्धात्मा में मग्न रहना, काम क्रोधादि शत्रुओं के वश में न होना,...** आहाहा! यह तप की व्याख्या अभी सुनते हुए इसे... यह तो अपवास किये और संथारा किया। स्थानकवासी में तो एक ही यही चलता है। त्याग और तप बाहर में, बस। बाह्य त्याग में भी कुछ है। क्या त्याग में है ? राग का त्याग भी जिसका शुभ-अशुभ राग दोनों का त्याग होकर शुद्ध उपयोग होता है, उसमें है। आहाहा!

यहाँ विशेष कहते हैं। **प्रतापरूप विजयरूप जितेन्द्रिय रहना।** देखा! 'तप्यं इति तपः' आनन्द का प्रताप प्रगट होना। विजयरूप। राग के ऊपर जीत प्राप्त करना और अपने स्वभाव की विजय प्रगट करना, वह जितेन्द्रिय रहना। आहाहा! **यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है।** है ? **यह तप शुद्ध चित्तवालों के ही होता है।** आहाहा! जिसकी दृष्टि सम्यक् है, शुद्ध जिसकी दृष्टि (हुई है), पश्चात् शुद्धता-स्थिरता जमी है। जिसका प्रताप प्रगट हुआ है। स्वतन्त्रता से अखण्डित... आहाहा! ऐसी प्रभुता की शक्ति का प्रताप जिसे प्रगट हुआ है। आहा! जिसने राग पर विजय प्राप्त की है, आहाहा! उसे यहाँ तप कहा जाता है। देखो, यह व्याख्या। सामायिक को, चारित्र को, उसे शुद्धोपयोग को चारित्र कहा। और उस तप को भी जैसा शुद्ध उपयोग का तपन है अन्दर में, विजय है अन्दर में भगवान को... आहाहा! उसे तप कहते हैं।

कहो, यह व्याख्या तो कितने हजारों वर्ष की है। यह स्वरूपभाव तो अनादि का है। परन्तु इस शास्त्ररूप से रचना १३०० वर्ष पहले हुई। समयसार २००० वर्ष पहले (बना)। सबका एक ही भाव है। दिगम्बर सन्तों की वाणी तो एक ही प्रकार से (होती है)। पूर्वापर विरोधरहित शुद्धता को सिद्धि करके फिर शुभभाव को जानते हैं। वह

वास्तव में शुभ है, उसका कर्ता नहीं होता, परन्तु परिणमन है, इसलिए उसे व्यवहार कहने में आता है। आहाहा! बहुत भाई, यह बात।

वाणी के गोदाम में पड़े हैं यहाँ तो देखो! यह वीतराग की वाणी है। 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी' लोकमाता, ऐसा कहा है। यह स्तवन है न इसमें? इस वाणी का। 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता विशुद्धा प्रबुद्धा नमो लोकमाता।' जिनवाणी का भाव लोकमाता है। आहाहा! जिसमें से वीतरागता का प्रसव होता है। आहाहा! 'जिनादेश जाता जिनेन्द्रा विख्याता, विशुद्ध प्रबुद्धा नमो लोकमाता।' आहा! 'दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी, दुराचार...' मिथ्यानय को हरनेवाली। 'हरनारी शंकरानी सुखदानी' यह तो। 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी'। आहाहा! 'सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला, सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला' वीतराग की वाणी, यह उसका भाव। 'सुधाताप निर्नाशनी मेघमाला।' ताप का नाश करनेवाली मेघ की माला वर्षा धारावाही। धारावाही वर्षा पड़े, वहाँ ताप का नाश हो जाता है। 'महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी, नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी' वागेश्वरी। वह बाघ की ईश्वर कहते हैं। यह तो वाकेश्वरी—वाणी में ईश्वरी। यह आता है, हों! उसमें कहीं। अनादि ईश्वरी नहीं? 'अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा अनंता अनादिश्वरी' अनादि ईश्वरी जैनवाणी है। वीतरागभाव बतलानेवाली। अनादि ईश्वरी है। अनादि है। 'अनंता अनादिश्वरी जड़ कर्मनाशा, निशंका निरंका चिदंका भवानी नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' यह सब विशेषण। सब बहुत विशेषण। आहाहा!

भले कहते हैं 'कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा' संस्कृत हो भाषा वीतराग की वाणी, प्राकृत हो और देशभाषा—प्रचलित भाषा हो। 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी' चिदानन्द ऐसा राजा भूपाल, उसकी राजधानी है। आहाहा! चिदानन्द राजा वहाँ राज करता है। आहाहा! 'नमो देवी वागेश्वरी जैनवाणी।' बहुत अच्छा लिखा है। बनारसीदास का है, हों! बनारसीविलास में। आहाहा! ऐसे बनारसीदास और टोडरमल को, लो! उन्हें अब ऐसा कहना। अरे! भगवान! क्या बापू! तुझे नहीं जँचे, इसलिए (ऐसा कहना)? अब भांग पीकर, अध्यात्म की भांग पीकर नाचे थे। भाई!

मुमुक्षु : अध्यात्म तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर उतार डालता है।

अरे... प्रभु! वीतराग का विरह पड़ा। उनके बिना सन्तों ने शुद्ध की धारा बहायी। पण्डितों ने शुद्ध को सिद्ध किया। आहाहा! सरल भाषा में साधारण लोगों को संस्कृत-व्याकरण न हो, उन्हें भी प्रचलित भाषा में—देशभाषा में समझाया। उसे ऐसा कहना कि... अरे रे! प्रभु! कोई है नहीं। ऐसा पुण्य भी नहीं कि कोई देव आवे। भाई! यह बात खोटी है। आहाहा!

यह तप तो शुद्ध चित्तवालों के ही होता है। जिसका चित्त-ज्ञान शुद्ध है, पवित्र हुआ है, उसे तप होता है। आहाहा! बहुत सरस व्याख्या है। आहाहा! अरे! इसकी श्रद्धा तो करे कि वस्तु यह है। आहाहा! **दर्शन...** अब दर्शन किसे होता है? **साधक अवस्था में तो शुद्धात्मा में रुचिरूप सम्यग्दर्शन...** दो व्याख्या करेंगे। **दर्शन अर्थात् साधक अवस्था में तो शुद्धात्मा में रुचिरूप...** पूर्णानन्द के नाथ का प्रेम जिसे रुचि जगी है अन्दर से। शुभाशुभ परिणाम की रुचि जिसे छूट गयी है। आहाहा! ऐसा जो सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध उपयोगी ही होता है, ऐसा कहते हैं। **और...** अब दर्शन की बड़ी व्याख्या। **केवली अवस्था में उस सम्यग्दर्शन का फलरूप...** उस सम्यग्दर्शन का फल। क्या? क्षायिक समकित, केवलदर्शन। क्षायिक समकित। आहाहा!

सम्यग्दर्शन का फलरूप संशय, विमोह, विभ्रमरहित निज परिणामरूप... आत्मा के वीतरागी परिणामरूप **क्षायिकसम्यक्त्व केवलदर्शन यह भी शुद्धों के ही होता है।** आहाहा! साधक अवस्था में उसके फलरूप से क्षायिक समकित, उसके फलरूप से केवलदर्शन **यह भी शुद्धों के ही होता है।** आहाहा! वह शुद्धात्मा त्रिकाली शुद्धात्मा के आश्रय से शुद्ध परिणमन होता है, उसमें क्षायिक समकित और साधक अवस्था का समकित और केवलदर्शन उसमें होता है। आहाहा! है?

यह भी शुद्धों के ही होता है। सम्यग्दर्शन साधक अवस्था में भी शुद्ध में होता है। आहाहा! वास्तव में सम्यग्दर्शन होने के काल में शुद्ध उपयोग होता है। फिर शुद्ध का परिणमन होता है। उपयोग भले विकल्प में जाये। समझ में आया? आहाहा! अरे! ऐसे जन्म-मरण के रोग को टालने का उपाय तो यह है, भाई! उसे स्वीकार करने के बदले उससे इनकार करे। अरेरे! उसे कहाँ जाना है भाई! आहाहा!

कहो, वे पिल्ले बेचारे कहाँ से आये होंगे? और दो-चार महीने रहे और हुए और फिर खा गयी उसकी माँ। वह और कहीं अवतरित हुए। वह तो पशु में और पशु में जाये बेचारे। आहाहा! ऐसे अवतार तो अनन्त किये। अनादि-आदि कहाँ है? अनादि... अनादि... अनादि... अनन्त अवतार में। अरे! कोई गिनती नहीं थी। सामने देखता नहीं। उसकी माँ खा गयी निगलकर। आहाहा! यहाँ मन्दिर के पीछे। कल। कहो, ठीक! कल न? मैं आहार करने निकला था। मैंने ऐसा देखा बच्चा पड़ा था। भीखाभाई खड़े थे। वहाँ कुत्ती खड़ी थी ऐसी। जठराग्नि बहुत होती होगी कुछ।

अपने यह प्रसूता बाई को करे, तब देते हैं न लड्डू वे मसाला के? मसाला के अपने कहते हैं। काटला के अर्थात् मसाला, हों! अपने यह बाहर में नहीं कहते लोग? आजा, तेरी माँ ने सवा सेर सोंठ खायी हो तो। ऐसा कहते हैं। सुना है यह? आ जा। सवासेर सोंठ अर्थात् क्या? सोंठ के लड्डू बनावे। प्रसूति के समय। सोंठ... सोंठ है न? सोंठ समझते हो? यह सोंठ है या नहीं? यह लड़ते हैं, तब बोलते हैं। यह झगड़ा होता है न? आ जा, तेरी माँ ने सवा सेर सोंठ खायी हो तो। अर्थात् क्या वह गर्मी होती है न? सोंठ खाय। सोंठ के लड्डू। हमारे (गुजराती में) काटला, क्या कहलाता है? काटला। मसाला (सोंठ) के लड्डू कहते हैं। आहाहा! उसे वह नहीं मिलते, इसलिए उन बेचारे बच्चों को खा गयी। आहाहा! अरे! यह दुनिया देखो! यह संसार... आहाहा! उसकी माँ। पेट में दो-तीन महीने रखे, जन्में और उन्हें खा गयी। आहाहा! मन्दिर के पीछे। है वहाँ एक बच्चा पड़ा है अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : आयुष्य इतना ही बाँधकर आये....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही बाँधकर, ऐसी स्थिति बाँधकर। आहाहा! स्थिति ही इतनी। उसमें कुछ... आहाहा! यह कहीं देह छूटने का काल नहीं था और देह छूटी है, ऐसा कुछ है? वह समय छूटने का था। तब उसकी माँ को खाने का मन हुआ। आहाहा!

यह बकरे के बच्चे होते हैं न छोटे कोमल? उन्हें लोग सीधे खाते हैं ऐसे बटका भरकर खाते हैं। ऐसे अनार्य लोग हैं। बकरा के बच्चे। बकरा कहते हैं न? बकरी।

उसके ताजा बच्चे होते हैं न? वह नारियल का जैसे खोपरा खाये न, वैसे इन्हें खाते हैं। सीधे खाते हैं बटका भरते हैं। आहाहा! अनार्य लोग आते हैं। वह भी एक अवतार है। आहाहा! अरे! उसमें से निकल-निकलकर जैन का अवतार, आर्यकुल, मनुष्यपना, जैन का अवतार। उसमें वीतराग की सच्ची वाणी का सुनना बहुत दुर्लभ है। पैसा मिलना दुर्लभ नहीं। वह तो अनन्त बार मिले हैं, भाई! आहाहा! वह तो यह जिनवाणी सत्यवाणी, इसे कान में पड़ना, वह भी महादुर्लभ है। और उसकी बात रुचना, वह तो दुर्लभ में दुर्लभ है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि दर्शन शुद्ध को होता है। आहाहा! यह सामायिक और चारित्र भी शुद्ध उपयोगी जीव को होता है। वीतरागी परमात्मा ऐसा शुद्धस्वभाव शुद्धात्मा का परिणमनभाव, वीतरागी परिणमन, उसे चारित्र और सामायिक होता है। उस शुद्ध उपयोग को चारित्र होता है, शुद्ध उपयोग को तप होता है। आहाहा! यह अपवास करे, वर्षीतप करे, दृष्टि तो मिथ्यात्व है और अपवास करे, वह तो सब लंघन है। आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर में स्थानकवासी में बहुत वर्षीतप होते हैं। श्वेताम्बर फिर यह उपधान बहुत होते हैं। अभी वहाँ पालीताणा तीन जगह उपधान थे। डेढ़ महीने तक वह प्रतिदिन अपवास और एक दिन खाना और एक दिन भगवान की बहुत उठ-बैठ करके और एक दिन में सैकड़ों बार भक्ति करे, वह उपधान कहलाता है। तीन उपधान थे। अरे रे! बापू! यह सब बातें। शुद्ध बिना यह सब थोथा है।

भगवान जिसमें मिला नहीं। जिस परिणाम में भगवान मिला नहीं, आत्मा जिसके परिणाम में आया नहीं। शुद्ध में आवे, वह कहीं शुभ में आवे नहीं। आहाहा! ऐसे शुद्धभाववाले को तप होता है। तपन्ति कहते हैं। इसके बिना तो सब लंघन है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : इतने कष्ट सहन करे....

पूज्य गुरुदेवश्री : कष्ट क्या उसमें धूल कष्ट है? नारकी में तो कितना कष्ट सहन किया है। वह तो आर्तध्यान है। आर्तध्यान है। आहाहा!

भगवान गहरे कुँए में अमृत का सागर भरा है। उसकी गहराई में जाना। आता है

न अपने? नियमसार में, भाई आता है न! नियमसार में आता है। गहरे-गहरे जाना। आहाहा! जहाँ भगवान शुद्धस्वरूप से विराजता है, वहाँ जाना। शुभ और अशुभ राग को छोड़कर... समझ में आया? नियमसार में आता है। नियमसार। कौन-सी गाथा में, नहीं? १७वाँ कलश।

जिनेन्द्र कथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर जो पुरुष परभावों का परिहार कर निजस्वरूप में स्थित होता हुआ शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रविष्ट हो जाता है—गहरा उतर जाता है। आहाहा! '**विशति**' '**विशति**' न? '**सपदि विशति**' आहाहा! भगवान जहाँ चैतन्य चमत्कार पदार्थ है, ऐसा तत्त्व अन्दर, उसमें प्रविष्ट हो जाता है, गहरा उतर जाता है। **वह पुरुष परमश्रीरूपी कामिनी का बल्लभ होता है (अर्थात् मुक्तिरूपी सुन्दरी का पति होता है।)** आहाहा! बाहर में जो शुभ और अशुभ परिणाम, वे गहरे नहीं हैं। वे तो बाहर के छिछले हैं। छीछरा कहते हैं हमारे काठियावाड़ में। छीछरा कहते हैं न। ऊपर-ऊपर छिछले। छिछले कहते हैं। और यह गहरे। आहाहा! वाणी, वचन के विकल्प से भी गुप्त होना, हट जाना और गहराई में जाना। आहाहा! अरे! यह बात भी कहाँ है? मान बैठे कि हम संयमी और हम तपस्वी, बापू!

किसी व्यक्ति के विरोध की बात नहीं, हों! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। व्यक्ति तो सब प्रेमी। सत्वेषु मैत्री। किसी व्यक्ति के प्रति विरोध नहीं। मैत्री; आत्मा है, भगवान है। द्रव्यदृष्टि से, द्रव्य साधर्मी है वह। उसका द्रव्य है, वह साधर्मी द्रव्य है। पर्याय की भूल एक ओर रखो। आहाहा! और उस पर्याय की भूल मात्र एक समय की है। एक समय की भूल। आहाहा! त्रिकाली भगवान भूलरहित, उसकी पर्याय में एक समय की भूल। आहाहा! ऐसा जो त्रिकाली भूलरहित भगवान, उसमें गहरे जाना। आहाहा! वह मोक्ष का स्वामी है। देखो न यह कितना नियमसार। आहाहा!

यह दर्शन। **यह भी शुद्धों के ही होता है।** सम्यग्दर्शन, क्षायिक सम्यग्दर्शन, केवलदर्शन, वह शुद्ध को होता है, ऐसा कहना है तीन। आहाहा! जिनवाणी प्रवचनसार— दिव्यध्वनि का सार। उसमें यह कहे शुद्धस संयम, शुद्धस चारित्र, शुद्धस ज्ञानं। आहाहा! शुद्ध को यह सब होता है। जिसके शुद्ध वीतरागी परिणाम हुए हैं, उसे यह सब संयम,

चारित्र, तपादि होते हैं। आहाहा! ऐसा तो वीतराग की वाणी में आया है। अब वाणी के अर्थ दूसरे करना, वह अर्थ तुम दूसरे करते हो। व्यवहार से निश्चय होता है, ऐसा आवे तो वैसा अर्थ तुम नहीं करते। परन्तु बापू! वह तो व्यवहार से निश्चय कहा है, वह तो निमित्त का कथन है, वह व्यवहार से निश्चय होता नहीं, वह उसका कार्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? जैसे कर्म के निमित्त से विकार हुआ, यह तो निमित्त का कथन है। निमित्त से हुआ नहीं। हुआ है स्वयं से। परन्तु निमित्त था, इसलिए निमित्त से हुआ, कर्मजनित विकार हुआ, ऐसा कहा गया है। ऐसा व्यवहार से हुआ और व्यवहार के बल से हुआ, ऐसा शास्त्र में कहने में आता है। समझ में आया? आहाहा! जयसेनाचार्य में यह बहुत आता है। यह व्यवहार के आचरण से इसके बल से यह हुआ। इसका अर्थ यह था, उसे छोड़कर हुआ है। व्यवहार के कथन। अभाव दूसरा क्या है? आहाहा! अरे! इसमें वाद-विवाद करने जाये तो कहाँ... मार्ग ऐसा है, भाई!

अब ज्ञान किसे होता है। यह शुद्धवाले को ज्ञान होता है, कहते हैं। आहाहा! शुभविकल्प में शास्त्र का पठन-बठन, वह सब ज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान...** आहाहा! स्वसंवेदन। स्व अर्थात् अपना। वेदन अर्थात् वीतरागी संवेदनज्ञान। **उसका फल केवलज्ञान** एक तो वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान, वह भी शुद्ध को होता है, ऐसा कहना है। और **उसका फल केवलज्ञान, वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है,...** दोनों। आहाहा! वीतरागी स्वसंवेदन छद्मस्थ का ज्ञान चौथे में, वह भी शुद्ध उपयोगी को होता है अथवा शुद्ध परिणमनवाले को होता है। आहाहा! गजब बात करते हैं न! शुभ विकल्प से जितना पढ़ते हैं, शास्त्र वाँचे, बोले, वह सब ज्ञान नहीं। आहाहा!

वीतराग स्वसंवेदनज्ञान और उसका फल केवलज्ञान, वह (दोनों) भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है,... शुद्धोपयोगियों के ही होता है,... ऐसा है यहाँ तो। उसमें 'ही' डाला है। एकान्त नहीं हो जाता? भगवान के मार्ग में ही नहीं होता। ऐसे भी होता है और ऐसे भी होता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप, शुद्ध उपयोगी को ही होता है। शुभवाले को नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है बहुत यह तो बापू! अन्दर स्थिर हो जाने की बात है। समझ में आया? दिखाव-दिखाव। बाहर में

दिखाव करना कि हम यह हैं, हम ज्ञानी हैं, हम यह हैं, बापू! वह वस्तु अलग है। क्या आता है तुम्हारे हिन्दी में आता है न? दिखाव। आडम्बर नहीं, दिखाव भाषा में आता है। दिखाव। दिखाने में भाषा आती है। दिखाव की ही आती है। दिखाव करना।

मुमुक्षु : दिखावा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिखावा करना। बस यह भाषा। दिखावा करना। वह यह भाषा। दिखावा करना आता है उसमें। भाषा ही यह आती है उसमें। आती है न? दिखावा करना, ऐसी भाषा आती है। अपने ऐसा कि दिखाव करना। दिखाव करना। उसमें दिखावा करना। आहाहा! यह तो दिखावा करने बिना की बात है। आहाहा!

वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है, और कर्मक्षय अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का नाश तथा परमात्मस्वरूप की प्राप्ति, वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होती है। लो। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल १०, बुधवार
दिनांक-०१-१२-१९७६, गाथा-६७-६८, प्रवचन-१४७

परमात्मप्रकाश। ६७ गाथा। यहाँ तक आया है, देखो! ज्ञान की व्याख्या आ गयी है। है न? सम्यग्दर्शन अथवा केवलदर्शन वह शुद्ध उपयोगी को होता है और ज्ञान **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान और उसका फल केवलज्ञान वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होता है,...** दो बातें। श्रद्धा में सम्यग्दर्शन और दर्शन में केवलदर्शन, दोनों शुद्ध उपयोगी को होते हैं। शुभ उपयोगी को सम्यग्दर्शन नहीं होता, शुभ उपयोगी के फलरूप से केवलदर्शन नहीं होता। यह शुद्ध चैतन्य शुद्धात्म वस्तु द्रव्यस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्ध उपयोग में होता है और केवलदर्शन होता है, वह भी शुद्ध उपयोग से होता है। और नीचे वीतराग स्वसंवेदनज्ञान, वह भी शुद्ध उपयोग में होता है। शुद्ध उपयोग से वीतराग स्वसंवेदनज्ञान होता है। और केवलज्ञान, वह शुद्ध उपयोग से होता है। दो-दो बातें ली हैं। यहाँ तक आया था अपने।

और कर्मक्षय अर्थात् द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का नाश... उसमें भावकर्म का नाश आया। वह **परमात्मस्वरूप की प्राप्ति...** भावकर्म का नाश। द्रव्यकर्म, नोकर्म तो निमित्त हैं। और **परमात्मस्वरूप की प्राप्ति वह भी शुद्धोपयोगियों के ही होती है।** आहाहा! **इसलिए शुद्धोपयोग-परिणाम और उन परिणामों का धारण करनेवाला पुरुष ही जगत में प्रधान है।** गाथा थी न? गाथा-६७। **'सुद्धउ तेण पहाणु'** चौथा पद है। शुद्ध, वह प्रधान पुरुष जगत में है। आहाहा! शुभाशुभपरिणाम से रहित, द्रव्यस्वभाव के परिणाम जो शुद्ध हों, वह पुरुष और वह परिणाम जगत में प्रधान है। समझ में आया? यह बड़ा विवाद अभी है न कि व्यवहार से निश्चय होता है। अकेला निश्चय, निश्चय से हो, यह एकान्त है। उसे खबर नहीं। शुभोपयोग से शुद्ध उपयोग होता ही नहीं। शुद्ध उपयोग तो स्वभाव के आश्रय से होता है और वह शुद्ध उपयोग दर्शन, केवलदर्शन, स्वसंवेदनज्ञान, केवलज्ञान, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म का नाश और परमात्मा की प्राप्ति, वह शुद्धोपयोग से होती है। आहाहा! अब अभी तो कहे, शुद्ध तो है नहीं, अकेला शुभ है। इसलिए उससे धीरे-धीरे धर्म होगा। बड़ा मिथ्यात्व शल्य है। आहाहा! क्या हो?

भगवान पूर्णमिदं शुद्ध चैतन्यघन पूर्ण स्वभाव से भरपूर तत्त्व जो है, उसके आश्रय से अवलम्ब कर जो परिणाम हो, वह शुद्ध होते हैं। और वह शुद्ध ही परिणाम, वे धर्म हैं, यह बात में लेंगे, परन्तु वही सम्यग्दर्शन है, वही केवलदर्शन है, वही वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान है और वह पूर्ण केवलज्ञान है। और वह शुद्ध परिणाम उपयोग, वही भावकर्म के नाश का कारण है और परमात्मपद की प्राप्ति का हेतु है। नाश, नास्ति से कहा; परमात्मपद, अस्ति से कहा। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : मार्ग दो है—एक निश्चयमार्ग और व्यवहारमार्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह व्यवहारमार्ग तो आरोपित कथन है। व्यवहारमार्ग है ही नहीं। वह तो निश्चय धर्म के साथ में राग की मन्दता... यह तो आया, नहीं? उसमें आया था। शुद्ध परिणाम है, वह धर्म है और उसके साथ शुभराग है, वह व्यवहारसंयम कहने में आता है। आरोपित है वह बात। वह यथार्थ नहीं है। आहाहा! वह शुभोपयोग, वह बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं। यह बड़ा विवाद अभी है। आहाहा!

इसलिए शुद्धोपयोग-परिणाम और उन परिणामों का धारण करनेवाला पुरुष ही जगत में प्रधान है। परमात्मप्रकाश की गाथा का यह अन्तिम शब्द है। आहाहा! **क्योंकि संयमादि सर्व गुण शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं।** संयम, तप इत्यादि **शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं।** शुद्धउपयोग, वह तप है। आहाहा! कोई विकल्प शुभ उपयोग, वह तप नहीं। वह तो बन्धन का कारण है। आहाहा! यह पहले आ गया है। **शुद्धोपयोग में ही पाये जाते हैं। इसलिए शुद्धोपयोग के समान अन्य नहीं है,...** शुद्धोपयोग की तुलना में दूसरे परिणाम नहीं हैं। आहाहा!

शुद्ध जो ध्रुव, उसके आश्रय से, अवलम्बन से—उसकी सन्मुखता में जो परिणाम हों, वह शुद्ध उपयोग अथवा शुद्धपरिणाम है। वही मुक्ति का कारण और धर्म है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न? परमात्मप्रकाशस्वरूप ही आत्मा है। उसकी परमात्मपने की पर्याय में प्राप्ति, वह शुद्धोपयोग से होती है, ऐसा कहते हैं। परमात्मप्रकाश है न? वस्तु स्वयं परमात्मप्रकाशस्वरूप ही है। क्योंकि जो परमात्मपर्याय प्रगट होती है, वह परमात्मस्वरूप में से प्रगट होती है। जैसी परमात्मदशा होती है, वह परमात्मस्वरूप है, उसमें से होती है। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए शुद्धोपयोग के समान अन्य नहीं है, ऐसा तात्पर्य (रहस्य) जानना। तात्पर्य अर्थात् रहस्य। आहाहा! जैन सिद्धान्त का यह रहस्य है। यह अपने आ गया आस्रव (अधिकार) में, नहीं? **'इदंएव तात्पर्यं शुद्धनयं न हेयं'** जैन सिद्धान्त वीतरागमार्ग का रहस्य यह है कि शुद्ध उपयोग का परिणमन जो शुद्धनय, उसे छोड़नेयोग्य नहीं है। त्रिकाली वस्तु का जो परिणमन शुद्धनय, वह छोड़नेयोग्य नहीं। वह है तो त्रिकाली शुद्धनय, परन्तु उसके परिणमन को भी शुद्धनय कहा। परिणमन जो शुद्ध उपयोग है, वह शुद्धनय और उसका विषय है, वह भी शुद्धनय। आहाहा! यह और शुद्धनय क्या और यह सब?

अरे! यह जन्म-मरण के गोते खाता है अनन्त काल से। यह दुःखी है। निज स्वरूप के आनन्द के भान बिना वह दुःखी है। यह अरबोंपति, करोड़ोंपति, राजा सेठिया सब बेचारे दुःखी हैं। समझ में आया? वरांका है, ऐसा कहा है शास्त्र में। वे बेचारे गरीब हैं, ऐसा लिखा है। यह पैसेवाले अरबोंपति सब गरीब हैं। वरांका, भिखारी। चैतन्य की लक्ष्मी की खबर नहीं और बाहर की धूल की लक्ष्मी और बाहर की इज्जत की चमक में आत्मा को भूल गया। आहाहा! और अन्दर में शुभ और अशुभ परिणाम की महिमा में निज स्वरूप की महिमा भूल गया। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, बहुत सरस गाथा आती है। ६७। यह उसका रहस्य है। **ऐसा ही अन्य ग्रन्थों में हरएक जगह...** प्रवचनसार २७४ गाथा का आधार दिया है। अन्तिम है न, अन्तिम? **उसका भावार्थ...** कुन्दकुन्दाचार्य महाराज की गाथा है। **शुद्धोपयोगी के ही मुनि-पद कहा है,...** देखो! आहाहा! संयम शब्द है वहाँ। **शुद्धोपयोगी के ही मुनि-पद कहा है,...** संयम शब्द है। गाथा २७४ है। आहाहा! लो! यह तो शुभ उपयोग की क्रिया को ही मुनिपद सिद्ध करना चाहते हैं अथवा उससे मिलेगा, ऐसा सिद्ध करना चाहते हैं। आहाहा! बहुत कठिन, बापू!

मुमुक्षु : शुद्ध हो तो शुभ से न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। शुभ की रुचि छोड़े तो शुद्ध हो। ऐसी बात है। भाषा ऐसी आवे, इसलिए सब बेचारे उलझे हैं न? व्यवहारनय से भिन्न साध्य साधन ऐसे शब्द शास्त्र में आते हैं। वह तो व्यवहार को उपचार से साधन कहा है। स्वरूप का साधन तो एक ही है, राग से भिन्न पड़कर एकाग्र होना, वह एक ही साधन है। ...

मुमुक्षु : साधन का उपचार करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार को उपचार किया है। उपचार कहा है। है नहीं, उसे कहा है। व्यवहारनय से। आहाहा! ऐसी बात है। अभी बात झगड़े में चढ़ गयी है। आहाहा!

प्रवचनसार में कहा है कि **शुद्धोपयोगी के ही मुनि-पद कहा है,...** आहाहा! शुभ उपयोगी को श्रावक, साधु तो कहा है। प्रवचनसार में नहीं कहा? यह पहले कहा और अन्त में कहा। परन्तु वह तो शुद्ध का परिणमन जिसे है, 'धर्म परिणत'—ऐसा शब्द है। धर्म परिणत है और वह शुद्ध उपयोग में हो तो निरास्रवी है और धर्म परिणत है तथा शुभराग है तो सास्रवी है। परन्तु है तो धर्म परिणत की बात। अकेला शुभोपयोगी साधु है, ऐसा नहीं है वहाँ। समझ में आया?

अभी कैलाशचन्दजी ने अच्छा डाला है। तीन पत्र आये हैं न। तीनों में ठीक डाला। भले बाद में क्या... अभी ठीक है तीनों। ऐसा कि सोनगढ़वाले निमित्त का निषेध नहीं करते। निमित्त है, परन्तु निमित्त से कर्ता नहीं मानते। बात ऐसी है। और नियतवाद अर्थात् सर्वज्ञता है। उसमें आया है न? क्रमबद्ध है। आहाहा! यह बात अभी ही इस बार उन्होंने रखी। यहाँ तो... क्रमबद्ध में क्रमबद्ध की... शास्त्र का तात्पर्य क्रमबद्ध में वीतरागता है। क्रमबद्ध का तात्पर्य वीतरागता है तो क्रमबद्ध का निर्णय करनेवाला द्रव्यस्वभाव पर जायेगा, तब उसे वीतरागता होगी, तब उसे क्रमबद्ध में अकर्तापना प्रगट होगा। आहाहा! ऐसा कितना? शर्तें बहुत। और साधारण लोग बेचारे भटकते दु:खी... दु:खी... दु:खी... आहाहा!

कहते हैं, **शुद्धोपयोगी के ही मुनि-पद कहा है, और उसी के दर्शन-ज्ञान कहे हैं।** कुन्दकुन्दाचार्य। शुद्ध उपयोगी और शुद्धस संयम। आती है न २७४ गाथा? वह गाथा रखी है। आहाहा! लिखा है उसमें। प्रवचनसार तीसरा भाग (अधिकार) २७४ (गाथा)। आहाहा! शुद्ध उपयोगी को दर्शन और ज्ञान है। आहाहा! शुद्ध उपयोगी को **निर्वाण है, और वही शुद्ध अर्थात् रागादि रहित है। उसी को हमारा नमस्कार है।** कुन्दकुन्दाचार्य नमस्कार करते हैं। आहाहा!

गाथा - ६८

अथ निश्चयेन स्वकीयशुद्धभाव एव धर्म इति कथयति -

१९२) भाव विसुद्धउ अप्पणउ धम्मु भणेविणु लेहु।
चउ-गइ-दुक्खहँ जा धरइ जीउ पडंतउ एहु।।६८।।

भावो विशुद्धः आत्मीयः धर्मं भणित्वा गृह्णीथाः।
चतुर्गतिदुःखेभ्यः यो धरति जीवं पतन्तमिमम्।।६८।।

भाव इत्यादि। भाउ भावः परिणामः। कथंभूतः विसुद्धउ विशेषेण शुद्धो मिथ्यात्व-रागादिरहितः अप्पणउ आत्मीयः धम्मु भणेविणु लेहु धर्म भणित्वा मत्वा प्रगृह्णीथाः। यो धर्मः किं करोति। चउ-गइ-दुक्खहं जा धरइ चतुर्गतिदुःखेभ्यः सकाशात् उद्धृत्य यः कर्ता धरति। कं धरति। जीउ पडंतउ एहु जीवमिमं प्रत्यक्षीभूतं संसारे पतन्तमिति। तद्यथा। धर्मशब्दस्य व्युत्पत्तिः क्रियते। संसारे पतन्तं प्राणिनमुद्धृत्य नरेन्द्र नागेन्द्रदेवेन्द्रवन्द्ये मोक्षपदे धरतीति धर्मं इति धर्मशब्देनात्र निश्चयेन जीवस्य शुद्धपरिणाम एव ग्राह्यः। तस्य तु मध्ये वीतरागसर्वज्ञ-प्रणीतनयविभागेन सर्वे धर्मा अन्तर्भूता लभ्यन्ते। तथा अहिंसालक्षणो धर्मः, सोऽपि जीवशुद्धभावं विना न संभवति। सागारानगारलक्षणो धर्मः सोऽपि तथैव उत्तमक्षमादिदशविधो धर्मः सोऽपि जीवशुद्धभावमपेक्षते। 'सदृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः' इत्युक्तं यद्धर्मलक्षणं तदपि तथैव। रागद्वेषमोहरहितः परिणामो धर्मः सोऽपि जीवशुद्धस्वभाव एव। वस्तुस्वभावो धर्मः। सोऽपि तथैव। तथा चोक्तम् - 'धम्मो वत्थुसहावो' इत्यादि। एवंगुणविशिष्टो धर्मश्चतुर्गतिदुःखेषु पतन्तं जीवं धरतीति धर्मः। अत्राह शिष्यः। पूर्वसूत्रे भणितं शुद्धोपयोगमध्ये संयमादयः सर्वे गुणा लभ्यन्ते। अत्र तु भणितमात्मनः शुद्धपरिणाम एव धर्मः, तत्र सर्वे धर्माश्च लभ्यन्ते। को विशेषः। परिहारमाह। तत्र शुद्धोपयोगसंज्ञा मुख्या, अत्र तु धर्मसंज्ञा मुख्या एतावान् विशेषः। तात्पर्यं तदेव। तेन कारणेन सर्वप्रकारेण शुद्धपरिणाम एव कर्तव्य इति भावार्थः।।६८।।

आगे यह कहते हैं कि निश्चय से अपना शुद्ध भाव ही धर्म है -

जो विशुद्धतामय परिणति है धर्म मान धारण करता।
वह चहुँगति के दुःख जीव को सुख में स्थापित करता।।६८।।

अन्वयार्थ :- [विशुद्धः भावः] मिथ्यात्व रागादि से रहित शुद्ध परिणाम है, वही [आत्मीयः] अपना है, और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं, सो शुद्ध भाव को ही [धर्मं

भणित्वा] धर्म समझकर [गृह्णीथाः] अंगीकार करो। [यः] जो आत्मधर्म [चतुर्गतिदुःखेभ्यः] चारों गतियों के दुःखों से [पतंतम्] संसार में पड़े हुए [इमम् जीवं] इस जीव को निकालकर [धरति] आनंद-स्थान में रखता है।

भावार्थ :- धर्म शब्द का शब्दार्थ ऐसा है, कि संसार में पड़ते हुए प्राणियों को निकालकर मोक्ष-पद में रखे, वह धर्म है, वह मोक्ष-पद देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्रोंकर वंदने योग्य है। जो आत्मा का निज स्वभाव है वही धर्म है, उसी में जिनभाषित सब धर्म पाये जाते हैं। जो दयास्वरूप धर्म है, वह भी जीव के शुद्ध भावों के बिना नहीं होता, यति श्रावक का धर्म भी शुद्ध भावों के बिना नहीं होता, उत्तम क्षमादि दशलक्षणधर्म भी शुद्ध भाव बिना नहीं हो सकता, और रत्नत्रयधर्म भी शुद्ध भावों के बिना नहीं हो सकता। ऐसा ही कथन जगह जगह ग्रंथों में है, 'सद्दृष्टि' इत्यादि श्लोक से-उसका अर्थ यह है, कि धर्म के ईश्वर भगवान् ने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को धर्म कहा है। जिस धर्म के ये ऊपर कहे गये लक्षण हैं, वह राग, द्वेष, मोह रहित परिणाम-धर्म है, वह जीव का स्वभाव ही है, क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। ऐसा दूसरी जगह भी 'धम्मो' इत्यादि गाथा से कहा है, कि जो आत्म-वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है, उत्तम क्षमादि भावरूप दस प्रकार का धर्म है, रत्नत्रय धर्म है, और जीवों की रक्षा यह धर्म है। यह जिनभाषित धर्म चतुर्गति के दुःखों में पड़ते हुए जीवों को उद्धारता है। यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया, कि जो पहले दोहे में तो तुमने शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण कहे, और यहाँ आत्मा का शुद्ध परिणाम ही धर्म कहा है, उसमें धर्म पाये जाते हैं, तो पहले दोहे में और इसमें क्या भेद है? उसका समाधान - पहले दोहे में तो शुद्धोपयोग मुख्य कहा था, और इस दोहे में धर्म मुख्य कहा है। शुद्धोपयोग का ही नाम धर्म है, तथा धर्म का नाम ही शुद्धोपयोग है। शब्द का भेद है, अर्थ का भेद नहीं है। दोनों का तात्पर्य एक है। इसलिए सब तरह शुद्ध परिणाम ही कर्तव्य है, वही धर्म है।।६८।।

गाथा-६८ पर प्रवचन

आगे यह कहते हैं कि निश्चय से अपना शुद्धभाव ही धर्म है— वहाँ शुद्ध उपयोगी को कहा था, यहाँ अब धर्म की मुख्यता से कहते हैं। **निश्चय से अपना शुद्धभाव ही धर्म है—**शुद्धस्वभाव जो त्रिकाल, उसके अवलम्बन से उत्पन्न हुआ

शुद्धभाव, यहाँ परिणाम लिये, वहाँ उपयोग लिया था। वह शुद्ध परिणाम अर्थात् उपयोग कदाचित् अन्दर न हो परन्तु शुद्धपरिणाम हो। उपयोग में तो अन्दर जम गया होता है परन्तु उपयोग न हो परन्तु शुद्ध परिणाम हो, वह धर्म है। है? **शुद्धभाव ही धर्म है—** आहाहा! शुद्धभाव ही धर्म है। है न? संस्कृत में है। '**एव**' '**निश्चयेन स्वकीयशुद्धभाव एव**' ऊपर '**एव**' पड़ा है। निश्चय। '**धर्म इति कथयति**' कथंचित् शुद्धभाव धर्म, कथंचित् शुभभाव धर्म, ऐसा लो न? यह तो '**एव**' कहा है। शुद्धभाव ही धर्म है। शुभभाव धर्म नहीं। परन्तु जब आरोप से कथन करे, तब उसे व्यवहारधर्म कहा जाता है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उपचार को धर्म कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसे तो भोगरूप धर्म कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भोग ही है न! उसका फल भोग है न! उसे वर्तमान भी दुःख का भोग है। शुभभाव दुःख का अनुभव है। शुभभाव, वह दुःख का अनुभव है और शुद्धभाव, वह आनन्द का अनुभव है। वर्तमान में ही अन्तर है। और शुभभाव से बाह्य की सामग्री की धूल आदि मिलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : वह भी धर्म तो सही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी धर्म नहीं। धूल का धर्म, धूल का है अजीव। अजीव का स्वभाव अजीव है। आहाहा! ६८।

१९२) **भाव विसुद्धउ अप्पणउ धम्मु भणेविणु लेहु।**
चउ-गइ-दुक्खहँ जा धरइ जीउ पडंतउ एहु।।६८।।

आहाहा! ६८ गाथा बहुत ऊँची। बहुतों के आधार देंगे।

अन्वयार्थ :- मिथ्यात्व रागादि से रहित शुद्ध परिणाम है,... उसमें शुद्ध उपयोग से बात की थी, यहाँ शुद्ध परिणाम से बात करते हैं। **मिथ्यात्व...** अर्थात् भ्रान्ति। पुण्यस्वभाव में धर्म है, शुभ उपयोग से धर्म होता है, यह सब मिथ्यात्वभाव। और **रागादि से रहित शुद्ध परिणाम है, वही अपना है,...** आहाहा! है? '**विशुद्धः भावः आत्मीयः**' शुद्ध परिणाम वह आत्मा के हैं। आहाहा! **और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं हैं,...** शुभभाव, ऐसा अशुद्ध परिणाम, वह जीव के नहीं। आहाहा! समझ में आया? विशुद्ध-शुद्ध

परिणाम ही अपने हैं। वह अपना स्वरूप है। अशुद्ध परिणाम अपने नहीं। अशुद्ध में दोनों शुभ और अशुभ (आ गये)। वह आत्मा का भाव नहीं, आत्मस्वभाव नहीं है। आहाहा!

सो शुद्ध भाव को ही धर्म समझकर अंगीकार करो। आहाहा! यह तो परमसत्य धर्म है, उसकी बात है, बापू! आहाहा! **जो आत्मधर्म... धर्म समझकर अंगीकार करो। जो आत्मधर्म...** वह शुद्ध परिणाम अपने हैं और वह आत्मधर्म है। **चारों गतियों के दुःखों से संसार में पड़े हुए...** आहाहा! चारों ही गति के दुःख हैं, यहाँ तो कहा। नरक में, मनुष्यपने में, राज में, सेठिया में, तिर्यंच में, देव में वह दुःखी है बेचारा। आहाहा! देव भी भोग की इच्छावाले ऐसी इच्छा, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया? जिसे हजारों वर्ष में कण्ठ में से अमृत झरे। आहाहा! कितने पखवाड़े में तो जिसका श्वास ऊँचा-नीचा हो। आहाहा! श्वास ऐसे हो। पुण्य का उदय है न! परन्तु दुःखी है, कहते हैं। आहाहा! चार गति कही। **चतुर्गतिदुःखेभ्यः'** चारों गति में दुःख है। आहाहा!

चारों गतियों के दुःखों से संसार में पड़े हुए... भटकते अज्ञान में दुःखी प्राणी को **इस जीव को निकालकर आनन्द-स्थान में रखता है।** आहाहा! शुद्ध परिणाम, संसार में भटकते परिणाम से भिन्न करके आनन्द स्थान में रखते हैं। शुद्ध परिणाम, वह आनन्दस्थान में होता है। आहाहा! शुभ परिणाम वह दुःख के स्थान में होते हैं। समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे दुःख के स्थान हैं और शुद्ध, वह आनन्द का स्थान है। आहाहा! बड़ी गड़बड़ चली अभी तो।

भावार्थ :- धर्म शब्द का शब्दार्थ ऐसा है कि संसार में पड़ते हुए प्राणियों को... धारे। धर्म धारति इति धर्म। संसार में भटकने के परिणाम से धार रखे, अद्धर करे, उसका नाम धर्म। **प्राणियों को निकालकर मोक्ष-पद में रखे, वह धर्म है, वह मोक्ष-पद देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्रोंकर वन्दने योग्य है।** आहाहा! देवेन्द्र जो स्वर्ग के जीव, नागेन्द्र, वह भी भवनपति के जीव, नरेन्द्र-मनुष्य के चक्रवर्ती आदि। उनसे भी मोक्षपद वन्दनयोग्य है। आहाहा!

जो आत्मा का निज स्वभाव है, वही धर्म है,... लो! **'वत्थुसहावो धम्मो'** वस्तु

आनन्द, ज्ञानस्वरूप है, उसके ज्ञान और आनन्द के परिणाम होना, उसका नाम धर्म है। अरे! गजब... **उसी में जिनभाषित...** क्या कहते हैं? आत्मा का निजस्वभाव, वह धर्म है। निजस्वभाव त्रिकाल है और उसके आश्रय से हुए परिणाम, वह निजस्वभाव है। **उसी में जिनभाषित सब धर्म पाये जाते हैं।** वीतरागी परिणाम में, शुद्ध परिणाम में, शुद्ध उपयोग में सर्व धर्म उसमें होते हैं। जैन के जितने धर्म कहे—चार। चार कहेंगे। **जिनभाषित सब धर्म पाये जाते हैं। जो दयास्वरूप (अहिंसास्वरूप) धर्म है,...** दया शब्द प्रयोग किया है। पाठ में अहिंसा है। दूसरी लाईन संस्कृत। '**अहिंसालक्षणो धर्मः**' संस्कृत में अहिंसा है। अहिंसा, वह शुद्ध उपयोग में होती है।

दयास्वरूप (अहिंसास्वरूप) धर्म है, वह भी जीव के शुद्ध भावों के बिना नहीं होता,... आहाहा! अहिंसा, वह वीतराग परिणाम है। अहिंसा। उस शुद्धभाव बिना अहिंसा होती नहीं। आहाहा! रागभाव तो हिंसा है। आहाहा! गजब बातें कठिन! पर की दया पाल सकता नहीं, परन्तु पर की दया का भाव, वह राग है और राग, वह हिंसा है। शुद्ध उपयोग, वह अहिंसा है। आहाहा! अब हिंसा से अहिंसा प्रगट होगी? शुभ आचरण करते-करते चरणानुयोग के आश्रय से आचरण करते हैं, उससे निश्चय होगा। आहाहा! जहर पीते-पीते अमृत की डकार आयेगी, ऐसा है वह। बहुत कठिन काम हो गया है। है?

अहिंसास्वरूप धर्म है, वह भी जीव के शुद्धभावों के बिना नहीं होता,... आहाहा! शुद्धात्म द्रव्य के अवलम्बन से होते शुद्ध परिणाम, उसके बिना अहिंसा नहीं हो सकती। लो! आहाहा! यह तो (लोग ऐसा मानते हैं कि) पर की दया, वह अहिंसा। वह वीतराग का धर्म, ऐसा कहते हैं। बापू! आत्मा वीतरागस्वरूप है। आत्मा का स्वभाव वह वीतरागस्वरूप है और उस वीतरागस्वरूप के आश्रय से परिणाम हों, वह वीतरागस्वरूप होते हैं। पर के लक्ष्य से—आश्रय से परिणाम हों वह तो रागस्वरूप होते हैं। आहाहा! दया, सत्य आदि बोलने का भाव, वह तो राग है। आहाहा!

यति श्रावक का धर्म भी शुद्ध भावों के बिना नहीं होता,... लो! यह साधु और श्रावक का धर्म; श्रावक का धर्म अहिंसा शुद्धभाव बिना नहीं होता, ऐसा कहते हैं। साधु

और श्रावक का धर्म, लो! यह प्रवचनसार में आया है। व्यवहारधर्म से उसका—श्रावका का उद्धार होगा। लो! यह तो व्यवहार के कथन हैं। बहुत पाप होते हैं, इसलिए यह जरा शुभभाव में आवे तो जरा...

मुमुक्षु : परम्परा मोक्ष होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में परम्परा मोक्ष होता है, ऐसा उसे कहे। आहाहा! बहुत कठिन बातें।

चरणानुयोग की शैली व्यवहारप्रधान होती है। द्रव्यानुयोग की शैली निश्चयप्रधान होती है। चारों अनुयोग हैं, परन्तु चारों अनुयोग का तात्पर्य क्या? वीतरागता। पंचास्तिकाय १७२ गाथा। शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता है। चारों अनुयोगों का तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा! वीतरागता न आवे तो उसने चार अनुयोग जाने नहीं। आहाहा! यहाँ शुद्ध उपयोग, वह तात्पर्य है—ऐसा कहते हैं। चारों अनुयोगों का रहस्य वीतरागता अर्थात् शुद्ध उपयोग है। आहाहा! समझ में आया?

उत्तम क्षमादि दशलक्षणधर्म भी शुद्धभाव बिना नहीं हो सकता,... उत्तम क्षमादि शुद्धभाव बिना नहीं होते। आहाहा! चार बोल आते हैं न सर्वत्र? वह यह बात है। रामसेन (द्वारा रचित) तत्त्वानुशासन, गाथा ५१। गाथा ५१ है। तत्त्वानुशासन की गाथा ५१वीं है यह। **रत्नत्रयधर्म भी शुद्धभावों के बिना नहीं हो सकता।** आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी शुद्धभाव बिना नहीं होते। आहाहा! सम्यग्दर्शन शुभभाव से प्राप्त होता है, ऐसा नहीं। शुद्धभाव से प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग तो वीतरागस्वरूपी प्रभु के आश्रय से वीतरागता प्रगट हो, वह धर्म है। दशलक्षण भी वह है। आहाहा!

रत्नत्रयधर्म भी शुद्धभावों के बिना नहीं हो सकता। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र शुद्धभाव बिना नहीं होते। आहाहा! अब यहाँ अभी (लोग) कहते हैं कि शुद्धभाव अभी होता नहीं, इसलिए शुभ ही होता है। आहाहा! प्रभु! प्रभु! भगवान! तूने क्या किया? बापू! दुनिया में लोग प्रसन्न होंगे, व्यवहार को माननेवाले लोग प्रसन्न होंगे। बापू! उसमें नुकसान है। उसकी तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा!

लाखों लोग स्वीकार करे। ओहोहो! यह व्यवहार, वह धर्म है; व्यवहार, वह धर्म है। व्यवहार का लोप करते हैं। यहाँ कहते हैं कि व्यवहार, वह अधर्म है। ऐसी बात है।

ऐसा ही कथन जगह-जगह ग्रन्थों में है,... 'सदृष्टि' है न? यह रत्नकरण्ड (श्रावकाचार) की तीसरी गाथा है। पहली जो दया आयी न अहिंसा लक्षण, वह रामसेन (कृत) तत्त्वानुशासन ५१ गाथा है। यह **'सदृष्टिज्ञानव्रत्तानि धर्मं'** यह रत्नकरण्ड श्रावकाचार की गाथा ३ है। वह यह आती है।

धर्म के ईश्वर भगवान ने... धर्म के ईश्वर वीतराग भगवान ने... आहाहा! **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को धर्म कहा है।** तीन लोक के नाथ ईश्वर परमात्मा सर्वज्ञ वीतराग। धर्म के ईश्वर, ऐसा कहा, देखा न? आहाहा! **सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों को धर्म कहा है।** आहाहा! **जिस धर्म के ये ऊपर कहे गये लक्षण हैं, वह राग, द्वेष, मोहरहित परिणाम-धर्म है,...** लो! राग, शुभराग के परिणामरहित, वह धर्म है। यह गाथा ६८वीं। अकेला सब मक्खन रखा है। सार है सार। आहाहा!

वस्तु शुद्ध पूर्ण इदम् परमात्मस्वरूप है। द्रव्यस्वभाव के सन्मुख के, उसके आश्रय के परिणाम होना, वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और वही धर्म है। राग-द्वेष-मोहरहित परिणाम, वह धर्म है। आहाहा! व्यवहार तो राग है। राग, वह धर्म है? और राग से निश्चय होगा। व्यवहार करते-करते निश्चय होगा। राग करते हुए अरागी होंगे, हिंसा करते हुए अहिंसक होंगे, (ऐसा इसका अर्थ हुआ)। आहाहा! बहुत कठिन काम है।

वह जीव का स्वभाव ही है,... राग, द्वेष, मोहरहित परिणाम धर्म, वह तो जीव का स्वभाव है। त्रिकाली स्वभाव है परन्तु वर्तमान परिणाम हुए, वह जीव का स्वभाव है। आहाहा! **क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही धर्म है।** लो! स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ४७६ गाथा है। यह स्वामी कार्तिकेय की गाथा है। तीन तो आधार दिये। तत्त्वानुशासन, रत्नकरण्ड श्रावकाचार और यह कार्तिकस्वामी का। आहाहा! टीकाकार कितनी पुष्टि करते हैं!

वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। ऐसा दूसरी जगह भी... 'धम्मो' इत्यादि गाथा से

कहा है, कि जो आत्म-वस्तु का स्वभाव है, वह धर्म है,... देखा! **'वत्थुसहावो धम्मो'** वस्तु का स्वभाव वह वीतराग है और उसके वीतराग परिणाम हों, वह धर्म है। आहाहा! परन्तु वह सब निश्चय सही, परन्तु उसका कोई साधन? ऐसा लोग कहते हैं। यह साधन स्वभाव में अन्दर जाना, वह साधन। अथवा राग से भिन्न करके प्रज्ञाछैनी, वह साधन। प्रज्ञाछैनी कहो या अनुभव कहो। आहाहा! दुनिया मानो, न मानो। उसके साथ सत्य को कोई सम्बन्ध नहीं है। सत्य को संख्या की आवश्यकता नहीं है। आहाहा! खलबलाहट हो गयी है अब तो सब। यह फलटन में बहुत खलबलाहट करनेवाले हैं। वहाँ सब साधु के अभिप्राय लिये हैं। तुम्हारी बात सच्ची है। उनका एकान्त है। धर्मसागर ने ऐसा कहा। एकान्त है। देशभूषण ने ऐसा कहा। शासनदेव और वे सब पूज्य हैं। अरे! भगवान! तीन लोक के नाथ वीतरागी पूज्य हैं, वह भी शुभभाव है। तो फिर यह शासनदेव-फेव; बड़े एकावतारी इन्द्र हैं, उनके दास के दास हैं सब वे व्यन्तरदेव तो।

मुमुक्षु : शासनदेव तो रक्षक हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : शासनदेव किसके रक्षक हैं? अपनी वीतरागदशा का रक्षक तो आत्मा है। जैनशासन क्या? कि जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट देखे शुद्धउपयोग, वह जैनशासन। वह शुद्धोपयोग, वह जैनशासन। शुद्ध उपयोग जिसने किया, वह उसका रक्षक है। उसने किया है? आहाहा! बहुत फेरफार, बहुत फेरफार। आहाहा!

आत्मा को अबद्धस्पृष्ट अर्थात् शुद्ध चैतन्यघन, जो शुद्ध उपयोग से जाने, माने, अनुभव करे, वह जैनशासन। तो जैनशासन तो शुद्ध उपयोग हुआ। तो शुद्ध उपयोग का करनेवाला जैनशासन है? या उसका नहीं करनेवाला, वह जैनशासन की रक्षा करता है? आहाहा! पर की दया पाल सकता नहीं, वह जैनशाासन की रक्षा करे! पर की दया पाल सकता नहीं। पर का आयुष्य हो, तब तक बचेगा। तू उसे बचा सकता है? उसे कुछ आयुष्य दे सकता है? तो पर की दया भी पाल नहीं सकता, पर को मार नहीं सकता, पर को सुखी-दुःखी के साधन दे नहीं सकता... आहाहा!

मुमुक्षु : मौत आयी हो, उसे बचा सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई धूल भी बदला नहीं सकता।

मुमुक्षु : वह तो सब निश्चय के कथन हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय अर्थात् सत्य के कथन हैं। सत्य शासन की ध्वनि है वह सब।

मुमुक्षु : व्यवहार तो कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार होता है। नहीं कहा? व्यवहार होता है, परन्तु वह हेय है।

मुमुक्षु : व्यवहार को मानते नहीं और एकान्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार नहीं, ऐसा किसने कहा? परन्तु व्यवहार निश्चय का कारण नहीं और व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा है। व्यवहार नहीं, ऐसा है? दो नय हैं तो दो नय का विषय नहीं? दो नय हैं तो दोनों नय का विषय है। निश्चयनय का विषय द्रव्य और उसके शुद्ध परिणाम। व्यवहारनय का विषय शुभराग। दोनों विषय वस्तु है। परन्तु दोनों नय विरोध है। उभयनय विरोध्वंसिनी। निश्चय है, वह अबन्ध का कारण है। व्यवहार है वह बन्ध का कारण है। दोनों विरोध है। वस्तु है। शास्त्र की कथनी भी दोनों नयों से चलती है। नय से चले अर्थात्? कि दो नय का विषय सत्य है? रागादि है विषय, परन्तु वह असत्य है। वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! अभूतार्थ है, ऐसा कहा न? बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! यह तो भाग्यवान हो, उसे सुनने को मिले ऐसा है। और पुरुषार्थी को जँचे, ऐसी बात है। ऐसी बात है। यह कहीं वाडा (सम्प्रदाय) की बात नहीं है। यह तो वस्तु के स्वरूप की, सत्ता का स्वरूप उसका क्या है (उसकी बात है)। वह तो शुद्ध चैतन्यसत्ता है। उसके परिणाम होना, वह शुद्ध परिणाम वही धर्म है। आहाहा! लो!

'वस्तु का स्वभाव ही धर्म है।' उत्तम क्षमादि भावरूप दस प्रकार का धर्म है,... यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है। **रत्नत्रयधर्म है, और जीवों की रक्षा...** अर्थात् अहिंसा। उसमें स्वयं जीव आया न? अपनी रक्षा करना राग से भिन्न पड़कर, वह धर्म और राग होता है, वह व्यवहारधर्म आरोपित है। अहाहा! जीवों की रक्षा अर्थात् परजीवों की रक्षा

की बात नहीं है। तीन काल में पर की रक्षा कर नहीं सकता और फिर धर्म कहाँ से आवे? पर की रक्षा करने का भाव है, वह भी राग है, हिंसा है। ऐसी बातें हैं। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में यहाँ तक कहा है कि जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, वह भाव अपराध है। अपराध है। अब यह कहते हैं, प्रसन्न-प्रसन्न होता है। क्या करना?

शिष्य ने पूछा कि यह क्या है यह भाव? तीर्थंकरगोत्र बाँधे न षोड्शकारण भावना! सोलह... क्या आता है? (दर्श विशुद्धि भावना भाय...) हाँ यह। कहते हैं कि यह भाव है... आहाहा! वह अपराध है। ले! अपराध का फल बन्ध होता है। धर्म का फल बन्ध होगा?

मुमुक्षु : यह तो आप ही कह सकते हो, यह स्वरूप ही ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वरूप ही ऐसा है। यह बात तो (संवत्) १९८१ में एक गाँव हुई थी। वह नहीं? हेंथळी-हेंथळी। बोटाद के पास हेंथळी है। दीक्षा ली है एक हेंथळी का। १९८१ की बात है। गढडा चतुर्मास के लिये जाना था न! ८१, हों! कितने वर्ष हुए? ५२। तब मूलचन्दजी और वे कहते होंगे कि देखो! वैयावृत्य... हो वह तीर्थंकरगोत्र बाँधे। ७३ बोल आते हैं न? २९। उत्तराध्ययन २९वाँ अध्ययन। ... इसलिए देखो वह धर्म है। परन्तु कहा, वैयावृत्य से तीर्थंकरगोत्र बाँधे। वह बाँधे, वह भाव धर्म कहाँ से होगा? वैयावृत्य करना, वह धर्म है। वैयावृत्य करे, उसमें तो शुभभाव है और शुभभाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे। तो शुभभाव तो बन्ध का कारण है। यह तो ५१-५२ वर्ष पहले की बात है। हेंथळी छोटा गाँव है। बहुत वर्षा थी न, बहुत वर्षा पहले आ गये। और बोटाद में मूलचन्दजी, तो जवाब नहीं वहाँ। इसलिए ऐसे तिरकर हेंथळी होकर निंगाळा होकर गढडा गये थे। आहाहा! यह वहाँ लाये थे एक।

अहमदाबाद में है न एक वह भूरा गोपाणी। अपने खाडिया के पास दुकान है। गोपाणी, बोटाद का है। भूरो गोपाणी। भूरा ठाकरशी। ठाकरशी गोपाणी थे और सोमचन्द गोपाणी के पुत्र नहीं वह? पण्डित है। अमृतलाल। अमृतलाल पण्डित है बनारस का। वे सब वहाँ हमारे बोटाद के लोग। वह तो बेचारे डरे, सब डरे हमसे। उनका पिता कहता था कि कानजीस्वामी और मूलचन्दजी महाराज यदि आवे और अपने छाछ न हो

तो एक भैंस तो रखनी पड़े न अपने? भैंस रखना छाछ के लिये। अब तुम क्या बोलते हो? कहा। बेचारे भोले व्यक्ति। वह अमृतलाल एक अभी पण्डित है न? एक अमृतलाल है। काशी में। गोपाणी—अमृतलाल गोपाणी पण्डित है। बहुत पढ़ा है। उसके पिता सोमचन्दभाई थे और उसके बड़े भाई ठाकरशी गोपाणी थे। उनका पुत्र यह है। उसका प्रश्न आया था हेंथळी में। यह तीर्थंकरगोत्र बाँधे वह वैयावृत्य से। वह वैयावृत्य धर्म नहीं? परन्तु बाँधता है न? बाँधे, वह भाव धर्म कहाँ से आया? कुछ भी पक्कड़ नहीं होती बेचारे को क्या करे? आहाहा!

मुमुक्षु : वैयावृत्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : वैयावृत्य वह... वैयावृत्य... तीर्थंकरगोत्र बाँधे, ऐसा पाठ है वहाँ। बाँधे, वह तो शुभभाव है। वह भी समकिती को होता है। मिथ्यादृष्टि को वह भाव नहीं होता। आहाहा! जिसने राग से लाभ माना नहीं और राग से कल्याण नहीं, ऐसी दृष्टि हुई है, उसे राग ऐसा होता है, वह भी बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बात है। मानो, न मानो उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। विरोध करो या न करो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। वह स्वयं अपना विरोध करता है, बापू! किसका विरोध करे? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वत्र गप्प है। केवलज्ञान होने के बाद घर में रहे थे। ऐसा कथन आता है। फिर वनस्पति काटते थे, घर में लाये थे सब्जी बनाने। छुरी मिलती नहीं। फिर छुरी कोठी के पीछे थी, वह केवलज्ञानी ने बतलाया। केवलज्ञानी ने, कोठी के पीछे वह छुरी है, यह बतलाया। ऐसी बातें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु साधु भी कहीं काटने की छुरी बतावे? ऐसी कथायें। उस कथा की बात हुई थी पहले एक बार। (संवत्) १९७७ के वर्ष बोटाद में। एक था न वह बैरिस्टर भाई कौन? एक बड़ा बैरिस्टर था। नाम भूल गये। खुशालभाई। खुशालभाई बैरिस्टर था। वह ७७ के वर्ष में प्रश्न लाया था।

मुमुक्षु : वह तो ऐसा कहते कि यह साधु बड़े....

पूज्य गुरुदेवश्री : वे यहाँ तक बोले तब। मैं भावनगर था। (संवत्) १९७७ की बात है। कुंवरजीभाई के ऊपर प्रश्न था। कुंवरजी आणंदजी के ऊपर। तुम ऐसा मानते हो यह? छुरी बतावे और वह केवली और उस केवली की यह बात सच्ची मानते हो तुम? ७७ की बात है। कुंवरजीभाई थे न? सेठ। मन्दिरमार्गी के बड़े पढ़े हुए। पढ़ा हुआ बहुत। कुंवरजी आणंदजी। अभी भाई है अपने भोगीलाल। भोगीलाल। वे तो यहाँ आनेवाले। यहाँ का बहुत प्रेम। भोगीलाल पूरे श्वेताम्बर के प्रमुख हैं। सेठ हैं। वे तो आते हैं न अपने बहुत बार। परन्तु छोड़ नहीं सकते। सेठाई-सेठाई करे। पैसेवाले हैं। २५-५०, ४०-५० लाख रुपये हैं। उनका पुत्र आता है। परन्तु यह बात, बापू! आहाहा! अरे रे! जन्म-मरण का फेरा कर-करके मर गया।

मुमुक्षु : भला कर दे ऐसी शर्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन कर दे भला? आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं... आहाहा! **जीवों की रक्षा, यह धर्म है।** अहिंसा, हों! अपना स्वभाव। **यह जिनभाषित धर्म चतुर्गति के दुःखों में पड़ते हुए जीवों को उद्धारता है। यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया,...** पहले में शुद्धोपयोग कहा था न? और यहाँ शुद्ध परिणाम कहे। तो कहे, तुमने दो क्यों कहे? **कि जो पहले दोहे में तो तुमने शुद्धोपयोग में संयमादि सब गुण कहे,...** शुद्धोपयोग, ऐसा। **शिष्य ने प्रश्न किया, कि जो पहले दोहे में तो तुमने शुद्धोपयोग में संयम...** चारित्र, धर्म, तीन रत्न, उत्तम क्षमादि **सब गुण कहे, और यहाँ आत्मा का शुद्ध परिणाम ही धर्म कहा है,...** देखा! इस परिणाम के ऊपर जरा वजन है। परन्तु यह तो शुद्ध उपयोग है, वह परिणाम है, परन्तु जम गया है और उपयोग भले राग में गया हो तो भी शुद्ध परिणमन है, शुद्ध परिणमन है, उसे धर्म कहते हैं। समझ में आया? **आत्मा का शुद्ध परिणाम ही धर्म कहा है, उसमें धर्म पाये जाते हैं,...** उसमें धर्म पाये जाते हैं, ऐसा कहा। **तो पहले दोहे में और इसमें क्या भेद है?**

उसका समाधान—पहले दोहे में तो शुद्धोपयोग मुख्य कहा था,... शुद्ध उपयोग की मुख्यता से वर्णन था। **और इस दोहे में धर्म मुख्य कहा है। शुद्धोपयोग का ही नाम**

धर्म है,... लो! **शुद्धोपयोग का ही नाम धर्म है, तथा धर्म का नाम ही शुद्धोपयोग है। शब्द का भेद है,...** आहाहा! ६८ गाथा अकेली शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध को घोंटा है। आधार भी तीन ग्रंथों के दिये हैं। आहाहा! शुद्धोपयोग, वह मोक्ष का कारण है और शुद्धोपयोग वह धर्म अथवा शुद्ध परिणाम वह धर्म का कारण—मोक्ष का कारण है। आहाहा! व्यवहार मोक्ष का कारण है नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। आहाहा! बड़ा अन्तर। श्रद्धा में बड़ा अन्तर। मिथ्यात्व का बड़ा शल्य। आहाहा!

भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव के आश्रय से जो शुद्ध परिणाम हो, वे शुद्ध परिणाम उस शुद्धता में से हुए हैं। आहाहा! जैसे यहाँ कहा न? नियमसार में कि प्रायश्चित्त। प्रायश्चित्त जो है, वह प्रायश्चित्तस्वरूप ही आत्मा है। प्रायश्चित्त जो है, इस राग का नाश करना, वह प्रायश्चित्त, वह शुद्ध परिणाम है। प्रायश्चित्त शब्द कहने से, अर्थ लेते थे कि वस्तु स्वयं प्रायश्चित्त है। प्रायः अर्थात् बहुलता से, चित्त अर्थात् ज्ञान का पिण्ड। वह प्रायश्चित्तस्वरूप है उसमें से परिणाम हों, वह प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसमें से वीतराग परिणाम हों, वह धर्म है। आहाहा!

जो-जो धर्म के परिणाम हैं, उन-उन स्वरूप त्रिकाल वस्तु है—ऐसा सिद्ध करना है। दस प्रकार का धर्म कहो परन्तु वह दस प्रकार का धर्म जो वीतराग परिणाम है, वह त्रिकाली दस धर्मस्वरूप वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम जो मोक्षमार्ग है, परन्तु वह वस्तु स्वयं सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी कहाँ निवृत्ति हो घर में? स्त्री-पुत्र का करना या कमाने का-आमदनी का करना या यह करना? मात्र पाप के परिणाम में बाहर दस-बीस घण्टे रुके। उसमें एकाध घण्टे सुनने जाये तो मिले दूसरा। तुम्हारे यह धर्म होगा, शुभभाव से होगा। ऐसे होगा। बेचारे को हो गया। जिन्दगी का नाश करके चार गति में चले जानेवाले हैं। आहाहा!

अब जो द्रव्य पर है, स्त्री पर, पुत्र पर, पैसा पर, शरीर पर, जिसे कोई सम्बन्ध नहीं आत्मा को और उसे, अब उसके लिये रुकना। उसकी कल्पनायें कर-करके वहीं के वहीं रुकना। आहाहा! अब उसे शुभ का भी अवसर नहीं। सुनना, वाँचना, विचारना,

श्रवण करना, सच्चा सत्समागम करना, वह सब शुभ परिणाम है। शुभ परिणाम का भी ठिकाना नहीं, उसे ऐसे शुद्ध परिणाम... आहाहा! बापू! मार्ग तो यह है, भाई! जन्म-मरण रहित (होने का उपाय कोई दूसरा है)। चौरासी के अवतार कर-करके एक-एक योनि, चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। आहाहा! उस दुःख से दूर करे, ऐसा धर्म तो यह शुद्ध परिणाम—शुद्ध उपयोग है। आहाहा!

शुद्धोपयोग का ही नाम धर्म है, तथा धर्म का ही नाम शुद्धोपयोग है। शब्द का भेद है, अर्थ का भेद नहीं है। दोनों का तात्पर्य एक है। इसलिए सब तरह शुद्ध परिणाम ही कर्तव्य है, वही धर्म है। आहाहा! लो, योगफल। है न? **'तेन कारणेन सर्वप्रकारेण शुद्धपरिणाम एव कर्तव्य'** आहाहा! करनेयोग्य हो तो वह शुद्ध परिणाम, वह कर्तव्य है। दूसरे का कर्तृत्व कर नहीं सकता, परन्तु शुभराग का कर्तव्य, वह कर्तव्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो बाबा हो, तब करेंगे—ऐसा नहीं कहता था? अमृतलाल। अमृतलाल कहता था, नहीं पहले? वह कहता था। अमृतलाल आया था न अभी धनबाद से। कि ऐसा यह तो सब आप (कहते हो वह तो) बाबा होंवे तो होता है। परन्तु बाबा ही है। कहाँ थी तुझमें कोई परचीज़? परचीज़ पर में और तू तुझमें। बाबा ही है। तुझे पर से त्याग ही है। आहाहा! ग्रहण कब किया है कि उसका त्याग कर? भगवान आत्मा तो परद्रव्य के त्यागग्रहण से रहित है। उपादान आदाय है न वह?

मुमुक्षु : त्याग-उपादान....

पूज्य गुरुदेवश्री : त्याग-उपादान शून्यत्वशक्ति। पर का त्याग और पर का ग्रहण, उससे तो शून्य है। त्याग किसका करे? आहाहा!

अभी एक पत्र आया है किसी का। उसमें लिखा होगा न? हिन्दी में आत्मधर्म में। उसमें आया होगा। जगत के लोग बाह्य त्याग में भूले हैं। बाह्य त्याग में भरमाये हैं। यह बात सच्ची है। बाह्य का जरा त्याग हो वहाँ आहाहा! धर्मी... धर्मी... धर्मी। धूल भी नहीं है। उसकी टीका (आलोचना) आयी है कि बाह्य त्याग भी लाभदायक है। अन्तरत्याग और बाह्यत्याग दोनों चाहिए, ऐसा। परन्तु अन्तर त्याग बिना बाह्य त्याग को त्याग कौन कहे? बाहर का त्याग तो है ही इसमें। वह तो त्याग किया, वह तो असद्भूत

व्यवहारनय से कथन है, झूठे नय से कथन है। वास्तव में तो राग का त्याग करता हूँ, राग का नाश करता हूँ, यह भी वस्तु के स्वरूप में कहाँ है? आहाहा! वह तो कथनमात्र है। आया नहीं ३४ गाथा समयसार? राग के नाश के कर्तापने का नाम भी इसे नहीं है। आहाहा! वह कब रागरूप हुआ था, वह राग का नाश करे? आहाहा! ज्ञानस्वरूप रहा था, वह ज्ञायकस्वरूप में गया। राग उत्पन्न होता नहीं, उसे नाश करता है, ऐसा कथन नाममात्र से है। आहाहा! राग का त्याग करता है, नाश करता है, वह नाममात्र (है वहाँ)। पर के लिये तो कहाँ बात है? आहाहा! ऐसी बातें हैं।

इसलिए सब तरह शुद्ध परिणाम ही... 'ही' शब्द पड़ा है, देखो! है? '**तेन कारणेन सर्वप्रकारेण शुद्धपरिणाम एव**' यह तो निश्चय हो गया एकान्त। है या नहीं अन्दर? देखो! आहाहा! बाहर से समेट, शुभाशुभ परिणाम को समेट दे। आहाहा! तब अन्दर में जा सकेगा। आहाहा! बाह्य पदार्थ को त्यागे, वह तो है ही कहाँ? परन्तु पुण्य के परिणाम का त्याग करे, वह भी कहाँ वस्तु के स्वरूप में है? आहाहा! मात्र वहाँ से हटकर स्वभाव-सन्मुख जाता है, इससे 'राग का त्याग किया'—ऐसा नाममात्र कथन है। वापस उसमें है न भाई उसमें? क्योंकि वह ज्ञानस्वरूप है, उस ज्ञानस्वरूप से तो हटा नहीं। प्रत्याख्यान के अधिकार में (यह बात है)। ज्ञान, ज्ञान में स्थिर हुआ, इसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! राग का त्याग भी नहीं? आहाहा! सहजात्मस्वरूप भगवान परमात्मा त्रिकाल सहजात्मस्वरूप है। सहज आत्म, स्वाभाविक आत्मद्रव्य को निश्चय से तो राग का त्याग ही है। पर का त्यागोपादान तो है ही नहीं। परन्तु स्वभाव की दृष्टि से देखने पर उसमें राग का त्याग ही है। आहाहा! लो!

वही धर्म है। लो! यह **शुद्ध परिणाम ही कर्तव्य है, वही धर्म है।** आहाहा! बहुत सरस गाथा हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ६९

अथ विशुद्धभाव एव मोक्षमार्ग इति दर्शयति -

१९३) सिद्धिहिं केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु।
जो तसु भावहँ मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु।।६९।।

सिद्धेः संबन्धो पन्थाः भावो विशुद्ध एकः।
यः तस्माद्भावात् मुनिश्चलति स कथं भवति विमुक्तः।।६९।।

सिद्धिहिं इत्यादि। सिद्धिहिं केरा सिद्धेर्मुक्तेः संबन्धी पंथडा पन्था मार्गः। कोऽसौ। भाउ भावः परिणामः कथंभूतः। विसुद्धउ विशुद्धः एक्कु एक एवाद्वितीयः। जो तसु भावहं मुणि चलइ यस्तस्माद्भावान्मुनिश्चलति। सो किम् होइ विमुक्कु स मुनिः कथं मुक्तो भवति न कथमपीति। तद्यथा। योऽसौ समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितो जीवस्य शुद्धभावः स एव निश्चयरत्नत्रयात्मको मोक्षमार्गः। यस्तस्मात् शुद्धात्मपरिणामान्मुनिश्च्युतो भवति स कथं मोक्षं लभते किंतु नैव। अत्र येन कारणेन निजशुद्धात्मानुभूतिपरिणाम एव मोक्षमार्गस्तेन कारणेन मोक्षार्थिना स एव। निरन्तरं कर्तव्य इति तात्पर्यार्थः।।६९।।

आगे शुद्ध भाव ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं -

शुद्ध स्वभावरूप परिणति ही एक मुक्ति का कारण है।
जो हैं उससे रहित उन्हें कैसे मुक्ति हो सकती है।।६९।।

अन्वयार्थ :- [सिद्धेः संबंधी] मुक्ति का [पंथाः] मार्ग [एकः विशुद्धः भावः] एक शुद्ध भाव ही है। [यः मुनिः] जो मुनि [तस्मात् भावात्] उस शुद्ध भाव से [चलति] चलायमान हो जावे, तो [सः] वह [कथं] कैसे [विमुक्तः] मुक्त [भवति] हो सकता है? किसी प्रकार नहीं हो सकता।

भावार्थ :- जो समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित जीव का शुद्ध भाव है, वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग है। जो मुनि शुद्धात्म परिणाम से च्युत हो जावे, वह किस तरह मोक्ष को पा सकता है? नहीं पा सकता। मोक्ष का मार्ग एक शुद्ध भाव ही है, इसलिये मोक्ष के इच्छुक को वही भाव हमेशा करना चाहिये।।६९।।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल ११, गुरुवार
दिनांक-०२-१२-१९७६, गाथा-६९-७०, प्रवचन-१४८

परमात्मप्रकाश। ६९ गाथा। ६८ पूरी हुई।

आगे शुद्धभाव ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं— ६८ में आ गया। दस प्रकार का धर्म, वह भी शुद्धभाव है। रत्नत्रयमार्ग, वह भी शुद्धभाव है। स्व की दया अथवा अहिंसा, वह भी शुद्धभाव है। यहाँ **एक शुद्धभाव ही मोक्ष का मार्ग है, ऐसा दिखलाते हैं—**

१९३) सिद्धिहिँ केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु।
जो तसु भावहँ मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु।।६९।।

'**केरा**' अर्थात् सम्बन्धी लेंगे। '**सिद्धिहिँ केरा पंथडा**' मोक्ष का पंथ। आहाहा! परमानन्द की प्राप्ति, परमानन्द का पूर्ण लाभ, उसका नाम मोक्ष। उस मोक्ष का आत्मलाभ। आत्मा का स्वभाव है, उसकी पूर्ण प्राप्ति, उसका नाम मोक्ष। उस मोक्ष की प्राप्ति, कहते हैं, '**सिद्धिहिँ केरा पंथडा**' वह सिद्धि सम्बन्धी मार्ग। '**एकः विशुद्धः भावः**' पाठ में है न? '**एक्कु**' एक विशुद्ध भाव मोक्ष का मार्ग। विशुद्ध शब्द से शुद्ध के अर्थ में है। विशुद्ध के अर्थ में शुभभाव भी आते हैं। यहाँ शुद्धभाव लेना है। '**विशुद्धः**' ओहो! ज्ञानस्वभाव की शुद्धि; शुभ-अशुभभाव से रहित, शुभ-अशुभभाव दोनों अशुद्ध हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, काम-धन्धा, यह सब पापभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव वह पुण्यभाव है। दोनों अशुद्ध भाव हैं। उस अशुद्ध से भिन्न चैतन्यस्वरूप शुद्ध का परिणमन शुद्ध होना, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! अपने आत्मा को पूर्णानन्द की प्राप्ति का यह एक ही उपाय है। सुख के पंथ में जाना हो तो शुद्धभाव है, वह सुख का पंथ है। सुख कहो या मोक्ष कहो। उसका पंथ। आहाहा!

मुमुक्षु : शुभ में थोड़ा शुद्ध का अंश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं शुद्ध का अंश। वह तो जो कहा है, वह तो दूसरी अपेक्षा से कहा है। शुभभाव में शुद्ध का अंश, वह तो ज्ञान निर्मल हो-होकर केवल

(ज्ञान) प्राप्त करे और अशुद्धभाव हो, वह पूर्ण निर्मल होकर वह कैसे यथाख्यातचारित्र हो? इस अपेक्षा से शुभभाव में जरा शुद्धता का अंश है परन्तु किसे वह लाभ प्राप्त हो? ग्रन्थिभेद करे उसे। राग की एकताबुद्धि तोड़े उसे। समझ में आया?!

राग जो अशुद्ध है, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का हो या व्यवहाररत्नत्रय का राग हो, परन्तु है तो वह अशुद्ध। '**सिद्धिहिँ केरा पंथडा**' भाषा तो देखो! मुक्ति का सम्बन्धवाला पंथ एक विशुद्धभाव है। **एक शुद्धभाव ही है।** 'ही है'। ऐसा है। उपोद्घात ऐसा है न, देखो न! '**विशुद्धभाव एव मोक्षमार्ग**' '**एव मोक्षमार्ग**' दूसरा व्यवहार भी मोक्षमार्ग है, वह तो उसका निरूपण—कथन है। वह मोक्षमार्ग नहीं। आहाहा! एक विशुद्ध भाव। विशुद्ध-शुद्ध चैतन्य आत्मा शुद्धात्मा, उसके अवलम्बन से—आश्रय से होता शुद्धभाव, वीतरागी परिणाम, वह एक ही मोक्ष का कारण है। आहाहा!

जो मुनि... 'तस्मात् भावात्' इस शुद्धभाव से जो च्युत होता है। आहाहा! **चलायमान हो जावे,...** आहाहा! **वह कैसे मुक्त हो सकता है?** आहाहा! शुद्धभाव से चलित होकर शुभ में आवे तो वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभी यह बड़ी गड़बड़ चलती है। अभी की नहीं, अनादि की है यह।

भगवान आत्मा शुद्धात्मा को कहा जाता है। वस्तु है, वह शुद्धात्मा है। द्रव्यस्वभाव वह शुद्ध स्वरूप है। उसका आश्रय और उसके सन्मुख से, निमित्त और राग से विमुख होकर, स्वभाव के सन्मुख होकर जो शुद्ध परिणाम हों, वह एक ही मोक्ष का मार्ग है। व्यवहार उसका कारण है, निश्चय कार्य है उसे, यह बात सत्य में नहीं। यह सब आरोपण से कथन हैं। आहाहा!

वह कैसे मुक्त हो सकता है? किसी प्रकार नहीं हो सकता। यह शुद्धभाव परिणाम की बात है, हों! जैसा शुद्धात्मा है ज्ञाता-दृष्टा अथवा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्व अर्थात् पूर्ण आनन्दस्वभावी, वह शुद्ध आत्मा है, उस शुद्धात्मा के आश्रय के सन्मुख होकर जो परिणाम होते हैं, वे शुद्ध होते हैं। वे वीतरागी परिणाम होते हैं, वे वीतरागी परिणाम एक ही मोक्ष का मार्ग है। कहो, अब यह सब अभी विवाद। व्यवहार से निश्चय होता है। चरणानुयोग प्रमाण आचरण करते हैं, उससे निश्चय होगा। वह साधन है, (ऐसा मानना

वह) बड़ा मिथ्यात्व शल्य है। लोगों को बहुत कठिन पड़े, क्या हो? पुण्य-पाप के अधिकार में कहा नहीं कि पुण्य-पाप का भाव तो बन्धस्वरूप है। वह बन्धस्वरूप, वह मोक्ष का कारण कैसे होगा? भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप है। मोक्षस्वरूप है तो वह मोक्ष का कारण होगा। पुण्य-पाप के अधिकार में है। समझ में आया?

आत्मा अबद्धस्पृष्ट है। अर्थात् कि नास्ति से अबद्ध, परन्तु अस्ति से कहें तो मोक्षस्वरूप ही है। शक्ति, उसका सामर्थ्य मोक्षस्वरूप ही वह है। तो मोक्षस्वरूप के आश्रय से मोक्ष का मार्ग हो और मोक्ष हो। बन्ध के मार्ग में बन्ध में से मोक्ष का मार्ग कहाँ से हो? व्यवहाररत्नत्रय का राग, वह तो शुभराग है। वह बन्धस्वरूप ही है। बन्धस्वरूप में से मोक्ष का कारण कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : कीचड़ में से कमल होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कीचड़ में से कमल होता है, उस कमल की जाति अलग है। कीचड़ के स्वभाव में से कमल स्वभाव नहीं होता। कमल स्वभाव कादव के स्वभाव से विरुद्ध कमल स्वभाव होता है, ऐसे व्यवहाररत्नत्रय से विरुद्ध जो चैतन्यस्वभाव, उससे कल्याण होता है। दोनों नय विरोध है। नय विरोध्वंसिनी। एक नय निश्चयस्वभाव के आश्रय से मुक्ति होती है और पर के आश्रय से बन्ध होता है। दोनों नय का विषय विरोध है, दोनों नय के फल विरोध हैं। आहाहा!

यहाँ तो पाठ ही यह लिया, देखो न! '**विशुद्धः भावः एकः**' ऐसा। एक ही मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! बापू! कठिन बात है, भाई! परन्तु वह मोक्षमार्ग प्राप्त कैसे हो तब? परन्तु वह प्राप्त हो पर की अपेक्षा छोड़कर स्व की अपेक्षा करे तो प्राप्त हो।

मुमुक्षु : दो न माने वह भ्रम में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब अज्ञानी हैं। दो माने वह भ्रम है, ऐसा कहा है टोडरमलजी ने तो। दो मोक्षमार्ग माने, वे भ्रम में पड़े हैं। अब रतनजी कहते हैं, दो मोक्षमार्ग न माने, वे भ्रम में पड़े हैं। अरे रे! यह क्या हो? भाई! स्वयं मोक्षस्वरूप है, वह मोक्ष का कारण होगा, उसके परिणाम। राग तो बन्धस्वरूप है, वह बन्धस्वरूप मोक्ष के परिणाम का कारण कैसे होगा? आहाहा! बात तो यह है कि शुभ-अशुभ परिणाम से रहित शुद्धस्वभाव

का इसे माहात्म्य नहीं आता। भगवान पवित्र आनन्दकन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द प्रभु है। उस अतीन्द्रिय आनन्द के परिणाम जिसे प्रगट हों, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा!

भावार्थ :- जो समस्त शुभाशुभ संकल्प-विकल्पों से रहित... लो, स्पष्टीकरण किया टीकाकार ने। **समस्त शुभ...** दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा वह शुभभाव; अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, दुकान पर बैठकर कमाने का भाव, यह स्त्री-पुत्र को सम्हालने का भाव, यह सब पापभाव है। आहाहा! इस शुभ और अशुभभाव से रहित। **संकल्प-विकल्पों से रहित जीव का शुद्ध भाव है,...** जीव का शुद्ध पवित्र भाव है। आहाहा! द्रव्यस्वभाव पवित्र है और उसके आश्रय से हुए पवित्र परिणाम, **वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग है।** लो! शुद्ध वीतरागी परिणाम, वही निश्चयरत्नत्रयस्वरूप है। व्यवहार है राग, वह तो बन्धस्वरूप है। आहाहा! ऐसा कहा। चरणानुयोग का चारित्र पालते-पालते व्यवहार करते-करते निश्चय होगा, ऐसा कहते हैं। बड़ी मिथ्या श्रद्धा शल्य है। ऐसी (श्रद्धा) नुकसानकारक है, बापू! क्या हो अब ?

मुमुक्षु : चारों अनुयोग भगवान ने कहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों अनुयोग कहे हैं। चारों अनुयोग का सार क्या कहा है ? तात्पर्य तो वीतरागता कही है। चरणानुयोग में से राग से लाभ हो, करणानुयोग में क्रिया क्या कहलाये ? चरणानुयोग... और उससे कुछ धर्म हो, ऐसा नहीं है। उसका वर्णन किया हो व्यवहार बतलाने को। व्रत ऐसे होते हैं और उसका अतिचार टालना और इत्यादि। परन्तु उसका तात्पर्य तो वीतरागता है। आहाहा!

कहा नहीं ? कि नियत—जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है, वही होगी उस काल में। वह उसकी काललब्धि है। परन्तु उसका तात्पर्य क्या ? वह वीतरागता तात्पर्य है। वीतरागता कब होगी ? वीतरागस्वभाव है, उसके आश्रय में जाये तो होगी। वीतरागस्वरूप ही भगवान है। आत्मा वीतराग अकषाय रसकन्द ही है। आहाहा! वीतरागस्वभाव की खान आत्मा है। यदि न हो तो वीतरागता आयेगी कहाँ से ? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दकन्द प्रभु है, ऐसा जिसे विश्वास और परिणति

श्रद्धा में हुई, वह तो शुद्धभाव है। वह शुद्धभाव एक ही निश्चयरत्नत्रय है। देखा! एक शुद्धभाव कहकर वह निश्चयरत्नत्रय है, ऐसा कहा है।

नियमसार में तो ऐसा कहा है कि निश्चयमोक्षमार्ग परम निरपेक्ष है। निश्चयमोक्षमार्ग जो है, वह परम निरपेक्ष है। जिसे राग की और व्यवहार की अपेक्षा नहीं। नियमसार। आहाहा! परम निरपेक्ष मोक्षमार्ग है। आहाहा! जिसे व्यवहार और भेद की अपेक्षा नहीं। पण्डितजी ने नीचे अर्थ किया है। भेद और व्यवहार की जिसे अपेक्षा नहीं, बापू! मार्ग ऐसा, भाई! आहाहा! चौरासी की खान में जन्मकर—मरकर मर गया है यह। इस मिथ्यात्व के कारण है। आहाहा! उसे टालने का उपाय स्वभाव की शरण में जाना, त्रिकाल स्वभाव का आश्रय लेना, त्रिकाल स्वभाव का अवलम्बन लेना। त्रिकाल स्वभाव का, श्रद्धा-ज्ञान की पर्याय में पूर्ण की श्रद्धा और ज्ञान होना, ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह मोक्ष का मार्ग है। उसमें स्थिरता आंशिक होती है। चौथे गुणस्थान में भी स्वरूपाचरण चारित्र होता है। समझ में आया? वही **निश्चयरत्नत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग है।** आहाहा!

जो मुनि शुद्धात्म परिणाम से च्युत हो जावे,... आहाहा! वस्तु भगवान स्वभाव से महिमावन्त प्रभु का वीतरागी स्वभाव है, उससे च्युत होता है। उस स्वभाव की महिमा का परिणमन है, वह शुद्ध है। उसमें से **च्युत हो जावे,...** आहाहा! **वह किस तरह मोक्ष को पा सकता है?** आहाहा! वह शुभ में आवे तो वह कैसे मोक्ष को पावे? वह तो बन्ध को पावे। यहाँ तो 'ही' एकान्त कहा है। ऐसा नहीं कहा कि कथंचित् निश्चय और कथंचित व्यवहार मोक्ष का मार्ग। ऐसा नहीं कहा। यह एक ही '**सिद्धिहिँ केरा पंथडा**' '**एकः विशुद्धः भावः**' आहाहा! सिद्ध केरा पंथडा अर्थात् सिद्ध सम्बन्धी पंथ—मुक्ति का पंथ, ऐसा। एक विशुद्ध शुद्धस्वभाव, पवित्रस्वभाव, वीतरागस्वभाव, वह निश्चयरत्नत्रय है। आहाहा! जन्म-मरण के फेरे कर-करके मर गया है। आहाहा! एक तो दुनिया में परद्रव्य की सम्हाल करने-करने में जिन्दगी जाती है इसकी। शरीर की, स्त्री, पुत्र, परिवार और धन्धा। अरर! यह कर सकता नहीं परन्तु करने के भाव में मर गया, हैरान होकर। आहाहा! कहाँ परद्रव्य और कहाँ तू? उसे कुछ सम्बन्ध? यहाँ तो सिद्धि केरा—सिद्धि सम्बन्धी पंथ। आहाहा! परसम्बन्धी पंथ, वह सब बन्ध का मार्ग है। आहाहा!

‘सिद्धिहिँ केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु।’ आहाहा! योगीन्द्रदेव नग्नमुनि दिगम्बर, भावलिंगी अमृत के सागर में तल्लीन! प्रचुर स्वसंवेदन... आहाहा! जो अतीन्द्रिय आनन्द के प्रचुर स्वसंवेदन में स्थित हैं। मुनि। आहाहा! (समयसार) ५वीं गाथा में नहीं कहा? कुन्दकुन्दाचार्य ने (कहा कि) सर्वज्ञ परमात्मा निर्मल विज्ञानघन में निमग्न, वहाँ से गणधर भी निर्मल विज्ञान (घन) में निमग्न, वहाँ से हमारे गुरु भी निर्मल विज्ञानघन में निमग्न। आहाहा! यह पाँच महाव्रत पालते थे, ऐसा नहीं कहा। वह तो आस्रव है। वह तो व्यवहार का कथन, उसका ज्ञान कराने के लिये है। समझ में आया? सर्वज्ञ के साथ अपने गुरु की लाईन रखी। और स्वयं भी यह है, ऐसा अन्दर न कहने पर (भी) उसमें यह आ गया। आहाहा! क्यों? कि स्वयं ने कहा कि मुझे तो प्रचुर स्वसंवेदन वर्तता है। और अतीन्द्रिय आनन्द की जो संवेदन में मोहरछाप है। आहाहा! पोस्ट में छाप लगाते हैं न? ऐसा अनुभव मोक्ष का मार्ग, उसकी मोहरछाप अतीन्द्रिय आनन्द की है। आहाहा! और शुभाशुभभाव तो दुःखरूप है। आहाहा! अरे! इसके घर में क्या है, इसकी खबर नहीं होती। हिरण की नाभि में कस्तूरी, परन्तु उसकी गन्ध आती है तो मानों यहाँ से आती होगी? यहाँ से आती होगी? इस प्रकार चारों ओर घूमा करता है। यह गन्ध कहाँ से आती है? परन्तु यहाँ अन्दर है, वहाँ से आती है, इसकी खबर नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वरूपी अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड, वह तो वस्तु है। आहाहा! उसके सन्मुख के, उसके आश्रय के जो विशुद्ध परिणाम अर्थात् कि शुद्ध। विशुद्ध का अर्थ अन्दर शुद्ध किया। **‘एकः विशुद्धः’** अर्थात् एक शुद्ध ऐसा किया। अर्थ में। आहाहा!

वह मुनि यदि स्वरूप के अनुभव में से (च्युत हो)... आहाहा! यह तो आस्रव में आ गया न अपने? शुद्धनय के **‘अत्यागात’** बन्ध नहीं है। शुद्धनय के त्याग से बन्ध है। **‘इदं एव तात्पर्यं शुद्धनयो न हेय’** तात्पर्य यह है कि शुद्ध परिणमन वह हेय नहीं। वही उपादेय है। आहाहा! **‘तत् अत्यागात’** शुद्धनय का स्वभाव तो द्रव्य का है। परन्तु वह स्वभाव है, वह परिणमन में ख्याल आया, तब उससे उस परिणमन को शुद्धनय कह दिया। आहाहा! समझ में आया? वह शुद्धनय अर्थात् पवित्र भगवान आत्मा, उसका जो ज्ञान, वह शुद्धनय। वह उसका पवित्र परिणमन है। वह शुद्धनय का अनुभव कभी

छोड़नेयोग्य नहीं है। आहाहा! उसके अत्याग से मुक्ति है और उसके त्याग से बन्ध है। आहाहा! शुद्ध अनुभव का त्याग होकर शुभभाव में आवे तो वह बन्ध में आयेगा। आहाहा! समझ में आया?

मुनि को भी जितना प्रमाद का छठवें गुणस्थान में पंच महाव्रत के परिणाम (आते हैं), वह सब जगपंथ है। आहाहा! वह उदयभाव है। पंच महाव्रत के परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, व्यवहार सब उदयभाव है और उदयभाव स्वयं संसार है। आहाहा! और पारिणामिकभाव भगवान आत्मा का, वह मुक्तस्वरूप है और उसके आश्रय से परिणाम हो, वह मोक्ष के कारण निश्चयरत्नत्रय है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! चौरासी लाख के अवतार, भवसिन्धु... ओहोहो! समुद्र। बापू! परन्तु यह भूल गया। परन्तु यहाँ जहाँ जन्मा और कुछ बाहर की थोड़ी-बहुत सुविधा हुई, दो-पाँच-दस लाख रुपये हो और लड़के ठीक हों और बहुएँ अच्छी जगह से आवें और लड़के अच्छी जगह विवाहित हो। अच्छा ठिकाना किसे कहना? मार डाला परन्तु। यह मिथ्याजाल। आहाहा! ऐसा करते हुए वहाँ से निवृत्त हो तो वापस पूजा, भक्ति, व्रत में रहे तो वह शुभजाल है। आहाहा! समझ में आया? उस शुभ में यदि आया शुद्ध में से च्युत होकर (तो) उसका मोक्ष कैसे होगा? ऐसा कहते हैं। देखो! है?

शुद्धात्म परिणाम से च्युत हो जावे, वह किस तरह मोक्ष को पा सकता है? नहीं पा सकता। मोक्ष का मार्ग एक शुद्धभाव ही है,... लो, ठीक! टीका में है '**निजशुद्धात्मानुभूतिपरिणाम**' परिणाम, हों! यह मोक्षमार्ग। आहाहा! मोक्ष का मार्ग एक शुद्ध अनुभूति के परिणाम, वह है। आहाहा! **इसलिए मोक्ष के इच्छुक को वही भाव हमेशा करना चाहिए।** लो! पाठ में है। '**एव निरन्तरं कर्तव्य**' निरन्तर कर्तव्य। आहाहा! द्रव्यस्वभाव की सन्मुख के शुद्धभाव निरन्तर कर्तव्य है। छह कर्तव्य आते हैं न श्रावक के? देवपूजा, गुरु उपासना... वह आते हैं बीच में, इतना ज्ञान कराया। वह कर्तव्यरूप से नहीं है। आहाहा! छह आयतन आते हैं न व्यवहार के? वे आयतन निश्चय से आयतन नहीं, वे तो अनायतन हैं। आहाहा! आयतन तो निजघर में रहना, वह आयतन है। आयतन निजघर है भगवान परमानन्द का नाथ। आहाहा! अरे रे! ऐसे

अनन्त भव निकाले। उसमें यह भव भी यदि उसमें जायेगा (तो) हो गया फिर निकलने का अवसर नहीं, बापू! आहाहा!

श्रीमद् तो कहते हैं न कि यह एक भव अनन्त भव के अभाव करने के लिये है। यह एक भव अनन्त भव के अभाव करने के लिये भव है। उसके बदले भव के करने के लिये समय व्यतीत करे। आहाहा! समझ में आया? श्रीमद् तो पहले से (कहते हैं), 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक भी टला।' भव के अभाव का वहाँ से शुरु हुआ छोटी उम्र में से। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! यह वस्तु है। भव के भाव, वे तो अनन्त बार किये। परन्तु भव के भाव बिना का अभवभाव (किया नहीं)। आहाहा! क्योंकि भगवान स्वयं भव और भव के कारण रहित है। स्वयं भगवान आत्मस्वरूप भव और भव के कारण रहित है। आहाहा! ऐसा अभवस्वरूप प्रभु अर्थात् कि मोक्षस्वरूप आत्मा। आहाहा! उसके सन्मुख के परिणाम, उसे शुद्ध कहते हैं। परसन्मुख के परिणाम चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र सन्मुख हो, उसे अशुद्ध कहते हैं। **'परदव्वादो दुग्गइ'** ऐसा कहा, लो! मोक्षपाहुड़। देव-गुरु-शास्त्र की ओर लक्ष्य जाये तो कहते हैं कि वह दुर्गति है। अर्थात्? वह चैतन्य की गति नहीं, वह विभावगति है। आहाहा! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है। वह सब व्यवहार हिला। उसे निषेध करनेवाले... एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है (कहते हैं)। बात सच्ची है।

'एव' है यहाँ। एक ही निश्चय का मार्ग एक ही है। दूसरा है नहीं। सम्यक् एकान्त है। सम्यक् एकान्त से अनेकान्त का यथार्थ ज्ञान होता है। समझ में आया? आहाहा! **इसलिए मोक्ष के इच्छुक को वही भाव हमेशा करना चाहिए।** आहाहा! ६९ हुई।

गाथा - ७०

अथ क्वापि देशे गच्छ किमप्यनुष्ठानं कुरु तथापि चित्तशुद्धिं विना मोक्षो नास्तीति प्रकटयति–

१९४) जहिँ भावइ तहिँ जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।
केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहँ सुद्धि ण जं जि।।७०।।

अत्र भाति तत्र याहि जीव यद् भाति कुरु तदेव।
कथमपि मोक्षः नास्ति परं चित्तस्य शुद्धिर्न यदेव।।७०।।

जहिं भावइ इत्यादि। जहिं भावइ तहिं यत्र देशे प्रतिभाति तत्र जाहि गच्छ जिय हे जीव। जं भावइ करि तं जि यदनुष्ठानं प्रतिभाति कुरु तदेव। केम्वइ मोक्खु ण अत्थि कथमपि केनापि प्रकारेण मोक्षो नास्ति पर परं नियमेन। कस्मात्। चित्तहं सुद्धि ण चित्तस्य शुद्धिर्न जं जि यस्मादेव कारणात् इति। तथाहि। ख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूपदुर्ध्यानैः शुद्धात्मानुभूतिप्रतिपक्षभूतैर्यावत्कालं चित्तं रञ्जितं मूर्च्छितं तन्मयं तिष्ठति तावत्कालं हे जीव क्वापि देशान्तरं गच्छ किमप्यनुष्टानं कुरु तथापि मोक्षो नास्तीति। अत्र कामक्रोधादिभिर–पध्यानैर्जीवो भोगानुभवं विनापि शुद्धात्मभावनाच्युतः सन् भावेन कर्माणि बध्नाति तेन कारणेन निरन्तरं चित्तशुद्धिः कर्तव्येति भावार्थः।। तथा चोक्तम् – 'कंखिदकलुसिदभूदो हु कामभोगेहिं मुच्छिदो जीवो। णवि भुञ्जंतो भोगे बंधदि भावेण कम्माणि।।'।।७०।।

आगे यह प्रकट करते हैं, कि किसी देश में जावो, चाहे जो तप करो, तो भी चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं है –

चाहे जाओ जहाँ कहीं भी जो रुचता हो वही करो।
तो भी बिना चित्त शुद्धि के कभी न शिव की प्राप्ति हो।।७०।।

अन्वयार्थ :– [जीव] हे जीव, [यत्र] जहाँ [भाति] तेरी इच्छा ही [तत्र] उसी देश में [याहि] जा, और [यत्] जो [भाति] अच्छा लगे, [तदेव] वही [कुरु] कर, [परं] लेकिन [यदेव] जब तक [चित्तस्य शुद्धिः न] मन की शुद्धि नहीं है, तब तक [कथमपि] किसी तरह [मोक्षो नास्ति] मोक्ष नहीं हो सकता।

भावार्थ :– बड़ाई, प्रतिष्ठा, परवस्तु का लाभ, और देखे, सुने, भोगे हुए भोगों

की वाँछारूप खोटे ध्यान, (जो कि शुद्धात्मज्ञान के शत्रु हैं) इनसे जब तक यह चित्त रँगा हुआ है, अर्थात् विषय-कषायों से तन्मयी है, तब तक हे जीव; किसी देश में जा, तीर्थादिकों में भ्रमण कर, अथवा चाहे जैसा आचरण कर, किसी प्रकार मोक्ष नहीं है। सारांश यह है, कि काम-क्रोधादि खोटे ध्यान से यह जीव भोगों के सेवन के बिना भी शुद्धात्म-भावना से च्युत हुआ, अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है। इसलिये हमेशा चित्त की शुद्धता रखनी चाहिये। ऐसा ही कथन दूसरी जगह भी 'कंखिद' इत्यादि गाथा से कहा है, इस लोक और परलोक के भोगों का अभिलाषी और कषायों से कालिमारूप हुआ अवर्तमान विषयों का वाँछक और वर्तमान विषयों में अत्यन्त आसक्त हुआ अति मोहित होने से भोगों को नहीं भोगता हुआ भी अशुद्ध भावों से कर्मों को बांधता है।।७०।।

गाथा-७० पर प्रवचन

७०। **आगे यह प्रकट करते हैं कि किसी देश में जाओ,...** सम्मेदशिखर जाओ, शत्रुंजय जाओ... आहाहा! **चाहे जो तप करो,...** उपवास और संथारा, **तो भी चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष नहीं है—** यह सब आचरण चाहे जैसे करो, परन्तु शुद्ध परिणाम बिना मोक्ष नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चित्तशुद्धि शब्द से ज्ञानशुद्धि। अर्थ में मनशुद्धि लेंगे। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा की शुद्धि निर्मल परिणति—वीतरागी चित्तशुद्धि... आहाहा! वह तो राग की अशुद्धि है। आहाहा! चाहे जहाँ भटको, कहते हैं। सम्मेदशिखर जाओ, शत्रुंजय जाओ, यात्रा को जाओ।

मुमुक्षु : हम तो सोनगढ़ आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ आवे तो भी यह कहते हैं। शुद्ध परिणाम बिना कहीं मुक्ति नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : हम सम्मेदशिखर नहीं गये, गिरनार नहीं गये। सोगनढ़ आ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : सोनगढ़ और यह सब एक है। शुभभाव है। समझ में आया? लोग आते हैं बहुत अब यहाँ तो। शत्रुंजय जाये, वे यहाँ आवे बेचारे, गिरनार जावे वे आवे। आते हैं बहुत-बहुत। परन्तु यह सुनने को रुकते नहीं। झट भागते हैं। अरे रे!

एक-एक प्रवचन सुने तो, बापू! तेरे घर की बातें, घर में कैसे जाया जाये? परघर से कैसे हटा जाये? अरे! प्रभु! क्या हो? **हे जीव...** है न? आहाहा!

१९४)   **जहिँ भावइ तहिँ जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।**
केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहँ सुद्धि ण जं जि।।७०।।

जो तुझे आचरण करना हो तो कर। जब तक शुद्ध परिणाम, वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र परिणाम न हो, तब तक उसकी मुक्ति नहीं है। आहाहा!

अन्वयार्थ :- हे जीव! जहाँ तेरी इच्छा हो, उसी देश में जा,... आहाहा! अर्थात् कि किसी पर्वत में, एकान्त में जाना, गिरनार और ऐसे एकान्त में रहे। जा, परन्तु चित्तशुद्धि बिना कहीं मुक्ति नहीं है। आहाहा! गिरनार में जायें तो वहाँ चित्तशुद्धि होगी। कहते हैं कि यह सब तुझे भ्रमणा है। आत्मा के आश्रय से चित्तशुद्धि (होती है), अन्यत्र कहीं से हो, ऐसा नहीं है। आत्मा के आश्रय से हो, ऐसा है। आहाहा! ऐसा कहते हैं, देखो! भगवान तीर्थक्षेत्र में मोक्ष पधारे। वहाँ जायें तो परिणाम निर्मल होते हैं। भ्रम है। समझ में आया? आहाहा! अन्तर में जाये तो परिणाम निर्मल होते हैं। आहाहा! सच्चिदानन्द प्रभु वस्तु पूर्ण सत् चिदानन्द। सत् ज्ञान और आनन्दस्वभाव, उसके सन्मुख होकर उसमें जा। आहाहा! जा का अर्थ? पर्याय कहीं द्रव्य में मिलती नहीं। परन्तु पर्याय वहाँ झुकती है; इसलिए उसे द्रव्य सन्मुख झुक गयी, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! **और जो अच्छा लगे, वही कर,...** अर्थात् आचरण। तुझे ठीक पड़े वैसा व्रत, नियम और सब पालन कर, परन्तु इस शुद्धभाव के बिना मुक्ति नहीं है, कहते हैं। समझ में आया?

लेकिन जब तक मन (ज्ञान) की शुद्धि नहीं है,... भगवान पूर्णानन्द शुद्ध स्वरूप की शुद्ध परिणति नहीं। आहाहा! **तब तक किसी तरह...** है? **'कथमपि'** आहाहा! शुद्धभाव बिना किसी भी प्रकार से, ऐसा कहते हैं। है न? **'कथमपि'** किसी भी प्रकार से। **मोक्ष नहीं हो सकता।** आहाहा! दिगम्बर आचार्यों के तीव्र वचन हैं। आहाहा! एकदम धड़ाका। चाहे जितने आचरण कर तेरे व्रत और नियम और फलाना और ढींकणा, अपवास करके क्लेश कर। अपवास, वह क्लेश है। राग की मन्दता का क्लेश है। निर्जरा (अधिकार) में आया है न? क्लेश। आहाहा!

भगवान अक्लेश स्वरूप है। उसके समीप जाने से, उसकी ओर का झुकाव होने पर जो शुद्ध परिणाम होते हैं, उस शुद्ध परिणाम से ही मुक्ति है, बस। आहाहा! क्यों? कि व्यवहार के परिणाम की दिशा परसन्मुख है। वह दशा परसन्मुख की दिशावाली दशा है। शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम उस राग की दशा की दिशा पर की है उसमें। परसन्मुख के झुकाववाली दिशा की ओर दशा है। और स्वसन्मुख के झुकाववाली वीतरागी परिणाम की दशा स्व के आश्रयवाली है। दोनों का दिशा फेर है। दशाफेर है। दशाफेर है तो दिशाफेर है। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो शुभराग हो, दया, दान, परन्तु उसकी दिशा पर के ऊपर है। आहाहा! और वीतरागी परिणाम की दशा, उसकी दिशा स्व के ऊपर है। आहाहा! वही मुक्ति का कारण है, कहते हैं, लो! है?

चित्तशुद्धि बिना **'कथमपि' किसी तरह...** व्यवहार भी मदद करे और व्यवहार से हो, यह कुछ नहीं, कहते हैं। आहाहा! व्यवहार होता अवश्य है। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक स्वआश्रय के परिणाम भी होते हैं और व्यवहार पराश्रय के परिणाम होते अवश्य हैं। दो नय का विषय होता है, परन्तु वह विषय बन्ध का कारण पर है। आहाहा! **किसी तरह मोक्ष नहीं हो सकता।**

भावार्थ :- बड़ाई... हम बड़े हैं। शास्त्र बहुत पढ़े हैं। आचरण भी बड़े। यह व्रत-तप का सबसे बहुत (अधिक) आचरण हमारा। **प्रतिष्ठा,...** हमारी प्रतिष्ठा बड़ी है। **परवस्तु का लाभ...** हमको पर का लाभ कितना होता है। कितने शिष्य हों, हमारा नाम पड़े वहाँ। शिष्य हों, सभा भरे। लो! बड़ी सभा भरे। उसमें तुझे क्या है? आहाहा! **परवस्तु का लाभ, और देखे, सुने, भोगे हुए...** आँख से देखा हुआ, कान से सुना हुआ, मन से भोगा हुआ। इन सबके **भोगों की वांछारूप खोटे ध्यान...** है वह तो। परसन्मुख का है वह। **(जो कि शुद्धात्मज्ञान के शत्रु हैं)।** आहाहा! वह सब वांछा, इच्छाएँ शुद्धात्म ज्ञान के शत्रु हैं। आहाहा!

उसमें कहा है न, वह आत्मावलोकन में और अनुभवप्रकाश में कि शत्रु, अपना विकारीभाव वह शत्रु है। उसका निश्चयभाव, वह शत्रु है। कर्म-बर्म शत्रु नहीं। तेरा भावकर्म वह तेरा शत्रु है। वह निश्चय शत्रु है। ऐसा लिखा है। आहाहा! णमो अरिहंताणं। कर्मरूपी शत्रु को नाश किया, यह निमित्त का कथन है। अरि-कर्म अरि है ही नहीं।

शत्रु–दुश्मन तो मिथ्यात्व और राग–द्वेष के भाव, वे शत्रु हैं। आहाहा! उसे भगवान ने नाश किया, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। पर की तो बात ही कहाँ है। आहाहा! पहले से दिक्कत आवे। णमो अरिहंताणं में से कर्मरूपी शत्रु को नष्ट किया, ऐसा अर्थ करो। वह तो निमित्त की बात है। विकाररूपी अरि–वैरी। स्वभाव का आश्रय लेकर उत्पन्न हुए नहीं, उसे घात किया, ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

विकार का त्याग का कर्ता भी नाममात्र है। गजब बात है। अरे! इसे खबर नहीं होती वीतरागमार्ग की। वीतराग जिनेश्वर किसे कहना। आहाहा! कहते हैं कि आत्मा राग का त्याग करता है, वह भी नाममात्र कथन है। त्याग कहाँ करता है? वह तो स्वरूप में स्थिर होता है, तब राग उत्पन्न नहीं होता, उसे नाममात्र, कथनमात्र से त्याग किया, ऐसा कहा जाता है। पर के त्याग की बात है ही कहाँ? आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा पर के त्याग और ग्रहण से तो रहित है वह। आहाहा! यह शरीर, वाणी, कुटुम्ब, कबीला कब ग्रहण किया था कि उन्हें छोड़े? आहाहा! बहुत अन्तर, भाई! मार्ग में बहुत अन्तर, बापू! जिनवर का मार्ग जगत को (मिला नहीं)। राग में जिनवर का मार्ग कल्पित कर लिया गया है, अजैनपने में जैन कल्पित कर लिया गया है। आहाहा! तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव परमात्मा ऐसा कहते हैं, वह बात सन्त कहते हैं। आहाहा! लो!

(जो कि शुद्धात्मज्ञान के शत्रु हैं) देखा! **इनसे जब तक यह चित्त रंगा हुआ है,...** आहाहा! यह शुभ और अशुभराग से ज्ञान रंगा हुआ है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, व्रत का, तप का भाव, वह विकल्प–राग है। आहाहा! यह कैसे बैठे? आहाहा! उसे धर्म माना है। अनादि काल का भ्रम। उस राग में रँगे हुए चित्तवाले को... आहाहा! है? **अर्थात् विषय-कषायों से तन्मयी है,...** परसन्मुख के झुकाव में, राग में वह तन्मय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चाहे तो व्रत का भाव हो, तप का, अपवास का हो, वह सब विकल्प है, उसकी इसे खबर नहीं। भगवान तो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञातास्वरूप है, सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा है। उसमें वृत्ति उठती है, वह तो राग है। समझ में आया? उस राग के प्रेम में रँगे हुए को। आहाहा!

जब तक हे जीव! किसी देश में जा,... देखो! राग के प्रेम में रहा हुआ जीव, तू किसी भी देश में जा, भगवान के समवसरण में जा, तो भी कहीं शुद्धि वहाँ है नहीं।

आहाहा! देश में तो आ गया न क्षेत्र। समवसरण में भगवान परमात्मा विराजते हैं। महाविदेह में अनन्त बार जन्मा है। भगवन्त तीर्थंकर सदा महाविदेह में तो सदा ही तीर्थंकर होते हैं। विहरमान, विचरमान प्रभु। वहाँ अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार समवसरण में गया। आहाहा! उससे क्या? कहते हैं। चाहे जिस देश में जा। समवसरण में गया तो चित्तशुद्धि अर्थात् शुद्ध परिणाम बिना तुझे कहीं लाभ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग। लो! कितनों को बेचारों को जिन्दगी में सुनने को मिला न हो। आहाहा! कदाचित् मिले तो ऐसा कहे कि ए... ए... ए... यह तो दूसरी बातें। निश्चय की बातें... निश्चय की बातें... ऐसा कहकर निकाल डाले। आहाहा! हमारे पहले साधन कौन सा करना, यह कहो न हमको। वह मारवाडी वहाँ कहता था। अगास में गये थे न! घण्टे भर व्याख्यान सुना सबने अगास में। रात्रि में एक मारवाड़ी आया। वह कहे, आपकी सब बात सच्ची। परन्तु उसका साधन? ऐसा कि यह भक्ति करते हैं, शास्त्र वाँचते हैं (वह साधन)। बापू! साधन तो यह है (कि) अन्दर में राग बिना की निर्मल शुद्ध क्रिया प्रगट होना, वह साधन है। नहीं जँचता। भक्ति, भगवान की भक्ति से मोक्ष हो जायेगा, गुरु की भक्ति से मोक्ष हो जायेगा, ऐसा माननेवाले को यह गले उतरना भारी कठिन पड़े। आहाहा!

गुरु और देव तू है अन्दर। पूर्णानन्द की दिव्यशक्ति से भरपूर भगवान तू है, भाई! वह देव तू है। उसकी भक्ति (अर्थात्) अन्दर में जा। आहाहा! उसका आदर कर। गुरु भी तू है। सच्ची बात स्वयं अपने को समझावे, वह स्वयं गुरु। वीतरागभाव से आत्मा को लाभ होता है, ऐसा समझावे, वह गुरु। वह आत्मा गुरु। आहाहा! ईष्टोपदेश में कहा है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया से अलग प्रकार है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : मार्ग अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग ही अलग है यह तो।

हे जीव! किसी देश में जा... समवसरण में जा। अरे! **तीर्थादिकों में भ्रमण कर,...** शत्रुंजय, सम्मेदशिखर और गिरनार, यहाँ शत्रुंजय की ९९ यात्रा करे तो मोक्ष हो। अरे! लाख कर न! वह तो शुभभाव है। समझ में आया? होता है, अशुभ से बचने को, परन्तु वह धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहा? **तीर्थादिकों में भ्रमण कर,...** लो! चाहे जिस तीर्थ में जा। वह तो शुभभाव है। आत्मा के शुद्ध परिणमन की श्रद्धा-

ज्ञान बिना कहीं धर्म है नहीं। मुक्ति नहीं, ले! आहाहा! वे कहे कि काशी में जाकर करवत ले तो (मुक्ति होती है), यह (जैन) कहे, सम्मेदशिखर की एक बार वन्दना करे, 'एक बार वंदे जो कोई नरक-पशु नहीं होई' लो! अब उसमें क्या भला हुआ? वह तो शुभभाव हो तो कदाचित् एक भव में नरक-पशु में न जाए। आहाहा!

यह तब तो वे थे न? महावीरकीर्ति। यहाँ उतरे थे उसमें। एक बार फिरते हुए वहाँ आये कहे, मेरे पास ऐसी पुस्तक है कि जिसमें श्वेताम्बर में शत्रुंजय है। शत्रुंजय माहात्म्य। उसी प्रकार मेरे पास सम्मेदशिखर माहात्म्य की पुस्तक है, कहे। ठीक, कहा। क्या है परन्तु अब उसमें लिखा क्या है, वह कहो न? कि सम्मेदशिखर के दर्शन करे तो ४९ भव में मोक्ष जाये। (हमने) कहा, यह वीतराग की वाणी नहीं है। परद्रव्य के दर्शन और परद्रव्य की यात्रा से मुक्ति हो, यह वीतराग की वाणी नहीं है। परद्रव्य के आश्रय से तो शुभराग होता है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धे का आश्रय करे तो पापराग होता है। देव-गुरु का आश्रय करे भक्ति आदि तो पुण्यराग होता है। परन्तु है तो दोनों राग। आहाहा! समकिती को भी वह राग आवे सही, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बात है। पागल कहे ऐसा है, पागल। ऐसी पागल जैसी बातें करते हैं।

मुमुक्षु : ज्ञानियों को पागल कहने में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न परमात्मप्रकाश (में कि) अज्ञानी धर्मी को पागल कहते हैं। धर्मी जगत को पागल मानते हैं। आहाहा!

तीर्थादिकों में भ्रमण कर, अथवा चाहे जैसा आचरण कर,... देखा! आचरण चाहे जैसा (कर)। तेरे व्रत, अपवास, छह परबी ब्रह्मचर्य पालन कर और छह परबी हरितकाय न खा, कन्दमूल न खा, सूर्यास्त पूर्व भोजन कर, यह सब राग की क्रिया है। आहाहा! है? तीन बोल लिये। निर्मल शुद्ध आत्मा के परिणाम वीतरागीदशा बिना तू चाहे जहाँ जा, किसी देश में जा, भगवान के पास जा, समवसरण में जा, तीर्थादि में जा या **चाहे जैसा आचरण कर...** आहाहा! महीने-महीने के अपवास, मरते समय दो-दो महीने का संथारा (करे), वह सब राग की क्रिया है। वह तो पराश्रय है। आहाहा! समझ में आया? है?

चाहे जैसा आचरण कर... ऐसा है न? '**देशान्तरं गच्छ किमप्यनुष्टानं कुरु**' ऐसा है, देखो! '**अनुष्टानं**' है। आचरण चाहे जो कर। पाठ में—टीका में है। '**देशान्तरं गच्छ**' के अर्थ दो किये। तीर्थादि में और किसी भी क्षेत्र में, ऐसा। आहाहा! **किसी प्रकार मोक्ष नहीं है।** चाहे जितने आचरण तेरे व्रत और अपवास और तप के कर, वह क्रियाकाण्ड का राग तो शुभराग है। आहाहा! दुनिया उसे धर्म मानकर बैठी है और उसके प्ररूपक यह प्ररूपित करे, वह इसे रुच जाये। 'द्रव्य क्रिया रुचि जीवडा भाव धर्म रुचि हीन, उपदेशक भी वैसे ही उसे मिले।' माली मकवाणी और जहलो जोगी। ऐसा हो गया। दोनों इकट्ठे हो गये। जहला जोगी को कोई देता नहीं था और माली मकवाणी को कोई लेता नहीं था। दोनों फिर पति-पत्नी हो गये। इसी प्रकार इसे बेचारे को बाहर का व्यवहार क्रियाकाण्ड का धर्म रुचता था और कहनेवाले ऐसे मिले कि वह धर्म का कारण है। जहलो जोगी, माली मकवाणी, दोनों इकट्ठे हो गये। आहाहा! यह तुम्हारे कहावत होगी कुछ।

मुमुक्षु : .... जैसे को तैसा मिला ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे परन्तु नाम भी होगा यह। यह तो हो तो सही सर्वत्र। चाहे जिस चूल्हे में हो राख ही होगी न! हिन्दुस्तान में हो या लन्दन में जाये। चूल्हे में तो राख ही होगी। लन्दन में जाये तो चूल्हे में कस्तूरी होगी? काठियावाड़ में गरीब के घर में जाये तो राख होगी, ऐसा होगा? कहावत का भाव तो सर्वत्र एक ही होता है। यह भाषा में अन्तर हो तो कुछ... आहाहा!

किसी प्रकार मोक्ष नहीं है। चाहे जितने आचरण कर। व्रत के, तप के, यात्राएँ कर चाहे जैसी, गिरनार में जाकर रहे, सम्मेदशिखर में जाकर रहे। वे और ऐसा कहते हैं कि सम्मेदशिखर में तो वनस्पति सब अल्प भववाली है, ऐसा (वे) कहते हैं। सम्मेदशिखर में वनस्पति... ऐसा सम्मेदशिखर का माहात्म्य है। अरे रे! वह तो परवस्तु है। मुनि मोक्ष पधारे हैं, इससे वहाँ यादगिरी के लिये वह स्मरण है। वह तो शुभभाव है। जहाँ से मोक्ष पधारे हैं, वहाँ ऊपर ही होते हैं वे। इसलिए वहाँ से मोक्ष पधारे, ऊपर हों (समश्रेणी में) इसलिए यादगिरी के लिये कि यहाँ भगवान विराजते हैं। यह यादगिरी शुभभाव है, पुण्य है। धर्म नहीं। आहाहा! तब फिर तुम क्यों यह सब मन्दिर और

भक्ति-पूजा करते हो? वह भाव शुभ हो। पूर्ण वीतराग न हो, उसे स्व की दृष्टि होने पर भी पर की भक्ति आदि का (भाव) होता है। परन्तु वह हो, वह हेयबुद्धि से होता है। हेयबुद्धि से होता है। आहाहा! ऐसी बात... करे कौन? होता है। ऐसी बातें हैं।

सारांश यह है कि काम-क्रोधादि (इच्छादि और द्वेष) खोटे ध्यान से यह जीव भोगों के सेवन बिना भी... जिसे परिणाम में राग और द्वेष है, वे **खोटे ध्यान से यह जीव भोगों के सेवन बिना भी शुद्धात्म-भावना से च्युत हुआ,...** आहाहा! राग और द्वेष के परिणाम में आने पर शुद्धात्म-भावना से वह च्युत हुआ। आहाहा! **अशुद्ध भावों से कर्मों को बाँधता है।** यह तो पुण्य-पाप के भाव दोनों अशुद्ध हैं। उनसे कर्म बाँधे। आहाहा! **इसलिए हमेशा चित्त की शुद्धता रखनी चाहिए।** ज्ञान की शुद्धि परिणति श्रद्धा-ज्ञान की सदा करनी चाहिए।

ऐसा ही कथन दूसरी जगह भी 'कंबिद' इत्यादि गाथा से कहा है, इसलोक और परलोक के भोगों का अभिलाषी... राग की अभिलाषा है और यह सब भोग के ही अभिलाषी हैं। शुभराग के कामी हैं, वे भी शुभरागवाले भोग के ही अभिलाषी हैं। क्योंकि शुभराग से भोग मिलेगें। आहाहा! **लोक और परलोक के भोगों का अभिलाषी और कषायों से कालिमारूप हुआ...** कषाय से मलिन परिणाम अवर्तमान विषय या वर्तमान दोनों। नहीं वर्तते विषय या वर्तमान विषय, ऐसा। **अवर्तमान विषयों का वांछक और वर्तमान विषयों में...** भविष्य के विषय या वर्तमान के विषय, ऐसा कहते हैं। **अत्यन्त आसक्त हुआ...** राग में आसक्त हुआ। **अति मोहित होने से,...** आहाहा! **भोगों को नहीं भोगता हुआ भी...** भोग को न भोगते हुए भी राग की अभिलाषावाले प्राणी **अशुद्धभावों से कर्मों को बाँधता है।** आहाहा! उस अशुद्धभाव से उसे बन्ध होता है। आहाहा! परसन्मुख के आश्रयवाला भाव। इसलिए कहा न, **'परदव्वादो दुग्गइ'** ऐसा पाठ! सन्त ऐसे हैं। सन्त ऐसा कहे, परमात्मा ऐसा कहे कि हमारे सन्मुख तेरा लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। क्योंकि हम परद्रव्य हैं। तेरे सन्मुख लक्ष्य जायेगा तो तुझे अराग परिणाम होंगे। आहाहा! **खोटे ध्यान से यह जीव भोगों के सेवन बिना भी...** तेरे अशुद्धभाव से कर्म का बन्धन होगा। लो! विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - ७१

अथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयं कथयति -

१९५) सुह-परिणामें धम्मु पर असुहें होइ अहम्मु।
दोहिं वि एहिं विवज्जियउ सुद्धु ण बंधइ कम्मु।।७१।।

शुभपरिणामेन धर्मः परं अशुभेन भवति अधर्मः।
द्वाभ्यामपि एताभ्यां विवर्जितः शुद्धो न बध्नाति कर्म।।७१।।

सुह इत्यादि पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते। सुह-परिणामें धम्मु पर शुभपरिणामेन धर्मः परिणामेन धर्मः पुण्यं भवति मुख्यवृत्त्या। असुहें होइ अहम्मु अशुभपरिणामेन भवत्यधर्मः पापम्। दोहिं वि एहिं विवज्जियउ द्वाभ्यां एताभ्यां शुभाशुभपरिणामाभ्यां विवर्जितः। कोऽसौ। सुद्धु शुद्धो मिथ्यात्वरागादिरहितपरिणामस्तत्परिणतपुरुषो वा। किं करोति। ण बंधइ न बध्नाति। किम्। कम्मु ज्ञानावरणादिकर्मेति। तद्यथा। कृष्णोपाधिपीतोपाधिस्फटिकवदयमात्मा क्रमेण शुभाशुभ-शुद्धोपयोगरूपेण परिणामत्रयं परिणमति। तेन तु मिथ्यात्वविषयकषायाद्यवलम्बनेन पापं बध्नाति। अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधुगुणस्मरणदानपूजादिना संसारस्थितिच्छेदपूर्वकं तीर्थंकरनामकर्मादि-विशिष्टगुणपुण्यमनीहितवृत्त्या बध्नाति। शुद्धात्मावलम्बनेन शुद्धोपयोगेन तु केवलज्ञानाद्यनन्तगुणरूपं मोक्षं च लभते इति। अत्रोपयोगत्रयमध्ये मुख्यवृत्त्या शुद्धोपयोग एवोपादेय इत्याभिप्रायः।।७१।। एवमेकचत्वारिंशत्सूत्रप्रमितमहास्थलमध्ये सूत्रपञ्चकेन शुद्धोपयोगव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमान्तरस्थलं गतम्।।

आगे शुभ, अशुभ और शुद्ध इन तीन उपयोगों को कहते हैं -

शुभ परिणामों से होता है पुण्य, अशुभ से होता पाप।
शुभ अरु अशुभ विहीन शुद्ध से जीव बन्ध से होता मुक्त।।७१।।

अन्वयार्थ :- [शुभपरिणामेन] दान पूजादि शुभ परिणामों से [धर्मः] पुण्यरूप व्यवहारधर्म [परं] मुख्यता से [भवति] होता है, [अशुभेन] विषय कषायादि अशुभ परिणामों से [अधर्मः] पाप होता है, [अपि] और [एताभ्यां] इन [द्वाभ्याम्] दोनों से [विवर्जितः] रहित [शुद्धः] मिथ्यात्व रागादि रहित शुद्ध परिणाम अथवा परिणामधारी पुरुष [कर्म] ज्ञानावरणादि कर्म को [न] नहीं [बध्नाति] बाँधता।

भावार्थ :– जैसे स्फटिकमणि शुद्ध उज्जवल है, उसके जो काला डंक लगावें, तो काला मालूम होता है, और पीला डंक लगावें तो पीला भासता है, और यदि कुछ भी न लगावें, तो शुद्ध स्फटिक ही है, उसी तरह यह आत्मा क्रम से अशुभ, शुभ, शुद्ध इन परिणामों से परिणत होता है। उनमें से मिथ्यात्व और विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से तो पाप को ही बाँधता है, उसके फल से नरक निगोदादि के दुःखों को भोगता है और अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों के गुणस्मरण और दानपूजादि शुभ क्रियाओं से संसार की स्थिति का छेदनेवाला जो तीर्थंकरनामकर्म उसको आदि ले विशिष्ट गुणरूप पुण्यप्रकृतियों को अवाँछीक वृत्ति से बाँधता है। तथा केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप शुद्धोपयोग से उसी भव में केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप मोक्ष को पाता है। इन तीन प्रकार के उपयोगों में से सर्वथा उपादेय तो शुद्धोपयोग ही है, अन्य नहीं है। और शुभ, अशुभ इन दोनों में से अशुभ तो सब प्रकार से निषिद्ध है, नरक निगोद का कारण है, किसी तरह उपादेय नहीं है–हेय है, तथा शुभोपयोग प्रथम अवस्था में उपादेय है, और परम अवस्था में उपादेय नहीं है, हेय है।।७१।।

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल १२, शुक्रवार
दिनांक-०३-१२-१९७६, गाथा-७१-७२, प्रवचन-१४९

परमात्मप्रकाश, ७१ गाथा। **आगे शुभ, अशुभ और शुद्ध इन तीन उपयोगों को कहते हैं—** तीन प्रकार के उपयोग की व्याख्या है।

१९५) **सुह–परिणामैं धम्मु पर असुहें होइ अहम्मु।**
दोहिँ वि एहिँ विवज्जियउ सुद्धु ण बंधइ कम्मु।।७१।।

धर्म शब्द से यहाँ पुण्य है—व्यवहार धर्म।

अन्वयार्थ :- दान पूजादि शुभ परिणामों से पुण्यरूप व्यवहारधर्म... पुण्यरूप व्यवहारधर्म। सच्चा धर्म नहीं। दान, पूजा आदि से पुण्य होता है।

मुमुक्षु : व्यवहारधर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारधर्म अर्थात् निश्चयधर्म है उसे। जिसे निश्चयधर्म है, उसकी यहाँ व्याख्या है। अशुभ की बात तो मिथ्यादृष्टिसहित की लेंगे। क्योंकि सम्यग्दृष्टि को शुभ होता है, तब उस शुभ के परिणाम में वह भविष्य का आयुष्य बाँधता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है, उसे पहले—सम्यक्त्व से पहले भविष्य का बँधा न हो तो, सम्यग्दर्शन में अशुभभाव हो, परन्तु उस समय आयुष्य नहीं बाँधता। जब उसे शुभ उपयोग होगा, तब आयुष्य बाँधेगा। आहाहा! और यह उसे अशुभ का कहते हैं, वह तो मिथ्यात्वसहित की बात है। इसमें कहेंगे। इसमें शुभ है, वह समकितसहित की बात है। समझ में आया?

'शुभपरिणामेन' व्यवहारधर्म मुख्यता से होता है, विषय कषायादि अशुभ परिणामों से पाप होता है,... यह विषय-कषाय मिथ्यात्व के लेंगे। **कषायादि अशुभ परिणामों से पाप (अधर्म) होता है, और इन दोनों से रहित...** दोनों से रहित **मिथ्यात्व रागादि रहित...** उसे शुद्ध परिणाम, शुद्ध उपयोग होता है। **मिथ्यात्व रागादि रहित शुद्ध परिणाम अथवा परिणामधारी पुरुष...** ऐसे दो लिये। पाठ में है। पाठ में है, हों! **'परिणामस्तत्परिणतपुरुषो वा'** संस्कृत में है। इस ओर संस्कृत ७१ में। क्या कहा? कि मिथ्याभ्रान्ति से रहित और रागादि रहित ऐसे जो शुद्ध परिणाम, उनसे कर्मबन्धन नहीं होता अथवा उन परिणामधारी पुरुष को कर्मबन्धन नहीं होता। आहाहा! **ज्ञानावरणादि कर्म को नहीं बाँधता।** आहाहा!

भावार्थ :- जैसे स्फटिकमणि शुद्ध उज्ज्वल है, उसके जो काला डंक लगावें, तो काला मालूम होता है, और पीला डंक लगावें तो पीला भासता है,... स्फटिक। **और यदि कुछ भी न लगावें, तो शुद्ध स्फटिक ही है, उसी तरह यह आत्मा क्रम से अशुभ, शुभ, शुद्ध परिणामों से परिणत होता है। उनमें से मिथ्यात्व और विषय कषायादि...** देखो! अशुभ यहाँ लिया। **मिथ्यात्व और विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से तो पाप को ही बाँधता है,...** समझ में आया? समकिती को अशुभ आवे, थोड़ा पाप बँधे, परन्तु उसमें आयुष्य नहीं बँधता। और इस मिथ्यादृष्टि को तो अशुभ उपयोग में आयुष्य बँधता है। आहाहा! नरक और निगोद। देखो!

विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से तो पाप को ही बाँधता

है,... आहा! **उसके फल से नरक निगोदादिक दुःखों को भोगता है...** आहाहा! उसमें एक शरीर की व्याख्या की है। १४७ गाथा में। मनुष्यदेह कैसा है? कि मनुष्यदेह जीवित हड्डी-चमड़ी है। अभी ऐसा। गाड़े तो राख होगी। गाड़े तो सड़ जायेगा और जलाये तो भस्म होगा। ऐसा यह शरीर है। है इसमें, देखो! १४७ गाथा है। १४७, दूसरे भाग की अपने। १४७।

भेदाभेदरत्नत्रय की भावना से रहित जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है,... आहाहा! यह मनुष्यदेह है, वह तो हड्डी-चमड़ी है। परन्तु जिसे अन्दर भेदाभेदरत्नत्रय अभेद सम्यग्दर्शन-ज्ञान और रागादि भेद व्यवहार, ऐसा भेदाभेदरत्नत्रय नहीं। आहाहा! उस **जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है,... इस मनुष्य-जन्म को मस्तक के ऊपर वार डालो,...** आहाहा! बली करो, बली इसकी, कहते हैं। आहाहा! **देखने में केवल सार दिखता है,...** आहाहा! **जो इस मनुष्य-देह को भूमि में गाड़ दिया जावे, तो सड़कर दुर्गन्धरूप परिणमे,...** है? आहाहा! यह शरीर मिट्टी का। आहाहा! **केवल सार दिखता है,...** बाहर में। बाकी तो **मनुष्य-देह को भूमि में गाड़ दिया जावे, तो सड़कर दुर्गन्धरूप परिणमे, और जो जलाईये तो (भस्म जो जाए) राख हो जाता है।** राख हो जाती है। किसकी? (शरीर की)। आहाहा!

उसमें—मृतक कलेवर में मूर्च्छित अमृत भगवान। यह ९६ (गाथा) में आता है, समयसार। अमृत का सागर भगवान... आहाहा! जिसमें अमृत मधुर आनन्दरस भरा है, ऐसा जो आत्मा मृतक कलेवर में मूर्च्छित। आहाहा! उसे पाप के परिणाम होते हैं, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि ही उसमें मूर्च्छित होता है। सम्यग्दृष्टि उसमें मूर्च्छित नहीं होता। आहाहा! भले चक्रवर्ती का राज हो और चक्रवर्ती का शरीर, इन्द्र का शरीर (हो परन्तु) सम्यग्दृष्टि उसमें मूर्च्छित नहीं होता। अस्थिरता, आसक्ति है, परन्तु रुचि नहीं कि यह मेरी चीज़ है। आहाहा! ऐसी बात है। है न? उसमें दो बोल लिये। दिखाव में सार लगे, गाड़े तो सड़ जाये, जलाये तो राख हो। आहाहा! इन्होंने लिखा है। लम्बी टीका है।

यहाँ तो अशुभभाव कहना है न? अशुभभाव। किसका? कि शरीरादि मेरे हैं, उसमें मिथ्यादृष्टि अशुभभाव में मूर्च्छित हो गया। अरे! अब ऐसी बातें! है? **मिथ्यात्व**

और विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से तो पाप को ही बाँधता है,... आहाहा! सम्यग्दृष्टि नहीं। सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव आवे, पाप भी बाँधे, परन्तु यह मिथ्यात्व नहीं, इसलिए वह नरक और निगोद का आयुष्य नहीं बाँधे। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। मिथ्याभ्रान्ति है न? शरीर जड़ है, मिट्टी है, धूल है, उसमें जिसकी मूर्च्छा है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वह विषय-कषाय में अशुभ अवलम्बन से **पाप को ही बाँधता है, उसके फल से नरक निगोदादि के दुःखों को भोगता है...** आहाहा! लो! सात सौ वर्ष ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती औदारिकशरीर में, भोग में, आसक्ति में व्यतीत किया। एक श्वास में ग्यारह लाख पल्योपम के दुःख वहाँ सातवें नरक में (भोगता है)। आहाहा! एक श्वासोच्छ्वास में, जो यहाँ उसे सात सौ वर्ष तो कहीं चक्रवर्ती पद नहीं, पहले तो बालक में गया होगा, फिर यह तो इतनी उम्र सात सौ वर्ष। आहाहा! उसे बर्बाद किया, उसे एक श्वास में जो कुछ चक्रवर्ती के भोग, हों! आहाहा! छियानवें हजार तो स्त्रियाँ, एक स्त्री की हजार (देव) सेवा करे। एक स्त्रीरत्न (पटरानी)। आहाहा! भगवान आत्मा! चैतन्यरत्न को भूलकर बाह्य स्त्रीरत्न आदि में मूर्च्छित हो गया। मिथ्यात्वसहित विषयकषाय के परिणाम नरक में ले गये। सातवें नरक, हों! आहाहा! तैंतीस सागर की स्थिति। सातवें नरक। आहाहा! एक श्वास। कैसे श्वास ले मनुष्य? ग्यारह लाख आदि पल्योपम का दुःख। अधिक नहीं होगा? ककड़ी के चोर को फाँसी, ऐसा नहीं? ऐसा नहीं होगा? आहाहा!

भगवान आनन्दस्वरूप का अनादर करके परमात्मा चिदानन्दस्वरूप... आहाहा! उसका अनादर करके, असातना करके और राग में सुख माना, इस शरीर में सुख माना। आहाहा! इस एक श्वास में भोग के सुख के... है तो दुःख, उसके फलरूप से असंख्य अरब वर्ष का (दुःख भोगता है)। एक श्वास का फल असंख्य अरब वर्ष दुःख। आहाहा! क्योंकि वस्तु जो शुद्ध चैतन्यघन, उसका अनादर किया और इसमें—पाप के भव में आदर हुआ उसका। आहाहा! समझ में आया? उसमें वह मूर्च्छित हो गया। आहाहा! उसी और उसी में लीन हो गया। यह मिथ्यात्वसहित की बात है, हों! समझ में आया? आहाहा!

मिथ्यात्व और विषय कषायादि अशुभ के अवलम्बन (सहायता) से... आहाहा!

पाप को ही बाँधता है,... वह सब आर्तध्यान और रौद्रध्यान है। आहाहा! ज्ञानी को वह अशुभभाव होता है, परन्तु उसे पृथक् है और उसमें हितबुद्धि उड़ गयी है। सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! वह तो नहीं समाधान होता, इसलिए जरा राग होता है। परन्तु उसके फल में उसे नरक-निगोद नहीं होता। आहाहा! वह सम्यग्दृष्टि तो स्वर्ग में ही जानेवाला है। आहाहा! उस परिणाम से नहीं, परन्तु उसे परिणाम में शुभ आवे, तब वह स्वर्ग का आयुष्य बाँधेगा। अशुभ परिणाम में वह आयुष्य नहीं बाँधेगा। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रगट....

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा है, वस्तु है। यह चैतन्य-चमत्कार पदार्थ भगवान... आहाहा! उसकी जिसे अन्तर्मुख होकर प्रतीति हुई है, विश्वास आया है कि यह तो चैतन्य आनन्दमूर्ति वह मैं। आहाहा! उसे अशुभभाव आवे सही। परन्तु वह नरक का, निगोद का आयुष्य नहीं बाँधता, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि हो, वह नरक-निगोद का आयुष्य बाँधता है। आहाहा! **उसके फल से नरक निगोदादि के दुःखों को भोगता है...** वह अशुभ, मिथ्यात्वी का अशुभ, हों!

अब समकिती का शुभ। **अरहन्त,...** लो! इसमें अरहन्त लिया है। दूसरे में अरिहन्त आता है। '**अर्हत**' है संस्कृत। '**अर्हत**' सिद्ध। **अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों के गुणस्मरण...** पंच परमेष्ठी का गुणस्मरण। **दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से संसार की स्थिति का छेदनेवाला...** संसार की स्थिति घटा दे। ऐसा **तीर्थंकरनामकर्म उसको आदि ले...** आहाहा! देखा! उस समकिती की बात है यह। वह मिथ्यादृष्टि की थी।

मुमुक्षु : शब्द अर्हंत है या अरिहंत?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों हैं। वास्तविक अरिहन्त है। मूल में अरिहन्त शब्द है। षट्खण्डागम है न!

ऐसे पंच परमेष्ठी का गुणस्मरण कौन करे? समकिती की यह बात है। समझ में आया? आहाहा! **दान-पूजादि शुभ क्रियाओं से...** आहाहा! उसे वहाँ संसार की स्थिति घटती है। स्थिति घटती है, हों! शुभभाव है न? संसार की स्थिति—कर्म की स्थिति

घटती है। अभाव नहीं होता। स्थिति घटती है, रस घटता है। इस अपेक्षा से उसे **संसार की स्थिति का छेदनेवाला जो तीर्थंकरनामकर्म उसको आदि ले...** आहाहा! है न? तीर्थंकर नामकर्म तो समकिती ही बाँधता है। मिथ्यादृष्टि तीर्थंकरनामकर्म बाँधता ही नहीं। आहाहा! जिसमें राग की और शरीर की एकत्वबुद्धि है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को तीर्थंकरगोत्र का भाव आता ही नहीं। आहाहा! जिसे यह आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसा जो शुद्ध चैतन्यघन, निर्मल विज्ञानघन का जिसे अनुभव होकर प्रतीति हुई है... आहाहा! उस सम्यग्दृष्टि को पंच परमेष्ठी का गुणस्मरण, पूजा, दानादि का शुभभाव तीर्थंकरप्रकृति, उसे बाँधता है। है? आदि ले। आदि ले, है न? सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बाँधे। कोई आहारक शरीर आदि बाँधे। समकिती है न? आहाहा!

विशिष्ट गुणरूप पुण्यप्रकृतियों को अवांछिक वृत्ति से बाँधता है। लो! है न? **आदि ले विशिष्ट गुणरूप पुण्यप्रकृतियों को...** पुण्यप्रकृति **अवांछिक वृत्ति...** वाँछा / इच्छा नहीं पुण्य की। समकिती को पुण्य की इच्छा नहीं, परन्तु निर्बलता के कारण पुण्य आता है। पुण्य की इच्छा नहीं। इच्छा तो उसे मोक्ष की ही है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु आत्मा की प्राप्ति की ही इच्छा उसे है। समझ में आया? आहाहा! भाई गये लगते हैं? बाबूभाई दो दिन रहे। अकेले आये थे? आहाहा!

तथा केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप... अब शुद्ध की बात है। पहले अशुभ की कही, वह मिथ्यादृष्टि के परिणाम विषयकषायवाले अशुभ परिणाम उसका कहा। फिर शुभ के कहे, वे सम्यग्दृष्टि के शुभपरिणाम। आहाहा! क्योंकि मिथ्यादृष्टि को तो निश्चय से तो शुभभाव आवे, तथापि उसे अशुभ कहा है और सम्यग्दृष्टि के शुभ परिणाम वहाँ से शुभ शुरु किया है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पहली .... अशुभ उपयोग से...

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुभ की ही मुख्यता मिथ्यात्वी को है। मिथ्यात्व स्वयं अशुभ है न? इसलिए मुख्यता से उसे (कहा है)। सम्यग्दृष्टि को शुभभाव आवे सही, परन्तु उसकी मुख्यता में शुद्ध उपयोग दृष्टि में है। शुद्ध स्वभाव। वह शुभ आवे, उसमें अवांछित रीति से शुभपरिणाम आते हैं। ऐसा कहते हैं। उनकी वांछा नहीं, शुभपरिणाम की वांछा

नहीं। आहाहा! चौरासी लाख के चक्र के भँवर में पड़ा है न! कुछ भान नहीं होता उसे। आहाहा! मैं कहाँ हूँ? कौन हूँ? क्या करता हूँ? इसलिए उसे तो मिथ्यादृष्टि को तो विषय-कषाय के परिणाम के फल में नरक और निगोद कहा है। आहाहा! समझ में आया? है न अन्दर यह?

'पापं बध्नाति' यह **'पापं बध्नाति'** इतना। फिर इसका अर्थ किया है, हों! पाठ में इतना ही है। **'अवलंबनेन'** **'पापं बध्नाति'** है न? फिर अर्थकार ने नरक-निगोद का स्पष्टीकरण किया है। आहाहा! और शुद्धोपयोगी... आहाहा! दया, दान, पूजा, भक्ति, वह शुभभाव है और विषय-कषाय के परिणाम मिथ्यात्वसहित के अशुभभाव हैं। समझ में आया? जिसे आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दघन की जिसे खबर नहीं, उसकी श्रद्धा नहीं, उसका आदर नहीं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यात्व के परिणाम का आदर करके और राग का आदर करके नरक और निगोद का आयुष्य बाँधते हैं। **'पापं बध्नाति'** पाठ में है। इसका अर्थ फिर किया है। आहाहा! और जिसे आत्मा का भान है कि अरे! हम तो आत्मा, परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्य हैं। उसे जो कुछ शुभभाव आवे, उसे अशुभ की बात गिनी नहीं। मुख्यरूप से उसे पुण्य ही बँधता है। आहाहा!

अब शुद्ध। **केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप शुद्धोपयोग से...** अकेला भगवान आत्मा सच्चिदानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु आत्मा, उसके अवलम्बन से जो परिणाम हों, वे शुद्ध होते हैं। आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र के अवलम्बन से भी समकिती को शुभ होता है, शुद्ध नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह तो बात बापू! धर्म की गहन है। तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने जो केवलज्ञान में देखा... आहाहा! प्रत्यक्ष देखा उसकी यह बात है। गम्भीर-गम्भीर बात है, प्रभु! आहाहा!

समकिती चौथे गुणस्थान में युद्ध में भी हो, परन्तु वह आयुष्य बाँधेगा, तब उसे शुभभाव आयेगा, तब बाँधेगा। आहाहा! इतनी बलिहारी है। चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा का जिसे अनुभव, सम्यग्दर्शन, हों! आहाहा! वह शुद्ध चैतन्य वस्तु भगवान आत्मा का जिसे अनुभव होकर सम्यग्दर्शन, चौथा गुणस्थान (प्रगट हुआ है).... आहाहा! कहते हैं कि वह युद्ध में कदाचित् जाये, परन्तु उस समय आयुष्य नहीं बाँधेगा। वह

कर्म बाँधेगा। आहाहा! जब उसे शुभभाव आयेगा, दान, पूजा, भक्ति आदि का, उसमें वह आयुष्य बाँधेगा। इतनी तो बलिहारी सम्यग्दर्शन की है। अब वह सम्यग्दर्शन क्या, उसकी कुछ खबर नहीं मिलती। यह देव-गुरु-शास्त्र को मानते हैं, वह सम्यक्। अब व्रत करो, वह चारित्र। बिना एक के शून्य हैं सब। समझ में आया? आहाहा!

शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप... भाषा देखो! देव, गुरु और शास्त्र का अवलम्बन हो, तब तक समकिती को शुभभाव होता है। आहाहा! परन्तु वह अकेला आत्मा चैतन्यज्योति प्रभु अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप, विज्ञानघन ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका अवलम्बन लेने से शुद्ध उपयोग होता है। तब धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र का अवलम्बन ले, तब तक उसे पुण्य परिणाम है। व्यवहार धर्म है— पुण्य। परन्तु है किसे? यह समकिती की बात है। आहाहा! जिसे आत्मज्ञान है, आत्मदृष्टि हुई है। चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का अनुभव अन्तर में समकिती को चौथे गुणस्थान में आनन्द का स्वाद जिसे आया... आहाहा! उसके स्वाद के समक्ष पुण्य-पाप का स्वाद उसे फीका लगता है, दु:खरूप लगता है। आहाहा! इसलिए उसे अशुभभाव आवे तो भी आयुष्य नहीं बाँधता। आहाहा! उसे शुभभाव के समय बाँधेगा। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को तो अशुभ परिणाम की प्रधानता गिनी है। आहाहा!

पहले गुणस्थान में तो अशुभयोग गिना है। अशुभ परिणाम ही गिने हैं। गोम्मटसार। चौथे गुणस्थान से शुभ लिया है। आहाहा! और यह तो शुद्ध इस चौथे गुणस्थान से सम्यग्दर्शन हुआ, गृहस्थाश्रम में भले हो, तो (भी) चौथे गुणस्थान में उसे स्वसंवेदन ज्ञान शुरु होता है। समझ में आया? स्वसंवेदनज्ञान। वह स्व अर्थात् स्वयं अपने को प्रत्यक्ष ज्ञान से वेदे, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान समकिती को चौथे गुणस्थान में होता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात जगत को कठिन पड़े। बाहर में मान बैठे हो न! आहाहा!

शुद्धात्मा को **केवल शुद्धात्मा के...** ऐसा लिया है न? अकेला प्रभु शुद्धात्मा। आत्मा शुद्ध ही है। पर्याय में अशुद्धता है, वह तो परसम्बन्धी के लक्ष्यवाली है। वस्तु है, वह तो शुद्ध आत्मा ही है परमात्मा। प्रत्येक आत्मा। आहाहा! ऐसा केवल। इसलिए ऐसा लिया है न? **केवल शुद्धात्मा के अवलम्बनरूप शुद्धोपयोग से उसी भव में**

केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप मोक्ष को पाता है। लो! शुद्ध उपयोग से मोक्ष पाता है। शुभ उपयोग से समकिती तीर्थंकरगोत्र आदि बाँधता है और स्वर्गादि में जाता है। आहाहा! और अशुभ उपयोगी मिथ्यादृष्टि जिसकी दृष्टि मिथ्यात्व है, पुण्य से धर्म मानता है, वह यात्रा, भक्ति, व्रत और तप के परिणाम, वे पुण्य हैं, उन्हें अज्ञानी धर्म मानता है, ऐसे मिथ्यादृष्टि को मात्र अशुभ ही परिणाम वर्तते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : हम जिसे धर्म कहते हैं, आप उसे पुण्य कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य, वह तो व्यवहारधर्म कहा। कहा न! निश्चयधर्म है उसे। व्यवहारधर्म अर्थात् धर्म नहीं, उसे धर्म कहना, वह व्यवहार। आहाहा! पुण्य है, वह तो पुण्य है। समकिती को। आहाहा! सम्यग्दृष्टि आत्मा शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन से उसे शुद्ध उपयोग होता है। वह उपयोग, वह मोक्ष का कारण है। उसे जितना देव-गुरु और शास्त्र के अवलम्बन से शुभभाव होता है, वह पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! ऐसी बात है।

अरे! जन्मा, बालक हुआ वहाँ तो खेलने में समय गया इसका। जहाँ बड़ा हुआ तो विवाह किया तो स्त्री में समय गया। आहाहा! और उसमें बाकी कुछ हो तो धन्धे में गया। आहाहा! अर र! उसके आत्मा के लिये क्या? यह समय नहीं बिताया इसने। वृद्धावस्था हो, फिर हो गया। हाय.. हाय... मुख में से लार गिरे, बैठ सके नहीं। 'बालपन खेल में खोया, जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धपन देख के रोया।' सेठ! ऐसा हम सुनते थे वहाँ। पालेज में मुसलमान के घर बहुत न! पहले तो दुकान में पाटिया था सामने इसलिए खाट नहीं रहती थी। वे बाहर सोते हों बाहर। मुसलमान फकीर जल्दी सवेरे निकले। ऐसा बोलते वे वहाँ। 'बालपन खेल में खोया...' बालकपने १५-२० वर्ष की उम्र में खेल-क्रीड़ा की पाप की। आहाहा! 'जवानी स्त्री में मोह्या...' जहाँ जवान शरीर हुआ। स्त्री अर्थात्... आहाहा! मानो कृतकृत्य हो गया और अपने कमाया। ऐई! रमेशचन्दजी! 'वृद्धपन देखकर रोया।' धूल है यह तो। कहा न यह? पहले कहा न १४७। मनुष्यपना शरीर दिखता है साररूप से उसे गाड़ो तो सड़-सड़कर गन्ध हो।

जमीन में इस शरीर को गाड़ो तो सड़कर गन्ध मारे। जलाओ तो राख हो। आहाहा! यह तो जड़-मिट्टी-धूल है। यह कहाँ आत्मा है? और यह कहाँ आत्मा की चीज़ है? आहाहा!

मुमुक्षु : इस शरीर को धर्म का....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो शरीराद्यं खलु धम्मो। यह तो निमित्त से कथन है। वह कर्ता नहीं होता। निमित्त का अर्थ वह धर्म का कर्ता नहीं। निमित्त है परन्तु निमित्त कर्ता नहीं। वह साधन कर्ता नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन अर्थात् निमित्त है, ऐसा।

मुमुक्षु : शरीर माध्यम....

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न। कहा न यह। यह तो कहा न। यह बात कहीं न अभी! बात हो गयी। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में है। आहाहा! यहाँ तो राग व्यवहार साधन, वह धर्म का नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, तप, वह भी राग है, वह भी धर्म का साधन नहीं। वह तो विकार है। आहाहा! अरे! जगत को कहाँ जाना?

मुमुक्षु : मुनि को आहारदान देने का....

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती हो, उसे पुण्य बँधे। आहारदान दे। समकिती हो तो। और वह आहारदान लेनेवाला समकिती हो, साधु समकिती आत्मज्ञानी हो तो उसे दे तो शुभभाव हो। धर्म नहीं।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है। ... श्रावक ने मुनि को मोक्ष में....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दिया। यह निमित्त से कथन है। उसमें है न क्या कहलाता है? पद्मनन्दि पंचविंशति में यह है। वह तो निमित्त का कथन है। कौन दे और कौन ले? उसका भाव था उतना शुभ है, बस। जड़ को आहार दे और ले, वह क्रिया आत्मा की है? आत्मा कर सकता है? आहाहा! वह परमाणु मिट्टी है। उसे देना और लेना, वह आत्मा पर की क्रिया कर सकता है? आहाहा!

मुमुक्षु : भाव कर सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव करे शुभ। बस, इतनी बात है। आहाहा!

श्वेताम्बर में तो यह आता है। मिथ्यादृष्टि हो वह देनेवाला। उसे तो कहाँ, वह तो नया बनाया है न कल्पित। और फिर साधु हो उसे आहार-पानी दे तो संसार परित करे, ऐसा पाठ है। एकदम खोटी कल्पना। समझ में आया? ऐई! सुजानमलजी! कहाँ तुमने सब सुना है या नहीं यह? विपाकसूत्र है श्वेताम्बर में। उसमें दस बड़े मिथ्यादृष्टि गृहस्थ हैं। साधु को आहार-पानी दे और संसार परित करता है। घटाता है। झूठी बात है। तीर्थंकर जैसा मुनि हो, उन्हें भी आहार दे, पानी दे तो शुभभाव होता है। संसार नहीं घटता। समकिती को पुण्य हो तो संसार की स्थिति घटे। स्थिति। आया न यह? परन्तु वह समकिती को। आहाहा! जिसे पुण्य की इच्छा नहीं, जिसे पुण्य होने पर भी उसकी वांछा नहीं और भगवान आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी जिसे दृष्टि हुई है, उस समकिती को तीर्थंकर प्रकृति में संसार की स्थिति घटती है। स्थिति घटती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यहाँ तो आता है, यह बात है। परन्तु कोई तीर्थंकर को दे, दूसरे साधु को दे तो मिथ्यादृष्टि हो। तीर्थंकर को दे वे तो ऐसे समकिती लगते हैं, यह सब। श्रेयांसकुमार और नहीं? ऋषभदेव भगवान को आहार दिया। राजकुमार राजा श्रेयांसकुमार महाराज थे। राजकुमार एकावतारी, चरमशरीरी। ... उन्हें स्वप्न आया। कल्पवृक्ष सूखता है। पूछा निमित्तज्ञानी से कि यह क्या है भाई यह? राजकुमार। कोई मुनिमहाराज आपके घर पधारेंगे, ऐसा लगता है। यह स्वप्न आया लगता है। उसमें भगवान आते हैं। ऐसे देखकर... आहार देने की विधि उसे आती नहीं। राजकुमार है। ऐसे नजर करते-करते जातिस्मरण हो जाता है। पूर्व भव का ज्ञान हो जाता है। उसमें वह आहार देता है। आहाहा! शुभभाव है। परन्तु समकिती है न! आहाहा! आत्मज्ञान है, इसलिए शुभभाव का अवांछित रीति से बन्धन होता है। भाई! सूक्ष्म बातें, बापू! यह वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! लोग इसे कुछ का कुछ मानकर बैठे हैं। आहाहा!

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग, शुद्ध आत्मा का अवलम्बन ले तो वीतरागता

होती है, ऐसा कहते हैं। वीतराग का अवलम्बन ले तो भी वीतरागता नहीं होगी। ऐसी बात है। इसकी कहाँ खबर है। किसका अवलम्बन ले? यह अन्ध दौड़ से ऐसी की ऐसी जिन्दगी मजदूरी में जाती है। आहाहा! यहाँ तो परमात्मा ऐसा कहते हैं कि जो शुद्ध परिणाम हों वीतरागी, किसे? जिसे आत्मा अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु है, उसका अवलम्बन ले, उसे शुद्ध परिणाम हों, उसे धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया? है?

केवल शुद्धात्मा... अकेला भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु निर्मलानन्द विज्ञानघन। आहाहा! इसने सुना भी न हो, कभी विचार भी न किया हो और धर्म हो जाये। धूल में भी धर्म नहीं कहीं। आहाहा! समझ में आया? **केवल शुद्धात्मा...** अकेला। पर्याय भी नहीं। भगवान नहीं, तीर्थंकर सर्वज्ञ भी अवलम्बन में नहीं। क्योंकि उनका अवलम्बन लेने से शुभपरिणाम पुण्य होता है, धर्म नहीं। तथा पर्याय का अवलम्बन नहीं। आहाहा! राग का नहीं। निमित्त का नहीं। आहाहा! शुद्धात्मा ध्रुव विज्ञानघन जो आत्मा, निर्मल विज्ञानघन आत्मा का अवलम्बन लेने से उसे शुद्ध परिणाम होते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! आहाहा! यह स्पष्टीकरण बहुत अच्छा किया है।

चैतन्य यह आत्मा... यह देह, यह तो मिट्टी, हड्डियाँ हैं, जड़ है, यह तो धूल पुद्गल है। अन्दर हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग के भाव हो, वह पाप है। दया, दान, भक्ति, व्रत, यात्रा के भाव हों, वे शुभ पुण्य हैं, परन्तु वह आस्रव है। आहाहा! दोनों परिणामरहित अन्दर शुद्ध आत्मा चिदानन्द प्रभु है, ऐसा कहते हैं। यहाँ भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की शैली है यह। है योगीन्द्रदेव दिगम्बर मुनि १३०० वर्ष पहले योगीन्द्रमुनि दिगम्बर (हुए)। वे ऐसा कहते हैं **केवल शुद्धात्मा...** आहाहा! अकेला शुद्ध परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा है यह। इसका अवलम्बन ले तो शुद्ध परिणाम हों। तब इसे धर्म परिणाम हों। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बातें अब।

केवल... अकेला शुद्धात्मा। आहाहा! भगवान अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है। आहाहा! अभी उसकी खबर कहाँ है इसे। आहाहा! जैसे हिरण की नाभि में कस्तूरी, उसी प्रकार भगवान के अन्दर में अतीन्द्रिय आनन्द की कस्तूरी भरी है। आहाहा! वह अतीन्द्रिय आनन्द ऐसा शुद्धात्मा, उसका अवलम्बन लेकर। है? आहाहा! **शुद्धात्मा**

के अवलम्बनरूप शुद्धोपयोग से... उसे शुद्ध उपयोग होता है। वह शुद्ध उपयोग, वह संवर और निर्जरा। शुद्ध उपयोग, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन अभेदरत्नत्रय। निश्चयमोक्षमार्ग। आहाहा! शुद्ध चैतन्य। समझ में आया?

केवल शुद्धात्मा... आहाहा! विज्ञानघन आत्मा। निर्मल विज्ञानघन आत्मा का अवलम्बन लेने से शुद्ध परिणाम से मुक्ति होती है। शुद्ध उपयोग हो। बाकी भगवान तीर्थंकर और तीर्थंकर की मूर्ति का अवलम्बन लेने से शुभभाव—पुण्य होता है; धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **शुद्धोपयोग से उसी भव में...** आहाहा! किसी को। **केवलज्ञानादि अनन्तगुणरूप मोक्ष को पाता है।** केवलज्ञानादि अनन्त गुण की पर्यायरूपी मोक्ष को पाता है। आहाहा! इस शुद्धोपयोग से मुक्ति होती है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से मुक्ति नहीं होती, पुण्यबंधन होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : हिन्दी में....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनो, सुनो। ... कलकल किया ही करे नया। यहाँ सुनना हो, वह सुनेंगे।

इन तीन प्रकार के उपयोगों में से... तीन प्रकार के उपयोग। एक शुभ, एक अशुभ, एक शुद्ध। अशुभ—हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग-वासना, कमाना, यह सब पापभाव है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, यह सब पुण्यभाव हैं। दोनों धर्म नहीं। समझ में आया? है? **तीन प्रकार के उपयोगों में से...** तीन प्रकार के उपयोग हुए न? शुभ, अशुभ, शुद्ध। **सर्वथा उपादेय तो शुद्धोपयोग ही है,...** आहाहा! उपयोग में। वीतरागी परिणाम आत्मा के अवलम्बन से हों, वे वीतरागी परिणाम ही आदरणीय है। **अन्य नहीं हैं।** शुभ और अशुभपरिणाम आदरणीय नहीं, निश्चय से। निश्चय से आदरणीय नहीं। आहाहा! भगवान की भक्ति, पूजा, दान, दया के भाव पुण्य निश्चय से आदरणीय नहीं। व्यवहार से कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! **अन्य नहीं है। और शुभ, अशुभ इन दोनों में से अशुभ तो सब प्रकार से निषिद्ध है,...** अशुभ परिणाम तो निषेध्य ही है। हिंसा, झूठ, चोरी, काम, भोग, क्रोध, मान, माया, लोभ, आमदनी-कमाना, दुकान पर धन्धे में बराबर रहना, यह सब पापभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : वकालत तो इसमें आयी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वकालत करने का भाव पापभाव है। यह डॉक्टरी करने का भाव पैसा कमाने के लिये, पापभाव है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अशुभ तो सब प्रकार से निषिद्ध है,... नरक, निगोद के कारण हैं। मिथ्यादृष्टि की बात ली है। **किसी तरह उपादेय नहीं है-हेय है,...** आहाहा! अशुभ। अशुभभाव तो पाप है। अकेला हेय है। आहाहा! **तथा...** यह स्वयं स्पष्टीकरण किया है। '**मुख्यवृत्त्या शुद्धोपयोग**' वह उपादेय। '**मुख्यवृत्त्या**' शब्द है न, इसलिए जरा और निकाला। शुभ उपयोग समकिती को **प्रथम अवस्था में (व्यवहार तरीके) उपादेय (कहा जाता) है,...** यह उपयोग प्रथम अवस्था में उपादेय कहने में आता है, ऐसा। इसका अर्थ। व्यवहार है न यहाँ तो। निश्चय से तो पहले बात की। **परम अवस्था में उपादेय नहीं है,...** परम अवस्था में शुभ उपयोग हेय है। उपादेय नहीं, हेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : परम अवस्था सातवें गुणस्थान में।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हेय ही है, चौथे से हेय ही है। चौथे गुणस्थान समकित से पुण्य का भाव हेय है। राग है न? वह तो राग है। आहाहा!

भगवान तो वीतरागस्वरूप आत्मा है। उसके अवलम्बन से जो वीतराग परिणाम होते हैं, वह शुद्ध होते हैं, शुद्ध होते हैं। वे शुद्ध हों, वही धर्म है। आहाहा! शुभ पर के अवलम्बन से होते हैं, वह तो हेय है। पहले से हेय है। परन्तु व्यवहार आता है, इस अपेक्षा से व्यवहार से उपादेय कहा।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार साधन है न। यह भगवान का आदर करते हैं तो व्यवहार से है न? व्यवहार से आदर न हो तो भगवान की पूजा और भक्ति कुछ होता नहीं। ऐसी अपेक्षा है। ७१ हुई, लो! आहाहा!

गाथा - ७२

अत ऊर्ध्वं तस्मिन्नेव महास्थलमध्ये पञ्चदशसूत्रपर्यन्तं वीतरागस्वसंवेदन ज्ञानीमुख्यत्वेन व्याख्यानं क्रियते। तद्यथा -

१९६) **दाणिं लब्भइ भोउ पर इंदत्तणु वि तवेण।**
जम्मण-मरण-विवज्जियउ पउ लब्भइ णाणेण।।७२।।

दानेन लभ्यते भोगः परं इन्द्रत्वमपि तपसा।
जन्ममरणविवर्जितं पदं लभ्यते ज्ञानेन।।७२।।

दाणिं इत्यादि। दाणिं लब्भइ भोउ पर दानेन लभ्यते पञ्चेन्द्रियभोगः परं नियमेन। इंदत्तणु वि तवेण इन्द्रत्वमपि तपसा लभ्यते। जम्मण-मरण-विवज्जियउ जन्ममरणविवर्जितं पउ पदं स्थानं लब्भइ लभ्यते प्राप्यते। केन। णाणेण वीतरागस्वसंवेदनज्ञानेनेति। तथाहि। आहाराभय-भैषज्यशास्त्रदानेन सम्यक्त्वरहितेन भोगो लभ्यते। सम्यक्त्वसहितेन तु यद्यपि परंपरया निर्वाणं लभ्यते तथापि विविधाभ्युदयरूपः पञ्चेन्द्रियभोग एव। सम्यक्त्वसहितेन तपसा तु यद्यपि निर्वाणं लभ्यते तथापि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिविभूतिपूर्वकेणैव। वीतरागस्वसंवेदनसम्यग्ज्ञानेन सविकल्पेन यद्यपि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिविभूतिविशेषो भवति तथापि निर्विकल्पेन मोक्ष एवेति। अत्राह प्रभाकरभट्टः। हे भगवान् यदि विज्ञानमात्रेण मोक्षो भवति तर्हि सांख्यादयो वदन्ति ज्ञानमात्रादेव मोक्षः तेषां किमिति दूषणं दीयते भवद्भिरिति। भगवानाह। अत्र वीतराग-निर्विकल्पस्वसंवेदनसम्यग्ज्ञानमिति भणितं तिष्ठति तेन वीतरागविशेषणेन चारित्रं लभ्यते सम्यग्विशेषणेन सम्यक्त्वमपि लभ्यते पानकवदेकस्यापि मध्ये त्रयमस्ति। तेषां मते तु वीतरागविशेषणं नास्ति सम्यग्विशेषणं च नास्ति ज्ञानमात्रमेव। तेन दूषणं भवतीति भावार्थः।।७२।।

इस प्रकार इकतालीस दोहों के महास्थल में पाँच दोहों में शुद्धोपयोग का व्याख्यान किया। आगे पन्द्रह दोहों में वीतरागस्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं -

भोगों की हो प्राप्ति दान से तप से होता है इन्द्रत्व।
जन्म जरा अरु मृत्यु रहित पद केवलज्ञानी करते प्राप्त।।७२।।

अन्वयार्थ :- [दानेन] दान से [परं] नियम करके [भोगः] पाँच इंद्रियों के भोग

[लभ्यते] प्राप्त होते हैं, [अपि] और [तपसा] तप से [इंद्रत्वम्] इंद्र-पद मिलता है, तथा [ज्ञानेन] वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से [जन्ममरणविवर्जितं] जन्म-जरा-मरण से रहित [पदं] जो मोक्ष-पद वह [लभ्यते] मिलता है।

भावार्थ :- आहार, अभय, औषध और शास्त्र इन चार तरह के दानों को यदि सम्यक्त्व रहित करे, तो भोगभूमि के सुख पाता है, तथा सम्यक्त्व सहित दान करे, तो परम्पराय मोक्ष पाता है। यद्यपि प्रथम अवस्था में देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि की विभूति भी पाता है, तो भी निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानकर मोक्ष ही है। यहाँ प्रभाकरभट्ट ने प्रश्न किया, कि हे भगवन्, जो ज्ञानमात्र से ही मोक्ष होता है, तो सांख्यादिक भी ऐसा ही कहते हैं, कि ज्ञान से ही मोक्ष है, उनको क्यों दूषण देते हो? तब श्रीगुरु ने कहा-इस जिनशासन में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा गया है, सो वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है, और सम्यक् पद के कहने से सम्यक्त्व भी आ जाता है। जैसे एक चूर्ण में अथवा पाक में अनेक औषधियाँ आ जाती हैं, परन्तु वस्तु एक ही कहलाती है, उसी तरह वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के कहने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीनों आ जाते हैं। सांख्यादिक के मत में वीतराग विशेषण नहीं है, और सम्यक् विशेषण नहीं है, केवल ज्ञानमात्र ही कहते हैं, सो वह मिथ्याज्ञान है, इसलिये दूषण देते हैं, यह जानना।।७२।।

गाथा-७२ पर प्रवचन

इस प्रकार इकतालीस दोहों के महास्थल में पाँच दोहों में शुद्धोपयोग का व्याख्यान किया। शुद्ध उपयोग की मुख्य व्याख्या की। आहाहा! **पन्द्रह दोहों में वीतराग-स्वसंवेदनज्ञान की मुख्यता से व्याख्यान करते हैं**—लो! अब। ७२ (गाथा)।

१९६) दाणिं लब्भइ भोउ पर इंदत्तणु वि तवेण।
जम्मण-मरण-विवज्जियउ पउ लब्भइ णाणेण।।७२।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! **दान से नियम करके पाँच इन्द्रियों के भोग प्राप्त होते हैं,...** दान से पुण्यभाव और पुण्य से भोग मिलते हैं। आत्मा का धर्म नहीं मिलता। आहाहा! समझ में आया? **दान से नियम करके पाँच इन्द्रियों के भोग...** ऐसा है न? **'परं'** है न? **और तप से...** यह तपस्या, व्रत और महीने-महीने के अपवास

वह सब **तप से इन्द्र-पद मिलता है,...** पुण्य से स्वर्ग मिले, धर्म नहीं। आहाहा! दान से पुण्य होता है। पाँच इन्द्रिय के भोग मिलते हैं। तप करने से इन्द्रपद आदि मिलता है और मोक्ष कैसे मिलता है? यह कहते हैं। आहाहा! है? **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से जन्म-जरा-मरण से रहित जो मोक्ष-पद वह मिलता है।** आहाहा! वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से मुक्ति मिलती है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से तो पुण्य मिलता है। आहाहा!

मुमुक्षु : इन्द्र पद तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र पद किसे? यह तो समकिती की बात है। मिथ्यादृष्टि को इन्द्र पद कब था? जिसकी दृष्टि आत्मा के अनुभव में, 'मैं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ'—ऐसा जिसे आनन्द का वेदन हुआ है, ऐसे समकिती को शुभपरिणाम इन्द्र पद का कारण है। तपस्या इन्द्र (पद) का कारण है, ऐसा कहा। तप-तप। शुभ आचरण। मुनिपने की दीक्षा का शुभ आचरण, समकिती को वह आचरण इन्द्र पद का कारण है। और स्वसंवेदन एक वीतरागी आत्मा... आहाहा! शुद्ध चैतन्यघन जो आत्मा है, उसका स्व-अपना अपने से प्रत्यक्ष वेदन, आनन्द का, ज्ञान का वेदन, वह मुक्ति का कारण है। कौन बोलता है?

मुमुक्षु : सब इन्द्र समकिती होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्र समकिती होते हैं सब, शकेन्द्र, ईशान इन्द्र सब समकिती। यह भवनपति के इन्द्रों का कुछ बहुत निश्चित नहीं। वह तो समकिती है।

यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का भाव पुण्य है, उससे पाँच इन्द्रिय के विषय के भोग मिलते हैं। उसमें आत्मा नहीं मिलता और आत्मा का लाभ नहीं होता। और तपस्या से, तपस्या अर्थात् मुनिपना, दीक्षा, उसका आचरण, मुनिपने के पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण पाले तो इन्द्र पद मिलता है। समकिती को (मिलता है)। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी को नहीं। जो उसके पुण्य से धर्म माननेवाले साधु हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। समझ में आया? यहाँ तो समकित दृष्टि हैं, वे पुण्य को हेय मानते हैं, उन्हें अवांछित वृत्ति से इन्द्र पद की प्राप्ति होती है। आहाहा!

स्वसंवेदन से... है? **वीतराग स्वसंवेदनज्ञान से...** आहाहा! यह चौथे गुणस्थान से वीतराग स्वसंवेदनज्ञान की शुरुआत होती है। समकिती चौथा गुणस्थान। तब से उसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान की शुरुआत होती है। यह पहले आ गया है अपने। २१ पृष्ठ।

शुरुआत-शुरुआत। शुरुआत में २१ पृष्ठ है। देखो! **स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ के भी होता है।** बीच में है। कौन सी गाथा? १२वीं गाथा। दूसरे में १९ पृष्ठ होगा। १९ है। स्वसंवेदनज्ञान—अपने आत्मा के आनन्द का ज्ञान, प्रथम चौथे गुणस्थान से शुरु होता है। आहाहा! २१ पृष्ठ है। १२वीं गाथा। १२वीं गाथा है। आहाहा! नयी आवृत्ति में १९वाँ पृष्ठ है। बीच में है। **स्वसंवेदनज्ञान प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले...** वास्तव में चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान उसे होता है कि जिसे आत्मा के आनन्द का वेदन हुआ हो। स्वसंवेदनज्ञान हुआ हो, उसका नाम चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान है। अकेली यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे और वह समकित है (ऐसा माने परन्तु) वह समकित-बमकित है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ब्रह्मदेव सूरि की टीका में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो है न! वस्तुस्थिति है न। ज्ञानमय शब्द है न पाठ में? वस्तु है न चौथे से? डाला है। स्पष्टीकरण किया है। विस्तार से स्पष्टीकरण किया है। पाठ में है न? **'ज्ञानमयं' 'स्वज्ञानेन मन्यस्व ज्ञानमयं'** परिपूर्ण है। मूल श्लोक है न? मूल श्लोक। मूल श्लोक है। **'मुणि सण्णाणेँ णाणमउ जो परमप्प-सहाउ'** १२वीं गाथा है। सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में होता है, उसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान की शुरुआत होती है। सम्यग्दर्शन है न? सम्यग्दर्शन अर्थात् क्या चीज़, बापू! लोगों को खबर कहाँ है। आत्मा पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु का अन्तर में भान होकर आनन्द का वेदन आना... आहाहा! इसका नाम वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान है। शास्त्र ज्ञान हो, न हो, उसकी विशेष बात नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं। **वीतरागस्वसंवेदनज्ञान से...** आहाहा! अर्थात् कि शुद्ध उपयोग से। उसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान कहा। यहाँ तो ज्ञानप्रधान कथन है न, इसलिए कहा है। आत्मा आनन्दमूर्ति प्रभु के ज्ञान का वेदन होना अन्तर में, शुभ-अशुभभाव से रहित होकर, वह **जन्म-जरा-मरण से रहित जो मोक्ष-पद वह मिलता है।** उससे मोक्षपद मिलता है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा और मुनिपने के आचरण के तप से तो पुण्य बँधता है। धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? लो! यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल १३, शनिवार
दिनांक-०४-१२-१९७६, गाथा-७२ से ७४, प्रवचन-१५०

७२ गाथा। परमात्मप्रकाश।

भावार्थ :- अर्थ चला है। **आहारदान, अभय, औषध और शास्त्र इन चार तरह के दानों को यदि सम्यक्त्वरहित करे,...** जिसे आत्मदर्शन नहीं, आत्म स्वसंवेदनज्ञान नहीं, वह जीव आहार आदि के दानादि करे **तो भोगभूमि के सुख पाता है,...** जुगलिया के। उसे धर्म नहीं होता।

मुमुक्षु : सुख पावे और धर्म नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : भोग सुख के पावे इन्द्र, देव के, मनुष्य के, उसमें क्या है? आहाहा!

आत्मवस्तु है चिदानन्द भगवान, उसके अन्तर में प्रतीति, अनुभव प्रतीति बिना, समकित बिना... आहाहा! चार प्रकार के दान दे तो जुगलिया में जाता है। फिर चार गति में भटकता है। ऐसा है। आहाहा!

तथा सम्यक्त्वसहित दान करे,... आत्मज्ञान की दृष्टि है, उस सहित चार प्रकार के दान करे **तो परम्पराय मोक्ष पाता है।** वर्तमान में राग है, उस राग को हेय जानता है। दानादि में राग तो होता है और होता है, उसे हेय जानता है; इसलिए क्रमशः उसे छोड़कर मोक्ष जायेगा। आहाहा! और सम्यक्त्वरहित दानादि देनेवाले जुगलिया के सुख प्राप्त करते हैं, वहाँ से चार गति में भटकते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जिसे भगवान आत्मा वस्तु आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु, वह दृष्टि में और वेदन में आया नहीं। आहाहा! वह जीव चाहे जितनी दानादि क्रियायें करें, जुगलिया में जाये—भोगभूमि। भव का अभाव नहीं होता। आहाहा! लो, यहाँ तो यह कहा।

श्वेताम्बर में तो ऐसा है कि मिथ्यादृष्टि हो, परन्तु साधु को आहार दे तो संसार परित करे, घटा दे। विपाक (सूत्र) में ऐसा आता है। ऐई! झूठ बात है। यह सिद्धान्त वीतराग के शास्त्र ही नहीं। कल्पित बनाया हुआ है। आहाहा! ऐसी बातें! यहाँ तो कहते

हैं, मिथ्यादृष्टि चाहे तो साधु को आहार दे, औषध दे, शास्त्र दे, लो न! आहाहा! शास्त्र दे तो भी शुभभाव है। जुगलिया में जाये कदाचित्, मनुष्य हो। भवभ्रमण नहीं घटता। आहाहा!

सम्यक्त्वसहित दान करे, तो परम्पराय मोक्ष पाता है। क्योंकि उसका निषेध करता है। अब समकितसहित तप। है इसमें? समकितसहित तप है। **यद्यपि प्रथम अवस्था में देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि की विभूति भी पाता है,...** सम्यग्दर्शनसहित तप अर्थात् मुनिपना। समझ में आया? यहाँ तो आत्मा की प्रतीति और अनुभव की प्रधानता है। इसके बिना सब व्यर्थ है। समझ में आया? आहाहा! जिसमें भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, उसका वेदन, ज्ञान का—आनन्द का नहीं, उसे सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! वह जो कुछ तप आदि की क्रिया करे, वह चार गति में भटकता है। और समकितसहित यदि करे तो **देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि की विभूति भी पाता है,...** पहले शुभभाव है न वह?

मुमुक्षु : प्रथम अवस्था में?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रथम अर्थात् सम्यग्दर्शन में वीतरागी होने से पहले। आहाहा!

तो भी निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानकर मोक्ष ही है। देखो! उसे प्रथम तो शुभभाव होता है और स्वसंवेदनज्ञान और समकित है, वह दान करे तो इन्द्र आदि हो। पश्चात् **निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानकर मोक्ष ही है।** वह जीव समकिती जीव की बात है। समझ में आया? आहाहा! मूल तो वजन चैतन्य के अनुभव और सम्यग्दर्शन और वेदन की बात है। उस सहित है तो पहली अवस्था में अर्थात्? यह दान आदि करे, उसमें शुभभाव है। इसलिए पहली अवस्था अर्थात् स्वर्ग में जाता है, ऐसा। समकिती है, उसकी पहली अवस्था है, उसे वीतराग अवस्था हुई नहीं और शुभराग है तो पहले स्वर्ग में जाता है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : प्रथम अवस्था सम्यक्त्वसहित?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकितसहित की ही बात है यहाँ। प्रथम अवस्था में, ऐसा कहा कि उसे शुभभाव होता है न, इसलिए पहली अवस्था में स्वर्ग में जायेगा। ऐसे,

फिर मोक्ष जायेगा, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शनसहित है, आगे सम्यग्ज्ञान का वेदन लेंगे। आहाहा! ज्ञान, ज्ञानरूप से वेदन में न आवे, तब तक राग का वेदन है। वह उसे जब ज्ञान का ज्ञानरूप से वेदन आवे, तब पूर्ण वीतरागता न हुई हो, इसलिए उसे दानादि के शुभभाव होते हैं। तो शुभभाव से प्रथम अवस्था में देवेन्द्र आदि, चक्रवर्ती आदि होता है, ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : फिर मोक्ष प्राप्त करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर मोक्ष प्राप्त करे। अभी शुभभाव है, इसलिए पहले तो उसे स्वर्गादि (मिलते हैं), इन्द्र आदि होता है। आहाहा!

तो भी निर्विकल्पस्वसंवेदनज्ञानकर... वह शुभराग टालकर, फिर निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञानकर **मोक्ष ही पाता है।** लो! मोक्ष ही है। आहाहा! परमात्मप्रकाश है न? परमात्मस्वरूप शुद्ध चैतन्यघन, उसका ज्ञान होकर उसमें अनुभव होकर प्रतीति (हुई है), ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, उसे दानादि के शुभभाव हों तो पहली दशा में तो देवेन्द्र आदि होता है, पश्चात् निर्विकल्प अनुभव करके मोक्ष जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? आहाहा! और अज्ञानी जो दानादि करे तो जुगलिया में जाता है। तीन पल्योपम के इन्द्रिय के सुख भोगता है। वह है दुःख। वहाँ से चार गति में भटकता है। आहाहा! बड़ा अन्तर है। समझ में आया?

श्वेताम्बर में तो भगवान को रेवती ने आहार दिया। रोग हुआ था। भगवान को रोग हुआ था, यह भी खोटा, यह आहार लिया, वह खोटा। आहार दिया और परित संसार किया, ऐसा पाठ है भगवतीसूत्र (में)।

मुमुक्षु : सब खोटा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खोटा। मार्ग भी कठिन है, भाई! यह तो अनादि सनातन जैनदर्शन अर्थात् दिगम्बरदर्शन वह अनादि सनातन वीतराग का दर्शन है। आहाहा! उसमें यह कथन है कि समकितरहित जीव हो, वह चाहे जितने दान मुनि को दे या बाहर लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करे, वह शुभभाव से जुगलिया होता है। भोगभूमि का जीव। कुछ भव नहीं घटते। आहाहा! साधु को आहार देने से भव नहीं घटते, ऐसा

कहते हैं। मिथ्यादृष्टि है न? सम्यग्दृष्टि को भी कहीं दूसरे को आहार देने से भव नहीं घटता। उसे शुभभाव होता है। परन्तु उस शुभभाव से इन्द्र आदि होकर फिर अपना निर्विकल्पस्वरूप का पूर्णानन्द का वेदन करके मोक्ष जायेगा। आहाहा!

यहाँ प्रभाकर भट्ट ने प्रश्न किया,... शिष्य ने प्रश्न किया। **भगवन्...** हे भगवान! **जो ज्ञानमात्र से ही मोक्ष होता है, तो सांख्यादिक भी ऐसा ही कहते हैं,...** सांख्यदर्शन ऐसा ही कहते हैं कि ज्ञान से ही मोक्ष, ज्ञान से ही मोक्ष। तो तुम उसे क्यों दोष देते हो? तुम भी ज्ञान से मोक्षक हते हो, वह भी ज्ञान से मोक्ष कहते हैं। शिष्य का प्रश्न है। **उनको क्यों दूषण देते हों? तब श्रीगुरु ने कहा—इस जिनशासन में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा गया है,...** आहाहा! वीतराग शासन में वीतराग निर्विकल्प सम्यग्ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहा है। अकेला ज्ञान-ज्ञान पठन का, जानपने का, ऐसा नहीं। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन। आहाहा! रागरहित वीतरागपने स्वसंवेदन। भगवान आत्मा का स्व—अपना, सं—प्रत्यक्ष वेदन। आहाहा! उसे सम्यग्ज्ञान कहा है। समझ में आया? सांख्यमत में तो वह है नहीं। उसे तो मात्र जानपने की बातें करना और उससे मोक्ष होगा।

यहाँ तो वीतराग निर्विकल्प—राग के अवलम्बन बिना स्वसंवेदनज्ञान, अपना आत्मा का वीतरागी वेदन, उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! शास्त्र के पठन को भी सम्यग्ज्ञान नहीं कहते तो फिर... आहाहा! अकेले अज्ञानी ज्ञान की बातें करे और उससे मोक्ष होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन ऐसी बातें अब। दुनिया में सब रस, बाहर में मजा करते हों। धूल भी नहीं। दुःख के पर्वत में फँस गये हैं बेचारे। आहाहा! इस शरीर की अनुकूलता, विषय-भोग की वासना और यह साधन... आहाहा! वह तो विषय की सामग्री में राग में फँस गये हैं। आहाहा! कादव में गिर गये हैं।

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि जिसे सम्यग्दर्शन नहीं, आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं... आहाहा! आत्मा का स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान नहीं, वह जीव यदि कदाचित् दानादि क्रिया करे तो स्वर्ग में जाये। यहाँ तो मनुष्य हो, इतनी बात ली है। भोगभूमि में जुगलिया (हो)। तीन-तीन कोस का ऊँचा हाथी, तीन पल्योपम का आयुष्य। एक

पल्योपम में असंख्य अरब वर्ष (जाते हैं)। एक पल्य में असंख्य अरब वर्ष। ऐसे तीन पल्य का आयुष्य जुगलिया का। और तीन कोस के ऊँचे हाथी। वह होता है। सम्यग्दर्शन बिना दानादि क्रिया में ऐसे जुगलिया होता है। आहाहा! भोगभूमि में। और सम्यग्दर्शनसहित शुभभाव यह है, इसलिए पहले तो वह देवादि में जाता है। पश्चात् निर्विकल्प समाधि में ठेठ स्थिर होकर वीतराग केवल होता है। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

जिनशासन में वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा गया है,... मात्र ज्ञान-ज्ञान जानपना, ऐसा नहीं। वीतरागी ज्ञान। रागरहित वीतरागस्वरूप भगवान का रागरहित ज्ञान। आहाहा! क्योंकि आत्मा वीतरागी ज्ञानस्वरूप ही है। उसके आश्रय से वीतरागी ज्ञान का वेदन प्रगट हो, उसमें वीतरागता आती है। मात्र ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग अब लोगों को निश्चय... निश्चय... निश्चय (लगता है)। निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार, वह तो उपचार का कथन है। आहाहा!

सो वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है,... देखा! अन्तर स्थिरता में वीतरागचारित्र, स्वरूपाचरणचारित्र, स्वसंवेदन ज्ञान में वीतरागचारित्र अर्थात् स्वरूपाचरण चारित्र भी साथ में होता है। लो, यह और क्या? वस्तु है चिद्घन भगवान, उसके ज्ञान में स्वरूपाचरणचारित्र भी इकट्ठा है। स्वरूपाचरण, हों! राग-आचरण नहीं। आहाहा! अब ऐसी बातें।

बापू! मर गया अनन्त काल से। आहाहा! मिथ्यात्व में—भगवानस्वरूप चिदानन्द प्रभु, उससे उल्टी मान्यता, अल्पज्ञ को अपना मानना, राग को अपना मानना, ऐसी दशा में तो मर गया है अनन्त काल से। आहाहा! चौरासी के अवतार में... शास्त्र तो वहाँ तक कहते हैं कि इतनी बार द्रव्यलिंग धारण किये, जैन दिगम्बर साधु, हों! द्रव्यलिंग कि जिसके अनन्त, एक बाल लो दीक्षा लिये हुए का, ऐसे अनन्त मेरु भरें। ऐसी अनन्त बार दीक्षा ली है। आहाहा! परन्तु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान-स्वसंवेदनज्ञान नहीं। समझ में आया?

वीतरागचारित्र भी आ जाता है, और सम्यक् पद के कहने से सम्यक्त्व भी आ

जाता है। देखा! स्वसंवेदन ज्ञान में तीनों आ जाते हैं। सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरणचारित्र। आहाहा! स्वरूप जो चिदानन्द है, उसका आचरण, राग का नहीं। आहाहा! वह स्वसंवेदन ज्ञान कहने से, वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहने से **वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है, और...** सम्यक् कहा न? स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान। तो **सम्यक् पद के कहने से सम्यक्त्व भी आ जाता है।** तीनों समाहित हो गये उसमें। जैनशासन वीतराग परमेश्वर के मार्ग में वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन सम्यग्ज्ञान कहा, उसमें **वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है,...** और सम्यक् कहने से समकित भी आया। है न सम्यग्ज्ञान?

वीतराग कहने से वीतरागचारित्र भी आ जाता है, और सम्यक् पद के कहने से सम्यक्त्व भी आ जाता है। आहाहा! ऐसा रूखा मार्ग है। रूखा मार्ग रूखा लगे। वीतरागमार्ग है न! आहाहा! शुभराग का रस है, वह राग का रस दुःखरस है और वीतराग का रस है, वह आनन्दरस है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि जैनशासन में तो सांख्यमत आदि... .... **जैसे एक चूर्ण में अथवा पाक...** होता है न पाक? **अनेक औषधियाँ आ जाती हैं, परन्तु वस्तु एक ही कहलाती है,...** वस्तु एक ही कहने में आती है। औषधि अनेक प्रकार से है। **उसी तरह वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान के कहने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ये तीनों आ जाते हैं,...** कहो, समझ में आया? आहाहा! जैनशासन में तीनों आ जाते हैं। अकेला ज्ञान नहीं। वीतरागस्वरूप आचरण भी साथ में है और सम्यग्दर्शन के साथ है, वीतराग सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र **ये तीनों आ जाते हैं,...** तीनों आ जाते हैं। आहाहा! **सांख्यादिक के मत में वीतराग विशेषण नहीं है,...** है न? **और सम्यक् विशेषण नहीं है...** दोनों विशेषण नहीं हैं। **केवल ज्ञानमात्र ही कहते हैं,...** है? ... ऐसे ज्ञाता चैतन्यबिम्ब की बात है।

गाथा - ७३

अथ तमेवार्थं विपक्षदूषणद्वारेण दृढयति -

१९७) देउ णिरंजणु इउँ भणइ णाणिं मुक्खु ण भंति।
णाण-विहीणा जीवडा चिरु संसारु भमंति।।७३।।

देवः निरञ्जन एवं भणति ज्ञानेन मोक्षो न भ्रान्तिः।
ज्ञानविहीना जीवाः चिरं संसारं भ्रमन्ति।।७३।।

देउ इत्यादि देउ देवः किंविशिष्टः। णिरंजणुं निरञ्जनः अनन्तज्ञानादिगुणसहितोऽष्टादश-दोषरहितश्च इउं भणइ एवं भणति। एवं किम्। णाणिं मुक्खु वीतरागनिर्विकल्पस्वसंवेदनरूपेण सम्यग्ज्ञानेन मोक्षो भवति। ण भंति न भ्रांतिः संदेहो नास्ति। णाण-विहीणा जीवडा पूर्वोक्तस्व-संवेदनज्ञानेन विहीना जीवा चिरु संसारु भमंति चिरं बहुतरं कालं संसारं परिभ्रमन्ति इति। अत्र वीतरागस्वसंवेदनज्ञानमध्ये यद्यपि सम्यक्त्वादित्रयमस्ति तथापि सम्यग्ज्ञानस्यैव मुख्यता। विवक्षितो मुख्य इति वचनादिति भावार्थः।।७३।।

आगे इसी अर्थ को, विपक्षी को दूषण देकर दृढ़ करते हैं -

मुक्ति ज्ञान से ही होती है यह निर्भान्त कहें जिनदेव।
ज्ञान विहीन जीव संसृति में दीर्घकाल तक भ्रमण करें।।७३।।

अन्वयार्थ :- [निरंजनः] अनन्त ज्ञानादि गुण सहित, और अठारह दोष रहित, जो [देवः] सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं, वे [एवं] ऐसा [भणति] कहते हैं, कि [ज्ञानेन] वीतरागनिर्विकल्प स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान से ही [मोक्षः] मोक्ष है, [न भ्रांतिः] इसमें संदेह नहीं है। और [ज्ञानविहीनाः] स्वसंवेदनज्ञानकर रहित जो [जीवाः] जीव हैं, वे [चिरं] बहुत काल तक [संसारं] संसार में [भ्रमंति] भटकते हैं।

भावार्थ :- यहाँ वीतरागस्वसंवेदनज्ञान में यद्यपि सम्यक्त्वादि तीनों हैं, तो भी मुख्यता सम्यग्ज्ञान की ही है। क्योंकि श्रीजिनवचन में ऐसा कथन किया जावे, वह मुख्य होता है, अन्य गौण होता है, ऐसा जानना।।७३।।

गाथा-७३ पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को, विपक्षी को दूषण देकर दृढ़ करते हैं—आहाहा!

१९७) देउ णिरंजणु इउँ भणइ णाणिं मुक्खु ण भंति।
णाण-विहीणा जीवडा चिरु संसारु भमंति।।७३।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! **अनन्त ज्ञानादि गुणसहित, और अठारह दोषरहित...** अनन्त ज्ञानादि सहित और क्षुधा, तृषा, रोग आदि रहित। देव उसे कहते हैं। अरिहन्तदेव, उन्हें क्षुधा नहीं होती, तृषा नहीं होती, रोग नहीं होते। अनन्त ज्ञानगुण होता है। आहाहा! समझ में आया? श्वेताम्बर कहते हैं न, उन्हें क्षुधा लगे तो आहार दे। आहार ले, रोग हो। आहाहा!

मुमुक्षु : असाता का उदय हो तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : असाता का उदय तो अनन्तवें भाग में, वह तो सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अर्थात्... बात। ऐसा कहना है। वेदन में आवे, ऐसी असाता उसे होती ही नहीं। जरा अन्दर में है, उसके रजकण थोड़े अनन्तवें भाग में आ जाये शरीर में। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

अनन्त ज्ञानादि गुणसहित, और अठारह दोषरहित, जो सर्वज्ञ वीतरागदेव हैं,... आहाहा! सर्वज्ञ वीतरागदेव पूर्ण ज्ञान और वीतरागता, ऐसे जो भगवान हैं, उन्हें देव कहा जाता है। **ऐसा कहते हैं कि...** सर्वज्ञ भगवान वीतरागदेव ऐसा कहते हैं **कि वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान से ही मोक्ष है,...** आहाहा! वीतराग निर्विकल्प, देखो! '**ज्ञानेन मोक्षो**' है न? तो ज्ञान की अर्थ में यह व्याख्या की। **वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनरूप सम्यग्ज्ञान से ही मोक्ष है,...** आहाहा! चिदानन्द भगवान पूर्ण स्वरूप का ज्ञान, उसकी प्रतीति और आचरण। तीन से उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा!

इसमें सन्देह नहीं है। इसमें सन्देह करना नहीं। भगवान त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ वीतरागदेव ऐसा कहते हैं कि निर्विकल्प वीतरागी सम्यग्ज्ञान से मुक्त (हुआ जाता) है।

उसमें तीनों आ जाते हैं। आहा! '**ज्ञानविहीनाः**' आहाहा! परन्तु वह सम्यग्ज्ञान वीतरागी श्रद्धा और उस सम्यग्ज्ञान से **रहित जो जीव हैं,...** आहाहा! **स्वसंवेदनज्ञानकर रहित जो...** जो ज्ञान अर्थात् जानपना और ग्यारह अंग तथा नौ पूर्व का (जानपना), वह ज्ञान नहीं। ज्ञान तो वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! रागरहित चारित्र है, पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति सम्यक् है और उसका स्वसंवेदनज्ञान है। उस ज्ञान से मोक्ष कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? इस बिना के प्राणी **बहुत काल तक संसार में भटकते हैं।** आहाहा! चौरासी (लाख योनि के) अवतार (करते हैं)।

भावार्थ :- यहाँ वीतरागस्वसंवेदनज्ञान में यद्यपि सम्यक्त्वादि तीनों हैं, तो भी मुख्यता सम्यग्ज्ञान की ही है। मुख्य से सम्यग्ज्ञान की बात (की है), परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन-चारित्र की बात आ जाती है। आहाहा! **क्योंकि श्रीजिनवचन में ऐसा कथन किया है, कि जिसका कथन किया जावे, वह मुख्य होता है,...** ऐसा। जिसका कथन उसकी मुख्यता। यहाँ ज्ञान का कथन है तो ज्ञान की मुख्यता। दर्शन-चारित्र गौणरूप से अन्दर इकट्ठा है। सम्यग्दर्शन की बात करे, तब दर्शन की मुख्यता, तथापि ज्ञान और स्थिरता इकट्ठी होती है। वीतराग चारित्र की मुख्यता से बात करे तो वीतराग (की मुख्यता), परन्तु उसमें ज्ञान और चारित्र इकट्ठा था, ऐसा। समझ में आया? ऐसी बातें। उसमें क्या करना? व्रत करना या तप करना या... ऐसा तो कुछ आया नहीं। करे तो राग हो और मरकर भोगभूमि में जाये और चार गति में भटके। आहाहा!

आत्मा का अन्तर वीतरागी ज्ञान और वीतरागी प्रतीति और वीतरागी स्वरूपाचरण। इन तीन को मुख्यरूप से सम्यग्ज्ञान में गिनकर सम्यग्ज्ञान से मोक्ष है, ऐसा कहा है। आहाहा! सम्यग्दर्शन की व्याख्या चलती हो, तब सम्यग्दर्शन से मुक्ति है, ऐसा कहे। परन्तु उस सम्यग्दर्शन में सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरणचारित्र साथ में होता ही है। आहाहा! ऐसा धर्म। यह तो कहे, नया धर्म निकाला। और ऐसा कहे। सोनगढ़ को ऐसा कहे। क्या है? यह नया है? यह पुस्तक किसकी है? यहाँ का प्रकाशित नहीं। यह तो... आहाहा!

मुमुक्षु : श्रीमद् का प्रकाशित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रीमद् ने। चाहे जिस संस्था ने प्रकाशित किया हो। वस्तु किसकी है यह? आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों की बात है। आहाहा!

श्रीजिनवचन में ऐसा कथन किया है, कि जिसका कथन किया जावे, वह मुख्य होता है,... सम्यग्दर्शन की व्याख्या हो तो उसकी मुख्यता। सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण की गौणता। सम्यग्ज्ञान की (व्याख्या) चले, तब सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की गौणता (और) सम्यग्ज्ञान की मुख्यता। स्वरूपाचरणचारित्र की व्याख्या आवे, तब चारित्र की मुख्यता। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान की गौणता परन्तु साथ में तो होते ही हैं। आहाहा! इसमें कब निवृत्त हो अब यह? जगत के पाप में से निवृत्त होता नहीं। उसमें यह समझना... ऐसी कोई मोहजाल जगत की... आहाहा! दुनिया के लिए पूरी जिन्दगी निकाले। स्त्री, पुत्र, धन्धा, परिवार के लिये। आहाहा! और मरकर जाये ढोर में जाये, पशु हो। फिर यह पिल्ला हो। देखो न यह कुत्ती है न? पिल्ला कहते हैं न? पिल्ला। चार को जन्म दिया और दो खा गयी तुरन्त। उसे भूख लगी होगी। जन्मे तो उसे अग्नि... अपने दो बच्चों को खा गयी। आहाहा!

मुमुक्षु : किसी ने हलुवा नहीं खिलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी किसे खबर हो हलुवा की? वे भीखाभाई वहाँ नहीं थे और कोई नहीं था। आहाहा! फिर उसे दिया। तेल का हलुवा बनाकर। तेल-तेल। घी का कौन देता था वहाँ? तेल का हलुवा बनाकर दिया। फिर दो बच गये। आहाहा! कहीं से माया, कपट करके आये होंगे। वह यहाँ मिला। जन्मा, वहाँ मर गया। जाये फिर अन्यत्र। आहाहा! कच्चरघाण ऐसे अवतार। उसे भूल गया। यह जरा कुछ बाहर हुआ मनुष्यपना... आहाहा! वहाँ तो हो गया। मुझे करना क्या है? और मैं कहाँ जाऊँगा? (उसका कोई विचार नहीं)। दूसरे का कुछ किया, पैसे हुए, इज्जत मिली, दो-चार हजार पैदा हों महीने में, लड़के कमाऊ, इसलिए बस अपने ठीक हुआ। लाईन पर काम चढ़ गया अपना। कान्तिभाई! तुम्हारे तो दो लड़के हैं। दो अलग काम करते होंगे न? बड़ा तो आ गया था अभी। विवाह करके। आहाहा! अरे! यह दुनिया।

यहाँ तो कहते हैं कि एक बार सुन तो सही, प्रभु! अरे! ऐसा मनुष्य का अवतार

मिला। मुश्किल-मुश्किल से निकला है निगोदादि से। आहाहा! उसमें कहते हैं कि एकबार निर्णय तो कर प्रभु! तू आत्मा वीतरागस्वरूपी है। उस वीतरागी स्वरूप का ज्ञान वीतरागी सम्यग्ज्ञान हो। आहाहा! तू सम्यग्दर्शन श्रद्धास्वरूप ही त्रिकाल है। उसकी श्रद्धा भी वीतरागी सम्यक् श्रद्धा होती है। आहाहा! वह वीतरागी स्वरूप है, चारित्रस्वरूप त्रिकाल है वह; इसलिए स्वरूपाचरण वीतराग चारित्र ही उसे होता है। आहाहा! इससे उसकी मुक्ति (होती है), जन्म-मरण का अन्त आता है। बाकी कोई क्रियाकाण्ड से भी नहीं आता तो पाप से तो कहाँ (आवे)? आहाहा!

गाथा - ७४

अथ पुनरपि तमेवार्थं दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकाभ्यां निश्चिनोति –

१९८) णाण–विहीणहँ मोक्ख–पउ जीव म कासु वि जोइ।
बहुएँ सलिल–विरोलियइँ करु चोप्पडउ ण होइ।।७४।।

ज्ञानविहीनस्य मोक्षपदं जीव मा कस्यापि अद्राक्षीः।
बहुना सलिलविलोडितेन करः चिक्कणो न भवति।।७४।।

णाण इत्यादि। णाण–विहीणहं ख्यातिपूजालाभादिदुष्टभावपरिणतचित्तं मम कोऽपि न जानातीति मत्वा वीतरागपरमानन्दैकसुखरसानुभवरूपं चित्तशुद्धिमकुर्वाणस्य बहिरङ्गबकवेषेण लोकरञ्जनं मायास्थानं तदेव शल्यं तत्प्रभृतिसमस्तविकल्पकल्लोलमालात्यागेन निजशुद्धात्म–संवित्तिनिश्चयेन संज्ञानेन सम्यग्ज्ञानेन विना मोक्ख–पउ मोक्षपदं स्वरूपं जीव हे जीव म कासु वि जोइ मा कस्याप्यद्राक्षीः। दृष्टान्तमाह। बहुएं सलिल विरोलियइं बहुनापि सलिलेन मथितेन करु करो हस्तः चोप्पडउ ण होइ चिक्कनःस्निग्धो न भवतीति। अत्र यथा बहुतरमपि सलिले मथितेऽपि हस्तः स्निग्धो न भवति, तथा वीतरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणेन ज्ञानेन विना बहुनापि तपसा मोक्षो न भवतीति तात्पर्यम्।।७४।।

आगे फिर भी इसी कथन को दृष्टांत और दार्ष्टांत से निश्चित करते हैं –

ज्ञान विहीन किसी को भी शिव पद की प्राप्ति नहीं होती।
हाथ नहीं चिकने होते हैं बहु जल से धोने पर भी।।७४।।

अन्वयार्थ :– [ज्ञानविहीनस्य] जो सम्यग्ज्ञानकर रहित मलिन चित्त है, अर्थात् अपनी बड़ाई, प्रतिष्ठा, लाभादि, दुष्ट भावों से जिसका चित्त परिणत हुआ है, और मन में ऐसा जानता है, कि हमारी दुष्टता को कोई नहीं जान सकता, ऐसा समझकर वीतराग परमानंद सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि को नहीं करता, तथा बाहर से बगुला का सा भेष मायाचाररूप लोकरंजन के लिये धारण किया है, यही सत्य है, इसी भेष से हमारा कल्याण होगा, इत्यादि अनेक विकल्पों की कल्लोलों से अपवित्र है, ऐसे [कस्यापि] किसी अज्ञानी के [मोक्षपदं] मोक्ष–पदवी [जीव] हे जीव, [मा द्राक्षीः] मत देख अर्थात् बिना सम्यग्ज्ञान के मोक्ष नहीं होता। उसका दृष्टांत कहते हैं। [बहुना] बहुत

[सलिलविलोडितेन] पानी के मथने से भी [करः] हाथ [चिक्कणो] चीकना [न भवति] नहीं होता। क्योंकि जल में चिकनापन है ही नहीं। जैसे जल में चिकनाई नहीं है, वैसे बाहिरी भेष में सम्यग्ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञान के बिना महान् तप करो, तो भी मोक्ष नहीं होता। क्योंकि सम्यग्ज्ञान का लक्षण वीतराग शुद्धात्मा की अनुभूति है, वही मोक्ष का मूल है। वह सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शनादि से भिन्न नहीं है, तीनों एक हैं।।७४।।

गाथा-७४ पर प्रवचन

आगे फिर भी इसी कथन को दृष्टान्त और दृाष्टान्त से निश्चित करते हैं—७४।

१९८) **णाण-विहीणहँ मोक्ख-पउ जीव म कासु वि जोइ।**
बहुएँ सलिल-विरोलियइँ करु चोप्पडउ ण होइ।।७४।।

अन्वयार्थ :- आहाहा! **'ज्ञानविहीनस्य' जो सम्यग्ज्ञानकर रहित मलिन चित्त है,...** आहाहा! राग से एकतावाला मलिन चित्त। आहाहा! वह सम्यग्ज्ञानरहित। आहाहा! राग की क्रिया की एकतावाला चित्त। आहाहा! वह सम्यग्ज्ञानरहित राग से रँगा हुआ चित्त मलिन है। आहाहा! जिसके ज्ञान में राग का रंग चढ़ गया है। समझ में आया? वह सम्यग्ज्ञान रहित है। आहाहा! सम्यग्ज्ञानी को राग का रंग नहीं। आहाहा! उसे ज्ञान का रंग-लीनता है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञानकर रहित मलिन चित्त है,... मलिन चित्त का यह अर्थ, हों! राग से रंगा हुआ चित्त, उसे मलिन चित्त कहते हैं। चाहे तो शुभराग दया, दान का हो परन्तु उसमें एकाग्रता, वह मलिन चित्त है। आहाहा! ऐसा वीतराग शासन। दृष्टान्त देंगे ऐसा। मलिन चित्त से **अपनी बड़ाई,...** उसमें मैं कुछ हूँ, मैं कुछ हूँ। राग में ऐसा इसे अभिमान होता है। **प्रतिष्ठा...** देखो! हम ऐसी क्रिया करते हैं राग की तो हमारी प्रतिष्ठा कितनी बाहर में! हमको कितने मानते हैं। अब उसमें धूल क्या हुई तुझे? **प्रतिष्ठा, लाभादि...** बड़े राजा नमते हैं, सेठिया नमते हैं, हजारों शिष्य होते हैं, साधु होते हैं साथ में। मिथ्यादृष्टि को हो, उसमें तुझे लाभ क्या है? कहते हैं। उस लाभ में इसे गर्व हो जाता है। देखो! हमारे ऐसे-ऐसे राजा, सेठिया, करोड़पति तो हमारे शिष्य हैं। आहाहा!

ऐसे **लाभादि, दुष्ट भावों से जिसका चित्त परिणत हुआ है,...** आहाहा! राग में जिसका ज्ञान एकाग्र हो गया है, ऐसा कहते हैं। उस लाभ और बड़ाई की प्रतिष्ठा में अभिमान में चढ़ गया है। **मन में ऐसा जानता है, कि हमारी दुष्टता को कोई नहीं जान सकता,...** आहाहा! राग की एकता की दुष्टता को कौन जाने? हमारी कोई न जाने। बाहर में ऐसी क्रिया करें तो राजा माने, सेठिया माने। करोड़ों-अरबों रुपये ऐसे बात करें तो ढ़ेर हो। परन्तु उसमें तुझे क्या आया? राग की एकता की चित्त की मलिनता, उसे दुनिया नहीं देखती; इसलिए तुझे ऐसा हो गया, हम कुछ हैं। आहाहा!

दुष्टता को कोई नहीं जान सकता, ऐसा समझकर वीतराग परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि को नहीं करता,... आहाहा! हम यह क्रियायें करते हैं न,—व्रत, तप, भक्ति और पूजा, उसमें से देखो! दुनिया कितनी मानती है हमको! आहाहा! परन्तु चित्त में राग की एकता की मलिनता को तू जानता नहीं। आहाहा! चित्त में राग की मलिनता, वही मिथ्यात्व का महापाप है। आहाहा! समझ में आया? बाहर की पुण्यप्रकृति के कारण ऐसे माननेवाले बहुत निकले। आहाहा! और हो क्रिया राग की, ... (पर की) एकाग्रता की कर्ता की सब। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनने को मिलना मुश्किल है। आहाहा!

वीतराग परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि को नहीं करता,... आहाहा! भाषा तो देखो! चित्त की मलिनता, राग की एकता, चित्त की शुद्धता, वह वीतराग परमानन्द सुखरस का अनुभव, वह चित्त की शुद्धि। आहाहा! वीतरागी आनन्द का अनुभव, वह चित्त की शुद्धि है। समझ में आया? वे कहते हैं न कि चित्त में कुछ ऐसा हो, त्याग हो, अमुक हो तो धर्म समझ सके। परन्तु यह कहते हैं कि चित्तशुद्धि तो उसे कहते हैं। समझ में आया? **वीतराग परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप...** आहाहा! उसकी चित्त की शुद्धि नहीं करते, **बाहर से बगुला का सा भेष मायाचाररूप लोकरंजन...** आहाहा! बाहर में दिखाव ऐसा करे कि लोकरंजन हो। उसमें तुझे क्या हुआ? आहाहा! हजारों-लाखों लोग माने, उसे महिमा दे। परन्तु कहते हैं कि वह **वीतराग परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि को नहीं करता,...** आहाहा! और **बाहर से बगुला का सा भेष...** बगुला-बगुला होता है न बगुला? ऐसा ध्यान करके बैठा हो। मछली

आवे तो पकड़े। बगुला कहते हैं? मछली आवे तो पकड़े। ध्यान रखे, ध्यान रखे। आहाहा! दुनिया पसन्द करे, दुनिया प्रसन्न हो, ऐसा वेश किया है इसने, कहते हैं, बगुला जैसा। आहाहा!

मायाचाररूप लोकरंजन... आहाहा! लोक प्रसन्न हो, रंजन-रंजन। आहाहा! अरे! तारणस्वामी तो ऐसा कहते हैं कि लोकरंजन करे, वह मरकर नरक और निगोद जायेगा। तारणस्वामी में आता है। अपने मोक्षपाहुड़ में आता है। लोकरंजन। दुनिया प्रसन्न हो। दस-दस हजार, बीस-बीस हजार, लाख-लाख लोग इकट्ठे हों। राग की बातें ऐसी करे। उसमें राग की एकाग्रता की चित्त की मलिनता है अन्दर। आहाहा!

मुमुक्षु : सभा में आने पर....

पूज्य गुरुदेवश्री : सभा में... उसके आत्मा को क्या लाभ? आहाहा! दुनिया में... बात सच्ची। ऐसी भाषा हो और ऐसा पुण्य का योग हो... आहाहा! परन्तु अन्दर में मायाचार है। राग की एकता टूटी नहीं। वीतरागी ज्ञान हुआ नहीं। और ऐसी क्रिया से महिमा लोकरंजन को करे। आहाहा! गजब भगवान! तेरी बात देख तो सही! समझ में आया?

बगुला का सा भेष मायाचाररूप लोकरंजन के लिये धारण किया है,... आहाहा! लोकरंजन के लिये बस बराबर। यह आहार लेना और... देखो न! अभी तो आहार लेते समय लोग बहुत इकट्ठे होते हैं। मानो क्या होगा यह मानो। साधु आहार लेने जाये वहाँ सब इकट्ठे हो देखने के लिये। एक लोंच के समय बाहर इकट्ठे हों। अब उसमें क्या है परन्तु? दिखावा... दिखावा... दिखावा... आहाहा! वह तो लोकरंजन है, कहते हैं। आहाहा! हम यहाँ आहार करें, तो दिगम्बर लोग देखने आवे वहाँ। मानो क्या होगा? परन्तु अब आहार में क्या है? वह मानो आहार की क्रिया अर्थात् मानो, ओहोहो! और ऐसा करके आकर खड़े रहें और उसका अभिग्रह धारण किया हो, तत्प्रमाण न हो तो दूसरे घर में जाये। फिर वहाँ हो तो वहाँ से ले। दो में से एक के पास से लेना पड़े न! बनाया हुआ हो वहाँ। आहाहा! अरे! भगवान! मार्ग बहुत कठिन, बापू! हों! यह व्यक्ति के लिये नहीं। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। व्यक्ति के परिणाम

की जवाबदारी तो उसकी है। आहाहा! अरे! वह भगवान है। विपरीत परिणाम से दुःखी होगा। आहाहा!

आचार्य भी दिगम्बर सन्त खुल्ली बात रखते हैं। शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! भाषा क्या की है, देखी? **वीतरागी परमानन्द सुखरस के अनुभवरूप चित्त की शुद्धि नहीं करता,...** आहाहा! शुभभाव करके चित्त की शुद्धि करता है, वह नहीं, कहते हैं। उसमें नहीं आता? चित्त की शुद्धि आती है न? शुभभाव। यहाँ तो वीतरागी ज्ञान से आत्मा की-चित्त की शुद्धि करता नहीं। आहाहा! राग से रहित दृष्टि होने पर आत्मा का वीतरागी ज्ञान का अनुभव, वह ज्ञान की शुद्धि और चित्त की शुद्धि है। आहाहा! अन्यमत में कहा जाता है, चित्तशुद्धि बिना ऐसा नहीं होता। ऐसा कहे कि दर्पण में मैल हो तो मुख नहीं दिखता। इसी प्रकार अशुभभाव हो, वहाँ तक नहीं दिखता। शुभभाव हो। परन्तु शुभभाव भी चित्त शुद्धि नहीं है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! शुभ में रँगा हुआ चित्त है, वह मलिन चित्त है। आहाहा!

यहाँ तो राग से रहित भगवान वीतरागस्वरूप ही है और वीतरागी आनन्द से भरपूर भगवान है। उसका पर्याय में वीतरागी आनन्द का अनुभव (होना), वह ज्ञान की और चित्त की शुद्धि है। आहाहा! भाई! यह तो आत्मा के लाभ की बात है न? आहाहा! नुकसान करके तो मर गया है अनन्त काल। इस शुभराग की चित्त की एकाग्रता... आहाहा! वह मलिन चित्त है, ऐसा कहते हैं। राग से रहित ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान के अनुभव से चित्त की शुद्धि जिसने की नहीं, वह बगुला जैसा वेश करके मायाचार से... आहाहा! लोग प्रसन्न हो, ऐसे वेश धारण किये हैं। ऐसे क्रिया के आचरण से लोग प्रसन्न होते हैं। आहाहा!

लोकरंजन के लिये धारण किया है,... आहाहा! और ऐसा मानते हैं (कि) **यही सत्य है, इसी भेष से हमारा कल्याण होगा,...** आहाहा! नग्नपना धारण किया, दीक्षा की वृत्तियाँ भी व्यवहार राग की मलिनतावाली। ऐसे राग की एकता की मलिनता अलग, यह राग, वह अलग। उसमें एकाकार है चित्त जिसका। आहाहा! ज्ञानी को आहार का विकल्प होता है, परन्तु उसे राग की एकताबुद्धि नहीं है। आहाहा! यहाँ तो ऐसा जहाँ

आहार किया हुआ हो उसके लिये, परन्तु ले तब किस प्रकार, ऐसे ले... ऐसे ले... ऐसे ले... वहाँ लोग... आहाहा! क्या महाराज की क्रिया! तुम तो स्थानकवासी थे। तुम्हारे कहाँ आया है? देवीलाल स्थानकवासी थे। महिला श्वेताम्बर। इनके भाई अभी स्थानकवासी हैं। जो मिला हो उसमें रहे, क्या हो? आहाहा! स्थानकवासी और श्वेताम्बर में तो शुभराग से कल्याण मनाया है तो राग से उसका चित्त मलिन है। बाह्य तप और त्याग में प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये और दुनिया... आहाहा!

जैनप्रकाश में एक बड़ा लेख आया है। एक बाई ने अठ्ठम किया होगा, अठ्ठम। बड़े गृहस्थ पैसेवाले बड़े बहुत। अठ्ठम या अठ्ठाई की होगी। इसलिए लड़के की तीन बहुएँ बहुत सम्हाले उसे। अठ्ठाई की हुई। और गृहस्थ व्यक्ति बड़ा पैसा खर्च करे। पूछने आवे सब अठ्ठाई। कौन-कौन पूछने आता है, उसका वह ध्यान रखे। पूछने नहीं आते हों उसका ध्यान रखे। कषाय का रंग इतना बाई को। उसका नाम आया है। जैनप्रकाश में आया है। फिर तीन बहुओं में से बड़ी बहु मक्खन लगावे उसे। एक बाई आयी उसकी सखी सगी। बहुत सखी खास। बहिन! यह क्या करती हो तुम? यह अकेली कषाय करती हो। यह अठ्ठाई करके यह सब देखने आवे, उसमें प्रसन्न होती है और न देखने आवे उसका तुमको द्वेष होता है कि नहीं आये सुनकर। वहाँ तो राग मात्र कषाय पोषित होती है, हों! इसलिए उसे ठीक नहीं लगा। परन्तु बड़ी बाई ने बड़ी बहू थी उसने महिमा की। अरे! माँ... माँ। अच्छा-अच्छा। परन्तु छोटी बहू थी वापस वह बाई कह गयी, तत्प्रमाण कहा उसने। वह मंछाबहिन कह गयी, वह बराबर कह गयी है। मंछाबहिन है। उसमें वह तप गयी। अठ्ठाई करके। ऐसी तपी तो क्रोध... क्रोध... क्रोध... क्रोध... क्रोध... वह लड़के की बहू इसलिए रसोई में चली गयी, अन्दर चली गयी। यह अठ्ठाई और वह क्या कहलाता है? अठ्ठाई की। आहाहा! मात्र कषाय और मिथ्यात्व का पोषण है वहाँ तो। धर्म नहीं और धर्म मानता है, अरे रे! क्या हो? जीव अपना बिगाड़ता तब किस प्रकार बिगाड़ता है, इसकी उसे खबर भी नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं... आहाहा! **हमारा कल्याण होगा,...** ऐसी क्रिया से, भले हमारे

चित्त में राग की एकता हो, परन्तु ऐसी क्रिया हमारी है न, उससे हमारा कल्याण होगा। आहाहा! **इत्यादि अनेक विकल्पों की कल्लोलों से अपवित्र है,...** है न? उसके सब विकल्प किये, इससे कल्याण होगा, इसमें से हम धीरे-धीरे (आगे) जायेंगे। आहाहा! **अनेक विकल्पों की कल्लोलों से अपवित्र है, ऐसे किसी अज्ञानी के मोक्ष-पदवी हे जीव... ऐसे किसी अज्ञानी के... 'कस्यापि'** कोई भी अज्ञानी। राग से जिसका चित्त मलिन है, राग की एकताबुद्धि है और क्रियाकाण्ड सब शुभ का बहुत है। मायाजाल है। अन्दर में माया है। खबर है कि अन्दर कुछ आनन्द है नहीं। आहाहा! सुख तो है नहीं। और इन सब क्रियाओं में मैं दुनिया में धर्म मनवाता हूँ और मुझे भी इससे कल्याण होगा, ऐसा मानते हैं। आहाहा!

अपवित्र है, ऐसे किसी अज्ञानी के मोक्ष-पदवी हे जीव! मत देख... 'मा द्राक्षीः' देख नहीं। ऐसे को मोक्ष नहीं, धर्म नहीं। आहाहा! **बिना सम्यग्ज्ञान के मोक्ष नहीं होता। 'बिना सम्यग्ज्ञान के मोक्ष...'** सम्यग्ज्ञान अर्थात् यह। राग की एकता टूटकर वीतरागी ज्ञान का होना, ऐसा जो सम्यग्ज्ञान, उस ज्ञान बिना ऐसे क्रियाकाण्ड से जो (धर्म) मानता है, उसका मोक्ष नहीं है।

उसका दृष्टान्त कहते हैं। बहुत पानी के मथने से भी हाथ चिकना नहीं होता। अपने कहते हैं न यहाँ? पानी बहुत हो और पानी बिलोवे तो हाथ चिकने होंगे? पानी में चिकनाई है? आहाहा! वह पानी बिलोने से हाथ चिकने नहीं होते। ऐसी हमारे काठियावाड़ में कहावत है यह तो। तुम्हारे हिन्दी में होगा कुछ। सर्वत्र होता है न? आहाहा! क्या कहा? **पानी के मथने से भी हाथ चिकना नहीं होता। क्योंकि जल में चिकनापन है ही नहीं।** आहाहा! इसी प्रकार शुभराग की क्रिया में एकत्वबुद्धि है, वे जीव शुभराग की क्रिया में से धर्म निकालना चाहें तो धर्म है नहीं। आहाहा! दुनिया माने, दुनिया प्रसन्न हो और जिसे ऐसी स्थिति हो, उसके पक्ष में लोग भी बहुत होते हैं। आहाहा! अपने को इनकी ओर से उपदेश मिलता है। बीस-बीस हजार लोग इकट्ठे होते हैं। पचास हजार। यहाँ जवाहरलालजी आये थे तो लाख-दो लाख इकट्ठे हुए थे भावनगर। जवाहरलालजी के समय में। जवाहरलाल नेहरु, भावनगर आये थे। एक लाख या दो लाख लोग इकट्ठे हुए थे। सुनने को लोग इकट्ठे हों। ओहोहो! परन्तु इससे क्या हुआ?

आहाहा! दुनिया प्रसन्न हो। जल में चिकनाई नहीं, उस जल का मंथन करने से हाथ चिकने नहीं होते।

जैसे जल में चिकनाई नहीं है, वैसे बाहिरी भेष में सम्यग्ज्ञान नहीं है। देखा! आहाहा! बाहर का वेश है वह। अलिंगग्रहण में तो कहा नहीं था कल रात्रि में? १७वाँ बोल। १७-१७। यति की बाह्य क्रिया का जिसमें अभाव है भगवान आत्मा में। १७वाँ बोल है। अलिंगग्रहण। यति की बाह्य क्रिया से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत की क्रिया, कहते हैं कि वह अलिंगग्रहण ऐसा जो लिंग, वह आत्मा में है ही नहीं। बीस बोल है न? १७२ गाथा (प्रवचनसार)। यह १७वाँ बोल है। आहाहा! १८वाँ (बोल) गुणविशेष को स्पर्शता नहीं। भगवान आत्मा भेद को स्पर्शता नहीं, ऐसा अलिंगग्रहण है। आहाहा! १९वाँ ऐसा है कि पर्याय को स्पर्शता नहीं, ऐसा अलिंगग्रहण है। २०वाँ ऐसा है कि द्रव्य को स्पर्शता नहीं, ऐसी उसकी शुद्ध पर्याय है। आहाहा! ऐसी बात है कहाँ? देखो न! इनके—श्वेताम्बर के ४५-३२ (आगम) वाँच-वाँचकर करोड़ श्लोक वाँचे (परन्तु) वहाँ गन्ध भी नहीं है। आहाहा!

द्रव्य, पर्याय को स्पर्शता नहीं; पर्याय, द्रव्य को स्पर्शती नहीं। वीतरागी पर्याय भी द्रव्य को स्पर्शती नहीं। गजब बात! ऐई! ऐसी बात तो वीतराग शासन में होती है, भाई! उसके स्वरूप में ही ऐसा है। उसका स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा! वीतरागी पर्याय में भी द्रव्य स्पर्शता नहीं। आहाहा! वीतरागी पर्याय भी द्रव्य को स्पर्शती नहीं। राग की तो बात ही क्या करना? आहाहा! वीतरागी पर्याय वीतरागी पर्याय में रहकर वीतरागी स्वरूप का श्रद्धा-ज्ञान करे। उसे स्पर्शती नहीं। आहाहा! देखो तो वीतरागी शासन! आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसे शब्द तो किसी दिन कान में पड़े नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कान में पड़ते नहीं। आहाहा! वस्तु है नहीं न यह। श्वेताम्बर के कितने शास्त्र, करोड़ों श्लोक देखे, करोड़ों देखे, हों! यह बात नहीं मिलती। यह एक शब्द—वीतरागी पर्याय को द्रव्य स्पर्शता नहीं और वीतरागी पर्याय, द्रव्य को स्पर्शती

नहीं। कितनी शुद्धता की स्वतन्त्रता! आहाहा! लोगों को दु:ख लगे। परन्तु दूसरा क्या हो? सत्य तो ऐसा है, बापू! आहाहा!

मुमुक्षु : दया में धर्म मानकर स्वदया को भूल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल गया। पर की दया तो राग है। आहाहा!

बाहिरी भेष में सम्यग्ज्ञान नहीं है। सम्यग्ज्ञान के बिना महान तप करो,... लो! सम्यग्ज्ञान अर्थात् कि यह शास्त्र का ज्ञान, वह नहीं। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका ज्ञान स्पर्शकर, स्पर्शकर करना, वह (सम्यग्ज्ञान है)। आहाहा! ऐसे सम्यग्ज्ञान बिना महान तप करो। **तो भी मोक्ष नहीं होता।** विशेष थोड़ा है। समय हो गया...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर शुक्ल १४, रविवार
दिनांक-०५-१२-१९७६, गाथा-७४-७५, प्रवचन-१५१

७४ गाथा। अन्तिम दो लाईनें हैं। पानी को मथने से हाथ चिकने नहीं होते, यह बात चलती है। यहाँ चाहे जो पानी हो, उसे मंथन करे तो पानी में चिकनाहट नहीं है तो चिकनाहट आवे कहाँ से? आहाहा! **जैसे जल में चिकनाई नहीं है, वैसे बाहिरी भेष में सम्यग्ज्ञान नहीं है।** आहाहा! नग्नपना या पंच महाव्रत आदि के विकल्प, वह वेश है, उसमें ज्ञान नहीं—सम्यग्ज्ञान नहीं। आहाहा! **सम्यग्ज्ञान के बिना महान तप करो,...** महीने-महीने के अपवास करे, महीने के संथारा करे। **तो भी मोक्ष नहीं होता।** आहाहा! वीतरागी अन्तर स्वसंवेदनज्ञान में साथ में सम्यग्दर्शन है। वीतरागी स्वरूप भगवान आत्मा का वीतरागी ज्ञान, उसके साथ सम्यग्दर्शन, स्वरूपाचरणचारित्र है। उस वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान बिना चाहे जितनी तपस्या करे, मुनिपना पालन करे, पंच महाव्रत (ले), वह सब व्यर्थ है। आहाहा! कहो, यहाँ तो ऐसा कहते हैं और वे ऐसा कहते हैं कि अपने पंच महाव्रत पालन करते हैं, चरणानुयोग का आचरण करते हैं, फिर निश्चय प्राप्त करेंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी .... नहीं। आहाहा!

आत्मा के वीतरागी स्वसंवेदन ज्ञान के लिये पर की कोई अपेक्षा नहीं। जिसे शास्त्रज्ञान की अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह आयेगा बाद में ७५ में। समझ में आया? आहाहा! वीतरागी अर्थात् रागरहित आत्मा की चीज़ है। ऐसा आत्मज्ञान हुआ, वह वीतरागी ज्ञान है। वीतरागी आत्मज्ञान बिना महान तप करो तो भी मोक्ष नहीं होता।

क्योंकि सम्यग्ज्ञान का लक्षण वीतरागी शुद्धात्मा की अनुभूति है,... आहाहा! सम्यग्ज्ञान का लक्षण वीतरागी शुद्धात्मा की अनुभूति है। विकल्प बिना की वीतरागी अनुभूति, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण है। कहो, समझ में आया? यह तो सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन की बात चलती हो, तब उसके बिना नहीं (ऐसा कहे), यहाँ सम्यग्ज्ञान की पर्याय के बिना नहीं, ऐसा चलता है। आहाहा! **क्योंकि सम्यग्ज्ञान का लक्षण...**

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप क्या ? शास्त्र पठन पढ़ा और यह हुआ, यह वार्ता आयी, ग्यारह अंग पढ़ा, कहना आया, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण है ? आहाहा! सम्यग्ज्ञान का लक्षण तो रागरहित वीतरागी आत्मज्ञान का नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया ? कठिन बात है, बापू! मूल मार्ग ऐसा है। चैतन्य भगवान आनन्दकन्द प्रभु है, सर्वज्ञ ने देखा है और सर्वज्ञ ने प्रगट किया है, वे परमात्मा ऐसा कहते हैं और उन परमात्मा की वाणी सन्त की वाणी है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान का लक्षण... भाषा देखो! सम्यग्ज्ञान का लक्षण क्या ? कि **वीतरागी शुद्धात्मा की अनुभूति है,...** आहाहा! देखा! चौथे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान उसे कहते हैं... आहाहा! रागरहित शुद्ध आत्मा वीतरागी स्वरूप की अनुभूति, (वह सम्यग्ज्ञान है)। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! सम्यग्ज्ञान का स्वरूप और लक्षण क्या ? सम्यग्ज्ञान कहते किसे हैं ? जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, ये तीन मोक्ष का मार्ग। अब इसमें सम्यग्ज्ञान का लक्षण क्या ? शास्त्र का जानना, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण ? बहुत पढ़ा हो, वह सम्यग्ज्ञान का लक्षण ? आहाहा! वीतराग शुद्धात्मा की अनुभूति... आहाहा! भगवान आत्मा निर्विकल्प वीतरागस्वरूप प्रभु की वीतरागी अनुभूति। पर्याय में, हों! उसे यहाँ सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वह सम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण है। समझ में आया ?

वही मोक्ष का... है न ? **मोक्ष का मूल है।** आहाहा! यहाँ तो अभी बाह्य के शास्त्र के अर्थ का ठिकाना नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम हैं, उसमें निरतिचार चाहिए, वह नहीं मिलते और सम्यग्ज्ञान तो है ही नहीं। आहाहा! और उस सम्यग्ज्ञान बिना महाव्रत, तप, और सब मोक्ष के कारण नहीं, बन्ध के कारण हैं। ऐसा स्वरूप है। **वह सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शनादि से भिन्न नहीं है,...** स्वरूप पूर्णानन्द की प्रतीति का ज्ञान और प्रतीति और स्वरूपाचरण, उससे सम्यग्ज्ञान पृथक् नहीं है। क्या कहा ? अरे! ऐसी बातें उसमें... शुद्ध सम्यग्दर्शन जो आत्मा की निर्विकल्प प्रतीति, आनन्द के वेदन के साथ (हो) और स्वरूपाचरण जो वीतरागी स्वरूप की अन्दर रमणता, वह सम्यग्ज्ञान से कोई अलग चीज़ नहीं है। सम्यग्ज्ञानी के साथ में होता है। आहाहा! कहा न ? भाई ने कहा न कि निश्चय सम्यग्दर्शन बिना कुछ भी है नहीं व्रतादि सच्चे, ऐसी बात चलती है, प्ररूपणा

चलती है। आहाहा! समझ में आया? हीराभाई आये हैं? नहीं आये, कल आये थे। कल आये थे वे। समझ में आया?

एक तो यह है कि सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं? कि रागरहित आत्मा की वीतरागी परिणति हो, उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र का अंश साथ में हो, ऐसे वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और वही मोक्ष का कारण है। बाकी बाह्य वेश, पंच महाव्रत के परिणाम, शास्त्र का ज्ञान, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गया सब। अभी कहेंगे न! अभी कहेंगे। ७५ में कहेंगे। आहाहा!

जिसमें आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान, ऐसी जिसे आनन्द की परिणतिसहित की प्रतीति में आया नहीं और जिसमें वीतरागी सम्यग्ज्ञान... आहाहा! यह तो चौथे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान को वीतरागी सम्यग्ज्ञान कहा। वे कहें, चौथे गुणस्थान में वीतरागी नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो है, वह चौथे में स्वरूपाचरण, वह सब वीतरागी है। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान-सम्यग्दर्शनादि से भिन्न नहीं है, तीनों एक हैं। वस्तु स्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और वीतराग की मूर्ति प्रभु आत्मा है। उसकी सन्मुख की प्रतीति भी वीतरागी परिणति है। उसके सन्मुख का उसका ज्ञान, वह भी वीतरागी ज्ञान है। उसके स्वरूप में रमणता, स्वरूपाचरणचारित्र, वह भी वीतरागी चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

गाथा - ७५

अथ निश्चयनयेन यन्निजात्मबोधज्ञानबाह्यं ज्ञानं तेन प्रयोजनं नास्तीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं प्रतिपादयति –

१९९) जं णिय-बोहहँ बाहिरउ णाणु वि कज्जु ण तेण।
दुक्खहँ कारणु जेण तउ जीवहँ होइ खणेण।।७५।।

यत् निजबोधाद्बाह्यं ज्ञानमपि कार्यं न तेन।
दुःखस्य कारणं येन तपः जीवस्य भवति क्षणेन।।७५।।

जं इत्यादि। जं यत् णिय-बोहहं बाहिरउ दानपूजातपश्चरणादिकं कृत्वापि दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षावासितचितेन रूपलावण्यसौभाग्यबलदेववासुदेवकामदेवेन्द्रादिपदप्राप्तिरूपभाविभोगाशकरणं यतिदानबन्धस्तदेव शल्यं तत्प्रभृतिसमस्तमनोरथविकल्पज्वालावलीरहितत्वेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मावबोधो निजबोधः तस्मान्निजबोधाद्-बाह्यम्। णाणु वि कज्जु ण तेण शास्त्रादिजनितं ज्ञानमपि यत्तेन कार्यं नास्ति। कस्मादिति चेत्। दुक्खहं कारणु दुःखस्य कारणं जेण येन कारणेन तउ वीतरागस्वसंवेदनरहितं तपः जीवहं जीवस्य होई भवति खणेण क्षणमात्रेण कालेनेति। अत्र यद्यपि शास्त्रजनितं ज्ञानं स्वशुद्धात्मपरिज्ञानरहितं तपश्चरणं च मुख्यवृत्त्या पुण्यकारणं भवति तथापि मुक्तिकारणं न भवतीत्यभिप्रायः।।७५।।

आगे निश्चयकर आत्मज्ञान से बहिर्मुख बाह्य पदार्थों का ज्ञान है, उससे प्रयोजन नहीं सधता, ऐसा अभिप्राय मन में रखकर कहते हैं –

आत्मज्ञान से रहित ज्ञान से कुछ भी कार्य सिद्धि नहिं हो।
अज्ञानी जीवों का तप भी शीघ्र दुःख का कारण हो।।७५।।

अन्वयार्थ :– [यत्] जो [निजबोधात्] आत्मज्ञान से [बाह्यं] बाहर (रहित) [ज्ञानमपि] शास्त्र वगैर का ज्ञान भी है, [तेन] उस ज्ञान से [कार्यं न] कुछ काम नहीं, [येन] क्योंकि [तपः] वीतरागस्वसंवेदनज्ञान रहित तप [क्षणेन] शीघ्र ही [जीवस्य] जीव को [दुःखस्य कारणं] दुःख का कारण [भवति] होता है।

भावार्थ :– निदानबंध आदि तीन शल्यों को आदि ले समस्त विषयाभिलाषरूप मनोरथों के विकल्पजालरूपी अग्नि की ज्वालाओं से रहित जो निज सम्यग्ज्ञान है, उससे

रहित बाह्य पदार्थों का शास्त्र द्वारा ज्ञान है, उससे कुछ काम नहीं। कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है। यहाँ शिष्य ने प्रश्न किया, कि निदानबंध रहित आत्मज्ञान तुमने बतलाया, उसमें निदानबंध किसे कहते हैं ? उसका समाधान–जो देखे, सुने और भोगे हुए इन्द्रियों के भोगों से जिसका चित्त रंग रहा है, ऐसा अज्ञानी जीव रूप–लावण्य सौभाग्य का अभिलाषी वासुदेव चक्रवर्ती–पद के भोगों की वाँछा करे; दान, पूजा, तपश्चरणादिक भोगों की अभिलाषा करे, वह निदानबंध है, सो यह बड़ी शल्य (काँटा) है। इस शल्य से रहित जो आत्मज्ञान उसके बिना शब्द–शास्त्रादि का ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। क्योंकि वीतरागस्वसंवेदनज्ञान रहित तप भी दुःख का कारण है। ज्ञान रहित तप से जो संसार की सम्पदायें मिलती हैं, वे क्षणभंगुर हैं। इसलिए यह निश्चय हुआ, कि आत्मज्ञान से रहित जो शास्त्र का ज्ञान और तपश्चरणादि हैं, उनमें मुख्यताकर पुण्य का बंध होता है। उस पुण्य के प्रभाव से जगत् की विभूति पाता है, वह क्षणभंगुर है। इसलिए अज्ञानियों का तप और श्रुत यद्यपि पुण्य का कारण है, तो भी मोक्ष का कारण नहीं है।।७५।।

गाथा–७५ पर प्रवचन

आगे निश्चयकर... अब कहते हैं, देखो! **आत्मज्ञान से बहिर्मुख...** उसमें नहीं भाई। यह तो समयसार है। परमात्मप्रकाश में है। अनन्त सिद्ध का ज्ञान और लाखों केवली विराजते हैं। महाविदेह में भगवान (विराजते हैं), परन्तु कहते हैं कि वह परद्रव्य है। परद्रव्य की ओर के ज्ञान का झुकाव दुःख है। गजब बात करते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : पंच महाव्रत....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दुःख राग है। आहाहा! ऐसी बात दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त कहीं है नहीं। आहाहा! गजब बात है। परमसत्य। परम सत्य का पुकार है। आहाहा!

१९९) **जं णिय–बोहहँ बाहिरउ णाणु वि कज्जु ण तेण।**
दुक्खहँ कारणु जेण तउ जीवहँ होइ खणेण।।७५।।

भावार्थ :– निदानबन्ध आदि तीन शल्यों को आदि... मिथ्यात्व शल्य।

मुमुक्षु : तीनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके साथ सब आ गये तीनों।

मिथ्यात्वशल्य, निदानशल्य, मायाशल्य **आदि तीन शल्यों को आदि ले समस्त विषयाभिलाषरूप मनारेथों के विकल्पजालरूपी अग्नि ज्वालाओं से रहित...** आहाहा! ऐसी जो विकल्प की जालरूपी अग्नि, उसकी ज्वाला से रहित **निज सम्यग्ज्ञान है...** आहाहा! भाषा देखो! आत्मा का ज्ञान कैसा है? आत्मज्ञान, सम्यग्दर्शनसहित का ज्ञान कैसा है? कैसा है? आहाहा! कि तीन शल्य से रहित और **विषयाभिलाषरूप मनारेथों के विकल्पजालरूपी अग्नि ज्वालाओं से रहित...** आहाहा! इच्छारूपी अग्नि की ज्वाला से रहित **निज सम्यग्ज्ञान है...** आहाहा! वह निज सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो परमार्थ तत्त्व है। आत्मज्ञान की विद्या। विद्या उसे कहते हैं कि जिससे भवमुक्त हो। आहाहा!

मुमुक्षु : सा विद्या या विमुक्तये।

पूज्य गुरुदेवश्री : विमुक्तये। कहा था। ...में। छोटे लड़के थे और ले गये ... लड़के को। देखो! कहा, यह लिखा है, 'सा विद्या या विमुक्तये।' विद्या उसे कहते हैं कि बन्धन और राग से मुक्त करे, उसे विद्या कहते हैं। आहाहा! विद्यालय में होता है न? बड़े विद्यालय में बहुत बार ले गये हो न ... सुनाने। कहा, यह है हमारे पास तो। विद्या उसे कहते हैं कि जिससे मुक्ति मिले। यह तुम्हारी शिक्षा की विद्या तो संसार में भटकने का कारण है। एम.ए. पूंछड़े और एल.एल.बी. के और वकालत के (पूंछड़े) सब भटकने के कारण हैं। वर्तमान दुःखरूप और भविष्य में दुःख का कारण। और आत्मज्ञान, वह वर्तमान सुखरूप और भविष्य में सुख और आनन्द का कारण। आहाहा! लोगों को यह ऐसा लगता है, यह निश्चय है... यह निश्चय है। परन्तु निश्चय है अर्थात् सत्य है। व्यवहार है अर्थात् दुःख है। सुन न! व्यवहार हो तो... व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है। व्यवहार से दुःख होता है।

मुमुक्षु : व्यवहार था ही कहाँ निश्चय बिना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मानता है न कि हम यह व्यवहार करते हैं। धूल भी

नहीं व्यवहार। सम्यग्दर्शन बिना का व्यवहार कैसा? उसे व्यवहाराभास है। आहाहा! सम्यग्दर्शनसहित का व्यवहार भी दु:खरूप है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! और वीतरागी अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु आत्मा, उसका ज्ञान, उस आनन्द के नाथ का ज्ञान। आहाहा! वर्तमान सुखरूप, आनन्द की दशा को प्राप्त करावे वर्तमान और भविष्य में पूर्णानन्दरूपी मोक्ष का कार्य का वह कारण है। मोक्षरूपी कार्य का वह कारण है। पंच महाव्रत और शास्त्र ज्ञान, वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा!

सम्यग्ज्ञान है, उससे रहित... आहाहा! ऐसी जो विकल्प जाल की अग्नि से रहित, वह सम्यग्ज्ञान, ऐसा। आहाहा! अब उससे दूसरा। **बाह्य पदार्थों का शास्त्र द्वारा ज्ञान है,...** आहाहा! वह विकल्पजाल की अग्नि है, कहते हैं। समझ में आया? सुजानमलजी! आहाहा! यह तो वीतरागी मार्ग का मर्म है। आहाहा! अरे! क्या हो? सब मर गये कर-करके। करोड़ोंपति, अरबोंपति मर गये बेचारे दु:ख में। परन्तु बाहर में यह पठन और बाहर के व्रत क्रियाकाण्ड में भी मर गये दु:ख में। दो ही बातें की हैं कि सम्यग्ज्ञान, वह विकल्पजाल की अग्नि से रहित है। आहाहा! राग की अग्नि से सम्यग्ज्ञान रहित है। और बाह्य पदार्थ और शास्त्र का ज्ञान **उससे कुछ काम नहीं।** उसमें कुछ मोक्ष के कारण में उसका कोई काम नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसने कहा? इनकार करते हैं न यहाँ। शास्त्र पर है। पर का ज्ञान तो राग का ज्ञान है। उसके द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता। यहाँ नहीं कहा यह? आगे पहले बात आ गयी है कि दिव्यध्वनि से भी आत्मा ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह पहली कड़ी आ गयी है। भगवान साक्षात् तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव, (जिन्हें) इच्छा बिना ॐ ध्वनि निकले। ॐ... ॐ... ऐसी आवाज 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे।' आहाहा! समझ में आया? 'रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारे।' आहाहा!

मुमुक्षु : ....भविक जीव संशय निवारे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो स्वयं निवारे, तब उसे निमित्त कहा जाये न! निमित्त कार्य कर सकता नहीं वहाँ। निमित्त उसे कहते हैं कि पर का कार्य करे नहीं और

उपस्थिति हो। उसका नाम निमित्त। जैसे कुम्हार का निमित्त, वह घड़े का कार्य करे नहीं। घड़े का कार्य तो मिट्टी करती है। आहाहा! गजब बात, बापू! कुम्हार का निमित्त है। निमित्त अर्थात् कुछ करता नहीं, उसका नाम निमित्त है।

मुमुक्षु : .... आप शास्त्रज्ञान दिशा बतावे...

पूज्य गुरुदेवश्री : बतावे तो भी वह निमित्त, वह स्वयं करे, तब उसे निमित्त कहा जाता है। वह निमित्त कार्य कराता नहीं। ऐसी बात है।

प्रवचनसार में तो ऐसा आता है कि आत्मज्ञान के लक्ष्य से शास्त्र का अभ्यास कर। ऐसा प्रवचनसार में आता है। आहाहा! परन्तु आत्मज्ञान के लक्ष्य से। आहाहा! उसका लक्ष्य रखकर शास्त्रज्ञान कर। तुझे यथार्थ ज्ञान होगा, ऐसा। बात तो ऐसी है, बापू! वहाँ तो निमित्तपना बतलाते हैं। यहाँ तो निमित्त है, उसका जो ज्ञान, वह दुःखरूप है, यह सिद्ध करते हैं। आहाहा! कठोर बुखार आया हो न तो उसे कड़वी दवा पिलाते हैं। उसे शक्कर नहीं दी जाती। आहाहा! बापू! ऐसा है। दुनिया मानो, न मानो। संख्या सत् की हो, न हो बाहर की, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **कुछ काम नहीं। कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है।** आहाहा! है? आहाहा! गजब परन्तु परमात्मप्रकाश!

मुमुक्षु : परमात्मा होने की बात है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला परमात्मा होने का कारण निज स्वरूप है। आहाहा!

कार्य तो एक निज आत्मा के जानने से है। यहाँ शिष्य को प्रश्न किया, कि निदानबन्ध रहित आत्मज्ञान तुमने बतलाया, उसमें निदानबन्ध किसे कहते हैं? उसका समाधान - जो देखे, सुने और भोगे हुए इन्द्रियों के भोगों से जिसका चित्त रंग रहा है,... आहाहा! जिसके चित्त में राग का रंग लग गया है। आहाहा! चाहे तो शुभ या अशुभराग का रंग लगा हो। आहाहा! है न? देखा हुआ, सुना हुआ और मन से भोगा हुआ, ऐसे जो भोग, उनका रंग **ऐसा अज्ञानी जीव...** आहाहा! **लावण्य सौभाग्य का अभिलाषी वासुदेव चक्रवर्ती-पद के भोगों की वांछा करे; दान, पूजा, तपश्चरणादिकर भोगों की अभिलाषा करे, वह निदानबन्ध है, सो यह बड़ी शल्य (कांटा) है।** आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण १, मंगलवार
दिनांक-०७-१२-१९७६, गाथा-७५-७६, प्रवचन-१५२

(प्रवचन में प्रारम्भ के २३ मिनिट आवाज की क्वालिटी बराबर न होने से सभा में नहीं लगाना।)

परमात्मप्रकाश, ७५ गाथा। **बड़ी शल्य (कांटा) है।** यहाँ तक आया है। **दान, पूजा, तपश्चरणादिकर भोगों की अभिलाषा करे, वह निदानबन्ध है, सो यह बड़ी शल्य (कांटा) है।** शल्य अभिलाषा सुखबुद्धि से करे, वह तो निदान है, बन्ध का कारण है। **इस शल्य से रहित जो आत्मज्ञान...** निदानशल्य से रहित, मिथ्यात्वशल्य से रहित **आत्मज्ञान उसके बिना...** ऐसा जो आत्मज्ञान, उसके बिना **शब्द-शास्त्रादि का ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है।** शब्द–शास्त्रादिक ज्ञान, शब्द का ज्ञान, शास्त्रादि का ज्ञान, वह मोक्ष का कारण नहीं।

क्योंकि वीतरागस्वसंवेदनज्ञानरहित तप भी दुःख का कारण है। ... आता है न! तुम तो व्रत, तप उड़ाते हो। छोड़नेयोग्य है। बाह्य तप, आत्मज्ञान बिना की चीज़, वह सब पुण्यबन्ध हो, परन्तु हेय है—छोड़नेयोग्य है। दृष्टि में से उसे छोड़नेयोग्य है। शास्त्रज्ञान, तप, व्रत ... दीक्षा, दिगम्बर दीक्षा, परन्तु आत्मज्ञान बिना, (वह) छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। तप अर्थात् कल्याणक कहते हैं न? दीक्षा कल्याणक को। अर्थात् ... आत्मज्ञान बिना... आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। लोगों को अभी बहुत कठिन पड़ता है।

आत्मज्ञान उसके बिना... उसमें निज आत्मा का ज्ञान नहीं। सुख का वेदन (नहीं)। आहाहा! वीतरागी ज्ञान... आत्मा वीतरागस्वरूप है, इससे उसका ज्ञान भी वीतरागी सवसंवेदनज्ञान कहलाता है। आहाहा! ऐसा जिसे स्व (आत्मा का) स्वसंवेदन वीतरागी ज्ञान से... उसे। शास्त्र आदि। अनेक प्रकार का ज्ञान, वह मोक्ष कारण नहीं। आहाहा! **आत्मज्ञान उसके बिना...** चार अंग का ज्ञान भी मोक्ष का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि प्रयोजन तो आत्मा के आनन्द को अनुभव करना, वह आत्मज्ञान का प्रयोजन है। आत्मा को सम्यक् दृष्टि द्वारा अहं करके अनुभव करना। आहाहा! वह तो आत्मा का प्रयोजन है। वह प्रयोजन जहाँ नहीं, वहाँ आगे शास्त्र ज्ञानादि, जो स्वसंवेदनज्ञान अपने वेदन के ज्ञान रहित **तप भी दुःख का कारण है।** आहाहा! अनशन, ऊनोदर,

रसपरित्याग आदि करे, मुनिपना धारण करे, दिगम्बर मुनि, वह दुःख का कारण है। आहाहा! ऐसी बात भारी कठिन। ऐसा कि यह उपवास करे, व्रत पाले, वह छोड़नेयोग्य है? ऐसा कहे। तब करना नहीं हमारे? करे। राग-द्वेष करे। ... है। मिथ्यात्वशल्य है इसलिए पुण्य, पाप का बन्धन है। आहाहा! कठिन बात है।

जिसे स्वसंवेदनज्ञान नहीं। स्व अर्थात् अपना ज्ञान और आत्मा, उसके स्व का अपने को अपना ज्ञान जिसे नहीं, वह तप भी दुःख का कारण है। तप अर्थात् मुनिपना, दीक्षा, दिगम्बर दीक्षा, पंच महाव्रत का पालन दुःख का कारण है। क्या कहा? व्यवहार सब करे, अपवास करे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान दुःख का कारण और भविष्य में भी दुःख का कारण। (समयसार) ७४ गाथा में नहीं आया? कि आस्रव वर्तमान दुःखरूप है, भविष्य में दुःख का कारण है। ७४ (गाथा)। क्योंकि उससे बन्धन होगा और उससे संयोग मिलेंगे। संयोग पर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा। आहाहा! मार्ग बहुत सूक्ष्म। लोग बेचारे उल्टे रास्ते चढ़ गये हैं। ... और मानते हैं कि वह धर्म नहीं। अरे! बापू! अशुभ से बचने के लिये ऐसे भाव होते हैं। समझ में आया? और व्यवहार से ठीक भी कहे जाते हैं। परन्तु वह वस्तु बन्ध का कारण है और आये बिना रहे नहीं और हो तो आदरणीय है, ऐसा नहीं। यह सब बड़ी गड़बड़ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। था यहाँ। ... है। ... फोटो हो वहाँ। आत्मधर्म में। वह यहाँ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें लिखा है। पाखण्डी... बेचारे उसे... अपने परिणाम की क्या जवाबदारी है, उसे खबर नहीं। ... क्या हो? प्रभु! वह कुछ ... करता नहीं। उसके प्रति द्वेष करने योग्य नहीं। ... आहाहा! उसकी श्रद्धा में जो बैठा हो, वह बात करे।

यहाँ तो महाप्रभु ऐसा कहते हैं कि आत्मज्ञान, स्व का ज्ञान, स्व का समकित—

स्व की श्रद्धा अनुभव में... आहाहा! उसके बिना की दीक्षा जो दिगम्बरी है, वह भी दुःख का कारण है, कहते हैं। तप कहा न? तप कहो, कल्याण कहो, दीक्षा कल्याणक कहो। आहाहा! यह परमात्मप्रकाश है। भगवान परमात्मस्वरूप... आहाहा!

तप भी दुःख का कारण है। ज्ञानरहित तप से जो... आत्मज्ञान बिना की दीक्षा और तपस्या... आहाहा! **संसार की सम्पदायें मिलती हैं,...** संसार की सम्पदा मिलती है। समझ में आया? **ज्ञान रहित तप से...** सम्यग्ज्ञान बिना के मुनिपने से... आहाहा! **संसार की सम्पदायें मिलती हैं,...** पुण्य संयोगीभाव है, इसलिए संयोग मिलते हैं। आहाहा! लोगों को बातें कठिन पड़ती हैं। क्या हो? **वे क्षणभंगुर हैं।** ज्ञानरहित तप, मुनिपना, दीक्षा, संसार की सम्पदा (दे), वे तो क्षणभंगुर हैं। आहाहा उसे ... भी मरकर बेचारे कहीं जायेंगे। वह तो संयोगी चीज़ है। किसी पुण्य के कारण (मिलती है)। ... में भी ऐसे सुख होते हैं कि ... करोड़ों की आमदनी हो, ऐसे हों तो भी उससे क्या? आहाहा!

यहाँ तो पवित्र प्रभु की निज सम्पदा, परमात्मस्वरूप का ज्ञान, उसके बिना की दीक्षा और तप आदि सब संसार की सम्पदा को प्राप्त करे। वह तो क्षणभंगुर है। आहाहा! यह ... देखो! चले जाये। आहाहा! मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक में जाये, देखो! कितनी उसकी शुभ की क्रिया। शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या तो छठवें देवलोक में भी होती है। तो उसके ऊपर सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह,... ग्रैवेयक में जाये उसे शुक्ललेश्या कैसी? शुक्ललेश्या, हों! आहाहा! परन्तु वह तो सम्प्रदा को दे... दुःख का कारण ... आहाहा!

इसलिए यह निश्चय हुआ कि, आत्मज्ञान से रहित... आहाहा! परन्तु वह साधन है न, ऐसा कहते हैं। पंच महाव्रत पालना, व्रत पालना, शुभभाव, वह साधन है न। तुझे खबर नहीं, बापू! वह तो ... दुःख का कारण कहा, फिर तुझे क्या है? **आत्मज्ञान से रहित जो शास्त्र का ज्ञान और तपश्चरणादि है,...** दीक्षा आदि, पंच महाव्रत परिणाम आदि सब... आहाहा! **उनमें मुख्यताकर पुण्य का बन्ध होता है।** पाठ में ऐसा है। मुख्यता से पुण्यबन्ध है। गौणरूप से ऐसे शुभभाव में... रस पड़ा हो। तीव्रता से अधिक पड़ता है। फिर ... अघाति का पुण्य का काम हो गया। समझ में आया? शुभभाव हो तो

घातिकर्म का रस भी कुछ कम पड़े। अभाव नहीं होता। न्यूनाधिक वह तो कर्म की जाति है। आहाहा! '**मुख्यवृत्त्या**' कहा है न? गौणरूप से उसे अघाति में रस कम होता है, वह कुछ वस्तु नहीं। आहाहा! और शुभभाव में कुछ उत्कृष्टरूप से हो तो अशुभकर्म की जरा निर्जरा भी हो, परन्तु वह मूल निर्जरा संवर सहित की नहीं। समझ में आया? वह विपाक निर्जरा होती है। आहाहा! '**मुख्यवृत्त्या**' कहकर यह डाला है। समझ में आया? आहाहा!

अरे रे! जिसे जन्म-मरण रहित होने की कला (आयी नहीं)। बाकी सब अनन्त बार किया। आहाहा! इसीलिए कहा न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' उससे ग्रैवेयक मिले। पुण्य की लक्ष्मी मिले बाहर की, ऐसा कहा। आत्मज्ञान नहीं अर्थात् क्षणभंगुर सम्पदा में से निकल जायेगा, वापस नरक में, पशु में जायेगा। अरे! जिसे जन्म-मरण का अन्त नहीं हो, बापू! वह क्या चीज़ है? 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण...' श्रीमद् ने कहा है न? शुभभाव को अपना मानना, लाभ मानना, वह तो क्षण-क्षण जीव का मरण है, भावमरण है। भयंकर भावमरण है, भाई! ... भगवान! तू चाहे जो कहे, चाहे जो मान, वस्तु यह है।

जिसे आत्मवस्तु दृष्टि में नहीं आयी, जिसे स्वसन्मुख का वेदन स्वसंवेदन ज्ञान नहीं हुआ, वह सब क्रियाकाण्डवाले लक्ष्मी सम्पदा क्षणभंगुर को प्राप्त करेंगे। क्षण में नाश हो जायेगा। आहाहा! ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ, छियानवें करोड़ सैनिक, छियानवें करोड़ गाँव। आहाहा! एक क्षणभंगुर। हीरा का पलंग... क्या कहते हैं तुम्हारे? पलंग। मात्र हीरे जड़े हुए। मरकर, क्षणभंगुर चीज़ (छोड़कर) सातवें नरक में पोढ़ा है। अभी सातवें नरक में है। अभी तो थोड़ा समय गया। ८५ हजार वर्ष। बाकी तो असंख्य अरब वर्ष का तो एक पल्योपम, ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का सागरोपम, ऐसे ३३ सागर हैं। आहाहा! भाई! इसने दीर्घकाल का विचार किया नहीं। अनन्त काल कहाँ बिताया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार गया है। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये हैं। नौवें

ग्रैवेयक के अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये हैं। आहाहा! सातवें नरक में यहाँ, यहाँ नौवें ग्रैवेयक में। पुण्य के कारण अनन्त पुद्गलपरावर्तन अनन्त भव किये। पाप के कारण से अनन्त पुद्गलपरावर्तन सातवें नरक के किये। ...आहाहा! ऐसा का ऐसा भूतकाल... भूतकाल... भूतकाल... भूतकाल लो तो कहीं अन्त है? आहाहा! ऐसे अनन्त काल में ऐसा बिताया। आहाहा!

देखो न! वह तो मुसलमान है। आरब। मुसलमान आरब। उसे एक घण्टे की दो करोड़ की आमदनी। अब गजब बातें! लोगों को तो ऐसा लगे कि यह... आहाहा! पूँजी दो करोड़ हो। यह तो आमदनी एक घण्टे की इतनी। वह कोई वस्तु नहीं। समझ में आया? आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार पाया है। उसे एक घण्टे के दो करोड़ क्या? एक घण्टे के अरब रुपये (मिले), ऐसा बड़ा राजा भी अनन्त बार हुआ है। आहाहा! जिसके देश में अकेले हीरे पकें, समुद्र में जिसे सच्चे मोती पकें, ऐसी पुण्यप्रकृति के फलरूप से अनन्त बार आया है। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का सागर। आहाहा! एक अकार्यकारण नाम का गुण भगवान आत्मा में है। आहाहा! उस अकार्यकारण गुण में कर्ता, कर्म, सम्प्रदान आदि का रूप अन्दर है। आहाहा! अनन्त गुण तो हैं, शक्तिरूप से, संख्यारूप से, पृथक् ऐसे अनन्तगुण हैं। परन्तु एक अकार्यकारण नाम का गुण कि जो उसकी पर्याय में... आहाहा! उस पर्याय में अकार्यकारण नाम का परिणमन, द्रव्य की दृष्टि होने पर, आत्मज्ञान होने पर... आहाहा! जिसकी पर्याय में अनन्त पर का कारण नहीं और पर का कार्य नहीं। आहाहा! पर का कर्ता नहीं और पर से अपने में कर्तापना नहीं। ऐसी अनन्त शक्ति का भण्डार... आहाहा! एक-एक गुण में अनन्तरूप। आहाहा! उसे फिर एक-एक रूप में बहुत व्याख्या की है न! समयसार नाटक ... और उसमें—अध्यात्म पंचसंग्रह में। ज्ञानदर्पण में दीपचन्दजी ने बहुत विस्तार किया है। एक ऐसा रूप और उसका ऐसा साधन और उसका यह, ऐसा करके एक पर्याय में अनन्त-अनन्त सामर्थ्य वर्णन किया है। आहाहा! ऐसा कि ज्ञान की पर्याय में अनन्त गुणों का रूप उसकी पर्याय में है। क्योंकि गुण में जब अनन्त गुण का रूप है तो पर्याय में भी अनन्त पर्याय का रूप अन्दर में है। पर की अनन्त पर्याय का रूप

इस पर्याय में है। आहाहा! विशाल ज्ञान का भण्डार, ऐसे चैतन्यस्वभाव का जिसने निजज्ञान से... आहाहा! उसकी .... आदि पुण्यबन्ध का कारण है मुख्यरूप से। गौणरूप से थोड़ा कर्म का रस कम हो कहीं, वह कोई वस्तु नहीं। वह तो अभव्य को भी मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का रस मन्द होता है। समझ में आया? अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्व का रस अभव्य को भी मन्द होता है, तब नौवें ग्रैवेयक में जाता है। आहाहा! वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा! इसलिए यहाँ '**मुख्यवृत्त्या**' शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा उपदेश। अब लोगों को हर्ष आवे, उत्साह आवे, दया करना और यह करना, बड़े गजरथ चलाना और मन्दिर बनावे बड़े। लाख-लाख लोग ऐसे साथ में रथयात्रा में (जुडे)। यह तो बाहर की चीज़ है, बापू! उसमें कदाचित् भाव हो तो शुभ हो। परन्तु आत्मज्ञान बिना का वह शुभभाव, वह क्षणिक सम्पदा को देकर नाश हो जायेगा। आहाहा! उसमें शाश्वत् चिदानन्द प्रभु, जिसकी शक्तियाँ अर्थात् गुण जिसका स्वभाव नित्य शाश्वत् है। आहाहा! ऐसे शाश्वत् पदार्थ को जिसने पकड़ा और जाना... आहाहा! उसे तो शाश्वत्रूप से रहे, ऐसी दशा प्रगट होगी। अर्थात् मोक्ष (होगा)। आहाहा! समझ में आया? शाश्वत् भगवान आत्मा अनन्त शक्ति का भण्डार, ऐसी शाश्वत् शक्ति को, सागर को पकड़ने से... आहाहा! उसका ज्ञान होने से उसके फलरूप से तो कायम शाश्वत् रहेगी मोक्ष की पर्याय, ऐसा उसका फल है। आहाहा! समझ में आया? और उसके बिना आत्मज्ञान, शाश्वत् स्वभाव के भान बिना, उसकी प्रतीति बिना, उसे स्व के ज्ञान में वेदन आये बिना... आहाहा! वह सब पुण्य की क्रियायें क्षणिक फल को देकर वापस क्षणिक दुःख में चला जायेगा। आहाहा!

उस पुण्य के प्रभाव से जगत की विभूति पाता है,... लो! यह जगत की राख— विभूति। वह विभूति निकालता है न? सांईंबाबा। वह विभूति अर्थात् राख यह बाहर की। वह निकालते हैं या नहीं? सुना नहीं सांईंबाबा? ढोंग करता है न? राख निकाले। ऐसा करके राख निकाले। पकड़ा है उसे सबने अब कि तेरा सब ढोंग है। आ जा बाहर अब तू। ऐसे रखे अन्दर राख... वह तो भाई कहते थे। के. लाल बड़ा जादूगर है न अपना? इन जगजीवनभाई का साला है। जगजीवन बावचंद कुण्डला। यहाँ लड़की है

न ? उसका मामा होता है। काका का पुत्र। ऐसा होशियार है परन्तु ऐसा होशियार। पाँच, दस-दस हजार रुपये एक रात्रि के ले। और स्वयं आवे मेरे पास। महाराज! यह हमारा धतंग है। बारह महीने में तो कितने लाख पैदा करे। बहुत लाख। आता है, यहाँ भी आया था। यहाँ हमको बताया था। हिम्मतभाई थे। परन्तु ढोंग। राजकोट आकर। पाँच-पाँच हजार एक रात्रि के। बड़ा (जादूगर)। ऐसे तो एक बार तीन घण्टे के पाँच लाख लिये थे। ऐसा कुछ बताकर। क्या कहते हैं उसे ?

मुमुक्षु : टेलीविजन।

पूज्य गुरुदेवश्री : टेलीविजन। हाँ, उसमें। पाँच लाख। वह बेचारा आकर कहे, महाराज! हमारा सब धतंग है। राजकोट थे। फिर यहाँ इन्दौर भी आये थे। जहाँ हो वहाँ आवे। गाँव में सुने कि महाराज यहाँ हैं। आया है। जादूगर करे। उसकी जादूगरी में तो सब लोग फिदा-फिदा। ऐसा होशियार है। उम्र तो कुछ ५१ या कुछ है। ५०-५१ के ऊपर। परन्तु सिर पर बाँधकर निकलता है। ऐसी चालाकी कि बड़े करोड़ोंपति-अरबोंपति एक बार... वह कहता था, उसका—रजनीश का। वह रजनीश तो जादूगरिया है। वह सांईंबाबा भी जादूगरिया है, ऐसा कहे। उसकी जादूगरी बड़ी प्रसिद्ध। बाहर की।

मुमुक्षु : रजनीश भी जादूगर था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जादूगर था। क्योंकि बड़ोदरा में वे दोनों इकट्ठे हो गये। उसमें उसने घोड़ागाड़ी भेजी। मोटर भेजी रजनीश ने। उसे (लाने के लिये)। सीखने के लिये। रजनीश। तुम्हारा रजनीश। वह तारणस्वामी... उसने मोटर भेजी। परन्तु मैं गया नहीं। उसे जादू सीखना है। और वह सांईबाबा भी जादूगर है। उसके सामने अभी बहुत... आहाहा! अरे! यह सब जगत को... करके लाखों रुपये इकट्ठे करना। मरकर कहाँ जानेवाले हैं ?

मुमुक्षु : जादूगरी तो आपके पास भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो चैतन्य की जादूगरी है। लकड़ी की बात तो हो गयी है नहीं, अभी ? लकड़ी में है। लकड़ी में कुछ नहीं, बापू! यह तो प्लास्टिक की लकड़ी है। पहले सूखड़ की लकड़ी रखते थे। अभी चन्दुभाई डॉक्टर लाये हैं। यह तो हाथ में

पसीना हो, इसलिए शास्त्र को छुआ नहीं जाये। इसके लिए (रखते हैं)। यहाँ चमत्कार दूसरा हमारे पास कुछ नहीं है। पैसा-पैसा महाराज को माने और हाथ फिरे और रुपये हो जाये मानो। यह सब गप्प है।

यहाँ तो चैतन्यचमत्कार की बात है, भाई! आहाहा! जिसका चमत्कार एक क्षण लगा जिसे... आहाहा! भव का अन्त (आ जाये)। यहाँ तो ऐसी बात है, बापू! बाकी सब थोथा है।

उस पुण्य के प्रभाव से जगत की विभूति पाता है,... वह उसको विभूति कहते हैं। राख को। विभूति है। धूल भी नहीं विभूति, सुन न! आहाहा! वैभव और विभूति तो भगवान ने उसे कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने? हमारा वैभव... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ का जो अनुभव, उसमें जो आनन्द की मोहरछाप, अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप... आहाहा! जिसके ज्ञान में आनन्द आवे, जिसकी प्रतीति में आनन्द का वेदन हो, जिसकी रमणता में आनन्द की वृद्धि हो। आहाहा! वह हमारा वैभव और हमारी सम्पदा है, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पाँचवीं गाथा में कहा न! आहाहा! हमको बहुत माने और हम बहुत जानपनेवाले और यह हमारा वैभव, यह नहीं। यह वैभव है। आहाहा! परन्तु कठिन (लगे)। अभी यह सब चलता नहीं था न, इसलिए लोगों को ऐसा लगता है कि एकान्त है... एकान्त है... ऐसा कहते हैं बेचारे। बापू! ....

मुमुक्षु : तो अनेकान्त क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त यह क्रिया करे, तप करे, व्रत करे, उससे भी प्राप्त होता है। ऐसा कहो तो अनेकान्त हो। निमित्त से भी उसे लाभ होता है। आत्मा से भी होता है और निमित्त से भी होता है, ऐसे दोनों डालो तो अनेकान्त कहलाये। भगवान की वाणी से लाभ होता है, ऐसा कहो। और तुम कहते हो, भगवान की वाणी से ज्ञान नहीं होता। दिव्यध्वनि से भी आत्मा का ज्ञान होता नहीं, परमात्मप्रकाश में ऐसा कहा है। बापू! तेरे पास कहाँ खजाना कम है कि तुझे पर के सामने देखना पड़े? आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में ऐसा लिखा है, तीर्थ की प्रवृत्ति दो नय के आधीन होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो नय के आधीन कहा न! व्यवहारनय का विषय नहीं?

विषय होता है। राग की मन्दता, भक्ति, पूजा वस्तु होती है। दो नय होते हैं। (नय) दो हैं तो नय का विषय भी दो है। परन्तु उससे दूसरे नय का विषय दूसरे नय के विषय को सहायता करे, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! इतनी बात है। व्यवहारनय का विषय तो बन्ध का कारण है। निश्चयनय का विषय तो अबन्धस्वरूप भगवान के परिणाम अबन्ध है। आहाहा! दोनों है सही। है सही। द्रव्य और पर्याय दोनों निश्चय और व्यवहार हैं। द्रव्य स्वयं निश्चय है और पर्याय स्वयं व्यवहार है। व्यवहार नहीं, ऐसा है? परन्तु पर्याय के आश्रय से लाभ होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! अरे! उसे भी बेचारे को सुख का कामी तो है न? परन्तु मार्ग में भूल पड़ती है वहाँ। कोई प्राणी बेचारा दुःख का अर्थी तो है नहीं, परन्तु दुःख के कारण क्या हैं, उसकी खबर नहीं। ... सुख। सुख सब चाहते हैं। परन्तु सुख के कारण को जानते नहीं। निच्छंति दुःखं। दुःख को चाहते नहीं परन्तु दुःख के कारण छोड़ते नहीं। आहाहा! प्रभु! प्रभु! भगवान! आहाहा!

इसलिए अज्ञानियों का तप... शुभभाववाला। आहाहा! **और श्रुत यद्यपि पुण्य का कारण है,...** यह स्पष्टीकरण किया है। **तो भी मोक्ष का कारण नहीं।** आहाहा!

गाथा - ७६

अथ येन मिथ्यात्वरागादिवृद्धिर्भवति तदात्मज्ञानं न भवतीति निरुपयति -

२००) तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ।
दिणयर-किरणहँ पुरउ जिय किं विलसइ तम-राउ।।७६।।

तत् निजज्ञानमेव भवति नापि येन प्रवर्धते रागः।
दिनकरकिरणानां पुरतः जीव किं विलसति तमोरागः।।७६।।

तं इत्यादि। तं तत् णिय-णाणु जि होइ ण वि निजज्ञानमेव न भवति वीतराग-नित्यानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वपरिज्ञानमेव न भवति। येन ज्ञानेन किं भवति। जेण पवड्ढइ येन प्रवर्धते। कोऽसौ। राउ शुद्धात्मभावनासमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दप्रतिबन्धकपञ्चेन्द्रिय-विषयाभिलाषरागः। अत्र दृष्टान्तमाह। दिणयर-किरणहं पुरउ जिय दिनकरकिरणानां पुरतो हे जीव किं विलसइ किं विलसति किं शोभते अपि तु नैव। कोऽसौ। तम-राउ तमो रागस्त-मोव्याप्तिरिति। अत्रेदं तात्पर्यम्। यस्मिन् शास्त्राभ्यासज्ञाने जातेऽप्यनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिक-सुखप्रतिपक्षभूता। आकुलत्वोत्पादका रागादयो वृद्धिं गच्छन्ति तन्निश्चयेन ज्ञानं न भवति। कस्मात्। विशिष्टमोक्षफलाभावादिति।।७६।।

आगे जिससे मिथ्यात्व रागादिक की वृद्धि हो, वह आत्मज्ञान नहीं है, ऐसा निरूपण करते हैं -

आत्मज्ञान से नहीं कभी भी रागादिक में वृद्धि हो।
क्या रवि-किरणों के सम्मुख भी अन्धकार का नाश न हो।।७६।।

अन्वयार्थ :- [जीव] हे जीव, [तत्] वह [निजज्ञानम् एव] वीतराग नित्यानंद अखंडस्वभाव परमात्मतत्त्व का परिज्ञान ही [नापि] नहीं [भवति] है, [येन] जिससे [रागः] परद्रव्य में प्रीति [प्रवर्धते] बढ़े, [दिनकरकिरणानां पुरतः] सूर्य की किरणों के आगे [तमोरागः] अन्धकार का फैलाव [किं विलसति] कैसे शोभायमान हो सकता है? नहीं हो सकता।

भावार्थ :- शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परम आनंद उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषी जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है, अज्ञान ही है। जिस जगह वीतरागभाव है, वही सम्यग्ज्ञान है। इसी बात को दृष्टांत देकर दृढ़

करते हैं, सो सुनो। हे जीव, जैसे सूर्य के प्रकाश के आगे अन्धेरा नहीं शोभा देता, वैसे ही आत्मज्ञान में विषयों की अभिलाषा इच्छा नहीं शोभती। यह निश्चय से जानना। शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो, और आकुलता के उपजानेवाले आत्मीक-सुख के वैरी रागादिक जो वृद्धि को प्राप्त हों, तो वह ज्ञान किस काम का? ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। इससे यह निश्चय हुआ, कि बाह्य पदार्थों का ज्ञान मोक्ष-फल के अभाव से कार्यकारी नहीं है।।७६।।

गाथा-७६ पर प्रवचन

आगे जिससे मिथ्यात्व रागादिक की वृद्धि हो, वह आत्मज्ञान नहीं है,... आहाहा! जिससे भ्रमणा बढ़े, पाँच इन्द्रिय के विषय की बुद्धि सुखबुद्धि बढ़े... आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि रहे और आत्मज्ञान हो, ऐसा नहीं हो सकता। आहाहा! समझ में आया? इसका अर्थ ऐसा नहीं कि उसे विषय की वासना ही नहीं होती। परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं है। आहाहा! जिसे आत्मज्ञान है, उसे परपदार्थ के पाँच इन्द्रिय के विषयों में से हितबुद्धि, सुखबुद्धि उड़ गयी है। परन्तु जिसे आत्मज्ञान नहीं, उसे पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि है। उसके कारण में पुण्य है, उसमें उसे सुखबुद्धि है। आहाहा! समझ में आया? सुखबुद्धि अलग चीज़ है और आसक्ति अलग चीज़ है। आसक्ति ज्ञानी को होती है, परन्तु उसे सुखबुद्धि नहीं होती। जिसे आत्मज्ञान हुआ और आत्मज्ञान सुखरूप है, आत्मा में सुख है—ऐसी बुद्धि, दृष्टि हुई, उसे पर में सुखबुद्धि उड़ जाती है और जिसे पर में सुखबुद्धि है, उसे आत्मज्ञान नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : पाँच इन्द्रियों में सुखबुद्धि नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कहीं सुखबुद्धि नहीं। सुखबुद्धि आत्मा में है। महाव्रत में भी सुखबुद्धि नहीं। वह तो दुःखरूप है। आहाहा! ऐसा काम, भाई! यह तो। आहाहा! समझ में आया?

जिससे मिथ्यात्व रागादिक की वृद्धि हो,... देखो! **वह आत्मज्ञान नहीं है, ऐसा निरूपण करते हैं**—७६

२००) तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ।
दिणयर-किरणहँ पुरउ जिय किं विलसइ तम-राउ।।७६।।

अन्वयार्थ :- हे जीव! वह वीतराग नित्यानन्द अखण्डस्वभाव परमात्मतत्त्व का परिज्ञान ही नहीं... आहाहा! कहते हैं कि जिसे निज वीतराग अखण्ड का ज्ञान नहीं। **जिससे परद्रव्य में प्रीति बढ़े,...** आहाहा! देखो! परद्रव्य में प्रीति बढ़े, उसे अखण्ड आत्मज्ञान नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य का जिसे अनुभव और आनन्द हुआ, उसे परद्रव्य की प्रीति नहीं रहती। आहाहा! समझ में आया? ऐसी व्याख्या परन्तु। स्व और पर दो द्रव्य के ... कहते हैं। आहाहा!

जिसे वीतराग नित्यानन्द प्रभु अखण्ड स्वभाव परमात्मतत्त्व। ७६ है न? नित्यानन्द एक स्वभाव, ऐसा है। निज परमात्मतत्त्व। 'एक' शब्द पड़ा रहा है। **वीतराग नित्यानन्द अखण्डस्वभाव...** ऐसा लिया। 'एक' का अर्थ नहीं किया। टीका में है। '**वीतरागनित्यानन्दैकस्वभाव**' उसका वह '**एक**' का अर्थ अखण्ड किया, भाई! एक स्वभाव कहो या अखण्ड को। एक तो बहुत जगह प्रयोग करते हैं। परन्तु यहाँ एक का अर्थ निकाल दिया बहुत जगह। यहाँ रखा है। आहाहा!

प्रभु! वीतराग आत्मा नित्यानन्द एकस्वरूपी, अखण्डस्वरूपी परमात्मतत्त्व द्रव्यस्वभाव। आहाहा! उसका जिसे परिज्ञान नहीं, उसका जिसे ज्ञान नहीं, उसमें जिसे सुखबुद्धि हुई नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा में जिसे आनन्दबुद्धि हुई नहीं। अर्थात् नित्यानन्द स्वभाव जिसे हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **जिससे परद्रव्य में प्रीति बढ़े,...** इसके कारण उसे परद्रव्य में रुचि बढ़ती है। जिसे स्वद्रव्य का परिज्ञान नहीं, उसे परद्रव्य में रुचि बढ़ती है। इस प्रेम का यह अर्थ है। उसे परद्रव्य में रुचि है। परद्रव्य उसके पोषाण में है। स्वद्रव्य का पोषाण नहीं, उसे परद्रव्य का पोषाण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बातें अब। साधारण लोग तो बेचारे गाँव के हों, अब इसमें क्या समझे? इसकी अपेक्षा अपने उपवास करें, व्रत करें, तप करें। भाई! यह तो धर्म की बात है, बापू! धर्म चीज़ ऐसी है कि वीतराग नित्यानन्द एक स्वभाव का ज्ञान, उसकी प्रतीति और रमणता, उसका नाम धर्म है। समझ में आया? अब वह कौन है, उसकी भी खबर

नहीं होती। वीतराग नित्यानन्द एकस्वभावी प्रभु आत्मा है। वह आनन्द पर में मानता है न? उसे यहाँ वीतरागी आनन्द में लेकर... जिसे वीतरागी आनन्द के निज स्वभाव का भान नहीं, वह यह क्षणिक बाहर की सुखबुद्धि में दौड़ जाता है। परपदार्थ की रुचि में वह चला जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जिससे परद्रव्य में प्रीति बढ़े, सूर्य की किरणों के आगे अन्धकार का फैलाव कैसे शोभायमान हो सकता है? सूर्य की किरण के विस्तार में अन्धकार की शोभा कैसे हो? जिसे भगवान परमात्मा आनन्दस्वरूप प्रभु में जिसे आनन्द की रुचि हुई और आनन्द की सुखबुद्धि हुई, ऐसी सूर्य की किरण के समक्ष अन्धकार की शोभा नहीं होती, इसके प्रकार इसके फैलाव के समक्ष, रुचि के समक्ष परपदार्थ की रुचि का भाव अन्धकार है। वह कैसे हो इसे? आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें। अज्ञानी को तो चौबीस घण्टे पर में हितबुद्धि, ठीकबुद्धि, सुखबुद्धि से काम करता है। आहाहा! चौबीसों घण्टे पर में सुखबुद्धि, वह मिथ्यात्वभाव है। और ज्ञानी को चौबीसों घण्टे स्व नित्यानन्द में सुखबुद्धि है। ऐसे सूर्य की किरणों के समक्ष अन्धकार कैसे हो? उसी प्रकार जिसे नित्यानन्द की रुचि और अनुभव हुआ, उसका भान हुआ, उसे विषय में सुख है, ऐसी बुद्धि कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसलिए इसका अर्थ ऐसा नहीं कि विषय छोड़ दिये, इसलिए उसकी सुखबुद्धि छूट गयी। छोड़ दो यह स्त्री, पुत्र, इसलिए (सुखबुद्धि न रहे), ऐसा नहीं है। उसमें सुखबुद्धि है, उसे छोड़नेयोग्य है। वह वस्तु तो छूटी हुई ही पड़ी है। आहाहा! ऐसा उपदेश किस प्रकार का?

सूर्य की किरणों के समक्ष अन्धकार कैसे शोभे? इसी प्रकार नित्यानन्द भगवान आत्मा के ज्ञान की रुचि के समक्ष परपदार्थ की रुचि कैसे शोभे? परपदार्थ की रुचि उसे नहीं हो सकती। आहाहा! तो यह छह खण्ड के राज हैं न समकिती को? छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं, एक स्त्री की हजार देव तो सेवा करते हैं। वहाँ की सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? सुखबुद्धि उड़ना और आसक्ति होना, इन दोनों में अन्तर है। आसक्ति तो आती है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं है। दुःखबुद्धि है। आहाहा! शुभभाव में भी जिसकी सुखबुद्धि है, वह अन्धकार है। आत्मज्ञान में जिसकी सुखबुद्धि है, उसे शुभभाव में भी सुखबुद्धि नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनासक्ति रुचि की बात है। अनासक्ति का अर्थ यह है। रुचि पर में, वह आसक्ति है। रुचि नहीं, वह अनासक्ति है। अनासक्ति से करना, यह जो कहते हैं, वह बात तो खोटी है। समझ में आया? आहाहा!

नित्यानन्द वीतराग एक स्वभावी अखण्ड स्वरूप प्रभु का जिसे सुखबुद्धि का ज्ञान और आत्मज्ञान है, उसे परपदार्थ की रुचि उड़ गयी होती है। उसे यदि परपदार्थ की रुचि की वृद्धि हो तो उसे आत्मज्ञान है नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब गाथायें परन्तु।

परमात्मप्रकाश। उसमें—मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है न यह? परमात्मप्रकाश में, समयसार में, प्रवचनसार में ऐसा सब कहा है। उसे जाना होगा इसने। वह जाननेवाला मैं हूँ, ऐसा भी यह मानता है, परन्तु जाननेवाले को जाना नहीं। है न? भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक में। ऐसा कि उसे जाना है, उसमें से और ऐसा जानता है कि इसका जाननेवाला मैं हूँ। परन्तु उसे जाननेवाला मैं हूँ परन्तु जाननेवाला यह है। है न यह? ... समयसार में एक ही जीव का धर्म का श्रद्धान, ग्यारह अंग का ज्ञान, महाव्रत ... डाला है। प्रवचनसार में भी ऐसा लिखा है कि जिसे आत्मज्ञान ऐसा हुआ कि जिसके द्वारा पदार्थ को हस्तावलम्ब तुल्य जाने। तथा ऐसा जाने कि इसका जाननेवाला मैं हूँ। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा अपने को परद्रव्य से भिन्न केवल चैतन्यद्रव्य को अनुभवता नहीं करता। टोडरमलजी ने कहा है। उन्होंने अध्यात्म की भांग पी है, ऐसा (लोग) कहते हैं। क्या करता है तू? भाई! अभी लोगों को बाहर की बातें ठीक पड़ेंगी। आहाहा! बापू! तेरे आत्मा को उसमें हित नहीं है। यहाँ तक कहा। आहाहा! उसका जाननेवाला मैं हूँ, वहाँ तक। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा परद्रव्य से भिन्न केवल चेतनद्रव्य अनुभवता नहीं। इसलिए आत्मज्ञान शून्य आगमज्ञान भी कार्यकारी नहीं है। परमात्मप्रकाश में यह है। सम्यग्ज्ञान का अन्तिम अधिकार। सम्यग्ज्ञान का है न उसमें? श्रद्धा का पहला, नौ तत्त्व का, पश्चात् सम्यग्ज्ञान, पश्चात् सम्यक्चारित्र लेंगे। सम्यक् चारित्र... बहुत लिया है। ओहोहो! टोडरमलजी ने। वर्णीजी को तो प्रेम था उसमें। दो सौ बार

पढ़ा है, ऐसा कहा। परन्तु उसे मिला नहीं न बेचारे को, इसलिए बेचारे को यह स्थिति हो गयी। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **'दिनकरकिरणानां पुरतः' सूर्य की किरणों के आगे अन्धकार का फैलाव कैसे शोभायमान हो सकता है?** आहाहा! इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानघन है, उसकी रुचि और दृष्टि—अनुभव हुआ, आत्मज्ञान हुआ, उसके समक्ष परद्रव्य की प्रीति की वृद्धि कैसे बढ़े? आहाहा! समझ में आया? लो! भगवान ने ऐसा कहा, प्रभु! मेरे सन्मुख देखने से भी, हम परद्रव्य हैं (तो) तुझे राग होगा। तू तेरे सन्मुख देख। तू आनन्दस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है। समझ में आया? देखा! कहाँ तक लिया? कि इसका जाननेवाला मैं हूँ। इसका जाननेवाला। परन्तु मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। आहाहा! ऐसा अस्तित्व का ज्ञान इसने नहीं किया। ज्ञानस्वरूप, ऐसी जिसकी सत्ता और अस्ति... आहाहा! ऐसी बात कठिन बात पड़े लोगों को, हों! लोगों को बेचारों को क्या हो? प्रथा पूरी उड़ गयी है। अरे रे! आहाहा!

मुमुक्षु : परसत्तावलम्बी ज्ञान है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही न। परसत्तावलम्बी ज्ञान वह बन्ध का कारण है। ज्ञानी को परसत्तावलम्बी होता है परन्तु वह मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा!

भावार्थ :- शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न... देखो! भगवान आत्मा शुद्धात्मा के सब गुण शुद्ध और स्वयं शुद्ध आत्मद्रव्य। आहाहा! ऐसा जो शुद्धात्मा, उसकी भावना—एकाग्रता, उससे उत्पन्न **जो वीतराग परम आनन्द...** पहली व्याख्या की। **शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परम आनन्द उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषी...** अभिलाषा, हों! उसकी। आहाहा! पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा, जहर और दुःख की अभिलाषा। आहाहा! **वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है,...** आहाहा! शुद्धात्मा, त्रिकाली शुद्ध प्रभु की एकाग्रता से उत्पन्न वीतराग परमानन्द... आहाहा! उसमें एकाग्र होने से परम आनन्द उत्पन्न होता है। उसे छोड़कर **उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है।** आहाहा! बहुत ही संक्षिप्त शब्द और अकेला मर्म भरा है। सम्यग्दृष्टि चक्रवर्ती क्षायिक समकिती,

छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, परन्तु विषय की अभिलाषा नहीं थी। समझ में आया? उसकी रुचि नहीं थी कि यह हो तो ठीक। आहाहा!

अभिलाषा जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है, अज्ञान ही है। तब ऐसा अर्थ करे कि जितना छोड़ दे, उतना ज्ञान था। यह नहीं। पाँच इन्द्रिय के विषय की रुचि छोड़ दे और नित्यानन्द की रुचि करे, वह ज्ञान सच्चा है। समझ में आया? आहाहा! वरना तो क्षायिक समकिती है। छियानवें हजार स्त्रियाँ हैं, राग है, परन्तु अभिलाषा नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बातें। इसमें क्या अन्तर पड़ा?

पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति है तथापि इसे आत्मज्ञान हो। परन्तु जिसे पाँच इन्द्रिय के विषय की सुखबुद्धि और अभिलाषा है, उसे आत्मज्ञान नहीं होता। समझ में आाय? ज्ञानी को विषय वासना है, परन्तु दुःखरूप लगती है। अज्ञानी को विषय की अभिलाषा में प्रेम और सुखरूप लगता है। आहाहा! उसमें उसे हर्ष आता है। अज्ञानी को पाँच इन्द्रिय के विषयों में हर्ष आता है। उसे आत्मज्ञान नहीं है।

मुमुक्षु : आसक्ति है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आसक्ति अलग वस्तु। हर्ष, प्रेम आता है, रुचि आती है कि यह ठीक है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आसक्ति तो अस्थिरता हुई। छठवें गुणस्थान में राग होता है तथापि ज्ञान और चारित्र है। और पहले गुणस्थान में राग की रुचि है, अभिलाषा है। यहाँ यह कहना है। उसे आत्मज्ञान नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आसक्ति अज्ञानी को लागू पड़े न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को लागू नहीं पड़ती। आसक्ति अज्ञानी को नहीं होती और ज्ञानी को होती है। ज्ञानी को आसक्ति होती है परन्तु हर्षबुद्धि नहीं, सुखबुद्धि नहीं। दुःखबुद्धि है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म कताई। मार्ग ऐसा है, बापू!

भाषा कैसी की है, देखो न! **शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न...** राग की एकाग्रता

से उत्पन्न तो दु:ख है। समझ में आया? **शुद्धात्मा की भावना...** अर्थात् एकाग्रता, हों! **उत्पन्न जो वीतराग परम आनन्द उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है, अज्ञान ही है।** आहाहा! पाँच इन्द्रिय के कोई भी विषय में जिसे सुखबुद्धि है, अभिलाषा है कि यह ठीक है, यह भाव करनेयोग्य है, वह आत्मज्ञानरहित है। आहाहा! थोड़े अन्तर में बड़ा अन्तर। पूरी दृष्टि का अन्तर है न? अज्ञानी की राग के ऊपर रुचि और दृष्टि है, ज्ञानी की वीतराग परमानन्द पर रुचि है। आहाहा!

जिस जगह वीतरागभाव है, वही सम्यग्ज्ञान है। देखो! आहाहा! राग की रुचि नहीं, विषय की अभिलाषा नहीं, ऐसा जो आत्मा के स्वभाव की दृष्टि वीतरागभाव, वह यहाँ सम्यग्ज्ञान है, लो! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण २, बुधवार
दिनांक-०८-१२-१९७६, गाथा-७६-७७, प्रवचन-१५३

(नोट : इस प्रवचन में आवाज कम्पित है इसलिए जाहिर में नहीं बजाना।)

परमात्मप्रकाश, ७६ गाथा चलती है। भावार्थ फिर से लेते हैं।

शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न जो वीतराग परम आनन्द उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा जिसमें हो, वह निज (आत्म) ज्ञान नहीं है,... आहाहा! जिसे धर्म प्रगट हुआ है, उसे आत्मज्ञान में आनन्द का स्वाद आया है, ऐसा कहते हैं। धर्मी उसे कहते हैं कि जिसे आत्मज्ञान हो। आत्मज्ञान हो अर्थात ? अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसके सन्मुख होकर जो ज्ञान हुआ, उसमें अतीन्द्रिय के आनन्द के स्वाद का भी भाव आया। ऐसे आत्मज्ञानी—धर्मी को पाँच इन्द्रिय के विषय में सुखबुद्धि नहीं होती। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भाई! क्योंकि आत्मा के स्वाद की जहाँ दृष्टि हुई है, उसे विषय में दुःख है, उसकी अभिलाषा उसे नहीं होती। उसकी उसे भावना नहीं होती कि यह विषय मिले तो मुझे ठीक। ज्ञानी की दृष्टि आत्मा के ऊपर होती है और आत्मज्ञानी को आत्मा के आनन्द के स्वाद का नमूना आया होता है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! ज्ञानी को विषयभोग में सुखबुद्धि उसकी उड़ गयी होती है। आहाहा! उसे प्रतिष्ठा में सुखबुद्धि उड़ गयी होती है। पाँच इन्द्रियों के विषयों में से उसकी सुखबुद्धि नाश हो जाती है। क्योंकि जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ आत्मा में आनन्द है, उसका अनुभव हुआ। आहाहा! सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं होता)। आहाहा!

जहाँ आत्मज्ञान कहो ज्ञान की अपेक्षा से, दृष्टि की अपेक्षा से सम्यग्दर्शन कहो और स्वरूप के आचरण की अपेक्षा से आनन्द का आचरण कहो... आहाहा! ऐसा जहाँ आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन है, उसे पर में सुखबुद्धि नाश हो गयी है। चाहे तो इन्द्र के इन्द्रासन हों या ... शरीर की सुन्दरता और प्रतिष्ठा की दुनिया प्रशंसा करे, उसमें सुखबुद्धि, ठीकबुद्धि, वह धर्मी को उड़ गयी है। समझ में आया ? सूक्ष्म बात।

मुमुक्षु : थोड़ी रहती है, थोड़ी उड़ जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी रहती नहीं। आसक्ति रहे, सुखबुद्धि नहीं रहती। आहाहा! सूक्ष्म बात है। राग हो जाता है परन्तु उसमें सुखबुद्धि नहीं है। ऐसी बात सूक्ष्म बात, बापू!

आत्मज्ञान कहो या सम्यग्दर्शन कहो। सम्यग्दर्शन में आत्मा देह, वाणी, कर्म से भिन्न और पुण्य-पाप के विकल्प के दुःख से भिन्न और भगवान अपने आनन्द के स्वभाव से अभिन्न, ऐसे आत्मा का ज्ञान और आत्मा की श्रद्धा हुई... आहाहा! उसे अपने आनन्द के अतिरिक्त पुण्य का भाव हो, दया, दान, पूजा आदि, उसमें भी सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! सम्यग्दर्शन कोई चीज़ ऐसी है कि... वर्तमान में तो कोई मान लिया कि यह देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा और नौ तत्त्व की श्रद्धा है। अब व्रत ले लो, चारित्र लेकर पालन करो। आहाहा!

आचार्य योगीन्द्रदेव १३०० वर्ष पहले दिगम्बर सन्त (हुए), उनका यह परमात्मप्रकाश है। आहाहा! क्योंकि आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके शत्रु पाँच इन्द्रिय के विषय हैं। आहाहा! जहाँ सम्यग्दर्शन में स्व-आनन्द का विषय आया... आहाहा! सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में। भगवान आत्मा दर्शन का विषय आनन्दस्वरूप है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय कहो, सम्यग्दर्शन का ध्येय कहो, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हो, वह आत्मा आनन्दस्वरूप है। अनाकुल अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। आहाहा! उसका जिसे ज्ञान और आनन्द का वेदन हुआ, उसे आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त पाँच इन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि उसकी उड़ जाती है। अभिलाषा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

चाहे तो छह खण्ड के राज में पड़ा हो समकिती दिखाई दे, परन्तु उसे अपने आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त दूसरे में कहीं सुख है, ऐसी सुखबुद्धि का नाश हो गया है। समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज़ है। यह कोई साधारण, मान ले कि हमने तत्त्वार्थश्रद्धान माना, वह सम्यग्दर्शन। परन्तु तत्त्वार्थश्रद्धान में आत्मा की श्रद्धा हो, तब सम्यग्दर्शन हो न। आत्मा तो अनाकुल आनन्द का कन्द है। अनाकुल शान्तरस की मूर्ति प्रभु है। उसका जहाँ ज्ञान और श्रद्धा

हुई, तब तो उसे आनन्द अतीन्द्रिय अपूर्व अनन्त काल में नहीं जाना ऐसा अनुभव किया। आहाहा! ऐसे आनन्द के अनुभव के समक्ष आत्मज्ञानी को—सम्यग्दृष्टि को चौथे गुणस्थान में हो तो भी पाँच इन्द्रिय के विषयों में उसकी सुखबुद्धि नष्ट हो गयी है। आत्मा में सुखबुद्धि हुई। आहाहा!

आत्मा में जहाँ सुखबुद्धि हुई, और आनन्द प्रगट हुआ, उसके समक्ष पाँच इन्द्रिय के विषयों की अभिलाषा जहर की अभिलाषा है। समझ में आया? वह अभिलाषा आत्मज्ञानी को नहीं होती। आहाहा! कठिन बात! इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त न हुआ हो। आता है न गोम्मटसार में। ... पण्डितजी! ... निवृत्त न हुआ हो। आहाहा! परन्तु इन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि से (वर्तता नहीं)। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त नहीं है। क्योंकि राग है। परन्तु उसमें उसकी सुखबुद्धि उड़ गयी है। आहाहा! विषयों में मजा है, ठीक है, वह बुद्धि धर्मी की सम्यग्दर्शन होने पर, आत्मज्ञान होने पर, वह बुद्धि उड़ जाती है। ऐसी बात है। है? शत्रु... आहाहा! क्या कहते हैं? **वीतराग परम आनन्द उसके शत्रु पंचेन्द्रियों के विषयों...** जहर है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसमें सुखबुद्धि नहीं रहती। आहाहा! सूक्ष्म बात परन्तु मूल की बात है, भाई! यह अभी कहे न? (हमारे श्रद्धा है, अब) व्रत ले लो और तप ले लो। बिना एक के शून्य हैं सब।

जिसमें आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन है, उसमें तो आत्मा का आनन्दगुण और सम्यग्ज्ञान का गुण प्रगट हुआ है। अरे! संख्या से आत्मा में जितने गुण हैं, उन सब गुणों का अंश वेदन में प्रगट हुआ है। आहाहा! 'सर्व गुणांश, वह समकित'—यह श्रीमद् का वाक्य है। अपने रहस्यपूर्ण चिट्ठी का, ज्ञानादि अनन्त गुण का एकदेश प्रगट हुआ है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी। आहाहा! बापू! इसे तो अभी तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। चारित्र तो कहीं रहा। वह तो परम प्रचुर अनन्त आनन्द का उत्कृष्ट उग्र वेदन हो जाये, तब उसे चारित्र कहा जाता है। समझ में आया? पाँच महाव्रत के परिणाम और नग्नपना, वह कहीं मुनिपना नहीं है। नग्नपना तो जड़ की दशा है। पंच महाव्रत के परिणाम तो आस्रव की दुःखदशा है। आहाहा! **ज्ञान नहीं है, अज्ञान ही है।** आहाहा!

जिस जगह वीतरागभाव है, वही सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! जिसमें राग का प्रेम उड़ गया है। आहाहा! राग हो, परन्तु राग की रुचि उड़ गयी है। आहाहा! उसे यहाँ वीतरागभाव और उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! **इसी बात को दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं, सो सुनो। हे जीव! जैसे सूर्य के प्रकाश के आगे अन्धेरा नहीं शोभा देता,...** सूर्य के प्रकाश के समक्ष **अन्धेरा नहीं शोभा देता, वैसे ही आत्मज्ञान में विषयों की अभिलाषा (इच्छा) नहीं शोभती...** आहाहा! कठिन बात, भाई! छह खण्ड का स्वामी, छियानवें हजार स्त्रियों में स्थित दिखाई दे, परन्तु उसे आनन्द की अभिलाषा छूट गयी है। आहाहा! विषय के सुख में जहर दिखता है, दुःख दिखता है। आहाहा! यहाँ ऐसा माने कि ओहो! इसे छह खण्ड का राज और छियानवें हजार स्त्रियाँ, बहुत सुखी। अज्ञानी ऐसा मानता है। आहाहा!

उसमें आया नहीं भजन में? 'चिन्मूरति दृगधारि की मोहे रीति लगत है अटापटी।' नारकी का जीव बाहर से दुःख भोगे, अन्तर सुख की गटागटी है। आहाहा! ले! वहाँ तो पीने का पानी नहीं मिलता, खाने का अनाज नहीं मिलता, सोने को चबूतरा नहीं मिलता, ओढ़ने को कपड़ा नहीं मिलता। रोग इतने हैं तो कुछ दवा नहीं मिलती। आहाहा! परन्तु जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन हुआ, उसे आत्मा के आनन्द का स्वाद (आया) और वह सुखी हुआ। आहाहा! वह नरक में रहा तो भी सुखी है। जितने अंश में निर्मलता प्रगट हुई उतनी। जितना राग है, उतना दुःख है। आहाहा! आता है न? 'नारकी कृत दुःख भोगत अन्तर सुखरस गटागटी।' गटागटी। आहाहा! यहाँ छह खण्ड का राज हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु उसमें सुखबुद्धि है, वह दुःखी है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया उसे सुखी माने तो भगवान कहते हैं कि वह दुःखी है। महा दुःखी। जिसे छह खण्ड और छियानवें हजार स्त्री की सामग्री, उसमें जिसे रुचि है परद्रव्य की, बहुत दुःखी है। कहो, समझ में आया? वीतरागदृष्टि और संसारदृष्टि में बड़ा अन्तर है। आहाहा!

आत्मज्ञान में विषयों की अभिलाषा (इच्छा) नहीं शोभती। यह निश्चय से जानना। शास्त्र का ज्ञान होने पर भी... आहाहा! शास्त्र जानता हो। यह संसार का वकालत का ज्ञान, डॉक्टर का ज्ञान, वैद्य का ज्ञान, वह तो सब दुःखरूप है। आहाहा! खेती का ज्ञान। नहीं कही खेती? अपना बड़ा है न? कृषि पण्डित, ऋषभसागर नाम

क्या कहा? ऋषभकुमार, उसे खुरई में बड़ा कृषि पण्डित। कितनी उपज! दस-दस लाख रुपये का कपास और बड़ा खेत। सरकार की ओर से कृषि पण्डित की उपाधि है। दिगम्बर है। वहाँ हम उसके घर में उतरे थे तब। पुत्र-पुत्री कुछ नहीं। बड़ी आमदनी का ढ़ेर और जमीन का तो पार नहीं होता। इतनी जमीन... जमीन... जमीन... कि ऐसे ढेर पड़े थे। आहाहा! लोग ऐसा कहते कि वह सुखी है।

कहते हैं कि पर में जहाँ प्रेमबुद्धि है वही दुःखी है और भगवान आत्मा में जिसकी प्रेमबुद्धि और आनन्दबुद्धि है, वह सुखी है। आहाहा! समझ में आया? अभी वहाँ सभा भरी थी न? भाई! सुना था न? खुरई में नहीं यह सब अपने बड़े-बड़े डेढ़ सौ लोग इकट्ठे हुए थे। डेढ़ सौ नहीं, पचास? डेढ़ सौ। डेढ़ सो लोग इकट्ठे हुए। ऐसे सब अपने बड़े-बड़े बाबूभाई और बड़े सब। और इसके अतिरिक्त कितने ही बाहर से आये हुए। वह प्रेम है यहाँ का। बहू... नहीं परन्तु प्रेम है। उनकी बहू तो यहाँ महीने-महीने रह जाती है। बड़ा कृषि, बड़ा। घर में बड़ा मन्दिर। पैसे का ढ़ेर। वह तो कहीं रहा। यह कहा नहीं कल? ईरान का बादशाह। जिसकी एक घण्टे की दो करोड़ की आमदनी अभी है। वह दुःखी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके कारण से नहीं। मेरे हैं—ऐसा माना है, वह दुःख है। आहाहा! उस वस्तु के कारण से नहीं। वह वस्तु मेरी है और मैं पैसेदार हूँ, धनाढय हूँ, मुझे मजा है, यह मान्यता दुःखरूप मिथ्यात्व की है। आहाहा! समझ में आया? पैसेवाले का पानी उतार डाले वहाँ। एक घण्टे में दो करोड़ की आमदनी। पूँजी तो कितनी होगी! एक दिन की आधे अरब की आमदनी। चौबीस घण्टे की। आधा अरब! ऐसी-ऐसी १३० वर्ष तक चले इतनी आमदनी है। आहाहा! परन्तु वह दुःखी है। क्योंकि उसे आत्मा के आनन्द की खबर नहीं और उसमें मजा है, यह मान्यता बड़ी दुःखरूप है। वह बड़ा दुःखी है।

और सातवें नरक का नारकी, जिसे जन्म से सोलह रोग, पानी का कण नहीं, अनाज का दाना नहीं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि अन्दर में सुखी है। क्योंकि जिसे भगवान

आनन्द के नाथ का निधान खुल गया है। राग की एकता में आनन्द के नाथ को ताला लगाया था। आहाहा! उस राग की एकता टूटकर स्वभाव की एकता हुई, वहाँ निधान खुल गया है। आहाहा! यह सातवीं नरक का नारकी समकिती सुखी है। वह सामग्री के कारण नहीं। आहाहा! स्वभाव की दृष्टि के कारण सुखी है। आहाहा! यह सब ऐसे बड़े राजा, गृहस्थ और अरबोंपति और करोड़ोंपति बेचारे दुःखी हैं। उसमें सुख माना है, उसमें मजा माना है, वह ठीक है, यह मान्यता ही मिथ्यात्व का दुःख है। आहाहा! भगवान ठीक है, यह बात अन्दर से उड़ गयी। मेरा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है, वह ठीक है, यह बात उड़ गयी। यह ठीक है, यह बात रह गयी। समझ में आया? आहाहा! है? कहाँ आया?

शास्त्र का ज्ञान होने पर भी... लो! दूसरी चीज़ तो कहीं एकओर रह गयी। परन्तु शास्त्र का ज्ञान है। **जो निराकुलता न हो, और आकुलता के उपजानेवाले आत्मिक-सुख के वैरी रागादिक जो वृद्धि को प्राप्त हों,...** आहाहा! कहते हैं कि संसार का ज्ञान तो दुःखरूप ही है, परन्तु शास्त्रज्ञान है, उसे यदि अनाकुल आनन्द का भान नहीं तो उस शास्त्रज्ञान में भी राग की वृद्धि करता है। आहाहा! यह तो जगत से अटपटी बात है, भाई! आहाहा! है? **शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो,...** अन्तर में आनन्द प्रभु निराकुलता... निराकुलता का अनुभव न हो अर्थात् पर्याय में वीतरागता न हो... आहाहा! समझ में आया? **और आकुलता के उपजानेवाले आत्मिक-सुख के वैरी रागादिक वृद्धि को प्राप्त हों,...** आहाहा! वहाँ तो शास्त्रज्ञान द्वारा भी वह राग की वृद्धि करेगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। हमको आता है और हमको ऐसा एकदम जवाब देना आता है और यह आता है। इसका उसे अन्दर अभिमान होता है। राग की वृद्धि हो। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं। आहाहा!

शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो,... अर्थात् सम्यग्दर्शन न हो अर्थात् सम्यग्ज्ञान न हो। स्व आत्मा का सम्यग्ज्ञान न हो तो **शास्त्र का ज्ञान होने पर भी जो निराकुलता न हो, और आकुलता के उपजानेवाले...** आहाहा! **आत्मिक-सुख के वैरी रागादिक वृद्धि को प्राप्त हों,...** आहाहा! क्या कहते हैं? जिसे आत्मा के आनन्द का आत्मज्ञान अनुभव न हो। आत्मज्ञानी जीव को सुख की वृद्धि होती है और आत्मज्ञान

बिना के शास्त्रज्ञानवाले को राग की वृद्धि होती है। आहाहा! दु:ख की वृद्धि (होती है)। कहो, देवीलालजी! ऐसी बात है। जगत से निराली है, बापू! आहाहा!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान न हो और व्रत और चारित्र के क्रियाकाण्ड करे, उसे चारित्र कहे। आहाहा! मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? उस शुभभाव में धर्म है और धर्म का कारण है, ऐसा माननेवाले राग की वृद्धि, विकार की वृद्धि करते हैं, ऐसा कहते हैं। और राग से भिन्न भगवान आत्मा का ज्ञान और दर्शन होने पर उसे सम्यग्ज्ञान और शान्ति और आनन्द की वृद्धि होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे, बापू! उसे क्या खबर है। आहाहा! अभी शुभ उपयोग हो। शुद्ध न हो। शुभ उपयोग, वह अधर्म है। पुण्य का विकल्प, वह राग है। आहाहा! और राग से धर्म मानता है, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? देखो न! कितनी बात की है!

आकुलता के उपजानेवाले आत्मिक-सुख के वैरी रागादिक वृद्धि को प्राप्त हों,... आत्मा के आनन्द की दृष्टि और अनुभव नहीं, आनन्द का नाथ प्रभु अतीन्द्रिय अनाकुल शान्ति का रसकन्द, उसका अनुभव में आनन्द नहीं, उसे शास्त्रज्ञान तो राग की वृद्धि का कारण है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह परज्ञान है, परालम्बी परसत्तावलम्बी ज्ञान है। स्वआश्रयज्ञान नहीं। वह परसत्तावलम्बी दु:खरूप है। आहाहा! अनन्त बार ग्यारह अंग और नौ पूर्व तक ज्ञान हुआ है, परन्तु वह दु:खरूप है। आत्मज्ञान बिना वह ज्ञान दु:खरूप है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसे गहरे-गहरे अभिमान हुए बिना रहेगा ही नहीं। आहाहा!

आकुलता के उपजानेवाले आत्मिक-सुख के वैरी रागादिक वृद्धि को प्राप्त हों,... ऐसा पाठ है न मूल तो? ७६। आहाहा! '**होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ। दिणयर-किरणहँ पुरउ जिय किं विलसइ तम-राउ।**' '**तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ।**' और निजज्ञान में वर्ते ... राग, ऐसा निकाला इसमें से। निजज्ञान भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु और अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द आत्मा, उसके ज्ञान में राग की वृद्धि नहीं, ऐसा कहते हैं। है न? '**तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ**

राउ।' उसमें से यह निकाला है। नहीं जिसे ज्ञान, उसे राग की वृद्धि है। जिसे आत्मज्ञान हुआ, उसे राग की वृद्धि नहीं। ऐसा यह निकाला पाठ में से। समझ में आया? '**तं णिय-णाणु जि होइ ण वि जेण पवड्ढइ राउ।**' लो! आहाहा! निजज्ञान हो। '...परद्रव्य में प्रीति बढ़े।' उसे परद्रव्य की प्रीति है ही नहीं। आहाहा! प्रीति अर्थात् यहाँ रुचि की बात है। वैसे तो देव-गुरु-शास्त्र की रुचि करे तो वह राग है। परन्तु उसमें रुचि करे कि यह धर्म है तो वह मिथ्यात्व है। देव-गुरु की मान्यता, वह मिथ्यात्व नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता, वह राग है, शुभराग है। परन्तु उसमें उससे धर्म है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व है। आहाहा! अरे! मूल बात की खबर नहीं होती। जिन्दगी चली जाये। आहाहा! अरे!

वह ज्ञान किस काम का? जिसमें राग और द्वेष की वृद्धि हो, वह ज्ञान किस काम का? आहाहा! सम्यग्ज्ञानी धर्मात्मा हो, उसे विशेष ज्ञान न हो, आनन्द का भान हो, आनन्द का वेदन हो, तो जिसे विशेष ज्ञान है, उसे यह ऐसा (भान) नहीं, उसे ऐसा हो जाता है कि यह क्या? यह तो हम जाननेवाले हैं, उसकी अपेक्षा तो हमको अधिक ज्ञान है। आहाहा! चेतनजी! कठिन बात। परमात्मप्रकाश है। आहाहा!

मुमुक्षु : परसत्तावलम्बी ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब परसत्तावलम्बी ही है न! वह परसत्तावलम्बी अर्थात् पर के लक्ष्य से हुआ ज्ञान। स्व के लक्ष्य से नहीं हुआ। ज्ञानी को वह परसत्तावलम्बी ज्ञान होता है, परन्तु वह दुःखरूप है। उसे मोक्षमार्ग नहीं कहते। होता है जरा। और यह तो परसत्तावलम्बी शास्त्र का ज्ञान, उसे मोक्ष का कारण है, हमको धर्म हुआ है कुछ, ऐसा मानता है। आहाहा! अजब-गजब की बातें हैं। अभी प्रचलित सम्प्रदाय से तो अत्यन्त विरुद्ध है। आहाहा!

दिगम्बर सन्त, योगीन्द्रदेव पुकार करते हैं। जिसे आत्मज्ञान है, उसे राग की वृद्धि नहीं। है न? पाठ यह है। '**जेण पवड्ढइ ण वि राउ**' आहाहा! जिसे आत्मज्ञान और आत्मदर्शन है, उसे राग बढ़ता नहीं। उसे राग घटता जाता है और शुद्धि बढ़ती जाती है। आहाहा! उसमें से यह... यह बाद में कहेंगे। यह तो है। वर्तमान ही नहीं उसे। राग की वृद्धि ही नहीं उसे। आहाहा! यहाँ शुद्धि की वृद्धि है। क्षण-क्षण में निर्मल दृष्टि है, इससे

आनन्द के आश्रय में, स्व के आश्रय में आनन्द आया है, स्व का आश्रय बढ़ता जाता है। आहाहा! अब ऐसी व्याख्या। यह वह धर्म किस प्रकार? वे कहें, व्रत करना, अपवास करना, अमुक खाना नहीं। अब यह तो सब राग की क्रियाओं की बातें! जिसे आत्मज्ञान नहीं, उसे राग की वृद्धि होगी। आहाहा! और जिसे आत्मज्ञान है, उसे राग की वृद्धि नहीं होगी। पाठ ऐसा है न? उसे शुद्धि की वृद्धि होगी। आहाहा! उसे राग आसक्ति का है, वह भी घटता जायेगा। प्रेम का राग तो नहीं, रुचि का राग तो ज्ञानी को है नहीं। आहाहा! मात्र आसक्ति का राग जो है, वह भी स्व के आश्रय से घटता जायेगा। आहाहा!

ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। आहाहा! समझ में आया? बहुत वाँचते हैं और बहुत याद करते हैं, इसलिए अपने को जवाब देना आता है, दूसरे को कहना आता है। यह सब राग की वृद्धि है।

मुमुक्षु : दूसरे को जवाब....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसा कहे। बराबर ध्यान ऐसा दूँ, ऐसा ध्यान रखूँ कि एकदम जवाब आवे अन्दर से। राग की वृद्धि है वहाँ। आहाहा! स्व का आश्रय करने का अवसर (आया), उसमें स्व का आश्रय करे नहीं और उसी और उसी में रुक जाये। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

ज्ञान तो वह है, जिससे आकुलता मिट जावे। इससे यह निश्चय हुआ कि बाह्य पदार्थों का ज्ञान... आत्मपदार्थ के ज्ञान बिना मात्र बाह्य पदार्थ का ज्ञान... आहाहा! **मोक्ष-फल के अभाव से कार्यकारी नहीं है।** आहाहा! गजब काम किया है न! दिगम्बर सन्त ही यह कहते हैं। उन्हें जगत की परवाह नहीं है। आहाहा! शास्त्र का सत्य रहस्य है, वह खुल्ला करते हुए, उन्हें कुछ जगत का डर नहीं है कि यह समाज मानेगा या नहीं? यह समाज हमको क्या कहेगा? यह क्या उड़ायेगा? नागा बादशाह से आघा है वह तो। नग्नमुनि हैं। अन्तर में और बाह्य में दोनों। आहाहा! उनका पुकार है जगत के समक्ष।

जिसे बाह्य पदार्थ का ज्ञान, निज ज्ञान, आत्मा के अनुभव के आनन्द के ज्ञान बिना बाह्य पदार्थ का ज्ञान **मोक्ष-फल के अभाव से कार्यकारी नहीं है।** आहाहा! डोला दे ऐसा है न पूरा? हिला डाले पूरा। मानकर बैठे हो कि हम ऐसे हैं। आहाहा! यह ७६ (गाथा) हुई।

गाथा - ७७

अथ ज्ञानिनां निजशुद्धात्मस्वरूपं विहाय नान्यत्किमप्युपादेयमिति दर्शयति –

२०१) अप्पा मिल्लिवि णाणियहँ अण्णु ण सुंदरु वत्थु।
तेम ण विसयहँ मणु रमइ जाणंतहँ परमत्थु।।७७।।

आत्मानं मुक्त्वा ज्ञानिनां अन्यन्न सुन्दरं वस्तु।
तेन न विषयेषु मनो रमते जानतां परमार्थम्।।७७।।

अप्पा इत्यादि। अप्पा मिल्लिवि शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मपदार्थं मुक्त्वा णाणियहं ज्ञानिनां मिथ्यात्वरागादिपरिहारेण निजशुद्धात्मद्रव्यपरिज्ञानपरिणतानां अण्णु ण सुंदरु वत्थु अन्यन्न सुन्दरं समीचीनं वस्तु प्रतिभाति येन कारणेन तेण ण विसयहं मणु रमइ तेन कारणेन शुद्धात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतेषु पञ्चेन्द्रियविषयरूपकामभोगेषु मनो न रमते। किं कुर्वताम्। जाणंतहं जानतां परमत्थु वीतरागसहजानन्दैकपारमार्थिकसुखाविनाभूतं परमात्मानमेवेति तात्पर्यम्।।७७।।

आगे ज्ञानी जीवों के निज शुद्धात्मभाव के बिना अन्य कुछ भी आदरने योग्य नहीं है, ऐसा दिखलाते हैं –

निज आत्मा के सिवा ज्ञानि को अन्य वस्तु नहिं सुन्दर है।
जो परमार्थ जानते ज्ञानी विषयों में नहिं रमते हैं।।७७।।

अन्वयार्थ :– [आत्मानं] आत्मा को [मुक्त्वा] छोड़कर [ज्ञानिनां] ज्ञानियों को [अन्यद् वस्तु] अन्य वस्तु [सुंदरं न] अच्छी नहीं लगती, [तेन] इसलिये [परमार्थम् जानतां] परमात्म–पदार्थ को जाननेवालों का [मनः] मन [विषयाणां] विषयों में [न रमते] नहीं लगता।

भावार्थ :– मिथ्यात्व रागादिक के छोड़ने से, निज शुद्धात्म द्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर जिनका चित्त परिणत हो गया है, ऐसे ज्ञानियों को शुद्ध, बुद्ध परम स्वभाव परमात्मा को छोड़के दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती। इसलिये उनका मन कभी विषय–वासना में नहीं रमता। ये विषय कैसे हैं। जो कि शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु हैं। ऐसे ये भव–भ्रमण के कारण हैं, काम–भोगरूप पाँच इंद्रियों के विषय उनमें मूढ़ जीवों का ही मन रमता है, सम्यग्दृष्टि का मन नहीं रमता। कैसे हैं सम्यग्दृष्टि, जिन्होंने वीतराग

सहजानंद अखंड सुख में तन्मय परमात्मतत्त्व को जान लिया है। इसलिये यह निश्चय हुआ, कि जो विषय-वासना के अनुरागी हैं, वे अज्ञानी हैं, और जो ज्ञानीजन हैं, वे विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं।।७७।।

गाथा-७७ पर प्रवचन

७७। **आगे ज्ञानी जीवों के निज शुद्धात्मभाव के बिना अन्य कुछ भी आदरने योग्य नहीं है,...** आहाहा! यह शास्त्रज्ञान भी आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! प्रवचनसार में कहा है, परन्तु वह निज लक्ष्य से सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ है उसे निज लक्ष्य से शास्त्र अभ्यास करना चाहिए, ऐसा कहा है। प्रवचनसार (में कहा है।) परन्तु जिसका लक्ष्य ही ज्ञानानन्द और सहजानन्द प्रभु के ऊपर नहीं है, उसका शास्त्र अभ्यास परपदार्थ का हुआ। आहाहा! भाई! मार्ग तो ऐसा अपूर्व है। दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है। आहाहा!

निज शुद्धात्मभाव के बिना... ऐसा शब्द है न? **ज्ञानी जीवों के...** सम्यग्दृष्टि जीवों के, धर्मी जीवों के **निज शुद्धात्मभाव के बिना...** एक शुद्धात्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता का भाव, इसके **बिना अन्य कुछ भी आदरने योग्य नहीं है,...** आहाहा! पंच महाव्रत के परिणाम भी आदरनेयोग्य नहीं हैं। होते हैं। आदरणीय नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात है। परमात्मप्रकाश है न! आहाहा! **ज्ञानी जीवों के निज शुद्धात्मभाव के बिना अन्य कुछ भी आदरने योग्य नहीं है, ऐसा दिखलाते हैं—**

२०१) अप्पा मिल्लिवि णाणियहँ अण्णु ण सुंदरु वत्थु।
तेम ण विसयहँ मणु रमइ जाणंतहँ परमत्थु।।७७।।

आहाहा! अमृत बहाया है। '**अप्पा मिल्लिवि णाणियहँ**' ज्ञानी को आत्मा को छोड़कर '**अण्णु ण सुंदरु वत्थु**' आहाहा! '**तेम ण विसयहँ मणु रमइ**' इससे पाँच इन्द्रिय के विषय में जिसे रुचि से लीनता नहीं है, जिसे लीनता नहीं है। आहाहा! '**जाणंतहँ परमथु**' परमार्थ वस्तु भगवान को जानने से पर के विषय में बुद्धि रमती नहीं। आहाहा!

अन्वयार्थ :- आत्मा को छोड़कर... भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु स्वआश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! उसे छोड़कर **ज्ञानियों को अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती,...** आहाहा! लो, ठीक! आत्मा को छोड़कर देव-गुरु-शास्त्र भी निश्चय से अच्छे नहीं लगते। आहाहा! है? अपनी वस्तु के बिना अन्य वस्तु। अन्य वस्तु सब आ गयी। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र आ गये, पंच परमेष्ठी आ गये। आहाहा! **अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती,...** व्यवहार से कहो, निश्चय से सुन्दर है नहीं। आहाहा! ऐसा धर्म और कैसा होगा? यह सोनगढ़वाले तो निश्चय की ही एक बात करते हैं। परन्तु यह सोनगढ़ का है? यह तो दिगम्बर शास्त्र है। आहाहा! निश्चय अर्थात् सत्य और व्यवहार अर्थात् उपचारिक, आरोपित कथन। आहाहा!

मुमुक्षु : निश्चय और व्यवहार की बात....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कहाँ था उसे? निश्चय से तो सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं। ऐसी प्ररूपणा करते हैं कोई अभी, कि निश्चय सम्यग्दर्शन बिना के व्रत, तप सब निरर्थक हैं, ऐसी बात अभी चलती है? भाई ने लिखा है, कैलाशचन्दजी ने। अब कैलाशचन्दजी ने... लिखा है। अभी कोई ऐसा कहता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन बिना के व्रत और तप सब निरर्थक है। वे तो यह करते हैं, इसलिए सब अच्छा, बस। व्रत करे वहाँ समकित हो। इसके बिना व्रत हो? परन्तु तेरे व्रत कहाँ हैं? आहाहा! व्रत के परिणाम हैं, वे तो राग है और राग की रुचि है, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वहाँ समकित कैसा? समझ में आया? आहाहा!

अच्छी नहीं लगती,... सुन्दर-सुन्दर। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु सुन्दर है। आहाहा! जिसका ज्ञानी को प्रेम और आश्रय छूटता नहीं। समझ में आया? उसके बिना दूसरी चीज़ ज्ञानी को कुछ सुन्दर लगती नहीं। आहाहा! परमात्मप्रकाश तो होगा घर में? यह परमात्मप्रकाश है या नहीं वहाँ? सागर। यह पुस्तक-पुस्तक। पुस्तक तो है न वहाँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वाँचते हैं। यह तो वाँचते हैं। भाई गुजर गये, सुना न भाई?

अमरचन्दभाई। चिट्ठी आयी न? यहाँ आयी थी। नहीं? यहाँ गुजर गये। उनके भाई का पत्र है। सुन्दरलाल। सुन्दरलाल न? भाई आ गये। सुनते-सुनते... उसे रुचि बहुत। निश्चय की रुचि का प्रेम बहुत। यहाँ से निश्चय की बात आवे, वहाँ तो ऐसे प्रसन्न-प्रसन्न अभिनन्दन देने आवे अन्दर। आज तो बात बहुत अच्छी (आयी)। वह तो यहाँ से वह अटैक आया था न। उसी और उसी में फिर... कल पत्र आया थ, अमरचन्दजी गुजर गये। बेचारे यहाँ बैठते थे। सुनकर बहुत... ओहो! कितने ही उड़ गये। एक ओर चिमनभाई बैठते थे। उस ओर पोपटभाई, यहाँ डॉक्टर, अमरचन्द कितने ही (चले गये)।

मुमुक्षु : गिरधरभाई।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिरधरभाई। वे तो अभी आनेवाले हैं। डॉक्टर गये। ...भाई ने कहा था। गिरधरभाई बेचारे। उन्हें बहुत प्रेम-रस है। आनेवाले थे यहाँ शनिवार को रात्रि में पच्चीस लोग। इस शनिवार को आनेवाले हैं। परिवार आयेगा सब भाई और वे लोग। अपने कोई मुमुक्षु एक भी नहीं। होंगे कोई दूसरे। सब गिरधरभाई को यहाँ प्रेम था उसके कारण (आयेंगे)। आहाहा! सेठिया लोग और यहाँ कार्यकर्ता। प्रतिष्ठा बहुत। अन्त में तो बहुत प्रेम यहाँ बेचारे को। ओहोहो! ऐसी बात! श्रद्धा का प्रश्न करे। विकल्प से कुछ नहीं होता? अरे भाई! करनेयोग्य तो यह है। बाकी सब थोथा। कचरा चूथने का है। उकरडा समझते हो? ढ़ेर—कूड़े का ढ़ेर। कूड़े का ढ़ेर। बैल होता है न बैल? जोरदार हो वह सिर मारे। दीवार में सिर मारे तो सिर लगे नहीं। कचरे का ढ़ेर पोचा होता है। कूड़े का ढ़ेर। सिर मारे। इस संसार के कूड़े के ढ़ेर में अज्ञानी सिर मारता है। इसका करूँ... इसका करूँ... इसका करूँ... बैल जैसा है। आहाहा! क्या कहा?

अच्छी नहीं लगती, इसलिए परमात्म-पदार्थ को जाननेवालों का मन... आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप को जाननेवाला आत्मा, परमात्मस्वरूप अर्थात् स्वयं, हों! **परमात्म-पदार्थ को जाननेवालों का...** देखा! परमात्म (प्रकाश) है न यह? परमात्मप्रकाश है न यह? **मन विषयों में नहीं लगता।** आहाहा! विषयों में प्रेम नहीं होता। आहाहा!

भावार्थ :- मिथ्यात्व रागादिक के छोड़ने से, निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर जिनका चित्त परिणत हो गया है,... आहाहा! भ्रमणा। पुण्य में सुख है और पुण्य के फल की सामग्री में सुख है, यह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! बाहर की चीज़ आकर्षण करे, अन्दर की रह जाये। आहाहा!

मुमुक्षु : आकर्षण मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मानता है परन्तु आकर्षण... आहाहा! आता है न? लोटन बिल्ली। बिल्ली लोटन। वह जड़ी-बूटी देखकर ऐसे लोटा ही करे। इसी प्रकार यह अज्ञानी बाहर के पदार्थ की चीज़ अनुकूलता देखकर उसके पीछे मिथ्यात्वभाव से लोटा ही करता है। आहाहा! अरेरे!

मिथ्यात्व रागादिक के छोड़ने से, निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर... आहाहा! जिसे मिथ्यात्व—पर में सुखबुद्धि, पुण्य में धर्म—ऐसा मिथ्यात्वभाव जिसने छोड़ दिया है और रागादिक सम्बन्धी छोड़ दिया है। **शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर...** देखा! भगवान निज शुद्धात्मद्रव्य, वापस ऐसा। दूसरे भगवान परमात्मा, वे नहीं। **निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर जिनका चित्त परिणत हो गया है,...** जिसका ज्ञान निर्मल परिणत हुआ है। पर्याय में परिणत हुआ है, ऐसा। **ऐसे ज्ञानियों को...** आहाहा! **शुद्ध, बुद्ध परम स्वभाव परमात्मा को छोड़के...** ७७ है न? शुद्ध बुद्ध एकस्वभाव है। है पहली लाईन। '**शुद्धबुद्धैकस्वभावं**' है। संस्कृत की पहली लाईन। ७७ की। 'एक' (शब्द) रह गया है।

निज शुद्धात्मद्रव्य के यथार्थ ज्ञानकर जिनका चित्त परिणत हो गया है, ऐसे ज्ञानियों को शुद्ध, बुद्ध परम एक स्वभाव... वहाँ एक (रह गया है)। **परमात्मा को छोड़के दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती।** आहाहा! धर्मी को, सम्यग्दृष्टि को, धर्म की पहली सीढ़ीवाले को आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त कोई दूसरी चीज़ सुन्दर नहीं लगती। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध बुद्ध परमस्वभाव। लो! शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव, ऐसा लिया। आहाहा! **दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती। इसलिए उनका मन कभी विषय-वासना में नहीं रमता।** वहाँ कहीं उसकी रमणता विषय वासना सुखबुद्धि

से होती नहीं। आहाहा! वहाँ रमता नहीं। राग होता है परन्तु उसे दुःख मानता है। आहाहा! गजब बात, भाई! कहाँ बात ले गये! निज शुद्धात्म भगवान स्वभाव के आनन्द के अतिरिक्त धर्मी को कहीं रमणता दिखती नहीं। कहीं रमणता आती नहीं, ऐसा कहते हैं। रमणता तो आत्मा में होती है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की... आहाहा!

शुद्ध, बुद्ध परम एक स्वभाव परमात्मा को छोड़के दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती। इसलिए उनका मन कभी विषय-वासना में नहीं रमता। आहाहा! **ये विषय कैसे हैं जो कि शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु हैं।** आहाहा! पाँच इन्द्रियों के विषयों का प्रेम, वह आनन्द का शत्रु है। आहाहा! परमानन्द भगवान अतीन्द्रिय अनाकुलस्वरूप, उसे यह विषय के भाव सब आकुलतास्वरूप शत्रु है। आहाहा! तब कोई ऐसा कहे कि ये सब बाहर के विषय छोड़ दिये। स्त्री, पुत्र यह विषय छोड़े, यह छोड़े नहीं।

प्रवचनसार में नहीं आता वह? छह काय में से निवृत्त नहीं हुआ। आता है। प्रवचनसार, कौन सी गाथा? देखो! **जिन जीवों को...** अन्दर है। **स्यात्कार चिह्न ऐसे आगमपूर्वक तत्त्वार्थश्रद्धान लक्षणवाली दृष्टि से वे शून्य हैं। उन सबको संयम ही प्रथम तो सिद्ध नहीं होता।** उन्हें संयम ही नहीं होता। **स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण काया और कषाय के साथ एकत्व का विषय करनेवाले ऐसे जीव विषय की अभिलाषा का निरोध नहीं हुआ होने से...** देखा! आहाहा! जिसे राग का प्रेम है, राग की रुचि है, वह विषय की अभिलाषा से रहित है ही नहीं। वह विषय का अभिलाषी है ही। भले बाहर का छोड़ा हो। देखा! **विषय अभिलाषा का निरोध नहीं हुआ होने के कारण छह जीव की काया के घाती होकर सर्वत्र प्रवृत्ति करते होने से उन्हें निवृत्ति का अभाव है।** आहाहा!

जिन जीवों को स्व-पर का भेदज्ञान नहीं है... **राग और चैतन्य भगवान, दोनों भिन्न हैं, ऐसा नहीं है, उन्हें भले कदाचित् पाँच इन्द्रिय के विषयों का संयोग न दिखाई दे।** पाँच इन्द्रिय के विषयों का संयोग दिखाई न दे। **छह (काय) जीवों की द्रव्यहिंसा**

न दिखती हो और इस प्रकार संयोग से निवृत्ति दिखती हो, परन्तु काया, कषायों के साथ एकता माननेवाले... आहाहा! यह शरीर और कषाय आस्रव, अजीव और आस्रव दो लिये हैं। आहाहा! **एकता माननेवाले उन जीवों को वास्तव में पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा का निरोध नहीं है।** पाठ में है। पाठ में है, देखो!

स्व-पर के विभाग के अभाव के कारण काया और कषायों के साथ एकता का अध्यवसान करते हुए ऐसे जीवों को विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं हुआ होने के कारण। देखा! नग्नमुनि है, दिगम्बर है, परन्तु राग का प्रेम है, सम्यग्दर्शन नहीं। आहाहा! उन्हें पाँच इन्द्रियों के विषयों की अभिलाषा नहीं होने के कारण निरोध नहीं है। छह जीवनिकाय को एकेन्द्रिय को भी बाहर में घातता नहीं, परन्तु कषाय के साथ प्रेम है, वह छह काय की हिंसा से निवृत्त नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

द्रव्य हिंसा न दिखती हो, संयोग से निवृतित दिखती हो परन्तु काया, कषाय से एकता माननेवाले उन जीवों को वास्तव में पाँच इन्द्रिय के विषय की अभिलाषा से रहित नहीं है। हिंसा का जरा भी अभाव नहीं है। कहो, इसके लिये निर्दोष आहार ले। यह तो चौका बनाकर लेते हैं, उनका तो व्यवहार भी झूठा है। समझ में आया? वह तो व्यवहार भी झूठा है। आहाहा! परन्तु जो निर्दोष—उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले। निर्दोष ले। तथापि जिसे राग की रुचि है, वह छह काय की हिंसा से निवृत्त नहीं हुआ। आहाहा! क्योंकि अपनी हिंसा करता है न? आहाहा! (छह काय में) स्वयं है न? आहाहा! **इस प्रकार परभाव से बिल्कुल निवृत्ति नहीं है।** है? पाठ में है। टीका का अर्थ है यह। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) प्रवचनसार, (गाथा २३६)। समझ में आया?

परमात्मा को छोड़के दूसरी कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं भासती। इसलिए उनका मन कभी विषय-वासना में नहीं रमता। ये विषय कैसे हैं? जो कि शुद्धात्मा की प्राप्ति के शत्रु हैं। ऐसे ये भव-भ्रमण के कारण हैं, काम-भोगरूप पाँच इन्द्रियों के विषय उनमें मूढ़ जीवों का ही मन रमता है,... आहाहा! रति मानकर मूढ़ जीव उनमें रमते हैं। ज्ञानी विषयों में रमते नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

वीर संवत् २५०२, मागसर कृष्ण ३, गुरुवार
दिनांक-०९-१२-१९७६, गाथा-७७ से ७९, प्रवचन-१५४

परमात्मप्रकाश, ७७ का अन्तिम। **कैसे हैं सम्यग्दृष्टि,...** यह न? सम्यग्दृष्टि किसे कहा जाता है और सम्यग्दृष्टि हो तो धर्म की दशा कैसी प्रगट हो? उसे राग की रुचि और अभिलाषा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि **जिन्होंने वीतराग सहजानन्द एक अखण्ड सुख में तन्मय परमात्मतत्त्व को जान लिया है।** आहाहा! सम्यग्दृष्टि—धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म की पहली शुरुआत (करनेवाले) कैसे हैं वे? कि जिन्हें वीतराग सहजानन्द। राग रहित स्वाभाविक जो आत्मा का आनन्द। एक अखण्ड, अखण्ड अभेद सुख है। आहाहा! उस **सुख में तन्मय परमात्मतत्त्व को जान लिया है।** आहाहा! देखा! यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या! यह तो कहे, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन। नौ तत्त्व के भेद की श्रद्धा, वह सम्यग्ज्ञान। अब व्रत और संयम लो। मूल में पूरा विवाद।

सम्यग्दृष्टि उसे कहते हैं, **जिन्होंने वीतराग...** स्वाभाविक आनन्द। चैतन्य में अतीन्द्रिय आनन्द सहजस्वरूप भगवान आत्मा के एक **अखण्ड सुख में...** आहाहा! एकरूप सामान्य **सुख में तन्मय...** उसमें तन्मय भगवान आत्मा है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में सुख का तन्मयपना प्रभु आत्मा है। यह त्रिकाल की बात की। ऐसे **परमात्मतत्त्व को...** यह परमात्मतत्त्व की व्याख्या की कि **वीतराग सहजानन्द (एक) अखण्ड सुख में तन्मय...** ऐसा जो आत्मा। आहाहा! जो यह आत्मा है, वह सहज आनन्द वीतरागी आनन्द (स्वरूप है)। इन्द्रिय का आनन्द, वह तो राग का—जहर का आनन्द है। आहाहा! यहाँ तो वस्तु स्वयं वीतरागी सहजानन्द एक अखण्ड सुख में... आहाहा! तन्मय ऐसा जो परमात्मा, अपना स्वभाव। आहाहा! उसे जिसने जान लिया है। देखो! यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या और आत्मा की व्याख्या। दो बातें (की हैं)।

कैसा है आत्मा? और उसकी प्रतीति करनेवाला सम्यग्दृष्टि कैसा है? यह बात है। आहाहा! स्वाभाविक वीतराग सहजानन्द एक अखण्ड सुख में तन्मय भगवान आत्मा अनादि है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वभाव से तन्मय—उसरूप से भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! ऐसा जो यह आत्मा—ऐसा जो परमात्मा स्वयं। आहाहा! ऐसे तत्त्व

को **जान लिया है।** यह पर्याय। समझ में आया? वीतरागी सहजानन्द एक अखण्ड सुख में तन्मय परमात्मा, यह वस्तु—यह आत्मा। उसे जान लिया, यह पर्याय—सम्यग्दर्शन। आहाहा!

इसलिए यह निश्चय हुआ, कि जो विषय-वासना के अनुरागी हैं,... विषय-वासना में जिसकी रुचि है, वह अज्ञानी है। है? विषय-वासना का राग हो, परन्तु राग में रुचि नहीं। आहाहा! समझ में आया? अनुरागी नहीं। उसे राग के पीछे... पीछे... पीछे... प्रेम में बँध गया नहीं और प्रेम में बँधा वह अज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए यह निश्चय हुआ कि जो विषय-वासना के अनुरागी हैं, वे अज्ञानी हैं,...** आहाहा! **और जो ज्ञानीजन हैं, वे विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं।** ज्ञानी हैं, वे विषय-वासना की रुचि से विरक्त हैं। विषय की सामग्री हों और विषय की वासना भी हो, परन्तु उसका अनुरागी नहीं, उसका प्रेमी नहीं, उसमें उसका प्रेम नहीं। आहाहा! गजब व्याख्या! कहो।

उसमें आया था न यह? २३६ में नहीं। प्रवचनसार। जिसे काया और राग / कषाय की रुचि है, एकताबुद्धि है, वह भले बाह्य से छहकाय की हिंसा न करता हो, पाँच इन्द्रिय के विषय भी वह भोगता न हो, नग्न दिगम्बर हो, पंच महाव्रत पालता हो, परन्तु वह पंच महाव्रत का राग है, उसकी जिसे रुचि है और कषाय के भाव की जिसे रुचि है, वह अज्ञानी छहकाय का घातक ही है। बाह्य में छहकाय की हिंसा बिल्कुल न करता हो। परन्तु स्वरूप का घातक है, वह छहकाय का ही घातक है। आहाहा! समझ में आया? सहजात्मस्वरूप वीतराग सुखानन्द से भरपूर तन्मय भगवान का जिसे प्रेम नहीं, रुचि नहीं, अवलम्बन नहीं, आश्रय नहीं... आहाहा! और जिसे राग की रुचि है, राग का आश्रय है, राग में अवलम्बन है, राग में प्रीति से बँध गया है... आहाहा! वह छहकाय का घातक है। और पाँच इन्द्रिय के विषयों का वह अभिलाषी है। ले! हजारों रानियाँ छोड़कर, विषय छोड़कर, बालब्रह्मचारी हो, परन्तु जिसे राग और कषाय की एकताबुद्धि है... आहाहा! वह छहकाय का घातक और पाँच इन्द्रिय के विषयों का अभिलाषी है। धन्नालालजी! आहाहा! यह बात।

मुमुक्षु : विषय-कषाय का अंकुर न हो, फिर बाह्य का त्याग भी न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्य त्याग न हो। विषय–कषाय की रुचि नहीं। बाह्य त्याग में छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, परन्तु अन्दर विषय की रुचि, उसके स्वाद में मजा है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

रुचि और आसक्ति दोनों में अन्तर है। जिसे राग की रुचि है, उसे आत्मज्ञान नहीं और इसे आत्मा की श्रद्धा भी नहीं। और जिसे आत्मा परमात्म सहजात्म सुख से तन्मय की रुचि / दृष्टि है, उसे राग की रुचि नहीं है। राग का भाव हो। आहाहा! चौथे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान की बात है। तीर्थंकर जैसे तीन ज्ञान और क्षायिक समकित लेकर आवे और फिर विवाह करे, छियानवें हजार स्त्रियाँ से विवाह करे चक्रवर्ती, परन्तु विषय में प्रेम नहीं, रुचि नहीं। आहाहा! दृष्टि में आत्मा की दौलत देखी है। दृष्टि से भगवान को देखा है। आहाहा! इससे उसे विषय के प्रति अनुराग, अनुराग (कि) यह ठीक है, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है। बहुत कितना अन्तर पड़ता है, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

और जो ज्ञानीजन हैं, वे विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं। इसका अर्थ ऐसा नहीं कि उसे विषय की वृत्ति ही उसे नहीं है। अन्दर विषय के प्रेम से विरक्त, दृष्टि (अपेक्षा) से है। आहाहा! समझ में आया? और बाहर के विषय से विरक्त होने पर भी जिसे राग की रुचि है, वह विरक्त है ही नहीं। आहाहा! और बाह्य में चक्रवर्तीपद, तीर्थंकरपद है न? शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ। वे कामदेव पुरुष थे, तीर्थंकर थे, चक्रवर्ती थे, तथापि उन्हें विषयों में रुचि और प्रेम नहीं था। आहाहा! उन्हें विषयों में दुःख लगता था। आहाहा! छियानवें हजार स्त्रियाँ। एक स्त्री की (पटरानी की) हजार देव सेवा करें, तथापि उसके साथ में रमणता में उन्हें प्रेम नहीं था, रुचि नहीं थी। आहाहा! और जो बाह्य त्याग करके बैठा, परन्तु जिसे राग की रुचि और प्रेम है, वह पाँचों ही इन्द्रिय के विषयों का अभिलाषी है। आहाहा! समझ में आया? कठिन बातें, बापू! दृष्टि और दृष्टि का विषय, आसक्ति और उसका फल, यह अलग चीज़ है। ज्ञानी को राग की आसक्ति आवे, उसका फल बन्ध भी हो। समझ में आया? परन्तु उस बन्ध में भी अल्प स्थिति और अल्प रस पड़ता है। क्योंकि राग का रस नहीं है। रस भगवान आत्मा का है। आहाहा! समझ में आया?

इस मूल बात को भूलकर फिर यह सब बातें व्रत, तप और संयम और... परन्तु कहाँ थे? अभी दृष्टि में आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्द में तन्मय प्रभु है। तन्मय—उस स्वरूप से ही है। अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप से भगवान आत्मा अन्दर है। उसका आश्रय होकर रुचि हुई नहीं, उसके बाह्य के त्याग क्या करे? समझ में आाय? वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा! कठिन बातें, बापू! वीतराग का धर्म रुचि में समझना, (वह) अलौकिक बात है, भाई! आहाहा!

विषय-विकार से सदा विरक्त ही हैं। उसमें अर्थ करते हैं न ७२ गाथा। कर्ता-कर्म (अधिकार) में। विषय से निवृत्त नहीं, वह ज्ञानी नहीं। उसका अर्थ यह करते हैं कि यह स्त्री, पुत्र, परिवार विषय छोड़े तो वह ज्ञानी है। ७२ गाथा। ऐसा नहीं है। जिसे अभिप्राय में से विषय की रुचि छूट गयी है। ७२ (गाथा)। बड़ा अर्थ यह करते हैं, रतनचन्दजी मुख्त्यार है न? आहाहा! तब तो फिर भगवान तीर्थंकर छियानवें हजार (स्त्रियों के साथ) तो विवाह करते हैं। उनका त्याग हो तो ही समकिती ज्ञानी? उन्हें त्याग तो नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन क्षायिक समकितदृष्टि तो तीर्थंकर कितने ही। कोई और यह क्षयोपशम हो, श्रेणिक राजा जैसे। वह क्षायिक है। यह कृष्ण जैसे क्षयोपशम लेकर आवे। आहाहा! तथापि पर के प्रेम की रुचि—मजा है, यह बात ज्ञानी को उड़ गयी है। आहाहा!

नोआखली में हुआ था न? नोआखली नहीं? मुसलमानों का बहुत जोर था हिन्दुओं के ऊपर। फिर गाँधी गये थे। गाँधी बेचारे। मुसलमान... आहाहा! २५ वर्ष की बहिन और उसका २५ वर्ष का भाई। दोनों को नग्न करके ऐसे इकट्ठा करे। हाय... हाय...! पृथ्वी मार्ग दे तो समा जायें, उसमें क्या करे अभी? रस है?

मुमुक्षु : अभिप्राय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिप्राय नहीं। अरे! यह नहीं, बापू! अर र! माता चालीस वर्ष की और स्वयं बीस वर्ष का। उन दोनों को नग्न करके... अरे रे! दोनों की इन्द्रियाँ जोड़े। आँख में से आँसू की धारा चले। रुचि नहीं। क्रिया बलजोरी से ऐसी होती है। आहाहा!

इसी प्रकार जिसे आत्मा सहजानन्द भगवान का प्रेम अन्दर से जगा और जिसने परखकर परमानन्द को दृष्टि में लिया है,... यह आयेगा अभी... उसे भले राग का भाव हो, परन्तु उसकी रुचि नहीं, मजा नहीं दिखता। दुःख देखता है। आहाहा! और अज्ञानी बाहर से छोड़कर बैठा, परन्तु जिसे अन्दर में शुभराग का प्रेम है, रुचि है, हितबुद्धि है, उस राग से मुझे कल्याण होगा... आहाहा! राग से मुझे निश्चय सम्यग्दर्शन होगा, व्यवहार से... आहाहा! वह अज्ञानी बाह्य से त्यागी हो, तथापि वह मिथ्यादृष्टि छहकाय का घातक, पाँच इन्द्रिय के विषय का अभिलाषी है। विषयों की सामग्री का कारण जो शुभभाव, (उस) शुभभाव का जिसे प्रेम है, उसे सामग्री का प्रेम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जिसे पुण्य के फल मीठे लगते हैं, उसे पुण्य मीठा लगता है। आहाहा! ज्ञानी को पुण्य के फल हो, परन्तु उसे जहर जैसे लगते हैं। अरे! विषय की अनुकूल सामग्री में घिर गया हूँ, दुःख में हूँ, ऐसा मानता है। दुःख में हूँ। आहाहा! समझ में आया? बात में बहुत अन्तर, भाई! दृष्टि और दृष्टि का विषय। आहाहा!

विकार से सदा विरक्त ही हैं। यह उसकी व्याख्या है। ज्ञानी विषय के प्रेम से तो विरक्त ही है। उसमें मजा से तो विरक्त है। आहाहा! समझ में आया? अरे! ऐसा मार्ग भगवान! यहाँ तक लिया। सहजात्म सुख के सागर से तन्मय प्रभु विराजता है। आहाहा! आनन्द से एकमेक स्वरूप भगवान आत्मा का है। अतीन्द्रिय आनन्द से। अतीन्द्रिय आनन्द से भगवान आत्मा तन्मय एकस्वरूप है। आहाहा! उसकी जिसे दृष्टि हुई, उसे विषय की अभिलाषा छूट जाती है। समझ में आया? आहाहा!

श्रीमद् में आता है न 'जो नव वाड विशुद्ध से, पाले शील सुखदायी; भव उसका लय फिर रहे,...' परन्तु वह तो सम्यग्दर्शनसहित की बात है। समझ में आया? तत्त्ववचन... ऐ भाई! ऐसा है न? तत्त्ववचन भव उसका... तत्त्व वस्तु। और वहाँ तो ऐसा भी कहा कि 'पात्र होने सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान।' पात्र होने के लिये सदा ब्रह्मचर्य सेवन करो। यह तो कौन सा ब्रह्मचर्य? राग के प्रेम से रुचि छूट जाना, उसे ब्रह्मचर्य कहा जाता है। समझ में आया? 'पात्र होने सेवो सदा ब्रह्मचर्य मतिमान।' तब ब्रह्मचर्य पालन करे,

वह पात्र हो। तब यहाँ छियानवें हजार स्त्रियाँ भोगे, वह पात्र नहीं? वह तो समकिती है। समझ में आया? आहाहा! वस्तु के अर्थ में बड़ा अन्तर। अपनी दृष्टि से उल्टे अर्थ करना। आहाहा! 'पात्र होने को सदा सेवो ब्रह्मचर्य मतिमान।' कौन सा (ब्रह्मचर्य)? समझ में आया? यह राग की एकताबुद्धि का व्यभिचार, उसे छोड़। आहाहा! ऐसे तो छियानवें हजार स्त्रियाँ (हों)। समकिती तीर्थंकर तीन लोक के नाथ। आहाहा! कहीं सुख नहीं। मेरे आत्मा के आनन्द के अतिरिक्त किसी चीज़ में मुझे सुख भासित नहीं होता। सुख के कारण मुझमें पड़े हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वे सुख के कारण हैं। सुखस्वरूप भगवान है। आहाहा! और यह सब साधन दुःख के कारण हैं और उसमें वृत्ति उठे, वह दुःखरूप है। आहाहा! समझ में आया?

'पकड़ पकड़ में फेर है।' बिल्ली उसके बच्चे को पकड़े और बिल्ली चूहे को पकड़े। है तो दोनों मुख में। चूहा भी मुख में होता है और उसका बच्चा भी मुख में होता है। चूहे को पकड़े तो दबाव देती है। बच्चे को पकड़ती है तो पोला रखती है। बिल्ली। आहाहा! यह आता है। 'पकड़ पकड़ में फेर है।' यह हमारे गाते थे वहाँ। एक पोपटभाई थे, वढवाण। बोटाद में थे। उनके लड़के की बहू की एक छोटी लड़की थी बेचारी, वह बोलती, बहुत बोली ऐसा। परन्तु क्षयरोग हो गया। सात-आठ वर्ष की लड़की मर गयी। 'पकड़ पकड़ में फेर' ऐसा बहुत बोलती वहाँ। (संवत्) १९८० के वर्ष। बोटाद। आहाहा! बिल्ली चूहे को पकड़े और चूहे को पकड़े, उसमें दोनों में (अन्तर है)। पकड़ तो मुख में है ऐसे। इसी प्रकार ज्ञानी को राग होता है, परन्तु उसकी पकड़ में अन्तर है। समझ में आया? अज्ञानी को राग है और उसने पकड़ा है अच्छा मानकर। आहाहा! ऐसा मार्ग है। आहाहा! कितनी व्याख्या की है!

कैसे हैं सम्यग्दृष्टि,... आहाहा! **जिन्होंने वीतराग सहजानन्द (एक) अखण्ड सुख में तन्मय परमात्मा...** ऐसा अपना स्वभाव अर्थात् अपना रूप, वह परमात्मा। आहाहा! उसे जिसने जान लिया है कि यह भगवान आनन्दस्वरूप है। आहाहा! उस व्यवहाररत्नत्रय के राग की भी जिसे रुचि छूट गयी है। होता है। व्यवहाररत्नत्रय का राग होता है। आहाहा! परन्तु उसकी रुचि छूट गयी है। पोषाण-पोषाण में नहीं, वह राग

पोषाता नहीं। आहाहा! और अज्ञानी को राग शुभ हो, परन्तु वह पोषाता है, उसे ठीक पड़ता है। उसका पोषाण है। उसका व्यापार में पोषाण लगता है, लाभ लगता है। आहाहा! समझ में आया?

वह **सदा विरक्त ही हैं।** इसकी व्याख्या। वे कहे, विषय छोड़कर बैठे, वह सदा विरक्त है। भाई! ऐसा नहीं, बापू! तो पूरा सिद्धान्त बदल जाये। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर क्षायिक समकित लेकर आते हैं और (चक्रवर्ती हों तो) छियानवें हजार स्त्रियों की विषय-वासना की वृत्ति है, मिठास नहीं। मिठास उड़ गयी है। मिठास आत्मा में है। अज्ञानी छोड़कर बैठा है, परन्तु विषय में राग में मिठास है। राग में मिठास है, उसे पाँच इन्द्रिय के विषय में मिठास ही है उसे। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, प्रभु! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, सन्त दिगम्बर सन्त ऐसा फरमाते हैं। आहाहा!

गाथा - ७८

अथ तमेवार्थं दृष्टान्तेन समर्थयति -

२०२) अप्पा मिल्लिवि णाणमउ चित्ति ण लग्गइ अण्णु।
मरगउ जें परियाणियउ तहुँ कच्चें कउ गण्णु।।७८।।

आत्मानं मुक्त्वा ज्ञानमयं चित्ते न लगति अन्यत्।
मरकतः येन परिज्ञातः तस्य काचेन कुतो गणना।।७८।।

अप्पा इत्यादि। अप्पा मिल्लिवि आत्मानं मुक्त्वा। कथंभूतम्। णाणमउ ज्ञानमयं केवलज्ञानन्तर्भूतानन्तगुणमयं चित्ति मनसि ण लग्गइ न लगति न रोचते न प्रतिभाति। किम्। अण्णु निजपरमात्मस्वरूपादन्यत्। अत्रार्थे दृष्टान्तमाह। मरगउ जें परियाणियउ मरकतरत्नविशेषो येन परिज्ञातः। तहुँ तस्य रत्नपरीक्षापरिज्ञानसहितस्य पुरुषस्य कच्चें कउ गण्णु काचेन किं गणना किमपेक्षा तस्येत्यभिप्रायः।।७८।।

आगे इसी कथन को दृष्टांत से दृढ़ करते हैं -

छोड़ ज्ञानमय निज आत्मा को और कहीं मन नहीं लगे।
मरकत मणि को जो जाने वह कभी काँच को नहीं लहे।।७८।।

अन्वयार्थ :- [ज्ञानमयं आत्मानं] केवलज्ञानादि अनंतगुणमयी आत्मा को [मुक्त्वा] छोड़कर [अन्यत्] दूसरी वस्तु [चित्ते] ज्ञानियों के मन में [न लगति] नहीं रुचती। उसका दृष्टांत यह है, कि [येन] जिसने [मरकतः] मरकतमणि (रत्न) [परिज्ञातः] जान लिया, [तस्य] उसको [काचेन] काँच से [किं गणनं] क्या प्रयोजन है?

भावार्थ :- जिसने रत्न पा लिया, उसको काँच के टुकड़ों की क्या जरूरत है? उसी तरह जिसका चित्त आत्मा में लग गया, उसके दूसरे पदार्थों की वाँछा नहीं रहती।।७८।।

गाथा-७८ पर प्रवचन

आगे इसी कथन को दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं— इस बात को दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं। ७८।

२०२) अप्पा मिल्लिवि णाणमउ चित्ति ण लग्गइ अण्णु।
मरगउ जें परियाणियउ तहुँ कच्चें कउ गण्णु।।७८।।

आहाहा! दृष्टान्त तो देखो! **केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी आत्मा को...** केवलज्ञान केवल अर्थात् वह पर्याय नहीं। अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द आदि अनन्त गुणमय भगवान। ज्ञानमय शब्द लिया है न? इससे फिर ज्ञान आदि अनन्त गुण, ऐसा लेना। ज्ञान की प्रधानता से पूरा कथन आता है। ज्ञान, वही आत्मा, ऐसा। बाकी तो अनन्त गुण नहीं? आहाहा!

केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी आत्मा... अनन्त गुणवाला, ऐसा भी नहीं, अनन्त गुणमय। आहाहा! भगवान आत्मा केवलज्ञान—अकेला ज्ञान, अकेला दर्शन, अकेला आनन्द, अकेली स्वच्छता, अकेली प्रभुता। आहाहा! ऐसे ज्ञान आदि अनन्तगुणमय, गुणमय तन्मय, गुणमय है। गुणवाला, ऐसा भी नहीं। आहाहा! अरे! आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती। और यह धर्म करो, संयम पालो और यह करो। बिना एक के शून्य हैं सब। आहाहा!

केवलज्ञानादि अनन्त गुणमयी आत्मा को छोड़कर दूसरी वस्तु ज्ञानियों के मन में नहीं रुचती। देखा! मन में रुचती नहीं। आहाहा! एक रुचे भगवान आनन्दस्वरूप। धर्मी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में ज्ञान—केवलज्ञानमय आदि अनन्तगुणमय प्रभु का जिसे अनुभव और दृष्टि हुई है, उसे भगवान आत्मा के अतिरिक्त कोई बात रुचती नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! **दूसरी वस्तु...** भगवान आनन्दमय, ज्ञानमय ऐसे अनन्तगुणमय प्रभु, उसकी रुचि में, पोषाण में तो भगवान ही है। इसके अतिरिक्त कोई बात शुभराग, शुभराग या शरीर की अनुकूल सामग्री में कहीं उसका मन नहीं लगता अर्थात् नहीं रुचता। लगता नहीं, ऐसा कहा। देखा! **'न लगति'** मन लगता नहीं कहीं। आहाहा!

राजकुँवर होता है, हजारों रानियाँ होती हैं और नीचे नीलमणि के... क्या कहलाते हैं तुम्हारे? टाईल्स होती है। नीलमणि की टाईल्स। जब आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है। आहाहा! और उस आनन्द का उग्र स्वाद लेने के लिये चारित्र ग्रहण करता है।

आनन्द का विशेष स्वाद लेने के लिये चारित्र लेता है। वह माता से कहता है। माता जब आमन्त्रण करती है, बेटा! उम्र छोटी, रानियाँ ३२ वर्ष की जवान सैकड़ों, हजारों। भाई! तुझे दुःख होगा। बाहर में कौन तुझे मदद करेगा? आहार-पानी कैसे मिलेंगे? तू राजकुमार। यह रानियाँ छोड़कर भाई! दुःखी होगा। माता! मेरा मन अन्यत्र कहीं रुचता नहीं। मेरा नाथ मुझे मिला है, आनन्द का नाथ। आहाहा! उसके अतिरिक्त मुझे कहीं पोषाता नहीं। यह स्त्रियाँ, इज्जत-कीर्ति... आहाहा! माता! मुझे अन्दर रुचता नहीं। आहाहा! मेरा रुचना-पोषाण तो प्रभु आनन्द में आ गया है। आहाहा! भाई! तुझे सर्दी-गर्मी। चाहिए हो गर्म और मिलेगा ठण्डा। चाहिए हो ठण्डा और मिलेगा गर्म। खाने बैठे तब यह रोटी गर्म-ताजा बनाकर दे न? मैं आऊँगा तब रोटी बनाना, कहे। दुकान से आऊँ तब बनाना अर्थात् सीधे तवे में से गर्म-गर्म थाली में पड़े। आहाहा! बेटा! ऐसी सुविधा जायेगी, भाई! तुझे कहाँ मिलेगी? बापू! माता! अब मुझे कहीं प्रेम नहीं। मेरा प्रेम तो भगवान में है। उसे पुष्ट करने के लिये तो अब निकलता हूँ। आहाहा! राग पालने के लिये, ऐसा नहीं। मेरा अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसे पर्याय में पुष्ट करने के लिये मैं तो निकलता हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

आनन्द भासित होता है। हम तो जंगल में आनन्द में रहेंगे। जंगल में भी आनन्द में रहूँगा, माता! तेरी यह सब सुविधायें, ताजा-ताजा रोटियाँ और दाल और चूरमा के लड्डू वह सब उस ताजा में दुःख है, माता! हमारा नाथ अन्दर आनन्द से भरा है। उस आनन्द को चाटने के लिये निकलते हैं अब। सेठ! आहाहा! चारित्र अर्थात् क्या? आनन्द में रमणता करना, इसका नाम चारित्र। आहाहा! अकेले चल निकलते हैं ऐसे। आहाहा! अरे! आठ-आठ वर्ष के बालक, आत्मानुभव होता है और आगे बढ़ना चाहते हैं। आहाहा! एक मोरपिच्छी छोटी, एक कमण्डल, जंगल में अकेले चले जाते हैं। आहाहा! बाघ और भालू, सिंह (हो, उस जंगल में) आनन्द की लहर करते हुए चले जाते हैं। आहाहा! शरीर नग्न, वस्त्र का टुकड़ा नहीं... आहाहा! आहार लेने का पात्र नहीं। हाथ...

आत्मा क्या खेल करे! वह आता है न? अतिमुक्तकुमार का। श्वेताम्बर में

(आता है)। छोटी उम्र में दीक्षा लेता है। सब कल्पित बनाया है। छोटी उम्र, बालक दीक्षा लेता है, फिर जंगल में जाता है। साधु के साथ बाहर जंगल—दस्त (के लिये जाता है)। जहाँ पीछे आवे, वहाँ बरसात बहुत। पानी... पानी... पानी... अब छोटी उम्र का बालक है। आठ वर्ष का, नौ वर्ष का। इसलिए हाथ में वह पात्र (था)... वह तो श्वेताम्बर है न? ऐसा मानते थे न। पात्र साथ में था तो पानी बहता था न? उसने पाल बाँधी। और पात्र रखा उसमें। 'नाव तरे रे मोरी नाव तरे, अेम मुनिवर जल सु खेल करे।' आहाहा! 'मुनिवर दोही नानडिया बाळा' यह गजसुकुमार और यति। वह राणपुर में आया था एक बार (संवत्) १९८४ में वहाँ। भाई थे वहाँ। वे क्या कहलाते हैं? छापनेवाले।

मुमुक्षु : अमृतलाल सेठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अमृतलाल सेठ। अमृतलाल-अमृतलाल। (संवत्) १९८४ की बात है। राणपुर। उस बेचारे को तो कुछ खबर नहीं, परन्तु ऐसी बात आवे तो जरा ऐसे... कहा, देखो तो सही क्या चलता है यह? वह तो श्वेताम्बर की बात है।

तथापि यहाँ अब हमारे तो दूसरा कहना है। आनन्द में खेलता आत्मा नाव अन्दर में चलती है जब... आहाहा! मुनिवर खेल करे। ऐसे शरीर से बालक हो, परन्तु अन्दर आनन्द की लहर में खेल करता होता है। समझ में आया? यह चारित्र, वह दुःखदायक नहीं। आता है न? त्याग वैराग्य। क्या? दुःखदायक देखे... नहीं? छहढाला में। 'आतम हित हेतु त्याग और वैराग्य' उसे दुःखदायक मानता है। आहाहा! यहाँ तो आनन्द का नाथ जहाँ जगता है... आहाहा! उसे दृष्टि में जहाँ भगवान परमात्मा सहजात्म सुख से तन्मय पड़ा है... आहाहा! उसके विशेष अनुभव के लिये निकलता है... आहाहा! कहते हैं, उसे पर में कहीं रुचि नहीं लगती। है?

भगवान आनन्दमय को छोड़कर... आहाहा! **दूसरी वस्तु ज्ञानियों के मन में नहीं रुचती।** आहाहा! **उसका दृष्टान्त यह है कि जिसने मरकतमणि (रत्न) (परीक्षा करके) जान लिया,...** संस्कृत में परीक्षा शब्द पड़ा है अन्दर, भाई! परीक्षा शब्द इसमें रह गया है। संस्कृत में है। **'रत्नपरीक्षापरिज्ञानसहितस्य'** रत्न की परीक्षा ज्ञानसहित की है

जिसने। आहाहा! संस्कृत में है। ज्ञान द्वारा रत्न की परीक्षा की है, जानकर कि यह रत्न। मरकत मणि। आहाहा! **जिसने मरकतमणि (रत्न) (परीक्षा करके) जान लिया,...** देखा! परीक्षा करके जान लिया है। आहाहा! मणिरत्न। ऐसा का ऐसा नहीं, ऐसा। आहाहा! इसी प्रकार भगवान को परीक्षा करके जान लिया है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो दृष्टान्त है, हों! फिर सिद्धान्त आयेगा। **उसको काँच से क्या प्रयोजन है ?** है ? **'कच्चें कउ गण्णु'** है न ? **'कच्चें कउ गण्णु'** काँच की क्या गिनती ? आहाहा! काँच के टुकड़े पड़े हों हजारों-लाख, परन्तु जिसने मणिरत्न को परीक्षा करके जान लिया है, अब उसे काँच का क्या काम है ? आहाहा! समझ में आया ? मार्ग, बापू! ऐसा है। आहाहा! परीक्षा करके जिसने मणिरत्न को जान लिया है, परीक्षा करके जान लिया है... आहाहा! उसे काँच के टुकड़ों से क्या काम है अब ? लाखों-करोड़ों काँच के टुकड़े हों। आहाहा!

भावार्थ :- जिसने रत्न पा लिया... परन्तु इस प्रकार से, हों! परीक्षा करके, जान लिया यह। आहाहा! भगवान आत्मा को आनन्द के अनुभव से परीक्षा करके जान लिया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जैसे काँच की परीक्षा करके जाना है, वैसे भगवान आत्मा को सम्यग्दृष्टि ने परीक्षा करके जाना है। अन्दर में एकाग्र होकर आनन्द का स्वाद आया है, (उससे) जाना है कि यह आत्मा। आहाहा! समझ में आया ? ऐसी बातें, भाई! एकदम रूखी लगे। वह कुछ करे, ऐसा करो, वैसा करो, बापू! ज्ञानस्वरूप करे क्या ? भगवान ज्ञानस्वरूप जाने या करे किसी का ? आहाहा! अरे रे! क्या हो ? अनादि से स्वस्वरूप की परीक्षा से जाने बिना वह हैरान-हैरान है। यह व्रत, नियम और संयम पाले परन्तु वे सब दुःखी हैं बेचारे। आहाहा! और वापस फल में स्वर्गादि में जायेंगे तो दुःखी हैं। आहाहा!

जिसने रत्न पा लिया, उसको काँच के टुकड़ों की क्या जरूरत है ? आहाहा! **उसी तरह जिसका चित्त आत्मा में लग गया,...** आहाहा! जिसका चित्त अर्थात् ज्ञान जिसके आत्मा में लग गया है। आहाहा! परीक्षा करके आत्मा को जाना है, उसका चित्त तो अब वहाँ चिपट गया है। आहाहा! **उसके दूसरे पदार्थों की वांछा नहीं रहती।** है ?

उसे दूसरे किसी भी पदार्थ की, शुभराग की भी वांछा नहीं। आहाहा! दया, दान, भक्ति का भाव आवे सही, परन्तु उसकी भी वांछा नहीं कि यह हो तो ठीक। तब तो वह तो राग की भावना हो गयी। वह तो आस्रव की भावना हुई। आहाहा! समझ में आया? ऐसा धर्म किस प्रकार का? कितने ही ऐसा कहते हैं, यह नया निकाला। अरे! नया नहीं, बापू! अनन्त भगवान तीर्थंकर कह गये हैं। आहाहा! अनन्त सर्वज्ञों का कहा हुआ मार्ग है यह तो। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा पुराना और सम्यग्दर्शन नया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु अनादि की है, उसका भान हुआ, यह फिर नया कहो। पर्याय से। आहाहा! मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं लिखा? कि तुमने तो यह नया मार्ग निकाला। नवीन मार्ग। उसमें है, भाई! तब उसका उत्तर दिया है कि भाई! अनादि का सत् मार्ग है, उसमें खोटा मार्ग चलाया था, उसमें से हमने सच्चा निकाला, वह कहीं नया नहीं है। है उसमें? '***परम्परा छोड़कर नवीन मार्ग में प्रवर्तना योग्य नहीं है।***' मैंने कहा, कहाँ होगा? यह पृष्ठ आया। ओहोहो! देखो! अरे! कुदरत साथ में है न! आहाहा! देखो!

प्रश्न : परम्परा छोड़कर नवीन मार्ग में प्रवर्तना योग्य नहीं हैं। ...मैंने कहाँ होगा? यही पृष्ठ आया। कुदरत साथ है न?

उत्तर : यदि अपनी बुद्धि से नवीन मार्ग पकड़ तो योग्य नहीं है। जो परम्परा अनादिनिधन जैनधर्म का स्वरूप शास्त्र में प्ररूपण किया है, उसकी प्रवृत्ति छोड़कर बीच में कोई पापी पुरुषों ने अन्यथा प्रवृत्ति चलायी हो,... आहाहा! कितना है? २१९ पृष्ठ है। गुजराती। क्या करते हैं? केवल व्यवहारालम्बी जैनाभास का निरूपण। उसमें है यह। आहाहा! **कोई पापी पुरुषों ने अन्यथा प्रवृत्ति चलायी हो, उसे परम्परा मार्ग कैसे कहा जाये? तथा उसे छोड़कर पुरातन जैनशास्त्रों में जैसा धर्म प्ररूपित किया था, वैसे प्रवर्ते तो उसे नवीन मार्ग कैसे कहा जाये?** देवीलालजी! आहाहा! लो! यह निकालने के लिये, यही पृष्ठ आया। भाई! यह नवीन नहीं। बीच में विरुद्ध मार्ग चलाया था, उसे छोड़कर यह सत्य था, उसे बाहर रखा, आया है। सेठ! आहाहा! बीच में

डाला, पुण्य से धर्म होता है और व्यवहार से होता है। ऐसा चलाया था पापी पुरुषों ने। आहाहा! पृष्ठ यह और सामने यह आया। इतना भाग। आहाहा! देखा!

शास्त्रों के अर्थ को विचार कर यदि कालदोष से जैनधर्म में भी पापी पुरुषों ने कुदेव-कुगुरु-कुधर्म सेवनादिरूप तथा विषय-कषाय पोषणादिरूप... देखा! राग को पोषने आदिरूप **विपरीत प्रवृत्ति चलायी हो तो उसे त्याग कर जिनआज्ञानुसार प्रवर्तना योग्य है।** आहाहा! यहाँ पापी लिखा है। उसमें दुष्ट है। जहाँ श्वेताम्बर का पहला कहा है न? वह पहला जहाँ लिखा है, वहाँ दुष्ट पुरुषों ने चलाया, ऐसा लिखा है। वह श्वेताम्बर का काल में... अन्दर है न? यह पाँचवें अध्याय में है। यह पाँचवें में है। आहाहा! सातवाँ अध्ययन तो... सातवाँ अध्याय हमने लिख दिया था। पुस्तक रखते नहीं थे। पुस्तक तो बेचारे बहुत दें हमको तो। परन्तु यहाँ कौन वह उपाधि रखे? फिर सातवाँ अध्ययन... (संवत्) १९८२ के वर्ष में पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक वाँचा। फिर पुस्तक हाथ में साथ में रखते नहीं और सातवाँ अध्ययन (अधिकार) रखा, ओहो! फिर यहाँ बगसरा है। (संवत्) १९८४ की बात है, बगसरा गाँव। वे कल्याणजीभाई थे। उनके पास मोक्षमार्गप्रकाशक था। वह कहे, ले जाओ। कहा, पुस्तक कहाँ ले जायें? यह सातवाँ अध्ययन लिख लिया हुआ पड़ा था हमारे पास। ८४ के वर्ष। आहाहा! गजब काम किया है।

मुमुक्षु : वे पृष्ठ अभी अलमारी में पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़े हैं अन्दर। हाँ, पड़े है न। ८४ के वर्ष। १६ और ३३ = ४९। आहाहा! उसमें यह है। बापू! मार्ग तो यह है न, भाई! आहाहा! देखो! है न? वह नवीन मार्ग कैसे कहलाये? आहाहा!

दूसरा, कुल में जैसी जिनदेव की आज्ञा है, वैसी ही धर्म की प्रवृत्ति हो तो स्वयं भी उसी प्रमाण प्रवर्तना योग्य है, परन्तु उसे कुलाचरण न जानकर, धर्म जानकर उसके स्वरूप-फलादि का निश्चय करके अंगीकार करना। पहिचान करना चाहिए। कुल में जन्मे-जन्मे दिगम्बर में, इसलिए (सच्चा) यह नहीं। दिगम्बर क्या? अभी दिगम्बर किसे कहना? वाडा में जन्मे, इसलिए (दिगम्बर) हो गये? इसलिए तो यह

कहते हैं। कुल में मनुष्य यदि आचरण को छोड़ेंगे तो स्वयं भी छोड़ देगा। कुलधर्म प्रमाण करना, वह है नहीं। दिगम्बर कुल में जन्मे, इसलिए वह नहीं। परीक्षा करके आत्मा क्या ? पुण्य क्या ? आस्रव क्या ? आहाहा ! बहुत अच्छी बात ली है। मोक्षमार्गप्रकाशक। आहाहा !

जिसने परीक्षा करके रत्न पा लिया,... ऐसा डालना, परीक्षा शब्द एक अधिक। संस्कृत में है इसलिए। **जिसने परीक्षा करके रत्न पा लिया, उसको काँच के टुकड़ों की क्या जरूरत ? उसी तरह जिसका चित्त (-ज्ञानपर्याय) आत्मा में लग गया,...** आहाहा ! मेरा भगवान अतीन्द्रिय आनन्दमय प्रभु, उसकी जिसे रुचि जम गयी। आहाहा ! भले फिर आठ वर्ष की बालिका हो और फिर विवाह भी करे। समझ में आया ? परन्तु वहाँ रुचि नहीं। आहाहा ! यह बात। आनन्दस्वरूप में रुचि जम गयी है। आहाहा !

उसके दूसरे पदार्थों की वांछा नहीं रहती। आहाहा ! एक स्वपदार्थ की भावना सिवाय... आहाहा ! **दूसरे पदार्थों की वांछा नहीं रहती।** व्यवहाररत्नत्रय की भी भावना नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! दूसरे में सब आ गया या नहीं ? आहाहा ! आवे सही। व्यवहार हो सही। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक निश्चय के साथ व्यवहार होता है। परन्तु उसकी भावना नहीं होती कि यह रहना और टिकना। उसका उत्साह नहीं होता। आहाहा ! समझ में आया ?

यह ७८ हुई। आज तो साढ़े आठ से था न ? साढ़े नौ है। पाँच-छह मिनिट हैं।

गाथा - ७९

अथ कर्मफलं भुञ्जानः सन् योऽसौ रागद्वेषं करोति स कर्म बध्नातीति कथयति -

२०३) भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु मोहइँ जो जि करेइ।
भाउ असुंदरु सुंदरु वि सो पर कम्मु जणेइ।।७९।।

भुञ्जानोऽपि निजकर्मफलं मोहेन य एव करोति।
भावं असुन्दरं सुन्दरमपि स परं कर्म जनयति।।७९।।

भुंजंतु वि इत्यादि। भुंजंतु वि भुञ्जानोऽपि। किम्। णिय-कम्म-फलु वीतराग-परमाह्लादरूपशुद्धात्मानुभूतिविपरीतं निजोपार्जितं शुभाशुभकर्मफलं मोहइं निर्मोहशुद्धात्म-प्रतिकूलमोहोदयेन जो जि करेइ य एव पुरुषः करोति। कम्। भाउ भावं परिणामम्। किंविशिष्टम्। असुंदरु सुंदरु वि अशुभं शुभमपि सो पर स एव भावः कम्मु जणेइ शुभाशुभं कर्म जनयति। अयमत्र भावार्थ। उदयागते कर्मणि योऽसौ स्वस्वभावच्युतः सन् रागद्वेषौ करोति स एवः कर्म बध्नाति।।७९।।

आगे कर्म-फल को भोगता हुआ जो राग-द्वेष करता है, वह कर्मों को बांधता है -

अपने कर्म फलों को भोगे और मोह से भाव करे -
सुन्दर और असुन्दर तो वह जीवकर्म से सदा बँधे।।७९।।

अन्वयार्थ :- [य एव] जो जीव [निजकर्मफलं] अपने कर्मों के फल को [भुंजानोऽपि] भोगता हुआ भी [मोहेन] मोह से [असुंदरं सुंदरम् अपि] भले और बुरे [भावं] परिणामों को [करोति] करता है, [सः] वह [परं] केवल [कर्म जनयति] कर्म को उपजाता (बाँधता) है।

भावार्थ :- वीतराग परम आह्लादरूप शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत जो अशुद्ध रागादिक विभाव उनसे उपार्जन किये गये शुभ-अशुभ कर्म उनके फल को भोगता हुआ जो अज्ञानी जीव मोह के उदय से हर्ष-विषाद भाव करता है, वह नये कर्मों का बंध करता है। सारांश यह है कि, जो निज स्वभाव से च्युत हुआ उदय में आये हुए कर्मों में राग द्वेष करता है, वही कर्मों को बाँधता है।।७९।।

गाथा-७९ पर प्रवचन

आगे कर्म-फल को भोगता हुआ... देखो! **जो राग-द्वेष करता है, वह कर्मों को बाँधता है—**ऐसा कहते हैं। ज्ञानी को कर्म का फल आवे, उसमें रुचि और प्रेम नहीं, ऐसा कहते हैं। इससे उसे उस प्रकार का राग-द्वेष नहीं होता। रुचि के प्रति का। रुचि का जो राग-द्वेष, वह उसे नहीं होता; इसलिए उसे बन्धन है नहीं। आहाहा! अज्ञानी को तो कर्म के फल ऐसे सामग्री (देखकर)... आहाहा! (हो जाता है)। ७९।

२०३) **भुंजंतु वि णिय-कम्म-फलु मोहइँ जो जि करेइ।**
भाउ असुंदरु सुंदरु वि सो पर कम्मु जणेइ।।७९।।

अन्वयार्थ :- जो जीव अपने कर्मों के फल को भोगता हुआ भी मोह से भले और बुरे परिणामों को करता है,... आहाहा! शुभ और अशुभभाव करे, कर्म के उदय में जुड़कर। आहाहा! सामग्री मिली, चक्रवर्ती का राज मिले। ब्रह्मदत्त को मिला। मोह और राग-द्वेष करके मरकर नरक में गया। आहाहा! भरत चक्रवर्ती, छह लाख पूर्व तक चक्रवर्तीपद में रहे। छह लाख पूर्व किसे कहते हैं? एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व। ऐसा एक पूर्व, दो पूर्व, ऐसा उसे हजार पूर्व नहीं, परन्तु लाख पूर्व। ऐसे छह लाख पूर्व। छह लाख पूर्व। आहाहा! राग का परिणमन थोड़ा आसक्ति का था। वह दीक्षा लेकर जहाँ अन्दर उतरे, तोड़ डाला। आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में छह लाख पूर्व का जो चारित्र की आसक्ति और राग का पाप था, (उसे तोड़ डाला)। अन्दर उतरे। एक अन्तर्मुहूर्त में छह लाख पूर्व का पाप नाश कर डाला। चक्रवर्ती का... राग और वह सब। वह तो अस्थिरता का राग (था)। रुचि का राग नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'निजकर्मफलं' भाषा ऐसी है न? स्वयं बाँधे वे कर्म का फल, ऐसा। **भोगता हुआ भी मोह से भले और बुरे परिणामों को करता है,...** आहाहा! **वह केवल कर्म को उपजाता (बाँधता) है।** आहाहा! नये कर्म बाँधता है। कर्म के फल में प्रेम है न? हमने किये और देखो आये हैं यह। आहाहा! देखो न! यह अरबी को एक घण्टे में दो करोड़

की आमदनी। उसका फल भोगने से तीव्र पाप बाँधेगा। गजब बातें, बापू! और पोढ़ेगा नरक में जायेगा। आहाहा! उसे तो परलोक की श्रद्धा भी नहीं होती, मुसलमान है तो। आहाहा! **भले और बुरे...** भाव। देखा! **कर्म को उपजाता (बाँधता) है।** आहाहा!

भावार्थ :- वीतराग परम आह्लादरूप शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत... आहाहा! यह अशुद्ध रागादि भाव। अशुद्ध पुण्य और पाप का भाव, वह वीतराग परमानन्दरूप शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत है। आहाहा! **वीतराग परम आह्लादरूप...** भगवान वीतरागस्वरूप विराजते हैं सब प्रभु। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द में तन्मय-तन्मय प्रभु हैं सब। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द से सराबोर है। आहाहा! ऐसी जो **वीतराग परम आह्लादरूप शुद्धात्मा की अनुभूति से...** उसका जो अनुभव। आहाहा! उससे विपरीत **अशुद्ध रागादिक विभाव...** आहाहा! शुभ और अशुभभाव दोनों उससे विपरीत है।

उनसे उपार्जन किये गये शुभ-अशुभ कर्म, उनके फल को भोगता हुआ जो अज्ञानी जीव मोह के उदय से हर्ष-विषाद भाव करता है,... मोह के उदय से का अर्थ विकार को प्रगट करके **हर्ष-विषाद भाव करता है,...** आहाहा! **नये कर्मों का बन्ध करता है। सारांश यह है कि जो निज स्वभाव से च्युत हुआ...** आहाहा! **उदय में आये हुए कर्मों में राग-द्वेष करता है, वही कर्मों को बाँधता है।** लो! विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

...प्रकाशक...
श्री सीमंधर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट
राजकोट